समाजशास्त्र की रूपरेखा-२

(Outline of Sociology-II)

समाजशास्त्र पर हमारे अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

---

* समाजशास्त्र की रूपरेखा-भाग १	प्रो० तोमर	८ ५०
* समाजशास्त्र की रूपरेखा भाग २	,	९,५०
* भारतीय सामाजिक सस्थाए	,,	१५ ००
* पारिवारिक समाजशास्त्र	,,	१२ ५०
* सामाजिक विघटन	,,	१२ ५०
* सामाजिक मनोविज्ञान भाग १	,	२ ५०
* सामाजिक समस्याएँ तथा सुरक्षा	, तथा अन्य	१२ ५०
* सामाजिक मानवशास्त्र	,, तथा फिलिप्स	१० ००
* सामाजिक अनुसन्धान	,, तथा दक	१५ ००
* सामाजिक विचार एव विचारक	प्रो० तेजमल दक	१२ ५०
* समाजशास्त्र प्रश्नोत्तरी	प्रो० मोतीलाल गुप्ता	४ ००
* बाधित बालक	श्रीधर शर्मा	१ ७५
* बाल अपराध	,,	५ ००
* भारत मे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण	प्रो० दक तथा गुप्त	५ ००
* पचायती राज	कुम्भाराम आर्य तथा गुप्त	१ ३७
* राजस्थान साक्षर होगा	डा० शम्भूलाल शर्मा	१ २५
* ग्रामीण समाजशास्त्र	प्रो० रायपुरिया तथा गोयल	१२ ५०
* प्रौढ शिक्षा प्रवेश	श्री० पी बी जोशी	१ १२
* आदि ससार म मनुष्य (अनुवाद)	प्रो० हाबल	(प्रेस मे)

●

दत्त बन्धु प्राइवेट लिमिटेड,
अजमेर ● अल्मोडा

समाजशास्त्र की रूपरेखा

(Outline of Sociology-II)

भाग २

लेखक

प्रो० राम बिहारी सिंह तोमर,
अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
एन ए एस कॉलेज, मेरठ

भूमिका लेखक
डा० एम० एस० गोरे,
डाइरेक्टर,
दिल्ली स्कूल ऑफ सोस्यल वर्क,
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रकाशक—
दत्त बन्धु प्राइवेट लिमिटेड,
अजमेर — अल्मोड़ा

FOREWORD

If Hindi is to become an effective medium of instruction in colleges and universities it is a prime necessity that introductory text books on the various subjects of instruction be made available in that language So long as such books are not available students will be unable to develop their thinking in Hindi They will inevitably tend to read and think in a different medium and then attempt to translate their thoughts into Hindi Such a procedure cannot be conducive to the understanding of the subject on the part of the students nor can it be helpful in the vigorous growth of the particular discipline they are attempting to study and master

By writing this book Mr R B Tomar is attempting to meet this crucial need in the field of Sociology He has adopted a simple and direct mode of presentation and his book should serve as a useful introduction to the subject. Writers of introductory texts in the humanities have to face the difficult problem of presenting, on the one hand the various points of view held by different authorities on a given subject in the interests of authenticity and on the other, of ensuring that the essential simplicity of the over-all presentation is not lost Mr Tomar has been able to meet these conflicting requirements

M S GORE
Director
Delhi School of Social Work,
Delhi University, Delhi-8.

प्रकाशकीय

पुस्तक की उपयोगिता के विषय मे तीन संस्करण की आनुमानित समय से पूर्व ही समाप्ति प्रशस्ति है। निर्धारित समय पर हम चतुर्थ संस्करण न दे सके, विद्यार्थियो को आतुरता से प्रतीक्षा करनी पडी, हमें खेद है। समय का लाभ उठाकर किन्हीं प्रकाशक ने प्रतियो के अभाव और पुस्तक की विशेष उपयोगिता देखते हुए जाली संस्करण भी बाजार मे ला रखा। पुस्तक जाली थी इस कारण अशुद्धियाँ भी अनेक थी। विद्यार्थी वास्तविकता का मूल्यांकन न कर सके—बदनामी हमे मिली।

अब यह चतुर्थ पूर्णत संशोधित एव परिवर्धित संस्करण आपके समक्ष है। यह वहिर्मुखी पूर्ण है। आशा है इस नवीन संस्करण को विद्यार्थी एव प्राध्यापकगण अधिक उपयोगी पायेंगे।

लेखक की अन्य कृतियाँ जिनकी विद्यार्थी एव प्राध्यापकगण आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे हैं अब शीघ्र ही प्रकाशित हो रही हैं। हमे विश्वास है कि हिन्दी भाषा मे समाजशास्त्र के विस्तृत क्षेत्र मे श्री तोमर की रचनाएँ उचित सम्मान प्राप्त करने मे सफल हो सकेंगी।

हमे अत्यन्त क्षोभ है तथा हम क्षमा प्रार्थी हैं कि प्रेस की भूल से एक दो स्थानो मे अध्याय क्रम गलत अंकित हो गया है, अत विषय सूची मे भी उसी प्रकार करना पडा है. विद्यार्थियो से अनुरोध है कि इस त्रुटि पर विचार न करें।

—प्रकाशक

समाज सेवा के महान व्रती

जिनके हृदय में

सर्वदा स्नेह, दया, धर्म एवं न्याय की सरिता बहती रहती है

उन्हीं परम श्रद्धेय गुरुवर

माननीय लेफ्टीनेन्ट कर्नल कालकाप्रसाद भटनागर

उप कुलपति, आगरा विश्वविद्यालय

के

कर कमलों

में

सादर समर्पित

—'रवि'

प्रस्तावना

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त समाजशास्त्र का महत्व एवं इसके प्रति लोगों की अभिरुचि हमारे देश मे दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह अभी शैशवावस्था को पार भी नहीं कर पाया है। इसके लिये यदि कहा जाय कि स्वतन्त्र भारत की प्रगति ही समाजशास्त्र के विकास का इतिहास है तो अनुचित न होगा। कभी कभी ऐसा लगता है कि समाशास्त्र स्वतन्त्रता के क्षण की बाट जोह रहा था जिसकी प्राप्ति के साथ ही इसने निज गौरवशाली इतिहास के प्रथम चरण का सूत्रपात किया। कहने को तो इस विज्ञान का पठन-पाठन बम्बई विश्वविद्यालय मे १६१६ से ही आरम्भ हो चुका था किन्तु इसका वास्तविक विकास १६४७ के पश्चात् ही हुआ है। उत्तरी भारत मे सर्वप्रथम आगरा विश्वविद्यालय ने इस विषय को पृथक् विज्ञान के रूप मे अपनाय जिसका श्रेय डा० रामनारायण सक्सेना, एम० ए० पीएच० डी०, डी० लिट् डाईरेक्टर, इस्टीट्यूट आफ सोशियल साइन्सेज़, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा तथा भूतपूर्व प्रिंसिपल, डी० ए० वी० कॉलेज देहरादून, को है। इन्हीं के प्रयत्नों से इस विषय को लोकप्रियता मिली और अधिकाधिक विद्यार्थी इस विषय का अध्ययन करने लगे। अब दूसरी कठिनाई आ खड़ी हुई। पढ़ाई का माध्यम हिन्दी हो गया, पर राष्ट्रभाषा हिन्दी मे इस विषय की पुस्तकों की उपलब्धि कहाँ ? प्रस्तुत पुस्तक इसी आवश्यकता के अनुभव का प्रतिफल है।

इस पुस्तक को प्रस्तुत करने मे कई बातें ध्यान मे रखी गई हैं। प्रथम तो यह कि भाषा की सरलता एव रोचकता को बनाये रखने के लिये संस्कृत मिश्रित क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। मेरा ऐसा विश्वास है कि राष्ट्रभाषा के विकास के लिये यह अत्यावश्यक है कि पुस्तक मे सरल बोलचाल के शब्दों का प्रयोग तो किया ही जाय, साथ ही साथ विदेशी भाषाओं के उन शब्दों को भी पचा लिया जाय जो हमारी संस्कृति के अभिन्न अंग बन गये हैं। यह सन्धिकाल है और हम आंग्ल भाषा से हिन्दी माध्यम की

ओर आ रहे हैं। इस हेतु पारिभाषिक शब्दों के आंग्ल पर्यायवाची शब्द भी स्थान स्थान पर कोष्टक में देने की चेष्टा की गई है।

मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह पुस्तक आंग्ल पुस्तकों का भाषान्तर नहीं है। इसमें प्रत्येक विषय को स्पष्ट रूप में व्याख्या एवं विश्लेषण करते हुए समझाया गया है। यदि कहीं अन्य पुस्तकों से कतिपय अंश लिये भी गये हैं तो उसी स्थान पर प्रासङ्गिक विवरण भी दे दिया गया है ताकि विद्यार्थी उन पुस्तकों की सहायता से इस विषय का गहन अध्ययन भी कर सकें। यथासम्भव पूर्ण विवरण सहित अवतरण पृष्ठतल पर अङ्कित किये गये हैं।

पुस्तक भारतीय पर्यावरण में लिखी गई है, अतः यथासम्भव उदाहरण अपने देश के ही दिये गये हैं जो विषय स्पष्ट करने के लिये आवश्यक हैं क्योंकि हमारे समाज का ताना बाना तथा हमारी सामाजिक समस्यायें अन्य देशों से सर्वथा भिन्न हैं।

मैंने इस पुस्तक में उन सभी कठिनाइयों को दूर करने की चेष्टा की है जो मेरे सम्मुख एक समाजशास्त्र के विद्यार्थी एवं अध्यापक होने के नाते आई और आती रहती हैं अनुमानतः समाजशास्त्र के सिद्धान्तों पर हिन्दी में यह प्रथम पुस्तक है जो एक समाजशास्त्र के विद्यार्थी एवं अध्यापक के द्वारा लिखी गई है। आज हिन्दी जगत में समाजशास्त्र पर उच्चकोटि की पुस्तकों का अभाव है। कारण यह है कि अब तक समाजशास्त्र के विद्यार्थियों एवं अध्यापकों ने इस ओर ध्यान देने का कष्ट ही नहीं किया है। अतः यह पुस्तक यदि विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की कठिनाइयों को दूर कर इस विषय का परिपक्व ज्ञान कराने में सहायक हो सकी तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूँगा। साथ ही मैं उन सभी अध्यापकवृन्द, विद्यार्थियों एवं अन्य पाठकों का आभारी हूँ जिन्होंने समय समय पर इस पुस्तक की त्रुटियों की ओर संकेत करने अथवा इसमें कोई सुधार का सुझाव देने का कष्ट किया है।

अन्त में मैं उन सभी लेखकों एवं मित्रों का आभार मानता हूँ जिन्होंने मुझे इस प्रयास में योग दिया है। मेसर्स दत्त बन्धु (प्राइवेट) लि., अजमेर ने इस पुस्तक के प्रकाशन में जिस तत्परता का परिचय दिया है, उसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

विजयदशमी २०१३ — राम बिहारी सिंह तोमर

ब्यावर (राजस्थान)

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

सामाजिक संगठन १–१०
(Social Organisation)

अध्याय पृष्ठ

१. सामाजिक संगठन ३–१०
(Social Organisation)

सामाजिक सगठन का अर्थ—सामाजिक सगठन की प्रकृति—सामाजिक सगठन का वर्गीकरण—सामाजिक सगठन अमूर्त है—सामाजिक सगठन और सामाजिक ढांचा—सामाजिक सगठन के आवश्यक तत्व—सामाजिक नियन्त्रण—सभ्यता और सामाजिक सगठन—प्रजातन्त्र और सामाजिक सगठन।

द्वितीय खण्ड

सामाजिक समूह–१ ११–१५७
(Social Groups-1)

२. सामाजिक समूह १२–३५
(Social Groups)

सामूहिक सम्बन्ध स्थापित होने के अवसर—सामाजिक समूह के आवश्यक तत्व—वाह्य समूह के प्रति व्यवहार—प्राथमिक समूह की परिभाषा—प्राथमिक समूहो की परिस्थियाँ—प्राथमिक सम्बन्ध मे अत्यधिक नियन्त्रण शक्ति होती है—प्राथमिक समूह का मनोवैज्ञानिक आधार—प्राथमिक समूह से लाभ—द्वैतीयक समूह—द्वैतीयक समूह मे व्यक्ति का कार्य—द्वैतीयक समूह मे कुछ कमियाँ—सामाजिक समूहों के विशिष्ट गुण—समूहो के वर्गीकरण मे कठिनाइयाँ।

अध्याय पृष्ठ

३ परिवार : उत्पत्ति तथा संगठन ३६–६६
(Family : Origin and Organisation)
परिवार का अर्थ—परिवार की उत्पत्ति—परिवार के सगठन की प्रमुख विशेषताएँ—परिवार के प्रमुख कार्य—परिवार के परम्परात्मक कार्य—परिवार का समाज मे महत्व—विभिन्न सस्कृतियो मे परिवार के स्वरूप।

४ परिवार विवाह ६७–७४
(Family Marriage)
विवाह का अर्थ—विवाह एक सस्था के रूप मे—विवाह एक विचार से सस्था।

५ विवाह के प्रकार ७५–१०२
(Forms of Marriage)
एक विवाह के भेद—एक विवाह का प्रचलन—बहु-विवाह—बहु पत्नी विवाह—बहु पति विवाह—जीवन-साथी प्राप्त करने की पद्धतियाँ।

५ परिवार : पारिवारिक विघटन १०३–१११
(Family : Family Disorganisation)
पारिवारिक सगठन—पारिवारिक विघटन के कारण।

६. सयुक्त परिवार ११२–१३७
(Joint Family)
सयुक्त परिवार का अर्थ—सयुक्त परिवार व्यवस्था की उत्पत्ति—सयुक्त परिवार के गुण—सयुक्त परिवार के दोप—सयुक्त परिवार को विघटित करने वाले कारक—सयुक्त-परिवार को बनाये रखने वाले घटक—भारत मे हिन्दू-सयुक्त-परिवार व्यवस्था—हिन्दू परिवार की प्रकृति—सयुक्त परिवार का भविष्य।

६. आधुनिक परिवार १३८–१५०
(Modern Family)
आधुनिक परिवार का ढाँचा—आधुनिक परिवार के कार्य—आधुनिक परिवार की समस्याएँ—परिवारिक पुनर्गठन—परिवार का भविष्य।

७. स्थानीय समूह : खानाबदोशी झुण्ड, गोत्र, वन्य जाति १५१–१५७
(Spatial Groups : Horde, Clan, Tribe)
खानाबदोशी दल—खानाबदोशी झुण्ड—गोत्र—गोत्र और बहिर्विवाह—

अध्याय पृष्ठ

पारस्परिक सहायता एवं सुरक्षा—गोत्र और अद्धांश समूह—वन्य जाति—वन्य जाति का संगठन।

तृतीय खण्ड

सामाजिक समूह–२ १५६–२४३
(Social Groups-2)

८ वर्ग तथा जाति १६० १६५
(Class and Caste)

स्थिति—वर्ग के आवश्यक तत्व—सामाजिक वर्ग की कसौटी—वर्ग को पहिचानने के चिन्ह—जाति—जाति का अर्थ—जाति की उत्पत्ति—परम्परात्मक सिद्धान्त—जाति की विशेषताएँ—समाज का खण्डात्मक विभाजन—जातिप्रथा के दोष—जातिप्रथा मूल्याङ्कन—जातिप्रथा को स्थायी रखने वाले तत्व—जातिप्रथा के विरोधी तत्व—जातिप्रथा भारत म ही क्यो—जातिप्रथा और प्रजातन्त्रवाद—अप्रतिबन्धित तथा प्रतिबन्धित वर्ग—जाति और व्यवसाय संघ।

९ प्रजाति अर्थ तथा वर्गीकरण १६६–२१२
(Race Meaning and Class)

प्रजाति शब्द का विभिन्न अर्थों मे प्रयोग—प्रजाति का वैज्ञानिक अर्थ—स्पष्ट शारीरिक लक्षण—प्रजातियो की उत्पत्ति—प्रजाति लक्षण—प्रजातियो का वर्गीकरण—वर्गीकरण की आलोचना।

१० प्रजाति भारत मे प्रजातियाँ २१३–२१६
(Race Races in India)

११ प्रजाति प्रजातिवाद २१७–२२५
(Race Racism)

प्रजातिवाद का अर्थ—प्रजातिवाद की समस्या—शुद्ध व अमिश्रित प्रजातियाँ–प्रजाति के स्थान पर दूसरा शब्द।

१२ राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता २२६–२४३
(Nation and Nationality)

राष्ट्रीयता—राष्ट्रीयता के आवश्यक तत्व—राष्ट्रीयता के स्वरूप—राष्ट्र—राष्ट्र के आवश्यक तत्व—क्या भारत के विभिन्न भाग राष्ट्रीयताएँ हैं ?—राष्ट्रीयता तथा अंतर्राष्ट्रीयता—राष्ट्र और देश म अन्तर।

अध्याय पृष्ठ

चतुर्थ खण्ड

वृहत्-समितियाँ एवं संस्थाएँ २४४-२७०
(Greater Associations & Institutions)

१३ आर्थिक सस्थायें तथा समितियां २४५-२५२
आर्थिक सस्थाओ का अर्थ—आर्थिक और राजनैतिक समिति म अन्तर—आर्थिक सस्थाओ तथा समितियो की उत्पत्ति—आर्थिक सस्थाओ का विकास—व्यावसायिक एव औद्योगिक केन्द्र ।

१४ राजनैतिक सस्थायें तथा समितियाँ २५३-२६१
(Political Institutions and Associations)
राजनैतिक समितियो पर समाज शास्त्रीय दृष्टि—व्यक्ति और राज्य—राज्य की उत्पत्ति म सहायक तत्व—राज्य का उदभव—राज्य और सरकार—राज्य और राष्ट्र—राज्य और समुदाय—राज्य की प्रकृति—राज्य के कार्य ।

१५ सांस्कृतिक सस्थायें तथा समितियां २६२-२७०
(Cultural Institutions and Associations)
सांस्कृतिक सगठन की प्रमुख विशेषतायें—धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त—धर्म और समुदाय—धर्म और विश्वबन्धुता ।

पचम खण्ड

सामाजिक नियन्त्रण २७१-३०५
(Social Control)

१६ सामाजिक नियन्त्रण २७२-२८१
(Social Control)
नियन्त्रणकर्ता—सामाजिक नियन्त्रण के उद्देश्य—सामाजिक नियन्त्रण के प्रकार—सामाजीकृत बल के कार्य एव सीमाएँ ।

१७ सामाजिक सहितायें २८२-२९३
(Social Cod s)
सहिता और अभिमति का सम्बन्ध—सामाजिक सहिताओ के प्रमुख प्रकार—आचार सहिता—धर्म सहिता और आचार विचार सहिता का सम्बन्ध—धर्मसहिता और आचार महिता मे अन्तर—धर्म सहिता और

अध्याय पृष्ठ

आचार सहिता मे सघर्ष—प्रथा सहिता—प्रथा सहिता की आधुनिक युग मे अपूर्णता—वैधानिक सहिता की कमियाँ—दोनों एक दूसरे की पूरक हैं—फैशन और प्रथा।

१८ व्यक्ति और समाज २६४–३०५
(Individual and Society)
एकाङ्गी दृष्टिकोण—मनुष्य की साधना सामग्री—असमाजिक प्राणी।

षष्टम खण्ड

सामाजिक विघटन ३०७-४१७
(Social Disorganisation)

१६ सामाजिक विघटन ३०६–३२४
(Social Disorganisation)
सामाजिक विघटन का अर्थ—सामाजिक विघटन एक प्रक्रिया है—सामाजिक विघटन के लक्षण—सामाजिक विघटन के कारण—सामाजिक धारणाओ मे परिवर्तन—सामाजिक विघटन के घातक—सामाजिक विघटन के परिणाम—सामाजिक विघटन के प्रमुख रूप।

२० दरिद्रता ३२५–३४४
(Poverty)
दरिद्रता का अर्थ—दरिद्रता का निश्चय—दरिद्रता का वर्गीकरण—दरिद्रता की उत्पत्ति—दरिद्रता के कारण—दरिद्रता के दुष्परिणाम—दरिद्रता को दूर करने के उपाय।

२१ बेकारी ३४५–३६२
(Unemployment)
बेकारी का अर्थ—बेकारी के प्रकार—बेकारी के कारण—बेकारी दूर करने के उपाय—बेकारी दूर करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय समितियो द्वारा योजनायें—भारत मे बेकारी—बेकारी के कारण—बेकारी दूर करने के उपाय—केन्द्रीय तथा अन्य राज्य सरकारो द्वारा बेकारी दूर करने मे प्रयत्न।

अध्याय पृष्ठ

२२. अपराध ३६३-३९२
(*Crime*)

अपराधो का वर्गीकरण—अपराध के कारण—अपराधो का नियन्त्रण—दण्ड का सिद्धान्त—सुधारात्मक सिद्धान्त—अपराधी और समाज—अपराध निरोध।

२३ बाल अपराध ३९३-४१७
(*Juvenile Delinquency*)

बाल अपराध का अर्थ—बाल अपराधी तथा वयस्क अपराधी मे अन्तर—बाल अपराध का विस्तार—बाल अपराधो के प्रकार—बाल अपराध निरोध—बाल न्यायालय की उत्पत्ति तथा विकास—बाल न्यायालय तथा अन्य न्यायालयो में तुलना—बाल अपराधो का उपचार।

सप्तम खण्ड

मानव प्रकृति एवं सामूहिक व्यवहार ४१९--४९८
(Human Nature and Collective Behaviour)

२४. मानव प्रकृति—(Human Nature)

पशुओ के व्यवहार के आधार पर। ४२१-४२२

२५. ट्रापिज्म और प्रतिक्षेप क्रिया ४२३-४२९
(**Tropism and Reflex Action**)

प्रतिमान प्रतिक्रियाओ का अर्थ—ट्रापिज्म—ट्रापिज्म के सिद्धान्तो की आलोचना—प्रतिक्षेप क्रिया—कार्य प्रणाली—साधारण प्रतिक्षेप क्रिया, *शृंखला-आलोचना—प्रतिक्षेप क्रिया तथा ट्रापिज्म मे अन्तर।*

२६. मूल प्रवृतियों का सामान्य स्वरूप ४३०-४५२
(**General Nature of Instincts**)

मूल प्रवृति का अर्थ—कुछ अन्य विद्वानो द्वारा मूल प्रवृतियो की परिभाषायें—मूल प्रवृति और प्रतिक्षेप क्रिया—मेकडूगल के मूल प्रवृति सिद्धान्त की कुछ विशेषतायें—आलोचना—मूल प्रवृति और बुद्धि का सम्बन्ध।

अध्याय पृष्ठ

२७ सुझाव अनुकरण तथा सहानुभूति ४५३–४६४
(Suggestion Imitation and Sympathy)
सुझाव—सुझाव की प्रक्रिया—प्रभावपूर्ण सुझाव के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ—सुझाव के स्वरूप—प्रतिपक्ष सुझाव—सुझाव-ग्रहण क्षमता और सुझाव म अन्तर—सुझावो का वर्गीकरण—अनुकरण—अनुकरण का वर्गीकरण—सहानुभूति—सहानुभूति को प्रभावपूर्ण बनाने वाली परिस्थितियाँ—सहानुभूति मूल प्रवृति नहीं है।

२८ सामाजिक जीवन मे मूल प्रवृतियाँ ४६५–४६९
(Instincts in Social Life)
डा० मक्डूगल का सामाजिक व्यवहार के मौलिक तत्वो के विषय म विचार—डा० ट्रौटर का विचार—आलोचना—अन्यमूल प्रवृतियो के सिद्धान्त।

२९ समाज मे सुझाव, अनुकरण तथा सहानुभति के कार्य एव महत्व ४७०–४७७
(Role and Importance of Suggestion, Imitation and Sympathy in Society)
बगहाट और टार्ड का सिद्धान्त—पारस्परिक सम्ब ध—आलोचना—सामाजिक जीवन मे सुझाव का महत्व—सहानुभूति का महत्व—अनुकरण का महत्व।

३० सामूहिक व्यवहार ४७८–४७९
(Crowd Behaviour)
सामाजिक समूह।

३१ भीड व्यवहार ४८०–४९८
(Collective Behaviour)
भीड के आवश्यक तत्व—अनऔपचारिक भीड—मानसिक विशेषताएँ—भीड के निम्न स्तर के होने का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण—भीड और हिंसक भीड में अन्तर—श्रोतागण—श्रोतागण की विशेषतायें—मनोवैज्ञानिक विश्लेषण—भीड और श्रोतागण मे अन्तर—भीड व्यवहार की व्याख्या—निरुद्ध चालको की मुक्ति का सिद्धान्त—सामाजिक दशा का सिद्धान्त—बहुकारक सिद्धान्त।
शब्दानुक्रमणिका (Word Index)

प्रथम खण्ड

सामाजिक संगठन
(Social Organisation)

अध्याय १ : सामाजिक संगठन
(Social Organisation)

अध्याय १

सामाजिक संगठन

(Social Organisation)

सगठन की महिमा अपार है। सगठन के बिना सामूहिक व्यवहार का जो फल मिलना चाहिए वह नहीं मिलता है। थोड़े समय के लिये क्रीड़ा स्थल पर चलिये। फुटबॉल का खेल हो रहा है। दोनों टीमों म प्रत्येक खिलाड़ी का एक दूसरे स एक निश्चित सम्बन्ध होता है। कोई खेल में फुटबॉल (पदकन्दुक) को आगे बढ़ाता ह तो कोई गोल होने से बचाता है। यह निश्चित सहयोग जिस टीम में अधिक पाया जाता है वही टीम विजयी होती है। सगठन न केवल क्रीड़ा स्थल पर पाया जाता है अपितु हमारे जीवन के छोटे से छोटे कार्यों से लेकर बड़े से बड़े कार्यों तक में पाया जाता है। सड़क पर लोग चल रहे हैं, एक दूसरे से टक्कर न हो जाय इसलिये अपनी बायीं ओर चलने का सबको ध्यान रहता है। सगठन का अति जटिल रूप सेना में देखने को मिलता है। सगठन का महत्व प्रत्येक क्षेत्र में है। 'सघे शक्ति कलियुगे' अति प्रसिद्ध कहावत है।

सामाजिक सगठन का अर्थ (Meaning of Social Organisation)

सगठन उन सम्बन्धों को द्योतित करता है जो एक समूह के व्यक्तियों के बीच पाये जाते हैं। सामाजिक सगठन की परिभाषा करते हुए इलियट और मेरिल ने लिखा है, "सामाजिक सगठन वह दशा या स्थिति है जब कि एक समाज में विभिन्न सस्थायें अपने अपने पूर्व निश्चित एव मान्य उद्देश्यों के अनुसार कार्य कर रही होती हैं।" *

आगबर्न और निमकॉफ लिखते हैं, "सगठन किसी कार्य को करवाने की प्रभावपूर्ण सामूहिक युक्ति है।"† सगठन के द्वारा किसी भी कार्य को सरलता

* "Social organisation is a state of being, a condition in which the various institutions in a society are functioning in accordance with their recognized, or implied purposes" *Elliott, Mabel, A* and *Merrill, Francis, E* 'Social Disorganisation', Harper and Brothers, New York, Third Edition *1950*, p 4

† 'Organisation is an effective group device for getting

से और कम प्रयत्न में किया जा सकता है। यदि एक व्यक्ति की कार्य शक्ति 'क' है तो सौ सगठित व्यक्ति केवल १०० 'क' ही कार्य नहीं करेंगे परन्तु ये सगठित व्यक्ति १०० 'क' से कई गुना अधिक कार्य करेंगे। गणितशास्त्र में इसका कोई उत्तर नहीं है परन्तु समाजशास्त्र में इस समस्या का सबसे बड़ा महत्व है। सामाजिक जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिये सगठन बड़ा आवश्यक है।

सामाजिक सगठन की परिभाषा रयूटर और हार्ट ने निम्न शब्दों में की है, "सामाजिक सगठन से हमारा तात्पर्य सामाजिक और सांस्कृतिक सस्थाओं, उनके सम्बन्धों और समूह के सगठित कार्यों की सम्पूर्णता से है।"* सस्थाओं पर इन्होंने भी जोर दिया है।

प्राणीशास्त्रीय दृष्टिकोण से सगठन एक "पूर्णता" को कहते हैं। यह "पूर्णता" छोटे छोटे अवयवों से मिलकर बनती है। शरीर को ही लीजिये, शरीर का प्रत्येक अवयव एक विशिष्ट कार्य करता है परन्तु प्रत्येक अवयव स्वतन्त्र होते हुए भी परतन्त्र है। इसका अभिप्राय यह है कि विशिष्ट कार्य के क्षेत्र में प्रत्येक अवयव स्वतन्त्र है परन्तु सब एक दूसरे पर आधारित हैं। मस्तिष्क सबको निर्देशन देता है या नेता के रूप में पथ प्रदर्शन करता है। सामाजिक सगठन और जीवित प्राणियों में तुलना करने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं। संगठन छोटे छोटे भागों से मिलकर बनता है। लम्ले ने सामाजिक सगठन की परिभाषा करते हुए उचित ही लिखा है, "सामाजिक संगठन एक समष्टि है जो कि सहयोग करने वाले विशेष उपयुक्त भागों से मिलकर बनती है।"†

---

something bone" Ogburn, William F and Nimkoff Meyer F, "A Handbook of Sociology,' Routledge and Kegan Paul Ltd, London Second Edition (Revised) 1950, p 364

* "By social organisation is meant the totality of the social and cultural institutions and their interrelationships together with the body of the unorganised activities characteristic of the group" Reuter, E B and Hart, C W, Introduction to Sociology' Mc Graw Hill Book Company Inc New York and London, First Edition (Second Impression) 1933, p 161

† 'Social organisation is a whole composed of cooperating specialized parts " Lumley, Frederick E 'Principles of Sociology' McGraw Hill Book Co, Inc, New York Second Edition, (Ninth Impression) 1935, p 143

सामाजिक संगठन एक ऐसी दशा या स्थिति नहीं है जैसी कि एक जटिल प्रक्रिया है जो कि समाज के विभिन्न क्षेत्रों मे व्यवस्था एवं सम्बन्ध स्थापित करते हुये समाज को सुचारु रूप से चलाने मे सहायता पहुँचाती है। * सामाजिक सगठन वह सहयोग है जो मनुष्य के अगणित कार्यों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है और संघर्ष से बचाता है।

अत. सामाजिक संगठन वह सहयोग की व्यवस्था है जिसके कारण मनुष्य समाज मे एक दूसरे के साथ कार्य करता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। वह सदैव परिवर्तित होता रहता है।

सामाजिक संगठन वह जटिल प्रक्रिया है जो विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों में निश्चित सम्बन्धो की व्यवस्था करती है और इस कारण मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति समाज मे करता है।

सामाजिक संगठन की प्रकृति (Nature of Social Organisation)

अधिकांश सामाजिक संगठन जागरूक प्रयत्नों का फल है। उदाहरण स्वरूप सरकार, लोकसभा, समितियाँ इत्यादि। परन्तु बहुत से संगठन स्वतः उत्पन्न हुए हैं और उनके लिये कोई भी जागरूक योजना नहीं बनायी गई। इसका सर्वोत्तम उदाहरण भाषा का व्याकरण है। अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि उनकी बोली जाने वाली भाषा व्याकरण के सगठन द्वारा व्यवस्थित है। व्याकरण का जन्म एव विकास किसी भी जागरूक योजना द्वारा नहीं हुआ है। इसी प्रकार से परिवार की संस्था के विषय में भी कहा जा सकता है। परिवार का सगठन कुछ समूहो में बड़ा ही जटिल एवं महत्वपूर्ण है। फिर भी इसका विकास उस प्रकार से आयोजित नहीं है जैसे संयुक्त राष्ट्र सघ (United Nations Organisation) का है।

सामाजिक संगठन मनुष्यों की सामान्य इच्छाओं पर आधारित है। यदि छोटे छोटे लोहकण (Iron fillings) एक कागज पर डाल दीजिए तो किसी प्रकार का भी आकार (Pattern) नहीं बनेगा, परन्तु कागज़ के नीचे एक अश्वनाल चुम्बक (Horseshoe Magnet) रख दीजिए और तब लोहकण कागज पर डालिये तो ये लोहकण एक निश्चित आकार में हो जायेंगे। बिल्कुल यही एक समूह के सदस्यों के लिये भी सत्य है। जिस प्रकार से चुम्बक लोहकणों को एक निश्चित सम्बन्ध स्थापित करने के लिये बाध्य करता है उसी प्रकार से मनुष्यों की सामान्य इच्छायें उनके विभिन्न कार्यों के बीच सम्बन्ध

* See Case, C M, 'Outlines of Introductry Sociology', Harcourt, Brace & Co, 1924, p 560

स्थापित करती हैं और निश्चित आकार एवं सामाजिक प्रतिमान (Social Pattern) का निर्माण करती हैं। यही व्यवस्था की स्थिति सामाजिक संगठन कहलाती है। लोग पहिले मार्ग में चलने में किसी भी नियम का पालन नहीं करते होंगे, परन्तु उन्हें इसमें कष्ट होता होगा और अनेक दुर्घटनायें होती होंगी, अतः उन्होंने यह निश्चित किया कि बांई ओर चलना चाहिये। अमेरिका में दायीं ओर चलते हैं। पाकिस्तान ने भी अमेरिका का अनुकरण किया था परन्तु सफल न हो सका। तात्पर्य यह है कि चाहे दायीं ओर हो या बांई ओर परन्तु कोई न कोई ऐसी संगठित व्यवस्था बनानी होती है जो सामान्य इच्छाओं द्वारा बनती है और सर्वमान्य होती है।

सामाजिक संगठन का वर्गीकरण
(Classification of Social Organisation)

सामाजिक संगठन का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है। समनर (Sumner) ने सामाजिक संगठन का वर्गीकरण दो भागों में किया है—प्रथम व्यवस्थापित किये हुए (enacted) और द्वितीय विकसित हुए (cvescive)। प्रथम वर्ग में वे संगठन आते हैं जो जागरूक योजना के अनुसार स्थापित किये जाते हैं और दूसरे के अन्तर्गत वे संगठन आते हैं जो स्वतः अजागरूक अवस्था में उत्पन्न होते हैं और बिना किसी जागरूक प्रयत्न या योजना के विकसित होते रहते हैं। पहिले वालों को स्थापित (enacted) और दूसरे को 'स्वत. विकसित' (crescive) कहते है।[2]

र्यूटर और हार्ट (Reuter and Hart) ने सामाजिक संगठन को दो श्रेणियों में विभाजित किया है, प्रथम जातिगत (Communal) और द्वितीय सामाजिक (Social)। जातिगत प्रकार का सामाजिक संगठन प्राचीन एकाकी समुदायों में अधिकतर पाया जाता है, जहाँ पर जीवन साधारण और तुलनात्मक दृष्टि से गतिहीन एवं स्थिर होता है। जातिगत संगठन का आधार पवित्रता (Sacred) है। इन समूहों में व्यवहार और आदर्श रूढ़ियों (Mores) द्वारा निश्चित है। प्रत्येक सदस्य व्यवहार और विश्वास में एकमत रहते हैं और इन व्यवस्थाओं का पालन इसलिये करते हैं कि इनका आधार पवित्रता है।[3] सामाजिक श्रेणी के सामाजिक संगठनों का आधार असाम्प्रदायिक (Secular) होता है। यह संगठन विकसित एवं जटिल प्रकार के समाजों में पाया जाता है।

---

[2] William G Sumner, 'Folkways' (Boston, 1906) pp 53 54

[3] See Reuter and Hart, 'Introduction to Sociology', pp 162 3.

सामाजिक संगठन अमूर्त है (Social organisation is abstract)

यहां हमने सामाजिक सगठन के अर्थ एवं प्रकृति पर विचार किया। इससे स्पष्ट है कि सामाजिक सगठन अमूर्तमान है। एक सम्पूर्ण सगठित समाज की केवल कल्पनामात्र की जा सकती है परन्तु उसे संसार में वस्तुतः भौतिक एवं मूर्त-रूप में नहीं पाया जा सकता है।

सामाजिक संगठन और सामाजिक ढाँचा
(Social Organisation and Social Structure)

सामाजिक ढाँचे से हमारा तात्पर्य उस विशिष्ट व्यवस्था से है जो कि सम्बन्धित सस्थाओं, सामाजिक प्रतिमानों और साथ ही साथ सामाजिक स्थिति (Social Status) और कार्यों (Roles) के बीच सामजस्य स्थापित करती है और उसे बनाये रखती है।

सामाजिक सङ्गठन सामाजिक ढाँचे (Social Structure) के स्वरूप (Type) पर आधारित होता है। सामाजिक संगठन कार्य करेगा या नहीं यह इस पर आधारित है कि समूह के सदस्य अपनी स्थितियों (Statuses) और कार्यों (Roles) को पूरा करते हैं अथवा नहीं, साथ ही साथ सामाजिक संस्थाओं का पारस्परिक सहयोग भी अत्यन्त वांछनीय है। धार्मिक संस्थायें, राज्य, आर्थिक संस्थायें, कल्याणकारी संस्थायें, शिक्षण संस्थायें, परिवार एवं दूसरी सस्थायें परस्पर सम्बन्धित हैं। प्राचीन समय मे धर्मप्रधान सामाजिक सगठन भारतवर्ष में पाया जाता था। इस कारण से सारी अन्य संस्थायें उससे *सम्बन्धित थीं। आज राज्य का महत्व बढ़ता जा रहा है और अन्य संस्थायें* उसके अनुसार अपने को सम्बन्धित करती जा रही हैं।

सामाजिक संगठन के आवश्यक तत्व
(Essential Elements of Social Organisation)

(१) मतैक्य (Consensus)

सामाजिक संगठन का सर्वप्रथम एवं महत्वपूर्ण तत्व मतैक्य है। जब तक सामान्य सामाजिक मतैक्य, विभिन्न मौलिक समस्याओं पर, नहीं होगा तब तक समाज ही नहीं हो सकता। डी० टाकविले (De-Tocqueville) ने लिखा है, "एक समाज तभी जीवित रह सकता है जबकि उसके अधिकांश व्यक्ति अधिकतर वस्तुओं के विषय में एक ही दृष्टिकोण से विचार करते हों एवं वे बहुत

से विषयों के विषय में एक मत रखते हों और जब कि एक प्रकार की घटनायें उनके मस्तिष्क पर समान विचार और प्रभाव डालती हों।"†

किसी भी सामूहिक कार्य को करने के लिये कुछ न कुछ विचारों की एकता की आवश्यकता रहती है। जब तक किसी कार्य के विषय मे अधिकांश व्यक्ति सहमत नहीं हो जाते वह कार्य सुचारु रूप से नहीं किया जा सकता। दैनिक जीवन में इसका सब अनुभव करते हैं। यदि कोई कार्य शक्ति के द्वारा अनिच्छा-पूर्वक करवाया जाता है और करने वालों का मतैक्य नहीं होता तो वह कार्य वास्तविक एवं इच्छित फल नहीं देता। अनेक राज्यों के अध्यापकों के लिये यह अनिवार्य है कि वे रात्रि में प्रौढ़ शिक्षा एवं सामाजिक शिक्षाकेन्द्रों का आयोजन करें। अध्यापकों का इस योजना के प्रति मतैक्य न होने से वे इस योजना को अनिच्छापूर्वक विवश होकर चलाते हैं। इसका फल यह होता है कि जो परिणाम निकलने चाहिए वे नहीं निकलते।

मतैक्य का अर्थ साधारण भाषा मे समान विचार की प्रक्रिया से है। समाज के अधिकाश व्यक्ति जीवन के महत्वपूर्ण विषयो पर समान दृष्टिकोण से विचार करते हैं। मतैक्य (Consensus) स्वत जन्म लेता है और विकास पाता है इसे शक्ति के प्रयोग से उत्पन्न किया जा सकता। यह समाज के आन्तरिक जीवन का प्रदर्शन है।

मतैक्य सामाजिक सगठन का एक आवश्यक तत्व है। इसके बिना समाज अर्थहीन एव निरर्थक होता है। समाज मतैक्य पर ही आधारित है। समाज में मतैक्य प्रत्येक क्षेत्र में होना चाहिए तभी वह समाज सगठित कहलायेगा। जैसे जैसे यह मतैक्य लुप्त होता जाता है वैसे वैसे समाज विघटित होने लगता है।

(२) सामाजिक नियन्त्रण (Social control)

सामाजिक नियन्त्रण सामाजिक संगठन का दूसरा आवश्यक तत्व है। आदतें, जनरीतियाँ, प्रथायें, रूढ़ियाँ, विधियाँ, एवं संस्थायें सामाजिक सगठन को बनाये रखने में सहायता करती हैं और मतैक्य को उत्पन्न करती हैं।

सभ्यता और सामाजिक संगठन
(Civilization and Social Organisation)

सभ्यता और सामाजिक संगठन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। बहुत से विद्वानों का मत है कि जिस समाज का सामाजिक सगठन जितना जटिल होता जाता

† Alexis de Tocqueville, 'Democracy in America,' 1899 Vol I, p 398

है उतनी ही सभ्यता विकसित होती जाती है। सामाजिक संगठन सभ्यता का द्यातक है। निम्न स्तर के सभ्यता वाले समाजों में सामाजिक सगठन भी अति न्यून मात्रा में पाया जाता है। जैसे जैसे समाज प्रगति करता है वैसे वैसे सामाजिक संगठन भी बढ़ता जाता है। प्राचीन काल में परिवार, गाँव और राज्य इत्यादि सगठन पाये जाते थे, परन्तु आधुनिक युग में केवल परिवार के कार्य को पूरा करने के लिये अनेक सामाजिक संगठनों का निर्माण हो गया है। सामाजिक सगठन की जटिलता को प्रगति का चिह्न भी माना है।

प्रजातन्त्र और सामाजिक सगठन

(Democracy and Social Organisation)

प्रजातन्त्र में सामाजिक संगठन का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। प्रजातन्त्र में लोगों को स्वय निश्चय करने का अधिकार प्रदान किया जाता है तथा बहुमत का मत स्वीकार किया जाता है। किसी भी कार्य को करने के लिये मतैक्य होना अत्यन्त आवश्यक होता है। मतैक्य के अभाव म प्रजातन्त्र में कार्य सफल नहीं हो पाते। मतैक्य की उत्पत्ति के लिये ठोस सामाजिक सगठन की आवश्यकता होती है। विभिन्न कार्यों की पूर्ति के लिये भी एक संगठन की आवश्यकता होती है।

प्रजातन्त्र में बहुमत का राज्य होता है। बहुमत वे समूह ही प्राप्त कर सकते हैं जिनमें अधिक सगठन पाया जाता है। एक प्रजातान्त्रिक समाज में सामाजिक सगठन अत्यधिक महत्व रखता है। प्रजातन्त्र में विभिन्न सस्थायें एव समितियाँ एक दूसरे से अत्यधिक सामञ्जस्य रखती है, क्योंकि इस सामञ्जस्य के अभाव में समाज चल ही नहीं सकता। एकतन्त्र में तो प्रत्येक वस्तु एक व्यक्ति के हाथ में होती है, परन्तु प्रजातन्त्र म पारस्परिक सम्बन्ध अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। यह पारस्परिक सम्बन्ध तभी ठीक रह सकता है, जब कि इसके लिये कुछ नियम हों और वे नियम सबके द्वारा स्वीकार किये जायँ। नियमों की यह व्यवस्था ही सामाजिक सगठन का आवश्यक तत्व है। इससे स्पष्ट है कि प्रजातन्त्र में सामाजिक संगठन अत्यधिक महत्व रखता है।

प्रश्न

१. सामाजिक संगठन शब्द से आप क्या समझते हैं? वह किस प्रकार से सभ्यता एवं प्रजातन्त्रवाद से सम्बन्धित है।

   (Explain what do you understand by the term Social Organisation ? How is it related to civilization and democracy ?)

२. सामाजिक संगठन के आवश्यक तत्व क्या हैं ?

(What are the essential elements of Social Organization ?)

३. "सामाजिक संगठन समाज के आन्तरिक जीवन का प्रदर्शन है।" विवेचन कीजिये।

("Social Organization is the exhibition of the internal life of the Society" Discuss)

४. समाज में सामाजिक संगठन का क्या महत्व है ?

' What is the importance of Social Organization n Society ?)

SELECTED READINGS

1. Elliott and Merrill, "Social Disorganization", Chapter I.
2. Ogburn and Nimkoff, "A Hand Book of Sociology" Chapter XVII.

द्वितीय खण्ड

सामाजिक समूह—१
Social Groups—1

अध्यायः २. सामाजिक समूह
(Social Groups)

,, ३. परिवार : उत्पत्ति तथा संगठन
(Family : Origin and Organisation)

,, ४. परिवार : विवाह
(Family : Marriage)

,, ५. परिवार : विवाह के प्रकार
(Family : Forms of Marriage)

,, ५. परिवार : पारिवारिक विघटन
(Family : Family Disorganisation)

,, ६. संयुक्त परिवार
(Joint Family)

,, ६. परिवार : आधुनिक परिवार
(Family : Modern Family)

,, ७. स्थानीय समूह : गोत्र तथा वन्य जाति
(Spatial Groups : Clan & Tribe)

अध्याय २

सामाजिक समूह

(Social Groups)

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। यह कथन प्राचीन काल से विद्वानों द्वारा अनुमोदित किया जाता रहा है और आधुनिक युग के वैज्ञानिक भी इसको स्वीकार करते हैं। सामाजिक या झुण्ड में रहने की मूल प्रवृत्ति के कारण मनुष्य, समूह में रहता है और सामाजिक प्राणी कहलाता है, यह युक्ति अधिकाश मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी जाती है परन्तु यह बडी सरल व्याख्या है। कोई भी व्यवहार जो सामान्य रूप से समस्त संसार में पाया जाता है उसे यह मानव प्रकृति समझ बैठते हैं। यह उसी प्रकार है जैसे कोई प्रश्न करे कि अफीम खाने से लोग सो क्यों जाते हैं? उत्तर दिया जाय क्योंकि अफीम में निद्रा लाने की शक्ति है।

समूह में व्यक्ति आदि काल से रहता चला आ रहा है। ससार के किसी भी भाग में जाइये, समूह के दर्शन अवश्य होंगे। समूह मनुष्यों के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मनुष्य यदि मूल प्रवृत्तियों के कारण नहीं तो किन कारणों से समूह में रहता है? इसका उत्तर सरल सा है—मनुष्य पैदा होता है, वह अन्य पशुओं के समान शीघ्र स्वतन्त्र एव स्वावलम्बी नहीं हो पाता। इसकी यह अवस्था बचपन में ही नहीं रहती वरन् जैसे जैसे आयु बढ़ती जाती है वैसे वैसे वह समूह व्यक्तियों एवं सामाजिक समूहों के अधीन एव आश्रित होता जाता है। जन्म लेते ही माता इसकी देखरेख प्रारम्भ कर देती है, एक दो वर्ष तक वह परिवार नाम क सामाजिक समूह की कृपा पर रहता है। बाल्यावस्था में साथियों का समूह, पाठशाला तथा अन्य समूहों की शरण लेनी पडती है। आयु के विकास के साथ साथ मनुष्य के स्वार्थ (Interests) बढ़ते जाते हैं और इन स्वार्थों की पूर्ति के लिये समूहों की शरण लेने के लिय उसे बाध्य होना पड़ता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी इसलिये है कि उसकी इच्छाओं एव स्वार्थों की पूर्ति केवल सामाजिक समूह द्वारा ही हो सकती है। अत समूहों का निर्माण सामान्य स्वार्थों के कारण होता है। समूहों के निर्माण के विषय में लिखते हुए एडवर्ड सेपीर (Edward Sapir) ने लिखा है, "किसी

समूह का निर्माण इस तथ्य पर आधारित होता है कि कोई न कोई स्वार्थ समूह के सदस्यों को परस्पर बाँध रखता है।" [1]

सामूहिक सम्बन्ध स्थापित होने के अवसर

सामूहिक सम्बन्ध स्थापित होने के अनेक अवसर मिलते हैं। उनकी सूची बनाना असम्भव है परन्तु सॉरोकिन(Sorokin)जिमरमैन(Zimmerman) और गलपिन (Galpin) ने संक्षिप्त सूची निम्न प्रकार से दी है:—[2]

(१) रक्त सम्बन्ध एवं शारीरिक या कथित पूर्वजों से उत्पत्ति।
(२) विवाह
(३) धर्म या जादू-टोने में समान विश्वास।
(४) भाषा की समानता।
(५) रीति रिवाजों एवं रूढ़ियों की समानता।
(६) एक ही भूमि का प्रयोग या स्वामित्व।
(७) पड़ौस।
(८) सामान्य उत्तरदायित्व।
(९) सामान्य व्यवसाय।
(१०) एक ही स्वामी के आधीन होना।
(११) एक ही सामाजिक संस्था से सम्बन्धित होना।
(१२) पारस्परिक सहयोग।
(१३) एक ही शत्रु का होना।
(१४) साथ साथ रहना और कार्य करना।

सामाजिक समूह का कार्य

सामाजिक समूह की परिभाषा करते हुए विलियम्स (Williams) ने लिखा है,"एक सामाजिक समूह मनुष्यों के उस निश्चित संग्रह को कहते हैं, जो

1."Any group is constituted by the fact that there is some interest, which holds its members together." Edward Sapir, "Groups," Encyclopaedia of the Social Sciences, Vol. 7, p. 179, The Macmillan Company.

2. Pitirim Sorokin, Carle C Zimmerman, and Charles J. Galpin,Editors,'A Systematic Source Book in Rural Sociology, Vol.I.P,P.307–308, University of Minnesota Press, 1930.

कि परस्पर सम्बन्धित कार्य करते हैं और जो अपने द्वारा या दूसरों के द्वारा परस्पर सम्बन्धीकरण की इकाई के रूप में मान्य होते हैं।" [1]

सामाजिक समूह की परिभाषा ऑगबर्न और निमकॉफ (Ogburn and Nimkoff) ने निम्न शब्दों में की है, "जब कभी भी दो या अधिक व्यक्ति एकत्रित हो जाते हैं और एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं तो वे एक समाजिक समूह का निर्माण करते हैं।"[2] केवल व्यक्तियों के झुण्ड को ही समूह नहीं कहा जा सकता। समूह बनने के लिये आवश्यक है कि वे एक दूसरे पर प्रभाव डालें। इसी प्रभाव डालने वाली प्रक्रिया को मैकाइवर और पेज ने सामाजिक सम्बन्ध (Social Relationship) कहा है। इसके लिये दो आवश्यक तत्व अवश्य होने चाहिये, प्रथम उनमें पारस्परिक सम्बन्ध या परिस्परिकता (Reciprocity) और द्वितीय एक दूसरे के प्रति जागरूकता (Awareness)। वे लिखते हैं, "समूह से हमारा तात्पर्य व्यक्तियों के उस सङ्कलन से है जो कि एक दूसरे के साथ सामाजिक सम्बन्ध रखते हैं।" [3]

पेड़ों के एक झुण्ड को, जिनमें शारीरिक निकटता तो पाई जाती है परन्तु पारस्परिक सम्बन्ध द्वारा वे एक दूसरे को प्रभावित नहीं करते, हम समूह नहीं बल्कि झुण्ड (Aggregation) कहते हैं। यह अत्यन्त कठिन है कि मनुष्य एकत्रित हों और एक दूसरे पर प्रभाव नहीं डालें। नवजात शिशुओं का अलग प्रश्न है। वे एक ही स्थान पर हुये भी एक दूसरे पर कोई प्रभाव

---

1 "A social group is given aggregate of people playing inter related roles and recognized themselves by rothers as a unit of interaction" Robin M. Williams Jr, 'American Society, A Sociological interpretation,' Alfred A Knopf, Inc, New York, 1951, p 446

2 "Whenever two or more individuals come together and influence one another, they may be said to constitute a social group.' Ogburn, W. F. and Nimkoff, M. F. 'A Handbook of Sociology,' p 172

3 " by group we mean any collection of human beings who are brought into social relationships with one another." MacIver R M, and Page C H, 'Society,' p 213, M**millan & Co Ltd, London, 1953.

नहीं डालते क्योंकि जन्म के कुछ समय उपरान्त न तो वे सुनने योग्य होते हैं और न देखने योग्य ही। अतः साधारणतया जब भी मनुष्य एकत्रित होते हैं तो समूह का निर्माण हो जाता है। कुछ लोगों ने समान आयु, आय या बुद्धि के व्यक्तियों को समूह कहने की चेष्टा की है परन्तु उन्हें समूह नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनके बीच कोई भी सामाजिक सम्बन्ध नहीं रहता।

सामाजिक समूह के आवश्यक तत्व

एक सामाजिक समूह के निम्न आवश्यक तत्व होते हैं—

(१) दो या अधिक व्यक्तियों का होना।

(२) इन व्यक्तियों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्क का होना।

(३) इनके बीच कोई न कोई स्वार्थ या हित का होना। इस हित के कारण ही वे एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करेंगे।

सामाजिक समूहों का वर्गीकरण

सामाजिक समूह का वर्गीकरण करना बड़ा कठिन है। फिर भी वर्गीकरण करने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं। उनमें से कुछ निम्न हैं।

(१) समूह के प्रमुख कार्यों के आधार पर

कुछ विद्वानों ने समूहों का वर्गीकरण उनके प्रमुख कार्य के आधार पर करने की चेष्टा की है। इसके अनुसार उन्होंने समूह को धार्मिक समूह, राजनैतिक समूह, मनोरंजक समूह, शिक्षण समूह, इत्यादि में विभाजित किया है।

(२) स्थिरता के आधार पर

स्थिरता के आधार पर सामाजिक समूहों को दो प्रमुख भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में वे समूह आते हैं जो अस्थिर हैं, जैसे भीड़, श्रोतागण आदि, ये अस्थिर समूह कहलाते हैं। द्वितीय भाग में वे समूह आते हैं, जो स्थिर हैं, जैसे परिवार, विश्वविद्यालय आदि; इन्हें स्थिर समूह कहते हैं।

(४) संख्या के आधार पर

जर्मन समाजशास्त्री जॉर्ज सिमल (George Simmel) और उसके अनुयायी वॉनविज़े (Von Wiese) और बेकर (Becker)[1] ने संख्या के आधार पर समूहों का विभाजन किया है।

(४) कुछ अन्य वर्गीकरण

एलवुड (Ellwood) ने स्वीकृत (Sanctioned) और अस्वीकृत (Unsanctioned) में, गिडिंग्स (Giddings)ने सार्वजनिक(Public) और व्यक्तिगत (Private) में, मिलर (Miller)ने लम्बमान(Vertical)

---

1 Von Wiese and Becker, 'Systematic Sociology'.

और समतल (Horizontal) में समूहों को विभक्त किया है। कुछ विद्वानों ने *आयु और लिंग के आधार पर भी वर्गीकरण किये हैं। मैकाइवर और पेज* (MacIver and Page) द्वारा भी वर्गीकरण की एक योजना प्रस्तुत की गई है वह अनेक दृष्टियों से मान्य है। उसे हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं —

समूह (Groups)	समूहों के वर्गीकरण का आधार (Basis of Classification of Groups)
१. प्रमुख वर्ग' सीमा की एकता व्यापक स्वरूप समुदाय। विशिष्ट स्वरूप वन्य, जाति राष्ट्र, प्रदेश, नगर, गाँव, पड़ोस।	१. प्रमुख आधार : (i) हितों की अधिकांश पूर्ति (ii) निश्चित भूभाग।
२. प्रमुख वर्ग : असंगठित हितों के प्रति जागरूक इकाइयाँ। व्यापक स्वरूप:(i)सामाजिक वर्ग विशिष्ट स्वरूप . जाति, वर्ग, पूंजीवादी।	२. प्रमुख आधार (i) सदस्यों का सामान्य व्यवहार (ii) अनिश्चित सामाजिक संगठन। अतिरिक्त आधार : (i) एक समूह से दूसरे समूह में जाने की योग्यता। (ii) स्थिति, प्रतिष्ठा, आर्थिक स्तर एवं अवसर में भिन्नता।
व्यापक स्वरूप' (ii)प्रजाति समूह विशिष्ट स्वरूप : रंग समूह, शरणार्थी समूह, राष्ट्रीय समूह। व्यापक स्वरूप : (iii) भीड़ विशिष्ट स्वरूप : समान रुचि वाली भीड़ सामान्य रुचि वाली भीड़।	अतिरिक्त आधार : (i) समूह उत्पत्ति, जाति, रहने की अवधि, शारीरिक लक्षण। अतिरिक्त आधार :(i) अस्थायी हित (ii) अस्थायी समूह।

3. See MacIver, R. M. and Page, C. H. 'Society' p. 215, Chapter VII.

समूह (Groups)	समूहों के वर्गीकरण का आधार (Basis of Classification of Groups)
३ प्रमुख वर्ग , सगठित हितों के प्रति जागरूक इकाइयाँ।	३ प्रमुख आधार . (i) हितों की निश्चित सीमा (ii) निश्चित सामाजिक सगठन ।
व्यापक स्वरूप ' ( ) प्राथमिक समूह ।	
विशिष्ट स्वरूप परिवार क्लब गुट ।	अतिरिक्त आधार (i) सदस्यता की निश्चित सीमा । (i) सदस्यों के मध्य वैयक्तिक सम्बन्ध ।
व्यापक स्वरूप : (ii) महा समितियाँ।	अतिरिक्त आधार (i) तुलनात्मक दृष्टि से असीमित सदस्यता ।
विशिष्ट स्वरूप . राज्य, चर्च, श्रमिक सगठन।	(ii) निश्चित औपचारिक सामाजिक सगठन (iii) अवैयक्तिक सम्बन्ध ।

(२) व्यवहारों के आधार पर

व्यवहारों के आधार पर समूहों का वर्गीकरण दो भागों में किया गया है—प्रथम अन्त समूह (In-group) द्वितीय बाह्य समूह (Out group)।

अन्त: समूह तथा बाह्यसमूह (In-group and Out group)

अन्त· समूह (In-group)[1] के शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम समनर ने १६०७ ई० में किया था। तब से इसका प्रयोग समस्त समाजशास्त्रियों द्वारा होता आ रहा है। बाद मे अन्त-समूह (In group) या 'हम-समूह' (We-group) शब्द का विरोधाभासी शब्द बाह्य समूह (Out-group) या वे समूह (They group) के या दूसरों का समूह (Other group) इत्यादि शब्दों का प्रयोग आधुनिक समाजशास्त्रीय साहित्य का सामान्य लक्षण हो गया है।

यह वर्गीकरण वास्तविक जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण है। मनुष्यों के व्यवहारों को निश्चित करने में इसने एक महत्वपूर्ण भाग लिया है। अन्त·समूह (In-group) के प्रति हम की भावना (We feeling) का विकास हो जाता है और ऐसी मनोवृत्तियाँ विकसित हो जाती हैं कि मनुष्य यह सोचने

1 The term "in group' was used by W G Sumner in 'Folkways' (Boston, 1907), pp 11 '6

लगता है कि यह मेरा समूह (My group) है। इसके सदस्य मेरे मित्र और हितैषी हैं और इस समूह के उद्देश्य, हित एवं स्वार्थ, मेरे हित एवं उद्देश्य हैं। एक अपनेपन की मनोवृत्ति का विकास हो जाता है। हम अपने व्यक्तित्व को अन्त - समूह (In gr up) से पृथक् नहीं समझते। यह भावना तीव्रता में घटती बढ़ती रहती है, उन अन्त समूहों में अत्यधिक तीव्रता होती है जिनमें आमने सामने (I ace t face) के सम्बन्ध पाये जाते हैं, जैसे परिवार और मित्र मण्डली इत्यादि।

अन्त समूह के सदस्य यह विश्वास करते हैं कि उनका व्यक्तिगत कल्याण समूह अन्य सदस्यों के साथ किसी न किसी रूप में जुड़ा हुआ है। अन्त. समूह के सदस्यों के बीच अत्यधिक सहानुभूति पाई जाती है एक व्यक्ति बड़े ही दार्शनिक एवं स्थूल दृष्टिकोण (Objective) से विचार करेगा, यदि सड़क पर कुछ लड़के लड़ रहे हों परन्तु उसके विचार करने की शैली तुरन्त बदल जायगी, उसके उद्वेग उत्तेजित हो उठेंगे यदि कुछ लड़के उसके पुत्र या भाई या किसी दूसरे अन्त - समूह के सदस्य से लड़ रहे हों जापान में परमाणु बम गिरा। इस सूचना को प्रत्येक भारतीय ने पढ़ा होगा परन्तु उन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ, परन्तु उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिले में बाढ़ आने से वे अधिक चिंतित हो गये और कई सहायता कोष खोल दिये गये।

अन्त - समूह की विचारधारा सदस्यों में अह की भावना को जागृत कर देती है। इस भावना के कारण मनुष्य अपने समूह को सर्वोच्च स्थान देता है और इसके सदस्यों के साथ अधिमानात्मक व्यवहार (Preferential-Beh v our) करता है। वह अपनी संस्कृति को सर्वोच्च संस्कृति, अपने देश को ईश्वर का देश अपनी भाषा को अति सरल एवं प्राकृतिक और अपने रीति रिवाज रूढ़ियों एवं संस्थाओं को स्वाभाविक एवं सर्वोपरि मानता है। इस भावना को अहवाद (Ethnocentrism) कहते हैं।

उसका व्यवहार दूसरे समूहों के सदस्यों के साथ पक्षपातपूर्ण होता है। उदाहरणस्वरूप हम हिन्दू हैं, वे म्लेच्छ हैं। हम काँग्रेसी हैं, वे रूढ़िवादी, अप्रगतिशील एवं अंधविश्वासी जनसंघी हैं। हम आध्यात्मवाद के पुजारी हैं और वे तृष्णा एवं लिप्सा में फंसे हुए भौतिकवादी हैं। इस प्रकार के व्यंगों[1] का प्रयोग बाह्य समूह (Out-group) के सदस्यों के साथ करते हैं।

---

[1] Members of out groups are always referred to by special and usually derogatory term For a collection of such terms from the ancient Greeks to modern peoples, See A A Roback, Dictionary of International Slurs' Sci Art, New York

बाह्य समूह के प्रति व्यवहार (Attitude towards Out group)

बाह्य समूह के साथ मनुष्य स्वभाविक घृणा (Antipathy) का व्यवहार करता है, इस भावना के कारण मनुष्य दूसरों को अपना शत्रु मान बैठता है। उदाहरण के लिये जब राजकीय महाविद्यालय ब्यावर की वॉलीबाल की टीम अजमेर पुलिस से मैच खेलती है तो राजकीय विद्यालय के विद्यार्थी पुलिसवालों को अपना शत्रु समझ बैठते हैं। जब पुलिस वाले कोई पॉइन्ट हारते हैं तो विद्यार्थी प्रसन्न होते हैं आवाज लगाते हैं और करतल ध्वनि करते हैं या यों कहे कि अति प्रसन्न होते हैं परन्तु जब पुलिस वाले जीतते हैं तो इन विद्यार्थियों के मुँह पर बारह बज जाते हैं। इन व्यवहारों की विभिन्नताओं की विशेष व्याख्या हम अगले अध्यायों में करेंगे।

(६) महत्ता एवं सम्बन्धों के स्वरूप व प्रकार के आधार पर (On the basis of importance and type of relationship and size)

सामाजिक समूहों का वर्गीकरण आकार, महत्ता एवं सम्बन्धों के आधार पर दो भागों में किया गया है। समाजशास्त्र की दृष्टि से यह वर्गीकरण अति महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार समूह को प्राथमिक और द्वैतीयक (Primary and Secondary group) नाम दिया गया है। प्राथमिक शब्द का प्रयोग कूले (Cooley)[2] ने सन् १९०९ में किया। द्वैतीयक (Secondary) शब्द का प्रयोग कूले ने अपनी पुस्तक में नहीं किया परन्तु उसका अभिप्राय अधिकाश इसी से था।

प्राथमिक और द्वैतीयक समूह (Primary & Secondary Groups)

कूले (Cooley) द्वारा की गई परिभाषा और इन समूहों का उच्चकोटि का साहित्यिक वर्णन समस्त समाजशास्त्रियों द्वारा माना जाता है। इस वर्गीकरण को किसी न किसी रूप में प्रत्येक समाजशास्त्री ने माना है जो वर्गीकरण कूले ने किया उसी के विचारों के अति निकट एक वर्गीकरण टॉनिज[3] ने सन् १८८७ ई० में यूरोप में किया। उसने जैमिनशाफ्ट (Gemeinschaft) और जेसलशाफ्ट (Gesellschaft) के नाम से क्रमश प्राथमिक और द्वैतीयक समूहों

[2] Cooley, Charles H Soc [illegible] O[illegible]nisation Ch[illegible]les S[illegible]bner's Sons, New York 1909

[3] Ferdinand Tonnies, Gemeinschaft und Gesellschaft, Fues's Verlag, Leipzig, 1887 See English translation by Charles P Loomis 'Fundamental Concepts of Sociology', American Book Inc New York 1940

को पुकारा। इस भली प्रकार से समझने के लिये सर्वप्रथम हम प्राथमिक (Primary) समूह की परिभाषा पर विचार करेंगे।

प्राथमिक समूह की परिभाषा (Definition of Primary Group)

कूले ने प्राथमिक समूह की परिभाषा निम्न शब्दों में की है, "प्राथमिक समूहों से मेरा तात्पर्य उन समूहों से है जो घनिष्ठ आमने सामने के सम्बन्ध एवं सहयोग द्वारा अंकित होते हैं। वे प्राथमिक कई दृष्टिकोणों से हैं परन्तु मुख्यतया इस कारण से कि वे व्यक्ति की सामाजिक प्रकृति एवं आदर्शों के निर्माण करने में मौलिक हैं। घनिष्ट सम्बन्धों के परिणामस्वरूप . . व्यक्तियों का, एक सामान्य पूर्णता में एक प्रकार से, घुल मिल जाना होता है। जिसके फलस्वरूप स्वयं व्यक्तित्व कम से कम कई कार्यों के लिये समूह का सामान्य जीवन और उद्देश्य हो जाता है। सम्भवतः इस पूर्णता के वर्णन करने की अति सरल विधि यह कहना है कि यह 'हम' हैं, इसमें उस प्रकार की सहानुभूति और पारस्परिक अभिज्ञान (Identification) सन्निहित होता है जिसके लिये 'हम' स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।"[1]

प्राथमिक समूह के लिये आवश्यक है कि प्राथमिक सम्बन्ध पाया जाय। प्राथमिक सम्बन्ध का सबसे आवश्यक तत्त्व घनिष्ठता है। इसके उदाहरण परिवार, क्रीड़ा समूह, पड़ोस और मित्र मण्डली हैं। ये समूह इसलिये प्राथमिक कहलाते हैं क्योंकि वे समय और महत्व दोनों में ही प्रथम हैं।

समयानुसार वे इस प्रकार प्रथम हैं कि बच्चा जन्म लेता है और इन समूहों में ही रहने के लिये बाध्य होता है। परिवार कुछ वर्षों तक उसका संसार रहता है। आगे बढ़कर वह पड़ोस, क्रीड़ा समूह और मित्रमण्डली के समूहों का सदस्य बनता है। अतः ये समूह समय में प्रथम हैं।

महत्व के दृष्टिकोण से भी ये समूह प्रथम हैं। आधुनिक मनोविज्ञान ने जो

[1]By primary groups I mean those characterized by intimate face to face association and co-operation. They are Primary in several sences but chiefly in that they are fundamental in forming the social nature and ideals of the individual. The result of intimate association . . . a certain fusion of individualities in a common whole so that one's very self, for many purposes atleast, is the common life and purpose of the group. . . perhaps the simplest way of describing the wholeness is by saying that it is a 'We' ; it involves the sort of sympathy and mutual identification, for which "We' is the natural expression." p. 23, Cooley, C. H. Social Organisation.

प्रकाश व्यक्तित्व के विकास पर डाला है उससे स्पष्ट है कि ये समूह--परिवार क्रीड़ा समूह, पड़ोस, मित्र मण्डली, संगति या वे समूह जिनमें घनिष्ट वैयक्तिक सम्बन्ध पाये जाते हैं--अत्यधिक महत्वपूर्ण भाग व्यक्ति के विकास में लेते हैं। यदि यह कहें कि व्यक्ति जो कुछ भी है वह इन समूहों के प्रभाव का परिणाम है तो अतिशयोक्ति न होगी। कूले ने भी इस विचार का समर्थन करते हुए लिखा है, "हमारे चारों ओर के संसार में ऐसी समिति स्पष्टतया मानव स्वभाव की नर्सरी (Nursery) है"[1]

प्राथमिक समूहों की परिस्थितियाँ
(Conditions of Primary Groups)

प्राथमिक समूह के लिये कुछ शारीरिक और मानसिक परिस्थितियाँ होना आवश्यक है। उनमें से कुछ परिस्थितियों पर हम विचार करेंगे।

शारीरिक परिस्थितियाँ (Physical Conditions)

कूले की परिभाषा के अनुसार आमने सामने का सम्बन्ध (Face to face contact) होना अत्यावश्यक है। कूले ने इस सम्बन्ध पर जोर अवश्य दिया है परन्तु केवल आमने सामने के सम्बन्ध से ही प्राथमिक समूह का निर्माण नहीं होता। इसके लिये तीन आवश्यक परिस्थितियों का होना अनिवार्य है। वे समीपता (Closeness), लघुता (Smallness) और निरन्तरता (Continuation) हैं। इन पर हम पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

यह आवश्यक नहीं है कि प्राथमिक समूह के निर्माण के लिये शारीरिक समीपता अवश्य ही हो। इमरसन (Emerson) और कर्लाइल (Carlyle) की मित्रता शारीरिक समीपता पर आधारित नहीं थी। एक ही रुचि के बहुत कम लोग थे इसलिये उनके लेखों द्वारा परिचय निरन्तरता के कारण मित्रता में परिवर्तित हो गया। राबर्ट ब्राउनिंग (Robert Browning) और एलिजाबेथ बेरट (Elizabeth Barret) का एक दूसरे के प्रति रोमांचकारी प्रेम एवं रुचि शारीरिक समीपता के कारण नहीं विकसित हुई बल्कि एक दूसरे की कार्य रचनाओं के कारण हुई इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

(१) शारीरिक समीपता (Physical closeness or Proximity)

घनिष्ट सम्बन्ध होने के लिए शारीरिक समीपता एक आवश्यक तत्व है एक दूसरे के साथ रहना, खाना, पीना, सोना, उठना बैठना लड़ना झगड़ना एवं विचारों का आदान प्रदान करना घनिष्ठता को विकसित करता है लोगों के बीच सद्भावना उत्पन्न होने के लिये मिलना जुलना आवश्यक हैं।

[1]"Such association is clearly the nursery of human nature in the world about us, Cooley, C H ibid, p 24

शारीरिक समीपता प्राथमिक समूह के निर्माण के लिये अवसर प्रदान करती है। परन्तु इस अवसर का फल निकलेगा या नहीं यह किसी समाज की संस्कृति पर आधारित होता है। साथ ही साथ समूह की लघुता और सम्बन्ध की निरन्तरता एवं स्थिरता पर भी आधारित होता है। एक मेले में हजारों व्यक्तियों में शारीरिक समीपता रहती है परन्तु किसी प्राथमिक समूह का निर्माण नहीं होता।

(२) समूह की लघुता (Smallness of the Group)

आमने सामने के सम्बन्ध एवं शारीरिक समीपता के साथ साथ समूह की लघुता भी आवश्यक है। जितने कम सदस्य एक समूह में होंगे उतना ही अच्छा ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा और घनिष्ठता के निर्माण में सहायता मिलेगी। समूह जितना छोटा होगा उतनी ही घनिष्ठता शीघ्रता से विकसित हो सकेगी। एक छोटे समूह में सदस्य एक दूसर को व्यक्तिगत रूप से जान सकते हैं और समूह के निर्णयों में प्रत्यक्ष भाग ले सकते हैं। घनिष्ठता का निर्माण करने में छोटे समूह में कम समय लगता है।

एक वक्ता हजार लोगों के सामने भाषण देता है। इसमें शारीरिक समीपता एवं आमने सामने का सम्बन्ध पाया जाता है। परन्तु समूह के बड़े होने के कारण प्राथमिक समूह का निर्माण नहीं हो पाता, क्योंकि उतने थोड़े समय में वे एक दूसरे के साथ घनिष्ठता स्थापित नहीं कर पाते।

(३) सम्बन्ध की निरन्तरता एवं स्थिरता
(Continuation and permanency of the relationship)

घनिष्ठता सम्बन्ध की निरन्तरता एवं स्थिरता पर आधारित होती है। जितने अधिक समय तक वे साथ साथ रहते हैं उतनी ही घनिष्ठता बढ़ती जाती है। कई बार तो ऐसा होता है कि दो शत्रु भी सम्बन्ध की निरन्तरता एवम् स्थिरता के कारण एक दूसरे को चाहने लगते हैं और एक दूसर की अनुपस्थिति खलने लगती है। एक पति पत्नि चाहे वर्षों तक आपस में लड़ते झगड़ते ही रहे हों परन्तु अधिक समय तक साथ रहने के कारण एक दूसरे के बिना उनका रहना कठिन हो जाता है।

मानसिक परिस्थितियाँ (Mental Conditions)

शारीरिक परिस्थितियाँ प्राथमिक समूह के निर्माण के लिये अवसर प्रदान करती हैं, परन्तु इन अवसरों से प्राथमिक समूह को जन्म मिलेगा या नहीं यह मानसिक परिस्थितियों पर आधारित रहता है। मानसिक अवस्था में एक

प्रकार का प्राथमिक सम्बन्ध पाया जाता है। प्राथमिक सम्बन्ध में कई विशेषताएं होती हैं, जिन पर हम अब विचार करेंगे।

(१) सम उद्देश्य (Indentity of ends)

प्राथमिक सम्बन्ध में हम उद्देश्य पर दो दृष्टिकोण से विचार करते हैं। इस प्रकार की विचारधारा घनिष्ठता की द्योतक है। प्रथम दृष्टिकोण तो यह होता है कि सदस्यों की समान उद्देश्य एवं इच्छाएं होती हैं और इस कारण से बिना किसी मतभेद के साथ साथ कार्य करते हुए उन उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। वे संसार को एक ही दृष्टिकोण से देखते हैं इसलिये उन्हें सब वस्तुएं एक सी दिखाई देती हैं उदाहरणस्वरूप दो मित्र मिलकर किसी समान उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। वे दोनों ही परिश्रम करते हैं और किसी प्रकार का विभेद नहीं करते हैं। दूसरा दृष्टिकोण यह होता है कि वे एक दूसरे के कल्याण एवं लाभ को ही अपना उद्देश्य मान लेते हैं। इसका सुन्दरतम एवं सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माता है। माता अपने बच्चों के हित को अपना हित मान लेती है, स्वयं अनेक कष्ट उठाती है परन्तु बच्चों को सुखी एवं प्रसन्न देखकर पुलकित हो उठती है।

उद्देश्यों की साम्यता कभी सम्पूर्ण रूप से नहीं हो पाती है फिर भी प्राथमिक समूहों में अधिकांश रूप से उद्देश्यों की साम्यता पाई जाती है। अपने व्यक्तित्व को प्राथमिक समूह में सदस्य विलीन कर देते हैं। 'मैं' की भावना के स्थान पर 'हम' की भावना विकसित हो जाती है। इसके कारण ये सम्बन्ध परोपकारी प्रकृति धारण कर लेते हैं।

(२) सम्बन्ध स्वयं साध्य होता है

(The relationship is an end in itself)

आदर्श प्राथमिक सम्बन्ध किसी विशेष उद्देश्य के साधन के रूप में नहीं होता है परन्तु स्वयं साध्य होता है यदि मित्रता किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के हेतु की जाती है तो उसे मित्रता नहीं कहते अपितु स्वार्थपरता कहते हैं। वैवाहिक सम्बन्ध केवल आर्थिक लाभ एवं कामना पूर्ति के लिये ही नहीं होती परन्तु उससे सम्पूर्ण जीवन के उद्देश्य एक हो जाते हैं। ये सम्बन्ध अनिवार्य रूप से कोई स्वीकार नहीं करवाता परन्तु स्वयं विकसित हो जाते हैं

(३) प्राथमिक सम्बन्ध वैयक्तिक होते हैं

(Primary relationships are personal)

प्राथमिक सम्बन्ध वैयक्तिक होते हैं। वैयक्तिक सम्बन्ध से यह अभिप्राय है कि सम्बन्ध व्यक्ति के महत्व पर आधारित होता है न कि उसके गुण और

कार्यों पर। वैयक्तिक सम्बन्ध हस्तान्तरित नहीं किये जा सकते। एक व्यक्ति के स्थान पर दूसरे को नहीं रखा जा सकता। किंग्सले डेविस (Kingsley Davis) ने लिखा है "एक नवीन वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है एक पुराना वैयक्तिक सम्बन्ध समाप्त किया जा सकता है, सम्भवतया वह चालक शक्ति जिसने सम्बन्ध को प्रारम्भ करवाया था, दूसरे को मार्ग दे सकती है, परन्तु एक ही सम्बन्ध से एक व्यक्ति के स्थान पर दूसरे का प्रतिस्थापन (Substitution) नहीं किया जा सकता।"[1]

जब ये सम्बन्ध बदले जा सकते हों और व्यक्ति की कोई चिन्ता नहीं होती तो यह अवैयक्तिक सम्बन्ध कहलाते हैं। मिठाई किसी की दुकान से भी ली जा सकती है। यह जरूरी नहीं है कि कालूराम हलवाई ही हो, उसके स्थान पर कोई भी मिठाई दे तो कोई आपत्ति न होगी। यदि एक मशीन लगादी जाय और वह मिठाई देने का कार्य कर सके तो किसी को आपत्ति न होगी। यह सम्बन्ध अवैयक्तिक हैं। इसके विपरीत एक प्रेमी की प्रेमिका के स्थान पर दूसरी उससे अधिक सुन्दर एवं गुणी स्त्री को लाकर उस प्रेमी से कहा जाय कि इसे ही अपनी प्रेमिका मान लो, यह असम्भव प्रतीत होता है। यह वैयक्तिक सम्बन्ध है, जिसमें उसी व्यक्ति का ही महत्व है और वह ही होना चाहिये, उसका प्रतिस्थापन नहीं किया जा सकता।

(४) प्राथमिक सम्बन्ध सम्पूर्ण होता है
(Primary relationship is inclusive)

प्राथमिक सम्बन्ध में व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से भाग लेता है, घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे को भली प्रकार से जान जाते हैं। इसमें व्यक्तित्व की सम्पूर्णता पाई जाती है। मनुष्य केवल एक कार्य से नहीं परन्तु सम्पूर्ण कार्यों से सम्बन्ध रखता है।

(५) प्राथमिक सम्बन्ध स्वेच्छानुरूप होता है
(Primary relationship is spontaneous)

प्राथमिक सम्बन्ध सम्पूर्ण रूप से स्वेच्छा पर आधारित होता है। इसमें कोई भी व्यक्ति कभी भी अपना सम्बन्ध तोड़ सकता है या जोड़ सकता है।

---

[1] A new Personal relationship can be established, an old one can be abandoned, perhaps the driving force that initiated the relationship may give way to another, but no substitution can be made of one individual for another in the same relationship." Kingsley "Davis, Human Society," The Macmillan Company, New York, Sixth Printing, 1954, p. 296

इसके लिये वह किन्हा भी नियमों स बधा हुआ नहीं हाता । यह एक प्रकार का वह समझौता है कि ना किसी विशिष्ट कार्य के लिये नहीं अपितु हृदय की पुकार पर किया जाता है और जब तक मन मिलता रहे तब तक स्थापित रहता है। इसमें किसी प्रकार की शक्ति का प्रयाग नहीं हाता है और न किया ही जा सकता है।

(५) प्राथमिक सम्बन्ध में अत्यधिक नियन्त्रण शक्ति होती है (Primary relationship has the greatest possible control)

प्राथमिक समूहों में अत्यधिक नियन्त्रण की शक्ति होती है। प्रेम के बन्धन म व्यक्ति बंध जाते हैं और ये बन्धन इतने शक्तिशाली हाते हैं कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने के अटूट प्रयत्न विफल हो जाते हैं। एक प्रेमी के लिये उसकी प्रमिका की आँख का सकेत उसे उन कार्यों से रोक सकता है जिन्हें राज्य के बड़े बड़े कानून नहीं रोक सकते ।

प्राथमिक समूह अत्यधिक स्वामिभक्ति की आशा रखते हैं। इस स्वामिभक्ति में जरा सी भी कमी सहन नहीं की जा सकती परन्तु सारा नियन्त्रण उसी समय तक रहता है जब तक व्यक्ति इनका पालन करता है अर्थात् यह उसकी इच्छा पर अवलम्बित है, परन्तु व्यवहारिक जगत में व्यक्ति प्राथमिक समूहों में अपने को इतना विलीन कर देता है कि उसे इन नियन्त्रणों से स्वतन्त्र रहने की इच्छा ही नहीं होती।

प्राथमिक समूह का मनोवैज्ञानिक आधार

सामाजिक समूह की उत्पत्ति 'सामाजिक सम्बन्धों' के उत्पन्न होने से होता है। 'सामाजिक सम्बन्ध' का आधार 'स्वार्थ' है। मनुष्य के कार्य के पीछे स्वार्थ की भावना कार्य करती है। स्वार्थ दो प्रकार का होता है। 'एक-सा स्वार्थ' (Like Intere t) और 'समान स्वार्थ' (ommon Intere t)। 'एक-सा' (Like) और समान (Common) में अन्तर है। एक-सा (Like) में एकता के साथ साथ भिन्नता भी कुछ मात्रा में पड़ जाती है, जबकि 'समान' (Common) में केवल एकता ही है, भिन्नता नहीं। जहाँ हर व्यक्ति का अलग-अलग स्वार्थ होता है, पर एक दूसरे से मिलता-जुलता होता है उसे 'एक-सा स्वार्थ (Like Intere-t) कहते हैं । जब सब लोगों का एक ही स्वार्थ होता है, कोई अन्तर नहीं होता, तो उसे 'समान स्वार्थ' (Common Interest) कहते हैं। इस अन्तर को एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। हर एक व्यापारी लाभ प्राप्त करना चाहता है।

कोई एक रुपये पर एक आना लाभ चाहता है, कोई एक रुपये पर दो पैसे और कोई एक रुपये पर दो आने लाभ चाहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सबका लक्ष्य स्वार्थ लाभ प्राप्त करना है, पर उस स्वार्थ में कुछ अंशों में भिन्नता है। अतः यहां 'एक-सा स्वार्थ' (Like Interest) पाया जाता है दूसरी ओर कुछ व्यापारी मिलकर साझे में व्यापार करते हैं। उनका स्वार्थ एक होगा तथा सबको समान मात्रा में लाभ की प्राप्ति होगी। अतः यह स्वार्थ 'समान स्वार्थ' (Common Interest) है। जब एक सा स्वार्थ (Like Interest) समान स्वार्थ में परिणित हो जाता है तब प्राथमिक समूह की उत्पत्ति होती है। हर एक स्त्री-पुरुष को रहने के लिये गृह, तन ढकने के लिये वस्त्र और क्षुधापूर्ति के लिये अन्न की आवश्यकता होती है। पर इसमें भी कुछ अंशों का अन्तर अवश्य पाया जाता है। कोई व्यक्ति एक प्रकार का भोजन चाहता है तो, कोई दूसरे प्रकार का। एक व्यक्ति प्राचीन ढंग की बनी हवेली में रहना चाहता है, जबकि दूसरे के लिये वातानुकूलित बंगला (Air-conditioned Banglow) अधिक रुचिकर है। एक स्त्री पाश्चात्य वेशभूषा से सुसज्जित है, जबकि दूसरी भारतीय वेशभूषा में अधिष्ठित है। यद्यपि यहाँ गृह, भोजन, वस्त्र आदि स्वार्थ सबके हैं, पर इनमें कुछ अंशों का अन्तर है। अतः ये एक-से स्वार्थ (Like Interests) हैं। दो विशिष्ट स्त्री-पुरुष, भारतीय दर्शन के अनुसार "धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष" की कामना की पूर्ति के लिये परिवार नामक प्राथमिक समूह का निर्माण करते हैं। यहां उनका स्वार्थ समान (Common) है। अतः स्पष्ट है कि जब 'एक-सा स्वार्थ' (Like Interest) समान-स्वार्थ (Common Interest) में बदल जाता है तो प्राथमिक समूह की उत्पत्ति होती है। मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया की दिशा 'एक से' स्वार्थ को 'समान' स्वार्थ बनाना है। इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत जब 'एक-से' स्वार्थ समान (Common) होने लगते हैं, तब समूह की उत्पत्ति होती है। अतः हम कह सकते हैं कि 'एक-से' (Like) मनुष्यों समान (Common) होने के सामाजिक सम्बन्ध (Social Relation) का नाम ही प्राथमिक समूह (Primary Group) है।

यह एक से (Like) से समान (Common) होने की प्रक्रिया जन्म से ही प्रारम्भ हो जाती है। बच्चा अपने आपको ही सब कुछ समझता है। जो कुछ उसके चारों ओर है, उसे वह अपने लिये ही समझता है। उसकी यह अवस्था स्व केन्द्रीय (Egocentric) अवस्था है। धीरे-धीरे वह दूसरों के स्वत्व से भी परिचित होता है। इसके कारण उसमें 'स्व' के साथ-साथ 'पर' की भावना भी उत्पन्न हो जाती है। पहले उसे दूसरों के विषय में यह ज्ञात नहीं था कि उनमें

भी स्व' की प्रवृत्ति है। अब वह सर्वत्र 'स्व ही स्व' के दर्शन करता है। यह स्व की भावना अहम् (I) का ज्ञान है और पर' की भावना 'स (He) का। वह पर' अर्थात स ' (He) को दो रूपों मे देखता है। पहले वर्ग में उसके माता पिता, भाई बहन एव अन्य सम्बन्धी आते हैं, तथा दूसरे वर्ग मे वे व्यक्ति आते हैं जो या तो उससे कोई सम्बन्ध नहीं रखते अथवा उसके शत्रु एव लड़ने झगड़ने वाले अथवा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने वाले होते हैं। अब वह बच्चा अपने साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने वालों के साथ 'समान' (Common) बनने का प्रयत्न करता है और असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने वालों से अपने आपको प्रथक् समझता है। यही प्रक्रिया उसमे 'अह' (I) के स्थान पर 'वयम् (We) और 'स ' (He) के स्थान पर 'ते' (They) की भावना को उत्पन्न करती है। इस प्रकार माता पिता एव सगे सम्बन्धी जो अपने से थे, अपने हो जाते हैं। इसी प्रक्रिया के कारण वे एक से (Like) से समान (Common) मे बदल जाते है अर्थात् मैं के विषय में सोचने वाले बच्चे के हृदय में हम की भावना उत्पन्न होती है। जब यह स्व केन्द्रीयता (Egocentricity) समाजीकरण' (Socialization) मे परिणित हो जाती है तो प्राथमिक समूह (Primary Group) की उत्पत्ति होती है।

प्राथमिक समूह से लाभ

प्राथमिक समूह (Primary Group) में व्यक्ति अधिक सुरक्षित रहता है। समूह के सारे सदस्य एक-दूसरे से भली प्रकार परिचित होते हैं। जब कभी समूह का कोई सदस्य कठिनाई में होता है, सब सदस्य उसकी सहायता के लिये तैयार रहते हैं। समूह के सारे सदस्य एक दूसरे के साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करते हैं। प्रारम्भ में बच्चा प्राथमिक समूह (Primary Group) में जन्म लेता है तथा बड़ा होने पर उसी समूह के सदस्यों के साथ उसका जीवन व्यतीत होता है, अत उसे किसी प्रकार की विषमता का सामना नहीं करना पड़ता। प्राथमिक समूह मे व्यक्ति की कार्य शक्ति में भी वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ यदि कुछ व्यक्ति एक समूह बनाकर अध्ययन करें तो उन्हें अधिक ज्ञान की प्राप्ति होगी। एक विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थी की समस्या को सुलझा सकता है। यदि कोई बात किसी विद्यार्थी की समझ में नहीं आती, तो दूसरा विद्यार्थी उसे भली प्रकार समझा देता है। इस प्रकार हर एक विद्यार्थी सहानुभूति से एक दूसरे की सहायता करते रहते हैं। साथ ही एक दूसरे को प्रेरणा भी मिलती रहती है। सारे विद्यार्थी सात्विक ईर्ष्या के कारण एक दूसरे से अधिक अध्ययन करने का प्रयत्न करते हैं। मन में हर समय यही धारणा बनी रहती है कि दूसरे व्यक्ति

मेरे विषय मे क्या सोचेंगे ? इसी धारणा के फलस्वरूप वह सदैव जागृत रहता है तथा सचेतना से कार्य करता रहता है। इससे सदा कार्य मे उत्सुकता एव जिज्ञासा बनी रहती है। यदि प्राथमिक समूह में किसी व्यक्ति के प्रति किसी को कोई विरोध हो तो उसे बातचीत के द्वारा हल किया जा सकता है। तनाव को रोकने के लिये सारे सदस्य मिल कर समझौता करवाने का सफल प्रयास करते हैं।

प्राथमिक समूह एक परिचितों का समूह होता है तथा इसमें स्नेह का राज्य होता है। व्यक्ति को किसी प्रकार का भय नहीं होता। इसके फलस्वरूप मनुष्यों के व्यक्तित्व का विकास सुन्दर ढग से होता है। मानव व्यक्तित्व का विकास सुन्दर होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रेम एव स्नेह के कारण व्यक्तित्व निखर उठता है। सामाजिक नियन्त्रण के अनौपचारिक साधन प्राथमिक समूह में प्रयोग में लाये जाते हैं। इनके कारण व्यक्ति को भय एव शका का शिकार नहीं बनना पड़ता। मानव व्यवहार को नियन्त्रित करने का यह सर्वोत्तम साधन है। इसके द्वारा मानव को मानव समझा जाता है तथा उसके साथ मानवीय व्यवहार किया जाता है। सामाजिक नियन्त्रण के औपचारिक साधन, जो कि द्वैतीयक समूह में पाये जाते हैं, एक मशीन के समान कार्य करते हैं। ये बूचडखाने की उस मशीन के समान हैं जो प्रत्येक वस्तु को काटती रहती है, चाहे भेड़ हो या बकरी या मानव। उसके लिये सब ही बराबर हैं। प्राथमिक समूह में व्यक्ति को मानवता का आश्रय मिलता है तथा हृदय एवं उद्वेगों का सहारा प्राप्त होता है।

द्वैतीयक समूह (Secondary Groups)

द्वैतीयक समूहों की परीभाषा के लिये हम कह सकते हैं कि जो कुछ भी प्राथमिक समूह है वह द्वैतीयक समूह है। इसमें आमने सामने के सम्बन्ध एव घनिष्ठता की कोई आवश्यकता नहीं रहती। शारीरिक समीपता भी आवश्यक नहीं है। समूह लघु होने के स्थान पर बड़े होते हैं। सम्बन्धों की निरन्तरता की आवश्यकता नहीं रहती। सम्बन्ध अवैयक्तिक (Impersonal) होते हैं। उद्देश्य सम्पूर्ण न होकर किसी विशिष्ट भाग से सम्बन्ध रखते हैं। यह सम्बन्ध विशिष्ट स्वार्थों की पूर्ति के लिये किया जाता है। इसके उदाहरण राष्ट्र, श्रमिक सघ इत्यादि हैं।

वास्तव में द्वैतीयक समूहों में प्राथमिक समूहों के कुछ गुण पाये जाते है। इन दोनो की प्रवृति में विशेष अन्तर सम्बन्धों के प्रकार का है। द्वैतीयक समूह मे आमने समाने के सम्बन्ध पाये जा सकते हैं जैसे एक वक्ता भाषण देता है परन्तु

यह सम्बन्ध क्षणिक होता है। घनिष्टता शून्य के बराबर होती है। सम्बन्ध अवैयक्तिक होते हैं। इसमें विशिष्ट व्यक्ति पर महत्व नहीं दिया जाता। आगबर्न और निमकॉफ ने इसकी परिभाषा निम्न शब्दों में की है "वे समूह जो घनिष्ठता की कमी का अनुभव करते हैं, द्वैतीयक समूह कहलाते हैं।"[1]

द्वैतीयक समूह में व्यक्ति का कार्य

द्वैतीयक समूह में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को अपनी स्थिति में जो कि समूह समूह द्वारा निश्चित की जाती है, विलीन कर दे। है। किसी बैंक का मैनेजर अपने कर्मचारियों से मेनेजर की स्थिति में मिलता है, बातचीत करता है, आज्ञा देता है और कार्य करवाता है। उसके सम्बन्ध घनिष्ठता से परे और औपचारिक (Formal) होते हैं। उसमें व्यक्ति से नहीं परन्तु उसके कार्य से सम्बन्ध होता है।

द्वैतीयक समूहों में व्यक्ति सक्रिय (Active) और निष्क्रिय (Passive) दोनों ही प्रकार का सदस्य होता है। एक राज्य नागरिक अपने राज्य का अधिकाश रूप में निष्क्रिय सदस्य होता है।

द्वैतीयक समूहों में व्यक्ति अप्रत्यक्ष सहयोग देता है। एक व्यक्ति दूसरों के लिये कार्य करता है, न कि उनके साथ। वे एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विभिन्न कार्य करते हैं। उनकी विभिन्न शक्तियाँ अधिकार और कर्त्तव्य होते हैं।

द्वैतीयक समूहों में प्रेम का बन्धन न होकर स्वार्थ का बन्धन होता है। जैसे ही उस स्वार्थ की पूर्ति हो जाती है सदस्य समूह से पृथक् होने की इच्छा करता है।

द्वैतीयक समूहों में समझौते पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है। प्राथमिक समूहों में व्यक्ति किन्हीं शर्तों से बाध्य नहीं होता परन्तु द्वैतीयक समूहों में प्रसम्विदा (Contract) की शर्तों से बधे हुये रहना पड़ता है। अनौपचारिक व्यवहार के स्थान पर औपचारिक व्यवहार होता है। नियन्त्रण कड़ा होता है। औपचारिक नियमों एव विधियों को पहले से ही बना दिया जाता है और उन्हीं के अनुसार विभिन्न व्यक्तियों की चिन्ता न करते हुये इन्हें कार्य में लाया जाता है।

---

[1] The groups which provide experience lacking in intimacy are called secondary groups " Ogburn, W F, and Nimkoff, M F 'A Handbook of Sociology' P 178

द्वैतीयक समूह में कुछ कमियाँ

द्वैतीयक समूह में सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होने से पारस्परिक सम्बन्ध (Face to face contact) नहीं हो पाता, अतः हर व्यक्ति का दूसरे व्यक्तियों के साथ निकटता का सम्बन्ध (Intimacy) नहीं रह सकता। सदस्यों की संख्या के आधिक्य के कारण, प्रत्येक सदस्य की समस्याओं पर अलग अलग विचार नहीं किया जा सकता। इसके लिये व्यक्तियों की आपसी बातचीत के स्थान पर पूर्व निर्धारित नियमों एवं उप नियमों के आधार पर हर व्यक्ति की समस्या सुलझाई जाती है दूसरे शब्दों में हम यह कहें कि द्वैतीयक समूह में हर सदस्य को एक ही लाठी से हाँका जाता है, तो अतिशयोक्ति न होगी। इसमें दया तथा अपवाद का कोई स्थान नहीं रहता है। इसमें सब के साथ समानता का व्यवहार किया जाता है, यह एक गुण है, लेकिन यही गुण इसका सबसे बड़ा अवगुण बन गया है। क्योंकि इसमें किसी व्यक्ति की परिस्थितियों पर विचार नहीं किया जाता। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति किसी एक स्थान पर नौकरी कर रहा है। थोड़े दिनों बाद उसका तबादला कर दिया जाता है। तबादले के समय यह नहीं सोचा जाता कि परीक्षा के दिन समीप हैं, अतः उसके बच्चों की, जो पाठशाला में अध्ययन कर रहे हैं, क्या दशा होगी। बिना उसकी परिस्थितियों पर दृष्टिपात किये, निर्णय दे दिया जाता है। यदि किसी व्यक्ति की पहुँच होती है तो वह कुछ सुधार करवा सकता है, पर यह विधि तो प्राथमिक समूह के अन्तर्गत आ जाती है। जब व्यक्तियों की समस्यायें नियमों की उलझनों में पड़कर हल नहीं हो पातीं, तो क्रान्ति होने लगती है, सदस्यों में विद्रोह जागृत हो उठता है और वे उन संगठनों को तोड़कर नवीन संगठनों का निर्माण करते हैं। इसी कारण प्रजातन्त्र में हर पांच वर्ष बाद चुनाव होना आवश्यक है।

प्राथमिक और द्वैतीयक समूह - दो विपरीत आदर्श

प्राथमिक और द्वैतीयक समूह का वर्णन दो ऐसे समूहों का विवरण है जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न और विपरीत हैं। वास्तविक संसार में इन आदर्श स्वरूप समूहों का मिलना कठिन होता है और अधिकांश ऐसे समूह होते हैं जो इन दोनों के बीच होते हैं। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि प्राथमिक समूह कहाँ पर समाप्त होता है और द्वैतीयक समूह कहाँ से प्रारम्भ होता है।

सामाजिक समूहों के विशिष्ट गुण

समूह मे व्यक्ति 'मैं' के स्थान पर 'हम' की भावना से प्रेरित होकर कार्य करता है। इस हम की भावना के कारण समूह में कुछ ऐसे गुण होते

हैं। उनमें प्रमुख निम्न हैं:—

(१) समूह का क्षेत्र विस्तृत होता है

समूह में व्यक्ति की इच्छा काम नहीं देती है, उसे साथ मिलकर कार्य करना होता है। कई बार उसे इच्छा के प्रतिकूल कार्य भी करना होता है। उदाहरणार्थ, किसी मोहल्ले में सामाजिक कार्य-कर्त्ता कुछ श्रमदान कर रहे हों, तो मोहल्ले के निवासियों को मानवता के नाते इच्छा न होते हुए भी हाथ बटाना पड़ता है। समूह की सत्ता व्यक्ति से स्वतन्त्र एवं विस्तृत है। जो कार्य व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से नहीं कर सकता, वही कार्य वह समूह में आकर करने लगता है। व्यक्ति को समूह की शक्ति के सामने अपनी इच्छा को भी दबाना होता है।

(२) समूह व्यक्ति पर प्रतिबन्ध लगाता है

व्यक्ति जैसा चाहे नहीं कर सकता। समूह उस पर पूर्णरूपेण प्रतिबन्ध रखता है। यदि व्यक्ति समूह के विरुद्ध कार्य करता है, तो उसे स्वत अपने आप को समूह से अलग कर लेना पड़ता है अथवा समूह स्वयं उसको पागल अथवा अपराधी घोषित करके देश निकाला अथवा कोई अन्य दण्ड देकर समूह से अलग कर देता है। इस प्रकार समूह व्यक्ति पर पूर्ण प्रतिबन्ध रखता है।

(३) समूह के साथ एकीभाव

जो व्यक्ति समूह के साथ अपना एकत्व कर लेते हैं, उन्हे, समूह से अधिक लाभ की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति समूह के लिये तन मन धन सर्वस्व अर्पित कर देता है, वह मुखिया बन जाता है। समूह के सारे सदस्य समता अनुभव करते हैं।

(४) विभिन्न समूहों में भेदभाव

एक समूह दूसरे समूह से जलता है। समूहों मे 'स्व एवं 'पर' की भावना पाई जाती है। सदा एक समूह का दूसरे समूह के साथ संघर्ष चलता रहता है। जब एक व्यक्ति किसी एक समूह से दूसरे समूह में चला जाता है, तो उस समूह के सदस्य बड़े गर्व का अनुभव करते हैं। वे इसमें अपनी विजय समझते हैं।

(५) आदान प्रदान

समूह में आदान प्रदान (Reciprocity) पाई जाती है। मजदूर फैक्ट्री में कार्य करता है, मालिक बदले में पैसे देता है। पिता बच्चे की रक्षा करता है, बच्चा पिता की आज्ञा का पालन करता है। जहाँ यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि एक व्यक्ति अधिक कार्य करता है तथा बदले में कम रुपया मिलता है, वहीं

समूह में विघटन प्रारम्भ हो जाता है। समूह की स्थिरता के लिये आदान प्रदान की समता अत्यन्त आवश्यक है।

प्राथमिक तथा द्वैतीयक समूहों में अन्तर

प्राथमिक तथा द्वैतीयक समूहों में निम्न अन्तर पाये जाते हैं —

प्राथमिक समूह	द्वैतीयक समूह
१ प्राथमिक समूह में शारीरिक समीपता तथा आमने सामने (Face to face) के सम्बन्ध पाये जाते हैं।	१ द्वैतीयक समूहों में शारीरिक समीपता तथा आमने सामने के सम्बन्ध नहीं पाये जाते हैं।
२. *प्राथमिक समूहों की सदस्यता* द्वैतीयक समूहों की अपेक्षा बहुत कम होती है साधारणतया प्राथमिक समूह छोटे समूह होते हैं।	२ *द्वैतीयक समूह में सदस्यता बहुत* होती, है, इसलिये वे अत्यन्त विस्तृत होते हैं।
३ प्राथमिक समूह सामान्यता स्थानीय (Local) होता है।	३ द्वैतीयक समूह बहुत बड़े क्षेत्र म फैले होते हैं।
४ प्राथमिक समूह सरल समाज (Simple Society) के द्योतक हैं।	४ द्वैतीयक समूह जटिल समाजों (Complex Society) के द्योतक होते हैं।
५ प्राथमिक समूह छोटे समुदायों में अधिक पाये जाते हैं।	५ द्वैतीयक समूह बड़े समुदायों में अधिक पाये जाते हैं।
६ ग्रामीण जीवन में प्राथमिक समूहों का बाहुल्य है।	६ नागरिक जीवन में द्वैतीयक समूहों का बाहुल्य होता है।
७ प्राथमिक समूहों में घनिष्टता (Intimacy) अधिक पाई जाती है।	७. द्वैतीयक समूहों में घनिष्टता (Intimacy) अधिक नहीं पाई जाती।
८ प्राथमिक समूहों में प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाये जाते हैं।	८. द्वैतीयक समूहों में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध पाये जाते हैं।

प्राथमिक समूह	द्वैतीयक समूह
९. प्राथमिक समूहो मे सम्बन्ध वैयक्तिक (Personal) होते हैं।	९. द्वैतीयक समूहो में सम्बन्ध अवैयक्तिक (Impersonal) होते हैं।
१०. प्राथमिक समूहों मे घरेलू सम्बन्ध (Domestic Relations) पाये जाते हैं।	१०. द्वैतीयक समूहों मे कार्य सम्बन्धी सम्बन्ध (Official Relations) पाये जाते है।
११. प्राथमिक समूहो मे प्रेम, मैत्री और सहानुभूति प्रचुर मात्रा में पाई जाती है।	११. द्वैतीयक समूहों मे नियमों का बोलबाला होता है।
१२. प्राथमिक समूहों मे सामाजिक नियन्त्रण के अनौपचारिक साधन (Informal Means) उपयोग मे लाये जाते हैं।	१२. द्वैतीयक समूहो मे सामाजिक नियन्त्रण के औपचारिक साधन (Formal Means) प्रयोग में लाये जाते हैं।
१३. प्राथमिक समूहो मे स्वाभाविकता पाई जाती है।	१३. द्वैतीयक समूहो मे अस्वाभाविकता पाई जाती है।
१४. प्राथमिक समूहों मे व्यक्ति अन्तरात्मा से बधा होता है।	१४. द्वैतीयक समूहों मे व्यक्ति लोकाचार से बंधा होता है।
१५. प्राथमिक समूहो मे सम्बन्ध अधिक स्थायी होते हैं।	१५. द्वैतीयक समूहो में सम्बन्ध कम स्थायी होते हैं।

समूहों के वर्गीकरण में कठिनाइयाँ

समूहों के वर्गीकरण मे अनेक कठिनाइयाँ एवं कमियाँ होती हैं। प्रत्येक वर्गीकरण किसी न किसी एक सिद्धान्त पर आधारित है परन्तु वास्तविक जीवन में सामाजिक परिस्थितियाँ इतनी सरल नहीं हैं। हमें सदैव स्मरण रखना चाहिये कि समूह स्थिर-प्रकृति के नहीं बल्कि गतिशील एवं मनुष्यो के अनेक जटिल सम्बन्धों पर आधारित होते हैं। मनुष्यो के उद्देश्य एव स्वार्थ सदैव परिवर्तित होते रहते हैं और एक स्वार्थ दूसरे स्वार्थ से इतने गुंथे हुये होते हैं कि पृथक् नहीं किये जा सकते। वर्गीकरण समस्या को अति सरल बना देता है परन्तु वास्तविक जीवन मे कोई भी वर्गीकरण उचित नहीं प्रतीत होता।

इतनी कमियाँ होते हुये भी ये वर्गीकरण अत्यन्त लाभप्रद हैं। वे जीवन के महत्वपूर्ण सत्यों पर प्रकाश डालते हैं और इससे मानव व्यवहार का सुन्दर विश्लेषण सम्भव हो पाता है।

प्रश्न

१ आप सामाजिक समूह से क्या समझते हैं ? उसके आवश्यक तत्व क्या हैं ?
(What do you understand by social group ? What are its essential elements ?)

२ आप सामाजिक समूहों का वर्गीकरण किस प्रकार करेंगे ?
(How would you classify social groups ?)

३ मानव व्यवहार किस प्रकार से अन्त समूह एव बाह्य समूह में भिन्न भिन्न होता है ?
(How does human behaviour differ in in groups and out groups ?)

४ आप प्राथमिक और द्वैतीयक समूहों से क्या समझते हैं ?
(What do you understand by primary and secondary groups ?)

५ प्राथमिक समूहों की आवश्यक परिस्थितियाँ क्या होती हैं ?
(What are the necessary conditions of primary groups ?)

६ प्रयोजन मूलक तथा परिवार मूलक समूहों के प्रमुख आधारों एव लक्षणों का विवेचन कीजिये।
(Discuss the bases and characteristics of interest and familistic groups) Lucknow, 1950.

७ प्राथमिक और द्वैतीयक समूहों (Primary and Secondary groups) में भेद बताइये। प्रत्येक के सामाजिक नियन्त्रण की उचित विधियों का वर्णन कीजिये।
(Distinguish between primary and secondary groups. Describe their methods of Social Control) Lucknow, 1952.

८ "सामाजिक समूह सामान्य मूल्यों पारस्परिक कर्त्तव्यों एवं आशाओं द्वारा बधे हुए हैं।" इस कथन की व्याख्या एव वर्णन कीजिये।

("Social groups are held together by common values and mutual obligations and expectations" Illustrate and explain the meaning of the statement.) Agra, 1951 Rajasthan, 1958.

९. प्राथमिक और द्वैतीयक समूहों मे व्यक्ति पर प्रभाव के आधार पर सावधानी पूर्वक अन्तर बताइये।

(Distinguish carefully between primary and secondary groups in their influence on the individual.) Agra, 1652.

१० द्वैतीयक समूह उस शीत जगत का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें ग्रामीण समुदाय के माता पिता के अनुसार, उनके बच्चे घर छोड़ने के बाद जाते हैं।' क्यों? प्राथमिक और द्वैतीयक समूहो में अन्तर बताइये।

('Secondary groups represent that 'cold world" into which parent in the rural community always thought of then young people going when they leave home.' Why? Distinguish between primary and secondary group.) Agra, 1956.

११. प्राथमिक समूह का अर्थ और महत्व स्पष्टतया समझाइये।

(Explain clearly the meaning and significance of primary group.) Rajputana, 1953.

१२. सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचे में प्राथमिक समूह क्यों निर्माण किये जाते हैं? उनके सदस्यों को इस सम्बन्ध से ऐसा कौनसा लाभ होता है जो वे स्वतन्त्र क्रिया द्वारा प्राप्त नहीं कर पाते?

(Why are primary groups formed throughout social structure? What do their members gain from association which they could not achieve by independent action?) Rajputana, 1955

अध्याय ३

परिवार : उत्पत्ति तथा संगठन

(Family : Origin and Organisation)

समूह पर विचार करते हुये पिछले अध्याय में हमने प्राथमिक समूहों पर विशेष महत्व दिया था क्योंकि वे व्यक्तित्व के विकास में एक महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। प्राथमिक समूहों में परिवार का अत्यधिक महत्व है। समाज की इकाई होने के कारण इसका महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। समाजशास्त्री और मानवशास्त्री दोनों ही इस मत से सहमत हैं कि परिवार से ही समाज का विस्तार हुआ है। वे यह भी मानते हैं कि परिवार की उत्पत्ति समूहों में सर्वप्रथम हुई।

बच्चा जन्म लेता है और परिवार की सदस्यता स्वीकार करने के लिये बाध्य होता है। अपने जीवन के निर्माण के महत्वपूर्ण वर्ष इस परिवार में बिताता है। वयस्क होने पर वह इस परिवार से स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करता है परन्तु अपने प्रयत्नों में असफल होकर उसी परिवार की एक शाखा स्थापित कर उसका प्रधान बन जाता है। जीवन भर अपने सारे प्रयत्नों को इस समूह की सेवा में लगा देता है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी परिवार का सदस्य रहता है। जीवन का सम्पूर्ण भाग समा लेने वाले समूह पर विचार करना अत्यावश्यक है। समाजशास्त्र के अध्ययन के विषयों में परिवार एक महत्वपूर्ण विषय है। अब हम इसके अर्थ और परिभाषा पर प्रकाश डालेंगे।

परिवार का अर्थ

(Meaning of the Family)

परिवार शब्द का कई अर्थों में प्रयोग होता है परन्तु इन विभिन्न प्रयोगों में अर्थों का अन्तर है यद्यपि इसका प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ में ही होता है। परिवार से कुछ लोग पति पत्नी और उनके बच्चे समझते हैं। कुछ लोग इसमें चाचा चाची, दादा दादी, चचेरे भाई और उनकी स्त्रियों को भी सम्मिलित कर लेते हैं। मातृसत्ताक संस्कृतियों में नाना नानी, मामा मामी इत्यादि भी परिवार में समझे जाते हैं। विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।

परिवार की परिभाषा करते हुए बिसेन्ज और बिसेन्ज लिखते हैं, "अतः परिवार की परिभाषा एक दृष्टिकोण से यह की जा सकती है कि एक स्त्री बच्चे सहित और एक पुरुष उनकी देखरेख करने के हेतु।"[1] इनके अनुसार परिवार स्त्री और बच्चों की आवश्यकता से प्रारम्भ हुआ है। पुरुष की आवश्यकता उन्हें अपनी रक्षा एवं पालन पोषण के लिये पड़ी। मैकाइवर और पेज ने परिवार की परिभाषा इस प्रकार की है 'परिवार वह समूह है जो कि लिंग सम्बन्ध पर आधारित है और काफी छोटा एवं इतना स्थायी है कि बच्चों की उत्पत्ति और पालन पोषण की व्यवस्था करने योग्य है।'[2] क्लेयर (Clare) परिवार की परिभाषा निम्न शब्दों में करता है "परिवार से हम सम्बन्धों की वह व्यवस्था समझते हैं जो माता पिता और उनकी सन्तानों के बीच पाई जाती है।"[3] बरजेस और लॉक (Burgess and Locke) ने परिवार की परिभाषा तनिक विस्तार से की है और कई पक्षों पर प्रकाश डाला है, 'परिवार उन व्यक्तियों का एक समूह है जो कि विवाह, रक्त या गोद लेने के बन्धनों से जुड़े हुए हैं, एक गृहस्थी का निर्माण करते हैं और पति-पत्नी, माता पिता पुत्र और पुत्री, भाई और बहिन अपने अपने क्रमश. सामाजिक कार्यों और पति पत्नी, में एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं एवं व्यवहार और सम्बन्ध रखते हैं और एक सामान्य संस्कृति का

---

[1] "Thus the family may in one sense be defined as a woman with a child, and a man to look after them" Biesanz J and Biesanz, M 'Modern Society An Introduction to Social Sciences,' Prentice Hall, Inc , New York, 1954, p 204.

[2] The family is a group defined by a sex relationship sufficiently precise and enduring to provide for the procreation and upbringing of children " MacIver, R M and Page, C H 'Society' p. 238

[3] "By 'family' we mean a system of relationships existing between parents and children " Clare, Thomas H , 'Introduction to Social Science A Survey of Social Problems,' Ebridged One volume Edition, Edtied, by Atteberry, George C, Aublel John L , and Hunt, Elgin F , The Macmillan Company, New York, 1951, p 168

निर्माण करते हैं और उसे बनाये रखते हैं।"[1] जुकरमेन ने परिवार की परिभाषा निम्न तरह से की है:—

"एक परिवार समूह, पुरुष स्वामी उसकी स्त्री या स्त्रियाँ और उनके बच्चों को मिलाकर बनता है और कभी कभी एक या अधिक अविवाहित पुरुषों को भी सम्मिलित किया जा सकता है।"[2]

परिवार की इन विभिन्न परिभाषाओं से एक अर्थ हमारी समझ में आया होगा। परिवार वह समूह है जो आपस में मैथुन करने वाले स्त्री या स्त्रियों एवं पुरुष या पुरुषों एवं इस मैथुन के परिणामस्वरूप हुई सन्तानों से मिलकर बनता है। यह प्राकृतिक परिवार की परिभाषा मानी जा सकती है। विभिन्न संस्कृतियों में इस प्राकृतिक समूह के साथ अन्य कुछ सदस्य और जोड़ दिये जाते हैं जो रक्त के निकट सम्बन्धी होते हैं या गोद लिये हुए होते हैं।

परिवार की उत्पत्ति (Origin of Family)

मानव की यह प्रवृत्ति रही है कि वह आदि भूत के विषय में जानने की आकांक्षा रखता है। प्रारम्भ में कौनसी वस्तु किस प्रकार की थी, यह जानने की उत्सुकता स्वाभाविक है। परिवार किस प्रकार प्रारम्भ हुआ तथा उसका क्या रूप था इस विषय पर अत्यधिक वाद विवाद समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों में हुआ है। यहाँ पर हम परिवार की उत्पत्ति के विषय में प्रचलित प्रमुख सिद्धान्तों का विवरण देंगे।

(१) शास्त्रीय सिद्धान्त (Classical Theory)

शास्त्रीय सिद्धान्त के प्रतिपादक प्लेटो (Plato) और अरस्तु (Aristotle) थे। १८६१ ई० में सर हेनरी मेन (Sir Henry Maine) ने इस सिद्धान्त को

---

[1] "A family is group of persons united by the ties of marriage, blood or adoption, constituting a single household, interacting and Intercommunicating with each other in their respective social role of husband and wife, mother and father, son and daughter, brother and sister and creating and maintaining a common culture" Burgess, E W and Locke, H J 'The Family From Institution to Companionship,' American Book Co, New York, p 8

[2] "A family group consists of a male overlord, his female or females together with their young, and many sometimes include one or more bachelor or unmated males" Zuckerman, S 'The Social Life of Monkeys and Apes' p 225

परिवार की उत्पत्ति के सिद्धान्त

(Theories Regarding the Origin of Family)

1. (१) प्लेटो तथा अरस्तु का शास्त्रीय सिद्धान्त (Classical Theory of Plato and Aristotle)
2. (२) लिङ्ग साम्यवाद का सिद्धान्त (Theory of Sex Communism)
3. (३) एक विवाह का सिद्धान्त (Theory of Monogamy)
4. (४) मातृसत्ताक सिद्धान्त (Theory of Matriarchy)
5. (५) उद्विकासीय सिद्धान्त (Evolutionary Theory)
6. (६) चक्राकार या तरङ्गित सिद्धान्त (The Cyclical or the Oscillator Theory)
7. (७) प्रगतिवादी सिद्धान्त (The Progressive Theory)
8. (८) मूलर लियर का सिद्धान्त (Theory of Muller Lyer)
9. (९) बहुसंख्यक कारकों का सिद्धान्त (Multiple Factor Theory)

पुनः प्रसारित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार परिवार प्रारम्भ में पितृसत्तात्मक (Patriarchal) था। प्राचीन ग्रीक, रोमन तथा यहूदी इतिहास इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि ग्रीक तथा रोमन इतिहास पितृसत्तात्मक परिवारों का प्रमाण देते हैं, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि परिवार का मौलिक (Original) रूप यही था। यह सिद्धान्त केवल एक विशिष्ट सभ्यता एवं क्षेत्र के लिये सत्य हो सकता है, परन्तु परिवार के सामान्य एवं सार्वभौमिक प्रकार के लिए नहीं। यह सिद्धान्त मान्य नहीं है, क्योंकि यह एक विशिष्ट काल एवं सभ्यता पर आधारित प्रमाण है। इन विद्वानों को संसार के अन्य भागों में बसने वाले परिवारों, विशेषतया दूर दूर के जङ्गलों में बसने वाली आदिम जातियों के विषय में जानकारी न थी।

(२) लिङ्ग-साम्यवाद का सिद्धान्त (Theory of Sex-Communism)

कुछ विद्वानों ने ऐसा मत प्रकट किया है कि प्राचीन काल में लिङ्ग साम्यवाद (Sex-communism) पाया जाता था। लिंग साम्यवाद से उनका अभिप्राय है नियन्त्रणहीन स्वच्छन्द लिंग सम्बन्धों का होना तथा परिवार का अभाव। उनके अनुसार कोई भी पुरुष या स्त्री किसी भी स्त्री या पुरुष से लिंग सम्बन्ध स्थापित कर सकता था तथा इस पर किसी प्रकार का भी नियन्त्रण नहीं था। इस लिंग साम्यवाद की अवस्था को सिद्ध करने के लिए उन्होंने आदिम जातियों में पाये जाने वाले ऐसे रीति-रिवाजों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जिनसे ज्ञात होता है कि लिंग सम्बन्धी नियन्त्रण अति न्यून मात्रा में पाया जाता था। उत्सवों पर लिंग सम्बन्धी स्वच्छन्दता, स्त्रियों का आदान-प्रदान और अतिथि सत्कार के हेतु पत्नियों को अतिथि के मैथुन के लिए देना इत्यादि ऐसे रीति-रिवाज थे। मध्य आस्ट्रेलिया और ट्रोबियन्ड निवासी सन्तान के पिता सम्बन्धी सिद्धान्त के विषय में अनभिज्ञ होते हैं। इन विद्वानों का यह मत वर्गीय व्यवस्था (Classificatory System) के कारण भी दृढ़ हो गया है कि प्रारम्भिक काल में लिंग साम्यवाद पाया जाता था। वर्गीय व्यवस्था के अनुसार कुछ अन्य जातियों में एक आयु समूह के समस्त सदस्यों को पिता या माता कहा जाता है। इसी प्रकार कुछ समूहों को भाई, पुत्र इत्यादि।

वास्तव में इन प्रमाणों के आधार पर इन विद्वानों को भ्रम हो गया। कुछ अवसरों पर लिंग सम्बन्धी अनियन्त्रण के रीति-रिवाजों के कारण यह नहीं कहा

जा सकता कि रीति-रिवाज लिंग साम्यवाद के अवशेष हैं। इसी प्रकार वर्गीय व्यवस्था में यह तात्पर्य लगाना कि इन लोगों को किसी प्रकार के भेद भाव का ज्ञान नहीं है, एक भयंकर भूल है। इनके सम्बन्ध स्पष्ट एवं सुनिश्चित हैं।

(३) एक विवाह का सिद्धान्त (Theory of Monogamy)

प्रारम्भ में परिवार का स्वरूप एक विवाह वाला था। वेस्टरमार्क (Wester march) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और इस पर अत्यधिक बल दिया है। वेस्टरमार्क ने डार्विन के निम्न सिद्धान्त का समर्थन किया है। परिवार का जन्म पुरुष के आधिपत्य और ईर्ष्या की भावना के कारण हुआ है। पुरुष स्त्रियों पर सम्पत्ति के समान आधिपत्य रखना चाहता था और सबल होने के कारण वह एकाधिकार (Monopoly) शक्ति के बल पर, रखने में सफल भी हुआ। आगे चलकर बल के प्रयोग की आवश्यकता नहीं रही और पुरुष का यह अधिकार एक दूसरे के हित में समाज द्वारा मान्य हो गया। शनैः शनैः यही विवाह की रीतियाँ बन गईं।

वेस्टरमार्क ने उच्च स्तर के अर्द्ध मानव समाजों से भी अपने तर्क की पुष्टि की है। छोटी पूँछ वाले बन्दरों (Apes) में भी एक विवाह प्रथा पाई जाती है और पुरुष का उच्च स्थान होता है। जुकरमैन (Zuckerman) और मैलिनोवस्की (Malinowsky) ने भी इस सिद्धान्त की पुष्टि की है। वेस्टरमार्क का कहना है कि एक विवाह प्रथा के अतिरिक्त जो भी प्रथायें बहु विवाह इत्यादि पाई जाती हैं, वे रोगों के समान हैं। एक विवाह प्रथा ही स्वस्थ स्वरूप है।

मैलिनोवस्की ने वेस्टरमार्क का समर्थन किया है तथा जोर देते हुए लिखा है, "एक विवाह ही विवाह का सच्चा स्वरूप है, रहा तथा रहेगा।"[1]

वेस्टरमार्क ने परिवार की उत्पत्ति और स्वरूप पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है, परन्तु यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि सब स्थानों पर परिवार की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई और एक विवाह प्रथा ही स्वस्थ स्वरूप है।

(४) मातृसत्तात्मक सिद्धान्त (Theory of Matriarchy)

वेस्टरमार्क के सिद्धान्त की ब्रिफॉल्ट (Briffault) ने तीव्र आलोचना

[1] "Monogamy is, has been and will remain the only true type of marriage" Malinowsky, B 'Marriage' in Encyclopaedia Britannica, Vol XIV, 14th Edition 1938, pp 940-950.

की है। मिफॉल्ट ने माता के स्थान को अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया है। उसने अपने सिद्धान्त को इस प्रकार व्यक्त किया है कि परिवार माता की निरन्तर आवश्यकताओं और उसके बच्चों की रक्षा की आवश्यकताओं के कारण उत्पन्न हुआ है। *पुरुष केवल अपने लिंग सम्बन्धी स्वार्थों के कारण परिवार का भागीदार* बना है। स्त्री ने पुरुष पर विजय प्राप्त करके उसे अपने प्रेम बन्धन में बाँध कर परिवार की उत्पत्ति की है। स्त्री के इस महत्व ही के कारण अधिकांश आदिम जातियों में मातृसत्ताक परिवार पाये जाते थे और पाये जाते हैं। कृषि के विकास के कारण पुरुष का महत्व बढ़ता गया और पितृसत्ताक (Patriarchal) परिवारों का निर्माण हो सका। मौलिक रूप में सर्वप्रथम मातृसत्ताक (Matriarchal) परिवार ही थे। इस सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिए उसने आदिम जातियों में पाये जाने वाले मातृसत्ताक परिवारों के उदाहरण दिये हैं जिनमें स्त्री का स्थान पुरुष के बराबर और कहीं-कहीं पर पुरुष से ऊँचा भी है। किन्हीं संस्कृतियों में पुरुष में ईर्ष्या और आधिपत्य की भावना नहीं पाई जाती है। आधुनिक युग में भी माता परिवार की केन्द्र है।

टाईलर (Tylor) ने भी इसी मत का समर्थन किया है, उसने लिखा है कि परिवार पहले मातृसत्ताक था, फिर मातृसत्ताक और पितृसत्तात्मक का मिश्रण और अन्त में पितृसत्तात्मक।

यद्यपि परिवार के विकास में माता के प्रमुख स्थान को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता तथापि परिवार की उत्पति का यही एकमात्र कारण है, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह भी वेस्टरमार्क के सिद्धान्त के समान दोष रहित नहीं है।

(४) उद्विकासी सिद्धान्त (Evolutionary Theory)

परिवार की उत्पत्ति का एक प्रमुख सिद्धान्त उद्विकासीय सिद्धान्त है। बैकोफैन[1] (Bachofen) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer), लुई मॉरगन (Lewis Morgan), मैक्लिनन (Mclennan) लुबोक (Lubbock) तथा टाईलर (Tylor) ने इस सिद्धान्त को ख्याति प्राप्त करने में सहयोग प्रदान किया है। यह सिद्धान्त विशेषतया हर्बर्ट स्पेन्सर के नाम से सम्बन्धित है। इस सिद्धान्त का सार *निम्न है :—*

उद्विकासीय सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य की मौलिक प्रारम्भिक पारिवारिक

[1] See his 'Das Mutterrecht'

जीवन की स्थिति अत्यन्त शिथिल थी। इसे लिंगीय अव्यवस्था (Sexual Promiscuity) कहा जा सकता है। उस समय लिंग सम्बन्धी नियन्त्रण का अभाव था तथा पारिवारिक सम्बन्धों के बन्धन अत्यन्त ढीले थे। केवल मात्र माता तथा सन्तान का बन्धन स्थायी था। इस प्रकार प्रारम्भ मे लिंग साम्यवाद या अराजकतावाद की स्थिति थी। दरिद्रता एवं अभाव की दशाओं में स्त्री भ्रूण हत्या (Female Infanticide) का प्रचलन हुआ होगा तथा इसके फलस्वरूप पुरुषों की सख्या में अभिवृद्धि हुई। स्त्रियों की सख्या में पुरुषों की सख्या अधिक होने के कारण बहु पति विवाह (Polyandry) प्रारम्भ हुआ। इसके उपरान्त प्रचुरता के समय फिर से स्त्रियों की सख्या बढ़ गई होगी जिसके फलस्वरूप पुरुष अपनी विलासिता की पूर्ति के लिये एक से अधिक स्त्रियाँ रखने की स्थिति में हो गया। बहुपत्नी विवाह (Polygyny) का प्रादुर्भाव हुआ। अन्त में न्याय की माँग तथा आचार के नियमों के फलस्वरूप एक विवाह (Monogamy) की प्रथा स्थापित हो गई। इस सिद्धान्त के अनुसार परिवार की उत्पत्ति लिंग अव्यवस्था की दशा के उपरान्त हुई तथा विभिन्न स्वरूपों मे विकसित होते हुये एक विवाह की उच्च स्थिति को प्राप्त किया।

उद्विकासीय सिद्धान्त अनेकों प्रमाणों पर आधारित है। सर्वप्रथम प्रमाण आदिम जातियों (Primitive Tribes) के सामाजिक सगठनों से प्राप्त हुये। इन लोगों मे मातृवशीय परिवार अधिक मात्रा में पाये गये। इससे यह धारणा बनी कि प्राचीन लोगों में मातृवशीय परिवार पाये जाते हैं, इसलिए मातृवशीय परिवार पहले प्रारम्भ हुये। डार्विन (Darwin) का सामान्य उद्विकास का सिद्धान्त भी इस सिद्धान्त को जन्म देने में सहायक रहा है। हर्बर्ट स्पेन्सर ने प्राणीशास्त्रीय उदविकास (Biological Evolution) के सिद्धान्त को समाज या सस्कृति के उद्विकास को समझने मे प्रयोग किया। इसके अनुसार जीवन की उत्पत्ति निम्न स्तर पर होती है तथा विभिन्न चरणों से होते हुये उच्च अवस्था को प्राप्त करता है। टाईलर (Tylor) ने लिखा है कि "मनुष्य की सस्थायें उसी प्रकार से स्पष्टतया स्तरित हैं जैसे पृथ्वी जिस पर कि वह विकास करता है।"[1]

---

[1] "The institution of man are as distinctly stratified as the earth on which he lives" Tylor On a method of investigating the Development of Institution, Applied to Laws of Marriage and Descent in 'Journal of Royal Anthropological Institute, Vol 18, p 258

टाईलर ने परिवार के उद्विकास का विवरण देते हुये लिखा है कि इसके निम्न तीन चरण थे —

(अ) मातृवशीय परिवार (Matrilineal Families)

(ब) मातृवशीय तथा पितृवशीय मिश्रित (Mixed Matrilineal and Patrilineal)

(स) पितृवशीय परिवार (Patrilineal Families)

इसी प्रकार मॉरगन[1] (Morgan) ने भी परिवार के उद्विकास के विभिन्न चरण (Steps) का उल्लेख किया है। वे निम्न पाँच अवस्थायें हैं —

(अ) सम्पूर्ण अव्यवस्था (Complete Promiscuity)

(ब) रक्त सम्बन्ध परिवार (Consanguine Family)

(स) समूह विवाह (Group Marriage)

(द) अस्थायी एक विवाह (Temporary Monogamy)

(य) अनिवार्य स्थायी एक विवाह (Compulsory Permanent Monogamy)

मॉरगन (Morgan) का सिद्धान्त व्यवहारिक दृष्टिकोण से उचित नहीं है। विभिन्न समाजों में परिवार का विकास विभिन्न अवस्थाओं में हुआ है। यह आवश्यक नहीं है कि आधुनिक युग में एक विवाह प्रथा पनप रही है तो यह अन्तिम अवस्था है। भविष्य ही बतायेगा कि कौन कौनसी अवस्थायें अभी शेष हैं। मॉरगन का सिद्धान्त अनुमान एव कल्पना पर आधारित है और वास्तविक तथ्य इसका समर्थन नहीं करते हैं। इतिहास भी इसके विरोध में सीना तान कर खड़ा है।

(६) चक्राकार या तरङ्गित सिद्धान्त
(The Cyclical or Oscillatory Theory)

लैप्ले (Le Play) सॉरोकिन (Sorokin) स्पेंगलर (Spengler), तथा जिमरमैन (Zimmerman) ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अपने अपने समय में किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार पारिवारिक प्रतिमान घड़ी के पेन्डुलम (Pendulum) के समान एक छोर से दूसरे छोर तथा दूसरे छोर से फिर इस छोर की ओर झूलते रहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि परिवार अपनी

[1] See his 'Ancient Society (1877)

उत्पत्ति के स्वरूप को फिर लौट जायगा तथा बाद मे पुन उसका उद्‌विकास प्रारम्भ होगा।

लेप्ले (Le-Play) ने फ्रेंच पारिवारिक जीवन के इतिहास को छ कालों में विभाजित किया है। इसी प्रकार सोरोकिन (Sorokin)[1] ने भी तीन अवस्थाओं की ओर सकेत किया है। इनका विचार है कि जीवन जहाँ से प्रारम्भ होता है वहाँ फिर लौट आता है। यही परिवार की उत्पत्ति तथा विकास के लिये भी सत्य है।

(७) प्रगतिवादी सिद्धान्त (Progressivist Theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन वार्ड (Ward) तथा ऑगबर्न (Ogburn) ने किया है। इस सिद्धान्त का सार यह है कि जीवन का विकास एक सीधी लकीर के समान होता है। यह प्रगति ही करता जाता है, पीछे नहीं लौटता इसीलिए इस सिद्धान्त को प्रगतिवादी सिद्धान्त कहते हैं।

परिवार की उत्पत्ति एक साधारण अवस्था में हुई होगी तथा आज उच्चतर एवं सर्वोत्तम प्रतिमान एक विवाह परिवार पाया जाता है। इन विचारकों के अनुसार इस प्रतिमान में ह्रास नहीं होगा अपितु प्रगति ही होगी।

(८) मूलर-लियर का सिद्धान्त (Theory of Muller-Lyer)

मूलर लियर (Muller Lyer)[2] ने परिवार के इतिहास को निम्न तीन भागों में विभाजित किया है —

(अ) गोत्र काल (Clan Period)

(ब) परिवार (Family Period)

(स) व्यक्तिगत काल (Personal Period)

इसने गोत्र काल तथा परिवार काल को तीन उपकालों में और भी विभाजित किया है—प्रारम्भिक (Early) मध्य (Middle) तथा अर्वाचीन (Late)। व्यक्तिगत काल का केवल प्रारम्भ ही है। मूलर लियर (Muller Lyer) ने संस्कृति के एक भाग तथा दूसरे भाग के सम्बन्धों पर बल दिया है। उसके अनुसार परिवार का यह आधार अन्य संस्थाओं से सम्बन्धों पर आधारित है। अब एक नवीन प्रजातान्त्रिक परिवार का युग प्रारम्भ हो गया है।

मूलर लियर ने एक सामान्य नियम का प्रतिपादन करते हुए लिखा है,

---

[1] See his book 'Social and Cultural Dynamics' 1937

[2] See his book 'The Evolution of Modern Marriage' 1930, Knoft Inc

"जहाँ राज्य शक्तिशाली और परिवार निर्बल होता है स्त्रियों की स्थिति अच्छी होती है तथा जहाँ परिवार शक्तिशाली और राज्य निर्बल होता है स्त्रियों की स्थिति खराब होती है।"[1] मूलर लियर का यह कथन उचित प्रतीत होता है। महान दार्शनिक बर्ट्रेन्ड रसल (Bertrand Russell) ने भी इस विचार का समर्थन किया है। रसल ने जापान का एक उदाहरण देकर इस तथ्य की पुष्टि की है। उसने लिखा है कि वह जापान में एक स्त्री से मिला जो कि जीवन को परिवारिक बन्धन से मुक्त व्यक्तिगत जीवन बिताना चाहती थी तथा स्वतन्त्र विचार रखती थी। जापान में परिवार शक्तिशाली हैं इसलिए वे उस स्त्री की स्वतन्त्रता को सहन नहीं कर पाये। टोकियों में एक भूचाल के सम्बन्ध में शान्ति एवं सुरक्षा स्थापित करने के हेतु जिस पुलिस अधिकारी का प्रबन्ध था, वह इस स्त्री तथा उस पुरुष, जिसके साथ इस स्त्री के स्वतन्त्र सम्बन्ध थे तथा उनके बारह वर्षीय बालक जिसे वे अपना भतीजा कहते थे, पकड़ कर पुलिस स्टेशन ले गया तथा वहाँ पर उन तीनों को गला घोट कर मार डाला। जापान के स्कूलों में जब यह प्रश्न पूछा जाता है कि पुलिस अधिकारी ने समाज के हित में अच्छा किया या नहीं तो आधे से अधिक बच्चे उत्तर देते हैं कि हाँ अच्छा किया। इससे स्पष्ट है कि जहाँ परिवार शक्तिशाली होता है वहाँ स्त्रियों की स्थिति खराब होती है। भारतवर्ष भी इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए उदाहरण स्वरूप अवतरित किया जा सकता है। हम जानते हैं कि हिन्दू संस्कृति में परिवार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था है परिवार की इस शक्तिशाली स्थिति के कारण स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय एवं दयनीय है। स्वतन्त्रता के उपरान्त ढाँचों में परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। राज्य शक्तिशाली होने लगा, परिवार निर्बल होने लगे तथा स्त्रियों की स्थिति सुधरने लगी। इससे स्पष्ट है कि मूलर-लियर का यह नियम बहुत अंशों में सत्य है।

परिवार की उत्पत्ति के अनेक सिद्धान्तों का विश्लेषण हमने किया। इस विश्लेषण से स्पष्ट हो गया होगा कि किसी भी सामाजिक घटना की उत्पत्ति की खोज करना अन्धकार में भ्रमण करना है। मैकाइवर ने उचित लिखा है कि "उत्पत्तियाँ सदैव अगम्य होती हैं। यदि हम अपने ही समय और अपनी स्वयं की ही आँखों के सम्मुख घटित होने वाली वैज्ञानिक खोज, नया धर्म, युद्ध,

[1] "Where the state is strong, the family is weak and the position of women is good, where as where the state is weak the family is strong and the pos tion of women is bad" Muller Lyer, Quoted from Bertrand Russell Styles in Ethics in The Nation

क्रान्ति आदि घटनाओं की उत्पत्ति को खोजने का प्रयत्न करते हैं तो हम उस साधारण स्रोत, जिससे कि इन्हें प्रारम्भिक प्रेरणा प्राप्त होती है, तक कभी नहीं पहुच पाते। जिस स्रोत का हम आगे की ओर अनुगमन करते हैं वह हमें स्पष्ट सत्य तक कभी भी न पहुचा कर कठिन दलदल और अदृश्य स्रोतों पर ला खड़ा कर देता है। यदि यह पास की घटनाओं के लिये सत्य है तो अज्ञात एव सदैव दूर भागने वाले भूत में निहित सामाजिक घटनाओं की उत्पत्तियों की खोज करना तो कितना अधिक दुष्कर कार्य होगा।"[1] परिवार की उत्पत्ति की खोज करना भी इसी प्रकार है। वास्तव में इस विषय में किसी भी एक सिद्धान्त को सत्य नहीं कहा जा सकता। परिवार की उत्पत्ति के बहुसख्यक कारक हैं। अतः अब हम उन कारकों का विश्लेषण करेंगे।

(६) बहुसंख्यक कारकों का सिद्धान्त
(Multiple Factor Theory)

परिवार की उत्पत्ति किसी एक तत्व के कारण नहीं हुई है। वास्तव में परिवार सृष्टि के प्रारम्भ से ही है। अत. उसकी उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। मैकाइवर और पेज ने लिखा है, "परिवार की इस दृष्टिकोण से कोई उत्पत्ति नहीं है कि मानव जीवन में कभी ऐसी अवस्था थी जबकि परिवार अनुपस्थित था या कोई अवस्था हुई हो जिसमें परिवार का जन्म हुआ है।"[2] फिर भी परिवार की उत्पत्ति किन कारणों से हुई ? इस पर विचार किया जा सकता है।

---

[1] Origins are always obscure If we endeavour to explain the genesis of any event that happens in our own days and seemingly before our very eyes, a scientific discovery, a new religion, a war, a revolution, we never get back to the simple fountainhard, the initial impulse whence it is derived The stream we follow upwards brings us at length to difficult marshes and underground pools, never to a clear spring If that is true of near events, how much harder is the task to trace the origin of social phenomena in the unknown and ever receding past" MacIver R M The Modern State, 1955, p 25

[2] "The family has no origin in this sense that there ever existed a stage of human life from which the family was absent or another stage in which it emerged" MacIver and Page, 'Society' p 245

परिवार की उत्पत्ति का कोई एक कारण नहीं है। एकांगी दृष्टिकोण दोष-पूर्ण है। वास्तव में मनुष्य की कई आवश्यकताओं ने परिवार को उत्पत्ति की है इनमें से सर्वप्रथम यौन सम्बन्धी मूल प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए मनुष्य को ऐसे मार्ग ढूँढने पड़े जिनमें कम से कम प्रतिद्वन्द्विता पाई जाय। परिवार उसका ही परिणाम था। दूसरी प्रवृत्ति सन्तानोत्पत्ति की इच्छा है। स्त्री और पुरुष के बिना सम्बन्ध हुये इस इच्छा की पूर्ति असम्भव है। इसके कारण दोनों गठबन्धन कर सहयोग करते हैं। इन दोनों कारणों से सम्बन्ध होने पर सन्तान उत्पन्न होती है। तत्पश्चात् उनके पालन-पोषण का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। यह चक्र इसी प्रकार चलता रहता है। इन सम्बन्धों के स्थापित होने के साथ-साथ कुछ अधिकार और कर्त्तव्य भी निर्धारित हो जाते हैं। आर्थिक व्यवस्था भी एक महत्वपूर्ण भाग लेती है। स्त्री और बच्चे पुरुष पर आर्थिक दृष्टिकोण से आधारित रहते हैं। इन तीनों कारकों ने मिलकर परिवार की उत्पत्ति की है। परिवार की उत्पत्ति कब और किस रूप में हुई, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह निश्चित है कि जहाँ कहीं भी यौन सम्बन्धी इच्छा, सन्तानोत्पत्ति की इच्छा और आर्थिक आवश्यकता मिल गई, वहीं पर परिवार का जन्म हो गया।

परिवार के संगठन की प्रमुख विशेषतायें

परिवार की निम्न विशेषतायें हैं:—

(१) सार्वभौमिकता (Universality)

परिवार की समिति का संगठन सार्वभौमिक है। यह समिति प्रत्येक सामाजिक संगठन में पाई जाती है। यह प्रत्येक समाज में, चाहे समाज किसी भी सामाजिक विकास की अवस्था में हो, पाई जाती है। प्रत्येक मनुष्य, परिवार का सदस्य है या रहा होगा और भविष्य में रहना पड़ेगा। यह केवल मनुष्यों में ही नहीं अपितु पशुओं की अनेक जातियों में पाया जाता है। असंख्य परिवर्तन परिवार की समिति को हिला नहीं पाये हैं।

(२) भावात्मक आधार (Emotional Basis)

यह समिति मानव की अनेक स्वाभाविक मूल प्रवृत्तियों पर आधारित है। परिवार की सदस्यता भावना से परिपूर्ण है। मनुष्य का पत्नी के प्रति अथाह प्रेम, बच्चों के प्रति वात्सल्य, भावनाओं एवं मूल प्रवृत्तियों पर आधारित है। माता का अथाह प्रेम उसे बच्चों के लिये सब कुछ त्याग करने के लिये बाध्य करता है। यह भावना के कारण ही है। माता और पिता में सन्तान कामना की मूल प्रवृत्ति

(Parental Instinct) पाई जाती है। इस मूल प्रवृत्ति के साथ साथ वात्सल्य उद्वेग (Tender Emotion) भी पाया जाता है। परिवार को बनाये रखने में इनका महत्वपूर्ण भाग है।

(३) सीमित आकार (Limited Size)

परिवार का आकार सीमित होता है। उसके सीमित होने का प्रमुख कारण प्राणीशास्त्रीय दशायें हैं। इसका सदस्य वही व्यक्ति हो सकता है जो परिवार में पैदा हुआ हो। सामाजिक सगठन के औपचारिक संगठनों में परिवार सबसे छोटा है। विशेषतया आधुनिक युग में इसका आकार अति सीमित हो गया है क्योंकि अब परिवार रक्त समूह से बिल्कुल पृथक् कर दिया गया है। आजकल पति पत्नी और बच्चे (सन्तति निरोध आन्दोलन के कारण संख्या बहुत कम रहती है) मिलकर परिवार का आकार निश्चित करते हैं।

(४) सामाजिक ढाँचे में केन्द्रीय स्थिति
(Nuclear Position in the Social Structure)

परिवार, सामाजिक ढाँचे में, केन्द्र की स्थिति पर है। यह सामाजिक संगठन की प्रमुख इकाई है। सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचा परिवार पर आधारित है।

(५) रचनात्मक प्रभाव (Formative Influence)

परिवार का रचनात्मक प्रभाव होता है। मनुष्य का यह प्रथम सामाजिक पर्यावरण है। सर्वप्रथम मनुष्य इसी समिति में रहता है। मनुष्य पर जो संस्कार बचपन में पड़ जाते हैं वे अमिट रहते हैं और बाद को इन्हीं संस्कारों पर मनुष्य के व्यक्तित्व की रचना करनी पड़ती है।

(६) सदस्यों का उत्तरदायित्व
(Responsibility of the members)

परिवार में सदस्यों का उत्तरदायित्व अत्यधिक होता है। परिवार एक प्राथमिक समूह है और हम प्राथमिक समूहों के सम्बन्ध में लिख ही चुके हैं कि इनमें उत्तरदायित्व असीमित रहता है। आपत्तिकाल में समाज एवं देश के लिये कुछ लोग कार्य करते हैं और सर्वस्व त्याग देते हैं परन्तु परिवार के लिये मनुष्य सदैव कार्य करता रहता है और इतना व्यस्त हो जाता है कि परिवार ही सब कुछ हो जाता है। परिवार में स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ही कठिन परिश्रम करते हैं। परिवार के प्रति उत्तरदायित्व की भावना मनुष्य स्वभाव में ही पाई जाती है।

(७) सामाजिक नियन्त्रण (Social Regulation)

सामाजिक नियन्त्रण परिवार द्वारा बड़ा कठोर होता है। मनुष्य इधर-उधर भाग नहीं सकता। परिवार के श्रद्धा, जन रीतियाँ (Folkways), प्रथायें (Customs), सामाजिक निषेध (Social taboos) और विधियाँ (Laws) हैं। विवाह द्वारा निश्चित नियम बना दिये जाते हैं और दो भागीदार इन नियमों में कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकते। आधुनिक युग में कोई भी स्त्री या पुरुष अपनी इच्छा से विवाह द्वारा गठबन्धन कर सकते हैं परन्तु अपनी इच्छा से एक दूसरे को छोड़ नहीं सकते। प्राचीन काल में तो नियम और भी कठोर थे। परिवार का नियन्त्रण मुख्यतया प्रेम एवं भावना पर आधारित था।

(८) इसकी स्थायी एवं अस्थायी प्रकृति
(Its permanent and temporary nature)

परिवार समिति के रूप में अस्थाई है। दो लोग मिलकर इस समिति का निर्माण करते हैं। पति या पत्नी दोनों में से किसी के भी मर जाने पर यह समिति समाप्त हो जाती है। इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो परिवार अस्थायी है। परन्तु परिवार को संस्था के रूप में देखा जाय तो वह स्थायी है। परिवार संस्था के रूप में सदैव जीवित रहता है, केवल कार्य करने वाले व्यक्ति परिवर्तित होते रहते हैं।

परिवार के प्रमुख कार्य (Significant Functions of Family)

परिवार एक समिति एवं संस्था के रूप में सामाजिक सङ्गठन का एक प्रमुख अङ्ग है। यह सामाजिक सङ्गठन की इकाई है। समाज में परिवार का अत्यधिक महत्व है। समाज में किसी भी संस्था या समिति के महत्व को जानने के लिये उस संस्था या समिति के कार्यों का विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक है। ऑग्बर्न तथा निमकॉफ ने उचित ही लिखा है, "किसी भी संस्कृति में परिवार के महत्व का मूल्याङ्कन करने के लिये यह ज्ञात करना आवश्यक है कि उसके क्या कार्य हैं तथा किस सीमा तक उन्हें पूर्ण किया जाता है।"[1] अतः परिवार के महत्व को समझने के लिए उसके कार्यों को समझना अत्यन्त आवश्यक है। अब हम परिवार के प्रमुख कार्यों का विवेचन करेंगे।

[1] "It is important in appraising the significance of the family in any culture to ascertain what functions are performed and to what extent they are exercised" W F Ogburn and M. F. Nimkoff A Handbook of Sociology (1950), P. 459.

परिवार के प्रमुख कार्य
(Significant Functions of Family)

परिवार के अनेक प्रमुख कार्य हैं। परिवार विविध कार्यों को सपन्न करता है। वैसे तो प्रत्येक सस्था या समिति के विविध कार्य होते हैं, परन्तु परिवार कार्यों से लदा हुआ है। इलियट तथा मैरिल (Elliott and Merrill) ने लिखा है, "किसी भी संस्था के विविध कार्य होते हैं, सम्भवतया समस्त सस्थाओं में परिवार अत्यन्त विविध कार्यों वाली सस्था है।"[1] परिवार अनेक कार्यों की पूर्ति करता है। परिवार एक ऐसी सस्था है जो संसार के प्रत्येक भाग में पाई जाती है। न्यूयार्क की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं, किसी भी भारतीय ग्राम की झोपड़ियों तथा किसी भी वन्य जाति के डेरों मे परिवार का निवास यथावत् मिलेगा। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज तक परिवार की संस्था जीवित है। कहने का तात्पर्य यह है कि परिवार हर संस्कृति एव काल में पाया जाता रहा है तथा पाया जाता है। इससे हमारा अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि प्रत्येक सस्कृति एव काल में परिवार का स्वरूप एवं प्रतिमान समान रहा है या है। परिवार एक मौलिक संस्था के रूप मे प्रत्येक संस्कृति मे पाया जाता है, परन्तु पारिवारिक प्रतिमान भिन्न होते हैं। परिवार के कार्य भी भिन्न भिन्न सस्कृतियों एव काल में भिन्न होते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि परिवार के जो कार्य एक संस्कृति में पाये जायें वही दूसरी संस्कृति में भी पाये जायेंगे। परिवार के कार्य समय के साथ भी परिवर्तित होते रहते हैं। इतना होते हुए भी परिवार के कुछ कार्य ऐसे हैं जो प्रत्येक संस्कृति एव काल में पाये जाते हैं। कुछ कार्य ऐसे हैं जो संस्कृति एवं काल के अनुसार परिवर्तित होते रहे हैं। हम परिवार के प्रमुख कार्यों को दो विशिष्ट भागों में बाँट सकते हैं, प्रथम वे कार्य हैं जो सार्वभौमिक हैं तथा प्रत्येक संस्कृति में पाये जाते हैं। इन कार्यों को परिवार के मौलिक एवं सार्वभौमिक (Basic and Universal) कार्य कहते हैं। द्वितीय कार्य वे हैं जो विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न होते हैं तथा जिनका निश्चय उस संस्कृति की परम्परायें (Traditions) करती हैं। परिवार के इन कार्यों को परम्परात्मक कार्य (Traditional-Functions) कहते हैं। अब हम परिवार के मौलिक एवं सार्वभौमिक कार्यों पर प्रकाश डालेंगे।

---

[1] "Any institution has a variety of functions, and the family is perhaps the most multifarious of all" Elliott and Merrill 'Social Disorganisation' 1950, p 361

मौलिक एवं सार्वभौमिक कार्य (Basic and Universal Functions)

परिवार के मौलिक एवं सार्वभौमिक कार्य वे कार्य होते हैं जो संसार के प्रत्येक भाग में पाये जाते हैं तथा जिन पर काल का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तव में परिवार की संस्था के वास्तविक आधार यही कार्य हैं। परिवार एक प्रक्रिया के रूप में इन्हीं कार्यों के कारण सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक चलता चला आ रहा है। ये कार्य निम्न हैं :—

१. प्राणीशास्त्रीय कार्य (Biological Functions)

परिवार के सार्वभौमिक कार्यों में प्राणीशास्त्रीय कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत निम्न प्रमुख कार्य आते हैं :—

(अ) सन्तानोत्पत्ति (Reproduction)

परिवार का सन्तानोत्पत्ति का कार्य प्रत्येक काल एवं समाज में पाया जाता है। सन्तानोत्पत्ति लिङ्ग सम्बन्धों पर आधारित है। परिवार का निर्माण ही इसी इच्छा की पूर्ति के लिये होता है। परिवार का यह कार्य मानव समाज के अस्तित्व के लिये अनिवार्य है। सदरलैंड तथा वुडवार्ड ने सत्य ही लिखा है, 'यह एक मौलिक प्राणीशास्त्रीय कार्य है जो परिवार करता है, एक ऐसा कार्य जो किसी भी मानव या पशु समाज के अस्तित्व के लिये अत्यन्त अनिवार्य है।'[1] कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा है कि परिवार का स्थायित्व ही सन्तानोत्पत्ति एवम् शिशु अवस्था की लम्बी अवधि पर आधारित है। कोहन (Cohen) ने इस तथ्य का प्रतिरोध किया है तथा लिखा है, 'इसलिए परिवार के स्थायित्व को केवल शिशु अवस्था की लम्बी अवधि का प्राणीशास्त्रीय तथ्य ही नहीं समझा जा सकता है।'[2] फिस्के (Fiske)[3] ने शिशु अवस्था की लम्बी अवधि

---

[1] "This is a basic biological function which the family has been performing, a function absolutely essential to the survival of any human or animal society Robert L Sutherland and Julian L Woodward 'Introductory Sociology' (1948), p 610

[2] "The biological fact of the prolongation of infancy cannot, therefore, by itself explain the permanent family Morris R Cohen in Ogburn and Goldenweiser (Editors) 'The Social Science and Their Interrelations' (1927), p 441

[3] Fiske Outlines of Cosmic Philosophy, 1873

(Prolongation of Infancy) के तथ्य पर अत्यधिक बल दिया है। इसमें सन्देह नहीं है कि सन्तानोत्पत्ति परिवार का एक प्रमुख प्राणीशास्त्रीय कार्य है जो सृष्टि के प्रारम्भ से अब तक प्रत्येक संस्कृति एवं समाज में पाया जाता रहा है।

अमेरिका जैसे देश में आज भी यह एक प्रमुख कार्य समझा जाता है। सन्तानोत्पत्ति के कार्य में कुछ शिथिलता आने पर राज्य को हस्तक्षेप करना पड़ा तथा ऐसे प्रोत्साहन रखे जिससे परिवार सन्तानोत्पत्ति के कार्य में रुचि ले।[1] आर्थिक प्रोत्साहन जैसे पारिवारिक भत्ता (Family Allowances), मातृत्व अनुदान (Maternity Grants), विवाह के लिये कर्ज (Marriage Loans), विस्तृत परिवारों के लिये बोनस तथा आयकर में छूट इत्यादि मिलते हैं।[2] यह उस देश का विवरण है जहाँ पर टेस्टट्यूब में बच्चे (Test tube Babies)[3] के परिक्षण काफी प्रगति कर गये हैं।

विज्ञान की इतनी अधिक प्रगति के उपरान्त भी परिवार का यह कार्य उससे पृथक् नहीं हुआ है। वास्तव में परिवार का यह प्राणीशास्त्रीय कार्य मानव प्रगति एवं सृष्टि के नियमों पर आधारित है। हालोवेल (Hallowell) तथा रेनोल्ड्स (Reynolds) ने अत्यधिक सीमा तक उचित लिखा है, 'मनुष्य ने परिवार का अन्वेषण नहीं किया था।'*

(ब) यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति
(Satisfaction of Sex Desires)

परिवार के प्राणीशास्त्रीय कार्यों में दूसरा प्रमुख कार्य दो विषम लिंगियों की यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति है। परिवार का यह एक प्रमुख कार्य है।

---

[1] Under the Federal Security Act a sum of $ 5, 936,184 for the fiscal year ending June 30, 1944, was disbursed by the Children's Bureau in grants in aids to states for internal and child health services An additional $ 29,700,00 was granted to states to meet emergency war conditions

[2] See Arne Skang 'Contemporary Population Planning' in Howard Becker and Reuben (Editors) Marriage and the Family (1942) pp, 610 629

[3] Aldous Huxley Brave New World, pp 1 32

*"Man did not invent the family," A Irving Hallowell and Earle L Reynolds Biological Factors in Family Structure in 'Marriage and the Family' edited by Becker & Hill, p 25

समाज में इस कार्य को सृष्टि के प्रारम्भ से ही परिवार की समिति को सौंप रक्खा है। विवाह की संस्था के द्वारा परिवार की समिति का उद्घाटन होता है। यौन सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति परिवार का एक विशेष एवं विशिष्ट कार्य है। ऑगबर्न तथा निमकॉफ ने भी लिखा है लिंग तथा सन्तानोत्पत्ति के कार्य परिवार के विशिष्ट कार्य हैं।"[1]

(स) बच्चों का पालन पोषण (Nutrure of Children)

सन्तानोत्पत्ति तथा यौन इच्छाओं की पूर्ति से अत्यधिक सम्बन्धित परिवार का तीसरा सार्वभौमिक एवं मौलिक कार्य बच्चों का पालन पोषण है। मानव शिशु लम्बी अवधि तक असहाय रहता है जिसके फलस्वरूप उसके माता पिता पर एक विशेष उत्तरदायित्व रहता है कि वे उसे जीवित रखने के लिए उसका पालन पोषण करें। मानव प्रकृति के अनुसार बच्चों का पालन पोषण उनके माता पिता द्वारा ही अच्छा किया जा सकता है। वर्तमान युग में कुछ नवीन विशिष्ट समितियों की स्थापना हुई है जो बच्चों का पालन-पोषण विशेष ढंग से करती हैं। प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत होता था कि परिवार का यह कार्य—बच्चों का पालन पोषण इन नवीन समितियों को हस्तान्तरित हो जायगा परन्तु वैज्ञानिक अध्ययनों एवं सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ कि इन नवीन समितियों में बच्चों के व्यक्तित्व का विकास उतना अच्छा नहीं होता जितना कि परिवार में माता पिता के संरक्षण में। अतः बच्चों का पालन पोषण एक विशिष्ट कार्य है जिस पर परिवार का एकाधिकार है।

२ मनोवैज्ञानिक कार्य (Psychological Functions)

परिवार का एक सार्वभौमिक एवम् मौलिक कार्य मनोवैज्ञानिक कार्य है। इसके दो प्रमुख आधार हैं प्रथम मनोवैज्ञानिक सुरक्षा (Psychological Security) तथा द्वितीय स्नेह (Affection)।

परिवार आपस में प्रेम एवम् सद्भावना का संचार करता है तथा मनोवैज्ञानिक सुरक्षा प्रदान करता है। परिवार जिस वात्सल्य एवम् मनोवैज्ञानिक सुरक्षा की भावना को प्रदान करता है, वह दूसरी संस्थाओं एवम् समितियों द्वारा प्रदान नहीं की जा सकती। व्यक्तित्व के विकास में यह कार्य बड़ी सहायता पहुंचाता है। सुरक्षा की भावना जीवन को सफल बनाने के लिए बड़ी आवश्यक है और

---

[1] 'The sex and Parental functions are distinctive of the family Ogburn and Nimkoff A Handbook of Sociology p 459

परिवार इसे बिना किसी शर्त के प्रदान करता है। राबर्ट फ्रास्ट (Robert Frost) ने लिखा है, "घर वह स्थान है जहाँ आप जब भी जाना चाहे वे आपको आने देंगे।"[1]

स्नेह प्रदान करने का कार्य भी परिवार करता है। स्नेह के अन्तर्गत कई मनोवैज्ञानिक आवश्यकतायें निहित होती हैं जैसे सहानुभूति अहं (Ego) की सन्तुष्टि, उद्वैगिक सुरक्षा की भावना, प्यार एवं प्रशंसा किये जाने की भावना, पारस्परिक आदर तथा पति-पत्नी का प्रेम इत्यादि।[2] स्नेह जीवन का आधार है, परिवार इसका स्रोत। सदरलैंड तथा वुडवर्ड ने उचित लिखा है, "आदर्श रूप मे परिवार एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक आरम्भ गृह है, जहाँ पर एक व्यक्ति सुरक्षापूर्वक आराम कर सकता है तथा दुकान या दफ्तर की चिन्ताओं से मुक्ति पा सकता है।"[3] परिवार के स्नेह का कार्य मानव जीवन पर अत्यधिक प्रभाव डालता है। अनेक अध्ययनो के उपरान्त यह पाया गया है कि विवाहित पुरुषो का स्वास्थ्य अविवाहित पुरुषो से अच्छा होता है। अविवाहित लोग अधिक आत्म हत्या करते हैं।[4] अविवाहित व्यक्ति विवाहित व्यक्तियो की अपेक्षा अल्पायु में ही मर जाते हैं।[5] परिवार का स्नेह कार्य (Affectional Function) अनेक दृष्टियों से लाभदायक है। इलियट तथा मैरिल ने उचित लिखा है कि "स्नेह कार्य रक्षात्मक तथा उपयोगी विशेषताएँ भी रखता है।"[6]

आधुनिक युग मे परिवार के अनेक कार्यों का हस्तान्तरण अन्य समितियों को हो रहा है परन्तु परिवार का कार्य स्नेह (Affection) परिवार का प्रमुख

---

[1] "Home is the place where when you have to go there, they have to take you in" Robert Frost 'The Death of the Hired Man', Complete Poems of Robert Frost, New York Henry Holt and Company Inc, 1949, pp 49 55

[2] "Francis E Merrill Courtship and Marriage (1949)

[3] "Ideally the family is a sort of psychological relief station in which one can safely relax and slough off the cares of the shop or office" Sutherland and Woodward 'Introductory Sociology', p 615

[4] "Emile Durkheim Le Suicide, ch III

[5] Metropolitan Life Insurance Co, 'The Married Live Longer' Statistical Bulletin, July, 1943

[6] "The affectional function has a protective and utilitarian character as well" Elliott and Marill 'Social Disorganisation,' p 363

आधार बनता जा रहा है। भविष्य के परिवार में इसका महत्व और भी अधिक बढ़ जायेगा। बर्गेस तथा लॉक ने उचित लिखा है, "पारस्परिक स्नेह विवाह और परिवार का आवश्यक आधार बनता जा रहा है।"*

परिवार के परम्परात्मक कार्य
(Traditional Function of Family)

परिवार के मौलिक एवम् सार्वभौमिक कार्यों पर हमने प्रकाश डाला। अब हम परिवार के उन कार्यों पर प्रकाश डालेंगे जो संस्कृति एवं परम्परा द्वारा निश्चित होते हैं। विभिन्न समाजों में विभिन्न परम्परायें पाई जाती हैं। इसके फलस्वरूप विभिन्न समाजों में परिवार के विभिन्न कार्य होते हैं।

(१) प्राणीशास्त्रीय कार्य (Biological Functions)

प्राणीशास्त्रीय कार्य वे कार्य होते हैं जो जीवन मरण से सम्बन्ध रखते हैं तथा मानव के अस्तित्व के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। अधिकाँश समाज में परिवार इन प्राणीशास्त्रीय कार्यों को करता है। इनमें प्रमुख निम्न हैं:—

(अ) सदस्यों की शारीरिक रक्षा (Body Protection)

परिवार के सदस्यों की शारीरिक रक्षा का उत्तरदायित्व परिवार पर रहता है। बच्चा जन्म से लेकर मृत्यु तक परिवार द्वारा रक्षा प्राप्त करता रहता है। यदि यह कहें कि परिवार शारीरिक रक्षा का बीमा करता है तो अतिशयोक्ति न होगी। प्रथम तो परिवार अपने सदस्यों की शारीरिक रक्षा प्रकृति की क्रूरता एवं अन्य मानव शत्रुओं से करता है। इस पर भी यदि एक सदस्य की शारीरिक रक्षा न हो पाये तो परिवार उसकी सांसारिक देनदारी (Liabilities) का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेता है। यह एक प्रकार का असीमित बीमा है। शिशु एवं बाल्यावस्था में तो परिवार शारीरिक रक्षा करता ही है, परन्तु युवावस्था में भी परिवार देख रेख करता है और वृद्धावस्था में तो फिर से परिवार का संरक्षण प्रारम्भ हो जाता है।

कृषक एवम् साधारण समाजों में परिवार का यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए भारतीय ग्रामों में परिवार के कुछ सदस्यों को लठैत एवम् धराबेबाज अनिवार्य रूप से होना ही पड़ता था, क्योंकि परिवार की रक्षा इसके

---

*"Mutual affection is becoming the essential basis of marriage and the family." Burgess, Ernest W. and Locke, Harvey J. 'The Family from Institution to Companionship', 2nd Edition, American Book Co. New York, 1935, p. 25.

बिना असम्भव थी। जहाँ जहाँ पर भी समाज का विकास साधारण हुआ है तथा राज्य की व्यवस्था शक्तिशाली नहीं है वहाँ पर परिवार को अपने सदस्यों की शारीरिक रक्षा अन्य मानवों से करनी ही पड़ती है। उदाहरण के लिए भारत के नगरों मे जहाँ पर पुलिस इत्यादि का प्रबन्ध समुचित रूप से है परिवार का यह कार्य—अपने सदस्यो की शारीरिक रक्षा—कुछ कम हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि सभ्यता के विकास के साथ साथ परिवार का यह कार्य हल्का होता जायेगा।

(ब) स्थान की व्यवस्था (Provision for Place)

परिवार अपने सदस्यों के लिये स्थान की भी व्यवस्था करता है या स्थान परिवार का प्रधान कार्यालय (Head Quarter) होता है। इसकी विशिष्टता के कारण इसे घर (Home) या मधुर घर (Sweet Home)[1] कहते है। कोई भी परिवार बिना घर के नहीं रह सकता। घर और परिवार इतने सम्बन्धित हैं कि दोनों शब्द पर्यायवाची (Synonym) समझे जाते हैं। डैनिस चैपमैन (Dennis Chapman) ने लिखा है, "विवाह के उपरान्त यथा शीघ्र प्रत्येक नवीन परिवार एक स्वतन्त्र घर की स्थापना करता है, नवीन घर पति तथा पत्नी दोनों की रुचियों एवम् संस्कृति को प्रदर्शित करता है।"[2]

(स) भोजन तथा वस्त्र की व्यवस्था
(Provision for Food and Clothing)

परिवार भोजन की व्यवस्था करने का कार्य भी करता है। प्रत्येक परिवार मे रसोई (Kitchen) का होना अत्यन्त आवश्यक है। भोजन का प्रबन्ध करना परिवार का एक महत्वपूर्ण कार्य है। आधुनिक सभ्यता के विकास के साथ साथ होटलों तथा अन्य ऐसी व्यवसायिक समितियों का विकास हो रहा है जो भोजन का प्रबंध करती हैं या परिवार के रसोई के कार्य को कम करती हैं। अमेरीका मे रसोई का कार्य परिवार में अत्यन्त न्यून हो गया है, परन्तु फिर भी लुप्त नहीं हुआ है।

परिवार वस्त्र की व्यवस्था भी करता है। कपड़े सीना, धोना, इस्त्री करना

[1] See Osbert Lancasters—Homes Sweet Home 1939, John Murray, London.

[2] "... each new family establishes an independent home as soon as possible after marriage, the new home reflecting the interest and culture of both husband and wife" Dennis chapman—'The Home and Social Status' 1955, p 39

तथा उन्हें व्यवस्थित रखना परिवार का प्रमुख कार्य होता था। अब धोबी, दर्जी इत्यादि विशेषज्ञों ने परिवार के इस कार्य को ले लिया है।

(२) आर्थिक कार्य (Economic Functions)

परिवार अनेक आर्थिक कार्यों को सम्पन्न करता रहता है। कभी कभी तो परिवार समस्त आर्थिक कार्यों का केन्द्र रहा है। उत्पादन करना, वस्तुओं को खाने योग्य बनाना तथा उनका उपयोग करना सभी परिवार का कार्य था। ऑगबर्न तथा निमकॉफ ने लिखा है, "अत यह परिवार अधिकांश रूप में स्वावलम्बी थे।"[1] अब हम परिवार के प्रमुख आर्थिक कार्यों पर प्रकाश डालेंगे।

(अ) श्रम विभाजन (Division of Labour)

परिवार अपने सदस्यों में श्रम विभाजन करता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य की एक निश्चित स्थिति (Status) और कार्य (Role) होता है। इसी के अनुसार श्रम विभाजन होता है। साधारणतया पिता धनोपार्जन करता है और परिवार का प्रधान समझा जाता है। माता भोजन एवम् घर की व्यवस्था और बच्चों की देखरेख करती है। इसी प्रकार अन्य सदस्यों का भी कार्य निश्चित होता है। ये कार्य ऐसे बटे होते हैं कि परिवार के प्रत्येक सदस्य के व्यक्तित्व का विकास हो सके और अपने जीवन को आनन्दमय बना सके।

(ब) आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र (Centre of Economic Activities)

परिवार समस्त आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र रहा है। यह उत्पादन का प्राचीन युग में प्रमुख केन्द्र था। उपभोग (Consumption) का आज भी परिवार प्रमुख केन्द्र है। मनुष्य आर्थिक क्रियाओं को इसलिए करता है कि उसे परिवार की चिन्ता है। वे व्यक्ति जिन पर परिवार का उत्तरदायित्व नहीं होता, आर्थिक क्षेत्र में शिथिल पाये जाते हैं।

(स) सम्पत्ति (Wealth)

परिवार के ही आधार पर सम्पत्ति का निर्णय होता है। परिवार यह निश्चित करता है कि सम्पत्ति का स्वामी कौन होगा और उसका प्रबन्ध किस प्रकार किया जायेगा ?

(३) सामाजिक कार्य (Social Functions)

परिवार के अनेक महत्त्वपूर्ण सामाजिक कार्य हैं। परिवार समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई मानी जाती है। इसका प्रमुख कारण परिवार के सामाजिक कार्य हैं जो निम्न हैं :—

---

[1] "These families were thus largely self supporting," Ogburn and Nimkoff "A Handbook of Sociology" p 468

(अ) परिवार समाज मे अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। परिवार के स्थान के अनुरूप ही परिवार के सदस्यो की समाज में स्थिति होती है। परिवार के आधार पर ही यह निश्चित होता है कि एक व्यक्ति किन अन्य लोगों से मिलेगा, किन लोगों के साथ खायेगा पियेगा खेलेगा मनोरजन करेगा और कई बार तो यह भी कि वह किस प्रकार जीविकोपार्जन करेगा। अधिकाश सस्कृतियों में परिवार व्यक्ति की समाज में स्थिति को पूर्ण रूप से निश्चित करता है। भारतवर्ष की सामाजिक व्यवस्था इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। एक चमार का लड़का जीवन भर उसी सामाजिक स्थिति मे रहता है तथा अपने परिवार के परम्परात्मक कार्य करता है। सस्कृति के विकास के साथ परिवार का यह कार्य कम होता जा रहा है परन्तु फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि परिवार आधुनिक समाज में मनुष्य की स्थिति को निश्चित करने में कोई भाग नहीं लेता है। *आज भी परिवार की स्थिति पर बहुत कुछ आधारित है।* अमेरिका तथा इङ्गलैण्ड जैसे प्रगतिवादि देशों में भी परिवार यह निश्चित करता है कि व्यक्ति की सामाजिक स्थिति क्या होगी। डैनिस चैपमैन ने इसका अत्यन्त सुन्दर अध्ययन किया है। उन्होने तो यहाँ तक लिखा है, 'कभी कभी सामाजिक स्थिति (परिवार के) पर्दों की बनावट से ही दृष्टिगोचर हो जाती है।"[1]

(ब) सामाजीकरण (Socialisation)

परिवार व्यक्ति का सामाजीकरण करता है। बच्चा परिवार में जन्म लेता है और परिवार उसे समाज के अनुरूप बना देता है, वह उसे खाने पीने का ढग, भाषा सम्बोधन का ढग एव समाज के नियम सिखा देता है। बर्गेस तथा लॉक ने उचित लिखा है, 'परिवार बालक पर सांस्कृतिक प्रभाव डालने वाली एक मौलिक समिति है तथा पारिवारिक परम्परा बालक को उसके अति प्रारम्भिक व्यवहार, प्रतिमान एवं आचरण का स्तर प्रदान करती है।"[2] परिवार मनुष्य के व्यक्तित्व पर अमिट छाप लगाता है। यदि आप परिवार की संस्कृति से परिचित हैं तो उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचय सरलता से दिया जा सकता है। सदरलैंड तथा वुडवर्ड ने लिखा है, 'वास्तव में परिवार व्यक्तित्व के सामान्य

---

[1] "Social status is sometimes indicated by the quality of curtains" Dennis Chapman The Home and Social Status, p 232

[2] " . the family is a fundamental agency in the cultural conditioning of the child and that family tradition provides the child with his earliest behaviour patterns and standards of contact" Burgess and Locke 'The Family,' 1950, p 212.

प्रकार पर छाप लगा देता है।"[1] व्यक्तित्व का अध्ययन करने वाले विशेषज्ञों का भी मत है कि बालक का सामाजीकरण परिवार में होता है। बर्गेस तथा लॉक ने इसकी पुष्टि करते हुए लिखा है, "समाज मनोवैज्ञानिक तथा मानस रोग चिकित्सक दोनों ही इससे सहमत हैं कि व्यक्तित्व के अत्यधिक प्रारम्भिक तथा मौलिक लक्षणों का निर्माण परिवार में होता है।"[2] इससे स्पष्ट है कि परिवार मानव शिशु को पशु से मानव बनाता है। सदरलैंड तथा वुडवर्ड ने उचित लिखा है, "यह (परिवार) सामाजीकरण की सबसे अधिक महत्वपूर्ण समिति है।"[3]

(स) मानव सभ्यता को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाना (Perpetutation of Human Achievement from one Generation to Another)

परिवार मानव सभ्यता को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाता है। माता-पिता ने जो कुछ भी अपने पूर्वजों से सीखा होता है वे अपने बच्चों को सिखाने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार मानव सभ्यता पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है।

(द) सामाजिक नियन्त्रण (Social Control)

परिवार एक प्राथमिक समूह (Primary Group) होता है। प्राथमिक समूहों में अत्यधिक नियन्त्रण की शक्ति होती है। व्यक्ति प्रेम के बन्धन में बँधे होते हैं। ये बन्धन इतने शक्तिशाली होते हैं कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने के अटूट प्रयत्न विफल हो जाते हैं। एक पति के लिये उसकी पत्नी की आँख का संकेत उसे उन कार्यों के करने से रोक सकता है जिनको राज्य के बड़े बड़े कानून नहीं रोक सकते। परिवार अपने सदस्यों पर सामाजिक नियन्त्रण रखता है। अधिकतर लोग बहुत से बुरे काम केवल इसलिए नहीं करते हैं कि उनका परिवार बदनाम न हो जाय।

---

[1] "In fact, the family stamps the general type of personality " Sutherland and Woodward 'Introductory Sociology', p. 613.

[2] "Both the social psychologist and the psychiatrist, however, agree that the earliest and the basic traits of personality are formed in the family" Burgess and Locke 'The Family', p 209

[3] "It is the most important socializing agency" Sutherland and Woodward 'Introductory Sociology', p 613

(४) शिक्षण कार्य (Educational Functions)

परिवार बच्चो की प्रथम पाठशाला है। बच्चे भविष्य म जो कुछ होते हैं वे परिवार की शिक्षा क फलस्वरूप होते हैं। बाल्यावस्था म बच्चे कच्ची मिट्टी के समान होत हैं, इसस किसी भी प्रकार का खिलौना बनाया जा सकता है। परिवार इसी अवस्था में शिक्षा प्रदान करता है।

(५) मनोरंजन प्रदान करने का कार्य (Recreational Functions)

परिवार मनोरंजन भी प्रदान करता है। यद्यपि आधुनिक युग में अनक व्यवसायिक मनोरंजन के साधन उपलब्ध होते हैं तथापि परिवार बिना पैस क ऐसा मनोरंजन प्रदान करता है कि सारे दूसरे साधनों द्वारा प्राप्त मनोरंजन फीके पड़ जाते हैं।

(६) धार्मिक कार्य (Religious Functions)

परिवार धर्म का प्रमुख केन्द्र है परिवार धार्मिक उत्सवों को मानता है और अपने सदस्यो के धार्मिक विचारों को निर्धारित करता है।

(७) सांस्कृतिक कार्य (Cultural Functions)

परिवार संस्कृति को जीवित रखता है। किसी भी समाज के रीति रिवाज, परम्परा एव सांस्कृतिक तत्व परिवार द्वारा सदस्यों को सिखाये जाते हैं और सदस्य इनकी अवहेलना इसलिये नहीं करते कि परिवार उन्ह पहल स ही ऐसा पर्यावरण प्रदान करता है जिसके कारण उन्हें स्वीकार करन के लिये बाध्य होना पड़ता है।

परिवार का समाज में महत्त्व
(Sociological Significance of Family)

समाज में परिवार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समिति है। परिवार के बिना समाज का जीवित रहना असम्भव दिखाई पड़ता है। सन् १९१७ की प्रसिद्ध समाजवादी सामाजिक क्रान्ति के उपरान्त रूस में परिवार को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया, परन्तु यह प्रयत्न असफल रहा। समाज की प्रमुख इकाई परिवार है और समाज की नींव में शक्तिशाली परिवार रूपी ईंट लगी हुई है यदि परिवार का आधार हटा लिया जाय तो समाज धराशायी हो जायेगा। बिसन्ज और बिसन्ज न उचित लिखा है 'परिवार मौलिक एव सार्वभौमिक संस्था है। प्रत्येक समाज का जीवित रहना इसी पर आधारित है।'[1]

---

[1] The family is the basic and universal institution Upon it depends the survival of every society' Biesanz and Biesanz 'Modern Society p 203

किसी भी संस्था या समिति का महत्व उसके कार्यों पर आधारित है। परिवार के कार्यों पर हम विचार कर चुके हैं। हमने देखा है कि वे कितने महत्व पूर्ण हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि परिवार का महत्व कम होता जा रहा है क्योंकि परिवार के कार्य दूसरी समितियाँ छीनती जा रही हैं। परन्तु यह विचार सत्य नहीं है। परिवार का महत्व बढ़ता ही रहा है। एल्मर ने लिखा है, "इस तथ्य ने, कि पारिवारिक समूह ने सम्पूर्णतया कुछ अंशों में कई आर्थिक एवं औद्योगिक कार्य खो दिये हैं, परिवार के सामाजिक महत्व को बढ़ा दिया है।"[1] परिवार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था एवं समिति है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो इसकी सदस्यता स्वीकार न करे।

परिवार की व्यापक विशेषतायें (General characteristics of family)

परिवार की कुछ व्यापक विशेषतायें होती हैं। उनमें से प्रमुख निम्न हैं :—

(१) यौन सम्बन्ध (Mating relationship)

किसी न किसी प्रकार का यौन सम्बन्ध अवश्य पाया जाता है।

(२) विवाह (Marriage)

यौन सम्बन्धों की अनुमति प्रदान करने का कोई न कोई स्वरूप प्रत्येक समाज में पाया जाता है। इसी स्वरूप को विवाह कहते हैं।

(३) नाम शैली (Nomenclature)

कोई न कोई व्यवस्था नाम शैली की होती है जिसके द्वारा लोग अपने पूर्वजों को पहिचानते हैं।

(४) आर्थिक व्यवस्था (Economic provision)

कुछ न कुछ ऐसी आर्थिक व्यवस्था पाई जाती है जिसके द्वारा परिवार के सदस्यों का कार्य चलता रहे।

(५) घर (Home)

प्रत्येक परिवार के लिये घर का होना अत्यन्त आवश्यक है।

---

[1] "The fact that the household group has lost in whole or in part many economic and industrial activities has increased the family's social importance" Elmer, 'The Sociology of the Family'

ये परिवार की व्यापक विशेषतायें हैं परन्तु विभिन्न संस्कृतियों में इनका विभिन्न स्वरूप देखने को मिलता है। अब हम उस पर विचार करेंगे कि परिवार की व्यापक विशेषताओं का विभिन्न संस्कृतियों में क्या स्वरूप होता है।

विभिन्न संस्कृतियों में परिवार के स्वरूप
(Family forms in various cultures)

(१) परिवार के दायरे का स्वरूप
(Form of the family circle)

कुछ परिवार ऐसे होते हैं जिनमें पति अपनी पत्नी के दायरे में रहने के लिये जाता है। इस प्रकार के निवास को मातृ स्थानीय निवास (Matrilocal residence) कहते हैं। जब पत्नी पति के परिवार में जा कर रहती है तो ऐसे निवास को पितृ स्थानीय निवास (Patrilocal residence) कहते हैं। कुछ इस प्रकार के भी रिवाज पाये जाते हैं जिनके अनुसार एक वर्ष पत्नी, पति के परिवार में और दूसरे वर्ष पति, पत्नी के परिवार में निवास करता है। ऐसा दोबू (Dobu) में पाया जाता है। ऐसे निवास स्थान को मातृ-पितृ निवास कह सकते हैं।

(२) वंश के नाम पहिचानना (Reckoning Descent)

वंश का नाम दो प्रकार से चल सकता है। प्रथम तो पुरुषों के नाम से और द्वितीय स्त्रियों के नाम से। जब वंश का नाम माँ के नाम पर चलता है तो ऐसे परिवारों को मातृवंशीय परिवार (Matrilineal Family) कहते हैं। जब वंश का नाम पिता के नाम पर चलता है तो पितृ-वंशीय परिवार (Patrilineal Family) कहते हैं।

(३) शक्ति के आधार पर स्वरूप
(Form of family on the basis of power and authority)

जिन परिवारों में स्त्री में सत्ता निहित होती है उन परिवारों को मातृसत्ताक परिवार (Matriarchal Family) कहते हैं। वास्तविक जीवन में इस प्रकार के परिवारों की सत्ता स्त्री के भाई में निहित होती है। बच्चों पर मामा का अधिकार होता है। जिन परिवारों में सत्ता पुरुष के हाथ में होती है, ऐसे परिवार को पितृसत्ताक परिवार (Patriarchal Family) कहते हैं।

(४) माता या पिता की प्रधानता के आधार पर

साधारणतया मातृवंशीय परिवार (Matrilineal Family), मातृस्थानीय निवास (Matrilocal residence) और मातृसत्ताक परिवार (Matriarchal

Family) एक ही साथ पाये जाते हैं। जिन परिवारों में माता की प्रधानता होती है, उन्हीं परिवारों में शक्ति माता में निहित होती है और वंश परम्परा माता के नाम पर चलती है और यह प्रधानता तभी सम्भव है जब पति, पत्नी के यहाँ निवास करे। अतः विस्तृत अर्थों में जिन परिवारों में माता की प्रधानता होती है, उन्हें मातृ सूचक परिवार (Matronymic Family) कहते हैं। इसके विपरीत जिन परिवारों में पिता की प्रधानता होती है उन्हें पितृ सूचक परिवार (Patronymic Family) कहते हैं।

(५) परिवार के अन्य भेद

वार्नर ने परिवार के दो भेद किये हैं। प्रथम वह परिवार जिसमें बच्चा जन्म लेता है और दूसरा वह जिसे वह विवाह करके स्थापित करता है और सन्तानोत्पत्ति करता है। इनको क्रमशः जन्मित परिवार (Family of Orientation) और सन्तानोत्पत्ति का परिवार (Family of Procreation) कहा है।

अन्य विद्वानों ने भी परिवार के विभिन्न रूप बताये हैं उनमें से प्रमुख निम्न हैं :—

(अ) अति समीप परिवार (Immediate Family)

अति समीप परिवार उन परिवारों को कहते हैं जिनमें माता पिता और उनके बच्चे रहते हैं।

(ब) विवाह सम्बन्धी परिवार (Conjugal Family)

विवाह सम्बन्धी परिवार वे परिवार होते हैं जिनमें पति और पत्नी रहते हैं और उनमें यौन सम्बन्ध पाये जाते हैं।

(स) रक्त सम्बन्धी परिवार (Consanguine Family)

रक्त सम्बन्धी परिवार वे परिवार होते हैं जिनमें रक्त सम्बन्धी रहते हैं।

(द) विस्तृत परिवार (Extended Family)

विस्तृत परिवार वे परिवार होते हैं जिनमें पति या पत्नी के अतिरिक्त उन दोनों के रिश्तेदार भी रहते हैं।

(६) विवाह के आधार पर भेद

विवाह के आधार पर भी परिवार के अनेक भेद होते हैं, इन पर हम अगले अध्याय में विस्तृत रूप से प्रकाश डालेंगे।

प्रश्न

१ परिवार की परिभाषा कीजिये और उसकी उत्पत्ति के सिद्धान्तो की विवेचना कीजिये।
(Define family and discuss its theories of origin)

२ परिवार के मुख्य लक्षण क्या हैं ?
(What are the distinctive features of the family ?)

३ परिवार का समाज में महत्व बताइये और उसके कार्यों पर प्रकाश डालिये।
(Show the importance of family in society and discuss its functions)

४ निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —
(१) मातृ स्थानीय और पितृ स्थानीय निवास (२) मातृसत्ताक और पितृसत्ताक, (३) मातृवंशीय और पितृवंशीय (४) अति समीप परिवार, (५) रक्त सम्बन्धी परिवार।
(Write short notes on the following —
1 Matrilocal and Patrilocal residence 2 Matrilineal and Patrilineal 3 Matriarchal and Patriarchal family 4 Immediate family 5 Consanguine family)

५ परिवार का समाजीकरण करने वाली संस्था के रूप में क्या महत्व है ?
(What is the importance of family as socializing agency ?) Lucknow, 1952

६ परिवार के प्रमुख रूप क्या हैं ? धर्म, अर्थ और सरकार के दृष्टिकोण से सामाजिक संस्था के रूप में परिवार की विवेचना कीजिये।
(What are some representative types of families ? Discuss the family as a social institution from the point of view of Religion, Economics and Government) Agra, 1950

७ यह समझाइये कि परिवार किस प्रकार से समाज की प्राथमिक एवं मौलिक इकाई है ?
(Explain how family is the primary and fundamental unit of society ?) Agra, 1955

८ लिखिये कि किस प्रकार से आर्थिक सुरक्षा एक स्वास्थ्यप्रद एवं स्थिर पारिवारिक जीवन को प्रोत्साहित करने में एक प्रमुख कारक है ?
(State how Economic security is the chief factor promoting a healthy and integrated family life ?) Agra, 1956

९ परिवार के मौलिक कार्य क्या हैं ? क्या ये कार्य आधुनिक युग में परिवर्तित हुए हैं। क्या आप आधुनिक परिवार को घटित कहगे ? कारण लिखिये।
(What are the basic functions of family ? Have these functions changed during recent years ? Would you call the modern family disorganised ? Give reasons) Rajputana, 1954

१० अन्य एजन्सियाँ मनुष्य को जीवन की सुविधायें प्रदान करन में किस प्रकार परिवार से प्रतियोगिता करती हैं ? परिवार के कार्य किस प्रकार परिवर्तित हो रहे हैं ?
(How do other agencies complete with the family *in offering amenities of life to the individual* ? How are the functions of the family changing ? Rajputana 1955

अध्याय ४

परिवार : विवाह

(Family : Marriage)

विवाह एक अति प्राचीन एवं अनिवार्य सार्वभौम संस्था है जो प्रत्येक मानव समूह में चाहे वह प्राचीन हो अथवा अर्वाचीन, सभ्य हो अथवा असभ्य सभी में समान अथवा असमान रूप से विद्यमान है। अतएव विवाह एक अति महत्वपूर्ण व्यवस्था है जिसके द्वारा मानव अपना संचालन करता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि विवाह के अभाव में मानव जाति का अन्त हो जायेगा बल्कि यह है कि मानव जीवन को एक आदर्शरूप में संचालित करने के लिये विवाह की संस्था ही एक समुचित व्यवस्था है। प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे नियम पाये जाते हैं जो विषमलिंगियों को यौन सम्बन्ध स्थापित करने की अनुमति प्रदान करते हैं। इन्हीं नियमों को विवाह की संस्था कहते हैं। मानव सभ्यता के विकास के साथ इन नियमों में परिवर्तन एवं सुधार सदैव ही होते रहे हैं और विवाह का स्वरूप बदलता रहा है। उनसे विवाह का अन्त न होकर उसका एक उच्चतर स्वरूप स्थापित होता रहा है। विवाह का लोप नहीं होगा। यह मानव समाज की एक अमर संस्था है।

विवाह का अर्थ (Meaning of Marriage)

विवाह लैंगिक सम्बन्धों के नियन्त्रण पर आधारित एक स्थाई सामाजिक संस्था है जो कि स्त्री तथा पुरुष पति पत्नि के रूप में परिभाषित करती है। हॉबल ने विवाह को परिभाषित करते हुये लिखा है कि "विवाह सामाजिक नियमों का एक जाल है जो कि विवाहित युग्म के पारस्परिक, उनके रक्त सम्बन्धियों बच्चों तथा समाज के प्रति उनके सम्बन्धों को नियन्त्रित एवं परिभाषित करता है।" वेस्टरमार्क के अनुसार "विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है जो प्रथा या कानून द्वारा मान्य होता है तथा जिसमें संगठन से आने वाले दोनों पक्षों तथा उनसे उत्पन्न

---

* "Marriage is the complex of social forms that define and control the relations of a mated pair to each other, their kins men, their offspring and society" Hoebel E A 'Man in the Primitive World', p 105.

बच्चों के अधिकार व कर्त्तव्यों का समावेश होता है।"†† राबर्ट लावी के मतानुसार, 'विवाह उन स्पष्ट स्वीकृत सगठनों को प्रकट करता है जो इन्द्रिय सम्बन्धी सन्तोष के उपरान्त भी स्थिर रहता है तथा पारिवारिक जीवन की आधार शिला बनता है।"* मजूमदार तथा मदान का मतैक्य है कि "यह साधारणत दीवानी तथा धार्मिक संस्कार के रूप में एक सामाजिक अनुमति है जो कि आबद्ध होने वाले विषमलिंगी दो व्यक्तियों को यौन एव अन्य आनुषगिक तथा पारस्परिक सामाजिक एव आर्थिक सम्बन्धों का अधिकार देती है।"† बील्स तथा हाइजर ने विवाह की परिभाषा करते हुये लिखा है, 'विवाह प्रत्येक मानव समाज में जिससे हम परिचित हैं एक जटिल साँस्कृतिक घटना है जिसमें कि पूर्णत प्राणी-शास्त्री कार्यों का निर्वाह होता है, किन्तु इसके अतिरिक्त बच्चों एव गृहस्थ का पालन पोषण तथा परिवार पर लादी गई सॉस्कृतिक आवश्यकतायें आदि सामाजिक क्रियायें भी होती हैं।' ¶ गिलिन तथा गिलिन के अनुसार "विवाह एक प्रजनन मूलक परिवार की सस्थापना की समाज द्वारा स्वीकृत विधि है।"§

†† "As a relation of one or more men to one or more women, which is recognized by custom or law, and involves certain rights and duties both in the case of the parties entering the union and in the case of the childern born of it" Westermarck 'The History of Human Marriage', Vol I, p 26

* "Marriage denotes those unequivocally sanctioned unions which persist beyond sexual satisfaction and thus come to underline family life" Robert H Lowie 'Marriage' in 'Ency clopaedia of Social Sciences', Vol X, p 146

† "It involves the sanction generally in the form of civil or religious ceremony authorizing two persons of opposite sexes to engage in sexual and other consequent and co related socio economic relations with one another" Majumdar D N and T N Madan An Introduction to Social Anthropology (1957)

¶ "Marriage in every Human Society that we know is a complex cultural phenomenan in which the purely biological functions of mating play but a small role in such sociological functions as the care of childern the maintenance of the house hold and other culturally imposed needs of the family" Beals and Hoijer An Introduction to Anthropology, p 416

§ "Marriage is a socially approved way of establishing a family of procreation' Gillin and Gillin 'Cultural Sociology', p 334

राजपुर अध्ययन समिति के विचारानुसार, ' विवाह समाज मे एक स्त्री और एक पुरुष के मध्य यौन सम्मिलन, पारस्परिक मित्रता और पारिवारिक सस्थापन के उद्देश्य से निर्मित, साधारणतया जीवन पर्यन्त सविदे के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है ।"§

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि विवाह एक स्त्री या स्त्रियो और पुरुषो या पुरुषों का समाज द्वारा स्वीकृत सम्मिलन है। विभिन्न सस्कृतियो मे विवाह विभिन्न दृष्टिकोणो एव अर्थों मे प्रयुक्त होता है । भारतीय दृष्टिकोण से विवाह एक धार्मिक सस्कार है जिसमें दो आत्माओं का पवित्र मिलन होता है जबकि पश्चिमी विचार धारा के अनुसार विवाह एक स्त्री तथा पुरुष मे समझौता है। लेकिन सभी सस्कृतियाँ विवाह को एक नैतिक सम्बन्ध के रूप में स्वीकार करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि विवाह सम्बन्ध समाज अथवा कानून द्वारा मान्य होना चाहिये। ऐसे कामुक सम्बन्ध जो समाज या कानून द्वारा मान्य नहीं होते है, विवाह के अन्तर्गत नहीं आते और उन्हे अनैतिक एव अनुचित सम्बन्ध कहा जाता है। विवाह को मान्यता प्रदान करने के लिए कुछ औपचारिकता आवश्यक होती है। यह औपचारिकता चाहे उत्च धार्मिक हो अथवा प्रीतिभोज एव उत्सव या बलपूर्वक छीन कर जेसा कि भारत की हो (Ho), नागा (Naga) और गोंड (Gond) जन जातियों में प्रचलित है। किन्तु समाज की स्वीकृति उस प्रथा के पीछे होनी आवश्यक है। वर एव वधू को समाज में स्थान मिलना एक प्रमुख आवश्यकता है। समाज उनकी स्थिति (Status) तथा कार्य (Roles) निर्धारित करता है। समाज इस रूप में केवल विवाह सम्बन्ध की मान्यता प्रदान नहीं करता अपितु इससे सम्बन्धित अन्य सम्बन्धों को भी अनुमति प्रदान करता है। उनके कुछ अधिकार तथा मर्यादाय निश्चित करता है। विवाह केवल दो जनों को ही सयुक्त नहीं करता है बल्कि दो परिवारों को एक दूसरे से सामाजिक सम्बन्धो के जाल में आबद्ध भी। विवाह का उद्देश्य केवल काम वासना की तृप्ति ही नहीं बल्कि उससे अधिक सामाजिक सम्बन्धो के रूप में है।

विवाह एक सस्था के रूप में (Marriage an Institution)

विवाह के अर्थ पर विचार करते समय हमने देखा है कि विवाह एक महत्व पूर्ण सस्था है। अब हम एक सस्था के रूप में विवाह पर विचार करेंगे।

§ "Marriage may be defined as a contract in society between a man and a woman normally intended to be binding for life, for the purpose of sexual union mutual companionship and the establishment of a family" Bulletin of 'Christian Institute for the Study of Society', Vol IV No 2 (Sept 1957) p 37

इससे पहले कि विवाह को हम एक संस्था के रूप में देखें यह नितान्त आवश्यक है कि संस्था का क्या अर्थ होता है ? इस तथ्य को भली प्रकार से समझ लिया जाय। बोगार्डस् (Bogardus) के अनुसार, "एक सामाजिक संस्था समाज का वह ढाँचा होता है जो मुख्य रूप से सुव्यवस्थित विधियों द्वारा मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित किया जाता है।' रास ने संस्था की परिभाषा इन शब्दों में की है, 'सामाजिक संस्थायें सामान्य इच्छा से संस्थापित या अभिमत प्राप्त संगठित मानव सम्बन्धों के समूह होते हैं।"§ मैकाइवर और पेज लिखते हैं, 'संस्थायें सामूहिक व्यवहार की विधि की दशाओं या स्थापित प्रतिमानों को कहते हैं।" फिक्टर ने सामाजिक संस्था की परिभाषा करते हुये लिखा है, 'एक संस्था सामाजिक प्रतिमानों, कार्यों और सम्बन्धों का सापेक्षात्मक दृष्टि से स्थायी ढाँचा होता है, जो कि लोग अपनी मौलिक और सामाजिक आवश्यकताओं की तृप्ति के उद्देश्य से मान्य एवं समान विधियों द्वारा बनाते हैं।'

संस्था की इन परिभाषाओं से हमें भली भाँति विदित हो गया होगा कि एक संस्था व्यवहारों का संगठित प्रतिमान है जो कि किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये धारणा पर आधारित होकर विकसित होती है और इन्हें सामाजिक अभिमत एवं अधिकार प्राप्त होता है, जिसके फलस्वरूप इसका ढाँचा अधिक स्थायी होता है। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक संस्था के विकसित होने के लिये कुछ आवश्यक तत्वों की आवश्यकता होती है। कोई भी संस्था क्यों न हो वह इन आवश्यक-तत्वों के अभाव में विकसित नहीं हो सकती है। संस्था के ये आवश्यक तत्व निम्न है —

---

* "A Social Institution is a structure of society that is organised to meet the needs of people chiefly through well established procedures' Bogardus E S 'Sociology,' 478

§ 'Social Institutions are sets of organised human relationships established or sanctioned by the common will" Ross E A 'Principles of Sociology' p 686

† 'Institutions are the established forms or conditions of procedure characteristic of group activity' MacIver and Page Society (1955) p 15

* "An institution is a relatively permanent structure of social patterns roles and relations that people enact in certain sanctioned and unified ways for the purpose of satisfying basic social needs Fichter J H 'Sociology' (1954) p 228

द्वितीय खण्ड :

(१) धारणा (Concept)
(२) उद्देश्य (Purpose)
(३) ढाँचा (Structure)
(४) अभिमत एवं अधिकार (Sanction and Authority)
(५) प्रतीक (Symbol)

संस्था के इन तत्वों के आधार पर यदि हम विवाह का कसौटी पर कसते हैं तो हमें मालूम होगा कि विवाह भी एक संस्था है जिसमें ये तत्व पूर्णत समाविष्ट है। अब हम यह देखेंगे कि विवाह की संस्था इन तत्वों के द्वारा किस प्रकार विकसित होती है।

(१) विवाह की धारणा (Concept of Marriage)

विवाह की धारणा लिंग सम्बन्धों के नियन्त्रण पर आधारित है सृष्टि के प्रारम्भ में लिंग सम्बन्धों पर कोई नियन्त्रण नहीं रहा होगा। यह समाज की प्राकृतिक अवस्था मानी जा सकती है जिसमें लिंग सम्बन्धों की निर्बाध स्वतन्त्रता, समाचार अनाचरण या अव्यवस्था (Promiscuity) की स्थिति थी। कल्पना की जा सकती है कि इस अवस्था की स्थिति में एक स्त्री से अनेकों कामुक पुरुषों ने यौन सम्बन्ध स्थापित करना चाहा होगा और उनकी वही दशा होती रही होगी जो कि एक मादा पशु से एक साथ ही संसर्ग स्थापित करने वाले अनेक नर पशुओं की होती है, जिसका स्वभाविक परिणाम फूट, कलह, झगड़ा, शत्रुता इत्यादि है, जो कष्टदायक है। इन्हीं कष्टों से ऊब कर किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में लिंग सम्बन्धों पर नियन्त्रण का विचार (Idea) उत्पन्न हुआ होगा और यह सोचा गया होगा कि उन्हीं स्त्री पुरुषों को लिंग सम्बन्धों का अधिकार होना चाहिये जिन्हें समूह सनद (Licence) प्रदान करे। इसी धारणा पर विवाह आधारित है। विवाह स्त्री पुरुष को लिंग सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सामाजिक अनुमति है।

(२) विवाह का उद्देश्य (Purpose of Marriage)

प्रत्येक संस्था के कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं। ये उद्देश्य मानव की किसी न किसी मौलिक आवश्यकता या आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। विवाह का प्रमुख एवं सार्वभौमिक उद्देश्य लिंग कामवासना की तृप्ति है। समाज विवाह की संस्था के द्वारा ऐसे नियमों का निर्माण करता है जिसके फलस्वरूप स्त्री तथा पुरुष सहयोगी रूप से अपनी कामवासना की पूर्ति कर सकें।

इस प्रमुख एवं सार्वभौमिक उद्देश्य के अतिरिक्त विभिन्न समाजों में विवाह के कुछ अन्य उद्देश्य भी होते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दू संस्कृति के अनुसार विवाह के निम्न उद्देश्य हैं।

(१) रति (Sexual Pleasure)
(२) प्रजा या पुत्र प्राप्ति (Progeny)
(३) धर्म (Religious) (Duty)
(४) पारस्परिक सहयोगी जीवन (Mutual Companionship)
(५) पारिवारिक जीवन (Establishment of Family)

विवाह का उद्देश्य लैंगिक आनन्द के साथ साथ प्रजा या पुत्र प्राप्ति भी है। सन्तानोत्पत्ति विवाह का एक प्रमुख उद्देश्य है। पुत्र की कामना प्रबल होती है, इसके साथ ही प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि उसका वंश विकसित हो। ऋग्वेद में स्पष्ट वर्णित है कि "हे अग्नि मैं सन्तानों द्वारा अमृत्व का उपभोग करूं।" इसी प्रकार पाणिग्रहण के मन्त्रों में वर वधू को कहता है कि 'मैं उत्तम सन्तान के लिए तेरा पाणिग्रहण करता हूँ।" विवाह के द्वारा उत्पन्न सन्तानों को ही समाज में स्थान प्राप्त होता है। विवाह से पूर्व उत्पन्न सन्तानों को सदैव ही उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है। बलसरा ने लिखा है कि "ग्रीक और रोमन विवाह का उद्देश्य वैध नागरिक उत्पन्न करना समझते थे, जिनको ही केवल पैतृक सम्पत्ति धारण और समाज द्वारा निर्धारित धार्मिक कृत्यों को पूरा करने का अधिकार था।"* कई संस्कृतियों में धर्म भी विवाह का एक प्रमुख उद्देश्य माना जाता है। हिन्दू संस्कृति के अनुसार अविवाहित को मोक्ष नहीं मिलता है और पत्नी की अनुपस्थिति में व्यक्ति धार्मिक कृत्य नहीं कर सकता है। इसी प्रकार स्त्री पुरुष में सहयोगी जीवन (Mutual Companionship) भी विवाह का एक सार्वभौम उद्देश्य है। यद्यपि प्राचीन व्यक्तियों में स्त्री पुरुष का साथी के रूप में होने का कोई विचार नहीं था लेकिन आजकल यह विवाह का प्रमुख आधार बनता जा रहा है। परिवार की स्थापना भी प्रत्येक मनुष्य की प्रबल आकांक्षा होती है, जो कि विवाह के द्वारा ही पूरी की जा सकती है। कुछ विचारकों के अनुसार आर्थिक सहयोग भी विवाह का एक ध्येय है। स्त्री पुरुष सदैव आर्थिक क्षेत्र में एक दूसरे के सहयोगी होते हैं लेकिन आर्थिक सहयोग विवाह का कोई प्रमुख आधार हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि विवाह की संस्था कुछ निश्चित उद्देश्यों पर आधारित है।

---

*"The Greeks and the Romans considered marriage for the purpose of producing legitimate citizens, who had only the right to inherit property and carry out religious duties as laid down by their , societies" Balsara F N 'Sociology' (1956) p 254

(३) विवाह का ढाँचा (Structure of Marriage)

प्रत्येक संस्था के कुछ उद्देश्य होते हैं, जिनको पूर्ण करने के लिए उसकी अपनी व्यवस्था होती है, जिसे संस्था का ढाँचा कहते हैं। विवाह का भी एक विकसित ढाँचा है जिसमें विभिन्न विधियाँ, उत्सव, प्रीतिभोज और प्रचलित प्रथायें सम्मिलित होती हैं जिनके द्वारा विवाह सम्पन्न होता है। मगनी, तिलक, लगन, बरात विवाहोत्सव, द्वाराचार, भोज, विदा, गौना आदि सब यन्त्र इसके विकसित ढाँचे में ही आते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि हम हिन्दू विवाह को देखें तो वह निम्न संस्कारों द्वारा पूर्ण होता है--कन्यादान, विवाह, पाणिग्रहण अग्नि परिणयन अश्वारोहण, लाजाहोम और सप्तपदी। इसी प्रकार विवाह को सम्पन्न करने के लिए भिन्न संस्कृतियों में भिन्न भिन्न व्यवस्थायें पाई जाती हैं।

(४) सामाजिक अभिमत एवं अधिकार
(Social Sanction and Authority)

विवाह को सामाजिक अभिमत प्राप्त होता है। ऐसे लिंग सम्बन्धों को जिनको समाज अपनी अनुमति प्रदान नहीं करता है, विवाह के अन्तर्गत नहीं आते हैं। समाज यह अनुमति अनेकों विधियों, प्रथाओं, उत्सवों और गोष्ठियों द्वारा प्रदान करता है जो कि उस समय समाज में प्रचलित होती हैं।

(५) विवाह के प्रतीक (Symbols of Marriage)

प्रत्येक संस्था के कुछ प्रतीक होते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दू समाज में विवाह के भी विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न भिन्न प्रतीक हैं। विवाह के ये प्रतीक स्त्रियों द्वारा माँग में सिन्दूर भरना, ओठों पर लाली, सुहाग बिन्दी, हाथों में चूड़ियाँ पहनना आदि हैं जिनसे यह पता चल जाता है कि अमुक स्त्री विवाहित है अथवा कुवारी। विधवा स्त्रियाँ माँग में सिन्दूर और ओठों पर लाली नहीं लगा सकती हैं। शृङ्गार का अधिकार भी विवाहित स्त्रियों को ही है, लेकिन ये प्रतीक केवल स्त्रियों के लिए ही हैं। अति सुन्दर होता यदि पुरुषों के लिए भी समाज द्वारा मान्य ऐसे ही कुछ प्रतीक होते जिससे वे भी विवाहित होने का गर्व समाज के सम्मुख व्यक्त कर पाते।

विवाह एक विचार से संस्था
(Marriage from an Idea to an Institution)

इस प्रकार हम देखते हैं कि विवाह एक पूर्ण विकसित समाजिक संस्था है। सृष्टि के प्रारम्भ की प्राकृतिक अवस्था में जबकि लैंगिक सम्बन्धों पर कोई रोक टोक नहीं थी और पूर्ण कामाचार या अनाचरण (Complete

Promiscuity) की स्थिति थी, किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में यह विचार उत्पन्न हुआ कि लिंग सम्बन्धों पर नियन्त्रण होना चाहिये और उसे समूह की सनद प्राप्त हो ।

विवाह का अभिप्राय समूह द्वारा एक पुरुष और एक या अनेक स्त्रियों या एक स्त्री और एक या अनेक पुरुषों या कुछ स्त्रियों और पुरुषों को एक दूसरे के साथ लिंग सम्बन्ध स्थापित करने की अनुमति (Sexual licence) है। उस व्यक्ति के विचार में समूह ने कल्याण और लाभ अनुभव किया और उसे स्वीकार कर लिया। और जब समूह ने उसके अनुसार व्यवहार करना प्रारम्भ किया तथा सफलता और लाभ उसे मिलता गया तो वह व्यवहार समूह के सदस्यों की आदत बन गई। इस समूह की आदत या जनरीति (Folkways) का परिणाम यह हुआ कि लोग उन्हीं व्यक्तियों के साथ लिंग सम्बन्ध स्थापित करने लगे जिनके लिए भी समूह की अनुमति (Group Sanction) उन्हें प्राप्त होती।

युक्ति की सफलता के कारण यह जनरीति पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती गई। अनुभव से यह सिद्ध हुआ कि ऐसा करना बड़ा सुगम है। इसलिए समूह उन व्यक्तियों को आदर देने लगा जो इन जनरीतियों के अनुसार व्यवहार करते थे। अब इन जनरीतियों ने प्रथा का रूप ले लिया।

शनै शनै समूह यह सोचने लगा कि व्यवहार के ये नियम समूह के कल्याण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और समूह का अस्तित्व इन नियमों के अभाव में खतरे से खाली नहीं है। इन नियमों की उपयोगिता समूह को अनुभव होने लगी। इन तत्वों से प्रेरित होकर समूह ने अपनी अभिमति (Sanction) इन नियमों को प्रदान कर दी और इनका उल्लंघन करने वालों के लिए दण्ड निर्धारित कर दिया। लिंग सम्बन्धी नियन्त्रण के ये नियम अब रूढ़ियाँ बन गई।

इन नियमों के पालन करने के लिए अनेक व्यवस्थायें उत्पन्न हुईं। किस प्रकार से समूह अपनी अनुमति प्रदान करेगा और उसके लिये क्या क्या उत्सव करने होंगे, यह निश्चित हो गया। मँगनी, तिलक, लगन, बरात, विवाहोत्सव, प्रीतिभोज इत्यादि अनेक यन्त्र बन गये। यह सब रूढ़ि के चारों ओर उसका विकसित ढाँचा है। संस्था विवाह के विचार और इस विकसित ढाँचे का योग है। इस प्रकार विवाह संस्था का क्रमिक विकास हुआ है।

अध्याय ५

विवाह के प्रकार

(Forms of Marriage)

विवाह के अर्थ और उत्पत्ति पर हम पिछले अध्यायों में विचार कर चुके हैं। अब हम विवाह के प्रकारों पर दृष्टिपात करेंगे।

विभिन्न संस्कृतियों और समाजों में विवाह के विभिन्न स्वरूप प्रचलित हैं। अनेकों विद्वानों ने उनका विभाजन पत्नी प्राप्त करने के तरीकों और विवाहोत्सव सम्पन्न करने की विधियों के अनुसार किया है लेकिन उनको विवाह के स्वरूप अथवा भेद नहीं कहा जा सकता। वे तो विवाह के तरीके मात्र हैं जो सभ्यता के विकास और प्रगति के साथ बदलते रहे हैं। विवाह एक पुरुष और एक स्त्री अथवा अनेक पुरुष और अनेक स्त्रियों का एक सङ्गठन (Union) है जिसकी प्रकृति या स्वरूप सगठन में सम्मिलित होने वाली स्त्री पुरुषों की सख्या पर निर्भर करता है। यद्यपि प्रगति की गति के साथ इन स्वरूपों का भी महत्व घटता बढ़ता जा रहा है तथापि ये स्वरूप भिन्न भिन्न संस्कृतियों के सामाजिक धार्मिक और नैतिक नियमों तथा परिस्थितियों के अनुसार आदिकाल से प्रचलित हैं। इन स्वरूपों को हम निम्न प्रकार से विभाजित करते हैं —

(१) एक विवाह (Monogamy)
- (अ) जोड़ा विवाह (Pair Marriage)
- (ब) मोनोजिनी (Monogyny)
- (स) अस्थाई एक विवाह (Monandry)

(२) बहु विवाह (Polygamy)
- (अ) द्विपत्नी विवाह (Bigamy)
- (ब) बहु पत्नी विवाह (Polygyny)
  - (i) असीमित (Unrestricted)
  - (ii) सशर्त (Conditional)
- (स) बहुपति विवाह (Polyandry)
  - (i) भ्राता सम्बन्धी (Fraternal)
  - (ii) अभ्राता सम्बन्धी (Non fraternal)
- (द) समूह विवाह (Cenogamy)

(३) रक्त सम्बन्धी विवाह (Affinel Marriage)
  (अ) देवर या भाभी विवाह (Levirate)
    (i) कनिष्ट देवर विवाह (Junior Levirate)
    (ii) ज्येष्ठ देवर विवाह (Senior Levirate)
    (iii) पूर्वत देवर विवाह (Anticipatory Levirate)
  (ब) साली विवाह (Sororate)
    (i) सीमित (Restricted)
    (ii) समकालिक (Simultaneous)

अब हम इन सबका अलग अलग विश्लेषणात्मक अध्ययन करेंगे।

(१) एक विवाह (Monogamy)

एक विवाह अभिप्राय उस वैवाहिक सगठन स है जिसमें केवल एक स्त्री तथा एक पुरुष होता है। इसके अनुसार एक समय में एक पुरुष कवल एक ही स्त्री से विवाह कर सकता है और जब तक यह पनी जीवित रहती है तब तक वह दूसरी स्त्री स विवाह नहीं कर सकता तथा न वह स्त्री दूसरे पुरुष स विवाह कर सकती है। पिडिङ्गटन (Piddington) ने इसकी परिभाषा करते हुए लिखा है एक विवाह, विवाह का वह स्वरूप है जिसमें कोई भी व्यक्ति एक समय म एक व्यक्ति स अधिक के साथ विवाह नहीं कर सकता है।'[1] समनर (Sumner) और कैलर (Keller) ने इस बात पर जोर दिया है कि इस नियम के अन्तर्गत किसी भी रूप में अन्य यौन सम्बन्ध की अनुमति नहीं हो सकती है। यह सम्बन्ध केवल मृत्यु या विच्छेद द्वारा ही तोड़ा जा सकता है।

एक विवाह के भेद (Forms of Monogamy)

अनकों समाजों में प्रचलित प्रथाओं के अनुसार एक विवाह के भी निम्न लिखित भेद किये जा सकते हैं —

(१) जोड़ा विवाह (Pair Marriage)
(२) मोनोजिनी (Monogyny)
(३) अस्थाई एक विवाह (Monandry)

(१) जोड़ा विवाह (Pair Marriage)

यह वह विवाह है जिसमें एक पुरुष और एक स्त्री विवाह करते हैं और उन दोनों की स्थिति (Status) समान रहती है। यह स्थाई विवाह होता है

---

[1] Monogamy is a form of marriage in which no man may be married to more than one woman at any one time Piddington R 'An Introduction to Social Anthropology (1952) p 111

विवाह (Marriage)
एक विवाह (Monogamy)
बहु विवाह (Polygamy)
रक्त सम्बन्धी विवाह (Affineal Marriage)
जोड़ा विवाह (Pair Marriage)
मोनोजिनी (Monogyny)
अस्थायी एक विवाह (Monandry)
देवर या भाभी विवाह (Levirate)
साली विवाह (Sororate)
कनिष्ठ देवर विवाह (Junior Levirate)
पूर्वंत. देवर विवाह (Anticipatory Levirate)
सीमित (Restricted)
समकालिक (Sororate)
ज्येष्ठ देवर विवाह (Senior Levirate)
द्विपत्नी विवाह (Bigamy)
बहुपत्नी विवाह (Polygyny)
बहुपति विवाह (Polyandry)
समूह विवाह (Cenogamy)
असीमित (Unrestricted)
सशर्त (Conditional)
भ्राता सम्बन्धी (Fraternal)
अभ्राता सम्बन्धी (Non-fraternal)

जिसे छोटी छोटी बातों पर समाप्त नहीं किया जा सकता है। आजकल इस विवाह को सर्वोत्तम माना जाता है।

(२) मोनोजिनी (Monogyny)

यह वह विवाह है जिसमें विवाह तो एक प्रथा के समान एक ही स्त्री से होता है जो कानूनी पत्नी होती है परन्तु पुरुष दूसरी स्त्रियों से भी यौन सम्बन्ध खुले रूप से रख सकता है, लेकिन उन्हें पत्नी का स्थान नहीं दे सकता। साधारणतया वे दासियाँ (Slaves) और रखैल (Concubines) होती हैं।

(३) अस्थाई एक विवाह (Monandry)

यह वह विवाह है जिसमें एक पुरुष को कुछ समय के लिये एक स्त्री से यौन सम्बन्ध स्थापित करने की अनुमति प्रदान की जाती है, परन्तु स्त्री पर समूह के समस्त पुरुषों का अधिकार रहता है। जितने समय के लिये यह स्त्री एक विशिष्ट पुरुष को सुपुर्द कर दी जाती है, दूसरे पुरुष उससे यौन सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सक्ते। इस विवाह को अस्थाई एक विवाह (Temporary Monogamy) भी कह सकते हैं। यह इसी प्रकार है जिस प्रकार एक व्यक्ति जमीन के एक टुकड़े को जोतने के लिये कुछ समय का अधिकारी होता है, यद्यपि जमीन का स्वामी समुदाय का प्रत्येक व्यक्ति है।

यह प्रथा कैलीफोर्निया के इन्डियन्स (Indians) और ब्राजील के असभ्य लोगों में पाई जाती है।

एक विवाह का प्रचलन (Extent of Monogamy)

यद्यपि मोनोजिनी (Monogyny) और अस्थाई एक विवाह (Monandry) भी एक विवाह (Monogamy) के ही प्रचलित स्वरूप हैं लेकिन जब हम एक विवाह की चर्चा करते हैं तो मुख्यतया हमारा तात्पर्य जोड़ा विवाह (Pair Marriage) से ही होता है। एक विवाह वर्तमान युग की सर्वश्रेष्ठ विवाह प्रथा है। यह संसार की सभी जातियों में प्रचलित है। भारत में सभ्य जातियों के प्रभाव के कारण अनेकों जन जातियों में भी प्रचलित है। कई आदि जातियों में यह प्रथा पहले से प्रचलित थी, परन्तु अनिवार्य नहीं थी। दक्षिण भारत की कदार (Kadar) जाति, अन्डमानियो (Andamanese), लङ्का की विडा (Vedda), बोर्नियो (Borneo) की पूनान और डायक्स (Punans & Dyaks) तथा केन्द्रीय अफ्रीका की बुशमैन जातियों में यह अनिवार्य रूप से प्रचलित है। तातर (Tatar), तुङ्गस (Tungus), सेमोयीड्स (Samoyeds) मङ्गोल (Mongols), भारतीय तथा यूरोपीय जातियों में एक विवाह प्रथा साधारण रूप से प्रचलित है।

लेकिन प्राचीन सभ्यता में एक विवाह बहुत न्यून मात्रा में प्रचलित था। स्पार्टा जाति (Spartans) में एक विवाह के नियम की प्रधानता होते हुये भी विवाह विच्छेद को प्रचलित करने के लिये द्विपत्नी विवाह (Bigamy) की अनुमति प्रदान की जाती थी और वह विधान के अन्तर्गत दण्डनीय नहीं था। परन्तु फिर भी सभ्यता के विकास के साथ एक विवाह की धारणा शक्तिशाली हो रही थी। ईसा की तृतीय शताब्दी में रोम के बादशाह डायोक्लेशियन (Diocletion) ने पुरुषों के अधिकारों में कटौती कर दी और द्विपत्नी विवाह (Bigamy) को एक दण्डनीय अपराध घोषित किया। यूरोप की कुछ आदिम जातियों में भी एक विवाह प्रचलित था। वेल्स (Welsh) जाति में एक विवाह का सख्ती से पालन होता था। लेकिन यहूदियों में बहुत लम्बे अर्से तक बहु विवाह (Polygamy) प्रचलित था। उनमें एक विवाह (Monogamy) के आदर्श बहुत समय के बाद ११ वीं शताब्दी में विकसित हुये। ईसाई धर्म ने एक विवाह के प्रचलन में काफी सहयोग दिया है और उसके विस्तार के साथ एक विवाह प्रथा भी समस्त यूरोप में फैल गई। ईसाई धर्म कभी-कभी तो एक विवाह प्रथा का प्रवर्तक बनने तक का दावा भी करता है। लेकिन यह केवल कल्पना की डींग हाँकना है, क्योंकि ईसाई धर्म के विकास से पहले स्पार्टा, रोमन और यहूदियों में एक विवाह एक अनिवार्य संस्था के रूप में पनप चुकी थी। छठी शताब्दी में आयरलैण्ड के राजा डायरमेट (Diarmait) के दो पत्नियाँ और दो रखैल (Concubines) थीं और वह द्विपत्नी विवाह (Bigamy) को एक दैवीय संस्था समझता था। बल्कि आज भी जब कि स्त्री शिक्षा और सभ्यता अपने चर्म विकास पर पहुंच चुकी है श्री ए० पी० हर्बर्ट जैसे लोकसभा के सदस्य बहुपत्नी विवाह के पक्ष में दलील पेश करते हैं और आज इङ्गलैण्ड में यह विचारधारा पनप रही है कि स्त्रियों की बाहुल्यता की समस्या का बहुपत्नी विवाह (Polygamy) एक अच्छा समाधान हो सकता।

समस्त मानव सभ्यता एक विवाह के आदर्शों को स्वीकार करती है, लेकिन पश्चिम के सभ्य देशों के लिये बढ़ती हुई स्त्रियों की संख्या एक समस्या बनती जा रही है। इसलिये यह कहना असमस्त है कि एक विवाह मानव सभ्यता की उच्चतम संस्था है। लेकिन फिर भी अधिकांश मानव जाति एक विवाह को ही सर्वश्रेष्ठ मानती है और अनेक देशों में बहु विवाह को दण्डनीय घोषित कर दिया गया है।

एक विवाह के कारण (Causes of Monogamy)

(१) कई आदि जातियों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। एक पत्नी से

अधिक को रखने में उनमें आर्थिक कठिनाइयाँ खड़ी हो जाती हैं।

(२) स्त्रियों में अत्यधिक ईर्ष्या की भावना पाई जाती है। इसलिए स्त्रियाँ एक साथ रहते हुए जीवन को नरक बना देती हैं।

(३) स्त्रियों तथा पुरुषों का अनुपात बराबर होना भी इसका एक प्रमुख कारण है। समाज अनुपात में एक स्त्री पुरुष का जोड़ा ही न्याय संगत है।

(४) प्रेम इस बात के लिए विवश करता है कि एक व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित किया जाय।

(५) एक विवाह प्रथा प्राकृतिक जान पड़ती है। मेलिनोवास्की (Malinowsky) ने जोर देते हुये लिखा है, "एक विवाह ही विवाह का वास्तविक स्वरूप है, रहा था और रहेगा।"[1]

एक विवाह के लाभ (Advantages of Monogamy)

(१) विवाह स्थाई रहता है।
(२) परिवार का बन्धन अधिक शक्तिशाली होता है।
(३) बच्चों का समुचित पालन पोषण होता है।
(४) सम्पत्ति का न्यायपूर्ण वितरण होता है।
(५) स्त्रियों की दशा अच्छी रहती है।
(६) बच्चों की मृत्यु कम होती है।
(७) प्रेम में शुद्धता रहती है।
(८) जीवन का स्तर उच्च बनाने में सहायक होता है।

एक विवाह के दोष (Disadvantages of Monogamy)

कुछ विद्वानों की दृष्टि मे एक विवाह में कुछ दोष भी हैं। उनके मतानुसार एक विवाह एकाधिकार की चेष्टा है और जो दोष एकाधिकार (Monopoly) के होते हैं वे ही इसमें भी पाये जाते हैं। समनर एवं कैलर ने लिखा है, "एक विवाह एकाधिकार है और जहाँ कभी भी एकाधिकार होता है वहाँ पर बाहर और भीतर दोनों ही पाये जाते हैं (अर्थात् अनेक व्यभिचार पाये जाते हैं),"[2] कुछ विद्वान इसे अप्राकृतिक और समाज द्वारा थोपा हुआ भी मानते हैं। इसके द्वारा सुख नाश और सामाजिक असन्तोष बढ़ता है। स्त्री बाहुल्यता वाले देशों मे एक

[1] "Monogamy is, has been, and will remain the only type of marriage," Malinowsky, B "Marriage" in Encyclopaedia of Britannica, Vol XIV, 14th, Edition (1938), pp 940-950

[2] "Monogamy is monopoly, whereever there is monopoly, there is bound to be both 'Ins' and 'Outs,' Sumner, W G and Keller, A G The Science of Society Vol III Yale University Press, New Haven, p 1879

विवाह सफल न होने के साथ साथ अनैतिकता और व्यभिचार को भी प्रोत्साहित करता है। पश्चिमी देशों के लिये स्त्री संख्या की अधिकता और एक विवाह नियम दो विरोधी समस्यायें बनी हैं। इंगलैण्ड और अमेरिका में पूर्व वैवाहिक सम्बन्ध और स्वतन्त्र लैंगिक सम्बन्ध अधिक मात्रा मे पाये जाते हैं जो किसी हद तक एक विवाह प्रथा के ही दोष कहे जा सकते है। एक विवाह प्रथा पर पोमेराय (Pomerai) भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हैं। उन्होने लिखा है, "इस प्रकार प्रारम्भिक एक विवाह का मूल्यांकन प्रत्येक जगह रखैल प्रथा (Concubinage) वेश्यावृत्ति और स्वच्छन्द लैंगिक सगठनों आदि बहु वैवाहिक (Polygamic) उपशमन औषधिकारकों (Palliatives) के द्वारा होता था। जो आज भी विश्व के प्रत्येक कोने मे प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है।"[1] नि.सन्देह वेश्यावृत्ति और स्वतन्त्र वैवाहिक सगठन तथा पूर्व वैवाहिक सम्बन्धो की अबाध गति देखकर यह कहना अनुचित न होगा कि एक विवाह की सर्वोच्चता विश्व जनमत को स्वीकार नहीं है।

(२) बहु-विवाह (Polygamy)

वैवाहिक सगठन का दूसरा स्वरूप (Form) बहु विवाह (Polygamy) है। एक विवाह के विपरीत जब विवाह सगठन मे सम्मिलित होने वाले दोनों लिंगो के सदस्यो की सख्या दो से अधिक होती है अर्थात् एक पुरुष का दो या दो से अधिक स्त्रियों अथवा एक स्त्री का दो या दो से अधिक पुरुषों अथवा सामूहिक रूप से अनेक पुरुषों का अनेक स्त्रियों से विवाह होता है तो उसे बहु-विवाह (Polygamy) कहते हैं। बलसरा ने भी बहु-विवाह की परिभाषा करते हुये लिखा है, "विवाह का वह प्रकार जिसमें सदस्यों की बाहुल्यता होती है, बहु-विवाह कहलाता है।[2] सक्षेप मे यह एक से अधिक पत्नी अथवा पति के विवाह को कहते हैं। बहु-विवाह एक सर्वव्यापी प्रथा है। भारत भी इसका अपवाद

[1] "Thus, early monogamic marriage was everywhere trumpeted by the polygamic palliatives of concubinage, prostitution, and free unions, and these palliatives still exist in practically every part of the world" Ralph De Pomerai "Marriage Past, Present and Future" (1930) p 85.

[2] "The forms of Marriage in which there is Plurality of partners is called polygamy" Balsara F N 'Sociology' (1956) pp 145--146

नहीं है। भारत में टोडा (Toda), नागा (Naga), बेगा (Baiga), गोंड (Gond) तथा अधिकतर मध्यभारत के प्रोटोआस्ट्रोलायड (Proto-austroloid) जन जातियों में साधारण रूप से प्रचलित है। पूर्वी अफ्रीका की बेगान्डा जाति में यह सबसे अधिक पाया जाता है। इस प्रथा के अनेक कारण हैं। अधिकतर स्त्री तथा पुरुषों की संख्या में असमानता (Disproportion) का होना एक प्रमुख कारण होता है। जिस समाज में पुरुष अधिक और स्त्रियाँ कम हों वहाँ अधिक पति और जहाँ स्त्रियाँ अधिक हों वहाँ पत्नियाँ अधिक होने की स्थिति उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अधिकतर ऐसे ही समाजों में यह प्रचलित है।

बहु विवाह (Polygamy) को हम निम्नलिखित प्रमुख चार स्वरूपों में देख सकते हैं:—

(१) द्विपत्नी विवाह (Bigamy)
(२) बहुपत्नी विवाह (Polygyny)
(३) बहुपति विवाह (Polyandry)
(४) समूह विवाह (Cenogamy)

अब हम इन सबका अलग अलग अध्ययन करेंगे।

(१) द्विपत्नी विवाह (Bigamy)

यह वह विवाह है जिसमें एक पुरुष एक ही समय में दो स्त्रियों से विवाह करता है। होलिया (Holeya) और मेदारू (Medaru) जो मैसूर में रहते हैं, एक व्यक्ति को दो बहिनों के साथ विवाह करने की अनुमति प्रदान करते हैं। जब प्रथम पत्नी से पुत्र उत्पन्न नहीं होता है तो दूसरी पत्नी लाने की इच्छा अनुभव की जाती है और प्रथम पत्नी की बहन से ही आम तौर से दूसरी शादी की जाती है।

(२) बहुपत्नी विवाह (Polygyny)

बहुपत्नी विवाह वह विवाह है जिसमें एक पुरुष एक ही समय में दो से अधिक स्त्रियों से विवाह करता है। बहुपत्नी विवाह पुरुष की एकाधिकार (Monopoly) की भावना का द्योतक है। परन्तु चूँकि लगभग सभी समाजों में स्त्रियों एवं पुरुषों की संख्या बराबर होती है इसलिये यह प्रथा सर्वव्यापी नहीं हो सकती। उदाहरण के लिये यदि किसी समाज में स्त्रियों एवं पुरुषों की संख्या बराबर है और यदि एक पुरुष दो से अधिक स्त्रियाँ रखता है तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि आधे के लगभग पुरुष अविवाहित ही रहेंगे इसलिये बहुपत्नी विवाह प्रायः कानूनी, धार्मिक अथवा सामाजिक रीति रिवाजों एवं व्यवहारिक कठिनाइयों

द्वारा नियन्त्रित हो जाता है। फिर भी यह धनी और उच्चवर्ग तथा विश्व की अनेक जन जातियों में प्रचलित रहा और अब भी है। साधारणतया यह दो स्वरूपों में प्रचलित रहा है।

(अ) असीमित बहुपत्नी विवाह
(Unrestricted Polygyny)

कुछ समाजों मे बहुपत्नी विवाह पर कोई रोक टोक नहीं होती है और अधिकांश जनता मे यह नियमित रूप से प्रचलित होता है। समाज उसको अनुमति एवम् स्वीकृति प्रदान करता है। अफ्रीका की करीब ८० प्रतिशत जातियो तथा अमेरिका की २८ प्रतिशत जातियो मे इसका प्रचलन पाया जाता है।

(ब) सशर्त बहुपत्नी विवाह
(Coditional Polygyny)

यह विवाह सीमित होता है और उच्च तथा धनाढ्य घरानो के लोगों को ही इसकी अनुमति मिलती है। यह कुछ वर्ग विशेष के लोगों तक ही सीमित है जो कि आदि युगीन सभ्यता से कुछ ऊंचे उठे हुये है।

बहुपत्नी विवाह का प्रचलन
(Extent of Polygyny)

आस्ट्रेलिया की जन जातियों और दक्षिणी अफ्रीका की बुशमैन (Bushmen) जाति को छोड़कर बहुपत्नी विवाह बहुत कम मात्रा में व्यवहृत होता है। उत्तरी अमेरिका की उच्च शिकारी और खेतीहर जातियों तथा अफ्रीका की सभ्य जातियों में इसका अत्यधिक प्रचलन है। अफ्रीका मे बोनिन (Bonin) के राजा की रानियों की संख्या ६०० से ४००० के बीच थी। लेकिन कथाओं के अनुसार अधिकांश को उसने अपने सरदारों को दे दिया था। बहु विवाह का प्रचलन आँग्ल भारतीय जातियों मे भी था। आर्यों मे राजाओं और जागीरदारों तथा स्लाव (Slavonic) और ट्यूटो (Teotonic) जातियों मे प्रमुखतया उच्च और अमीरों मे बहुपत्नी विवाह होता था। आयरलैंड मे राजाओं के लिये दो रानियाँ रखने की प्रथा थी।

भारत में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातियो में बहुविवाह न्यूनाधिक मात्रा में अभी कुछ ही वर्षों पहले तक प्रचलित था। अधिकांश राजाओं और बादशाहों के एक से अधिक रानियाँ थीं। कपाडिया ने लिखा है, "भारतवर्ष मे यह प्रतिमान वैदिक युग से वर्तमान समय तक प्रचलित रहा है।"[1] उत्सवो के

[1] "In India the patterns has presisted right from the Vedic times to the present" K M Kapadia 'Marriage and Family in India' (1958), p 97.

समय हिन्दू शास्त्रों ने चार स्त्रियाँ स्वीकार की हैं। महिषी (प्रमुख पत्नी) परिव्रत (प्रभावी) वक्ता (अधिक प्रिय) तथा पतागली। मनु के दस और याज्ञवल्क्य के दो पत्नियाँ थीं। इस्लाम के अनुसार प्रत्येक मुसलमान भी चार स्त्रियाँ रख सकता है, यद्यपि बादशाहों के इससे भी अधिक पत्नियाँ होती थीं। नैयर और नम्बूदरीपाद जातियों में भी यह प्रथा अनुलोम विवाह (Hypergamy) के रूप में प्रचलित थी, लेकिन अब इन सबको कानून द्वारा असामान्य और दण्डनीय घोषित कर दिया गया है। १९५५ का "हिन्दू विवाह अधिनियम" (Hindu Marriage Act of 1955) तथा अन्य राज्यों द्वारा पारित कानून इस दिशा में सफल प्रयत्न हैं। अन्य देशों में भी कानून एवम् धार्मिक रीति रिवाजों द्वारा बहुपत्नी विवाह को नियन्त्रित कर दिया गया है फिर भी भारत और अन्य देशों की वन्य जन जातियों में अब भी प्रचलित है। भारत में विशेषकर बेगा, टोडा, गोंड तथा लुशाई जातियों में यह प्रथा साधारण है। समकालीन समाजों में भी यह प्रथा प्रचलित है। राइवर्स ने लिखा है, "यह प्रत्येक स्थान पर विवाह का अति सामान्य स्वरूप है, जहाँ तक हम जानते हैं यह सार्वभौमिक नहीं है। परन्तु धनाढ्यों एवम् शक्तिशालियों का विशेषाधिकार है।"[1] उदाहरण के लिये अफ्रीका के राजाओं और ओसोनिया के धनाढ्यों में यह विवाह प्रथा पाई जाती है।

बहुपत्नी विवाह के कारण (Causes of Polygyny)

(१) स्त्रियों की संख्या का पुरुषों से अधिक होना।

(२) पुरुष की अधिक स्त्रियाँ रखने की इच्छा।

(३) पुरुष की नवीनता एवम् अनेकता (Variety) की तृष्णा।

(४) पुरुष की अधिक सन्तानों की कामना एवम् सुरक्षा की आवश्यकता।

(५) पुरुष की केन्द्रिय एकाधिकार की भावना।

(६) स्त्रियाँ गर्भावस्था एवम् मासिक धर्म के समय यौन सम्बन्धों के अयोग्य होती हैं, ऐसे समय में पुरुष की कामवासना की तृप्ति के लिये एक से अधिक स्त्रियों की आवश्यकता पड़ती है।

(७) कुछ समाजों में स्त्रियाँ शक्ति एवम् प्रतिष्ठा की द्योतक समझी जाती हैं, जैसे आस्ट्रेलिया के आदिवासियों में जितनी अधिक स्त्रियाँ उनके पास होती हैं उतने ही अधिक वे सम्मानित, शक्तिशाली एवम् धनाढ्य समझे जाते हैं।

(८) खेतीहर जातियों में पुरुष को श्रम में हाथ बटाने एवम् सहयोग देने के लिये अधिक स्त्रियों की आवश्यकता अनुभव की जाती है, जैसे भारत के गोंड,

[1] "It is the Commonest form of Marriage every where so far as we know, it is not universal but is the privilege of the powerful and rich" Rivers, 'Social Organisation'

वेगा तथा लुशाई गोत्रों में अधिकतर श्रम विभाजन के लिये ही एक से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह किया जाता है।

(६) बच्चे पैदा हो जाने पर पत्नी का अधिकतर समय बच्चों के लालन पालन में व्यतीत होता है। ऐसे समय में पति की सेवा सुश्रूषा तथा आनन्द के लिये दूसरी पत्नी की आवश्यकता अनुभव होती है।

(१०) कई जातियों में जैसे दक्षिणी प्रशान्त महासागर के मनहीकी (Manahiki) द्वीप, ब्रिटिश गायना तथा भारत की वैश्य और ब्राह्मणों में बच्चे के जन्म के बहुत दिनों बाद तक माता को घर से बाहर रक्खा जाता है, उसे घर की वस्तुएं छूने तक नहीं दी जाती हैं तथा दूसरी औरत का बनाया हुआ भोजन उसे दिया जाता है। ऐसी स्थिति में अन्य पत्नी की आवश्यकता अनुभव की जाती है।

(११) बुढ़ापे में सेवा सुश्रूषा तथा आनन्द के लिये जवान पत्नियों की आवश्यकता अनुभव की जाती है। वृद्धावस्था में शादी होने का यही कारण है। राजाओं और नवाबों के इतिहासों से अक्सर ऐसा ही पाया गया है कि उन्होंने अधिक आयु में छोटी कुमारियों से शादियाँ की हैं।

बहुपत्नी विवाह के लाभ (Advantages of Polygyny)

बहुपत्नी विवाह के एक संस्था के रूप में प्रचलित होने के कई सामाजिक उद्देश्य हैं —

(१) इससे घर में श्रम का विभाजन हो जाता है।

(२) बच्चों का पालन पोषण भली भाँति किया जा सकता है।

(३) पुरुष विवाह के क्षेत्र में ही अपनी काम वासना की तृप्ति कर लेता है। अतः समाज में व्यभिचार नहीं फैलता।

बहुपत्नी विवाह से हानियाँ (Disadvantages of Polygyny)

(१) परिवार के सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण आर्थिक व्यवस्था खराब हो जाती है। एक पुरुष के लिये अधिक स्त्रियों का खर्चा उठाना कठिन हो जाता है यही कारण है कि वर्तमान समय में आदिवासियों में बहुपत्नी विवाह का लोप तथा एक विवाह (Monogamy) का आविर्भाव हो रहा है।

(२) पुरुष के लिये इतनी स्त्रियों को नियन्त्रण में रखना कठिन हो जाता है। अतः घर में अशान्ति एवम् अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है।

(३) स्त्रियों का स्तर अति निम्न हो जाता है।

(४) सम्पत्ति विभाजन की समस्यायें उठ खड़ी होती हैं।

(५) पारिवारिक झगड़े मनुष्य के लिये मानसिक असन्तोष के कारण बनते हैं।

(६) बहुपत्नी विवाह न्यायसंगत नहीं है।

(३) बहुपति विवाह (Polyandry)

बहुपति विवाह वह विवाह है जिसमें एक स्त्री का एक समय में दो या दो से अधिक पुरुषों के साथ विवाह होता है। यह प्राय उन आदि जन जातियों और समाजों में पाया जाता है जहाँ पर स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कम होती है तथा प्राकृतिक साधनों का अभाव और गरीबी होती है। पोमेराय (Pomeroy) ने लिखा है, 'विस्तृत अर्थों में यह केवल उन्हीं प्रदेशों में पनप सकती है जहाँ प्रकृति विशेषतया मानव की शत्रु होती है जीवन दुष्कर, भोजन की अत्यधिक कमी और इसके फलस्वरूप जहाँ पुरुषों की संख्या स्त्रियों से अधिक होती है।"[1] किन्तु आधुनिक युग में इसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

बहुपति विवाह का प्रचलन (Extent of Polyandry)

बहुपति विवाह विश्व के निम्नलिखित प्रदेशों और जन जातियों में प्रचलित है —ग्रीनलैंड के एस्किमो (Eskimo), सपारोजिन के कौसाक (Saporogian Cossaks), पश्चिमी साईबेरिया के गिलयाक (Gilyaks), समस्त तिब्बती हिन्दुस्तान के टोडा (Toda) नैयर (Nair), कुर्ग (Coorgs), मिरिस (Miris), दोपला (Doplas) बूटी (Butias) खासा (Khasa), मालाबार के इरवान (Irevans) तथा कमाल (Kammala), कोटा (Kotas) संथाल (Santhals) दक्षिणी अफ्रीका की होतैन्तो (Honttentos), डमारा (Damaras), बाँटू (Bantu), जातियाँ मदागेस्कर (Madagascar) के होवा (Hovas), सीलोन की सिन्हाल (Sinhales), मरक्वेस आइलैन्डर्स (Marqeas Islanders) और मलाया द्वीप की पेनिन्सुला (Peninsualla) जातियों में बहुपति विवाह की प्रथा प्रचलित है। प्राय इन सभी जातियों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है और बदतर परिस्थितियों में ये निवास करते हैं।

उपर्युक्त जातियों में बहुपति विवाह प्राय दो स्वरूपों में उपस्थित है जो इस प्रकार है —

---

[1] "Broadly speaking it may be said to exist only in regions where nature is particularly hostile where life is ardous food extremely scarce, and where in consequence, the men invariably outnumber the women' Ralph De Pomerai 'Marriage Past, Present and Future' (1930) p 45

(अ) भ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह (Fraternal Polyandry)

यह वह विवाह होता है जिसमें स्त्री के सब पति सहोदर भ्राता होते है। जब बड़ा भाई विवाह कर लेता है तो उसकी पत्नी प्रथा से ही दूसर अनुज भ्राताओ की पत्नी बन जाती है छोटे भाइयों को उसस शादी करने की आवश्यकता नहीं होती है। यदि लघुभ्राता बच्चे होते हैं तो किशोरावस्था को पार करने के बाद उसके पति बन जाते हैं। अथवा यदि कोई छोटा भाइ परिपक्व अवस्था म दूसरी स्त्री स शादी कर लेता ह तो वह अन्य छोटे एवम् बड़े सब भाइयों की पत्नी बन जाती है। कुछ जातियों में यह प्रथा भी प्रचलित है कि विवाह के बाद पैदा होने वाले भाई की भी वह स्त्री पत्नी बन जाती है। वेस्टरमार्क ने लिखा है, "जब एक लड़का किसी स्त्री से विवाहित हो जाता है तो वह लड़की प्राय उसी समय उसके अन्य सब भाइयों की पत्नी बन जाती है और उसी प्रकार बाद म पैदा होने वाला भाई भी बड़े भाइयों के अधिकारों में भागीदार माना जाता है।"[1] भ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह भारत की खासा, टोडा जातियों, हिमालय प्रदेश के लद्दाख और तिब्बत में प्रचलित है। १८६० तक सिलोन (Ceylon) में भी यह सामान्य नियम था। नीलगिरी की टोडा जन जाति मे जब किसी लड़के की शादी हो जाती है तो उसके विद्यमान भाइयों के अतिरिक्त बाद में पैदा होने वाले भाई भी अन्ततोगत्वा उस स्त्री के पति बन जाते हैं। किन्तु राइवर्स (Rivers) ने टोडा जन जाति मे कुछ ऐस बहुपति विवाह देखे ह जिनमें प्रथक् प्रथक् गोत्र के सदस्य थे।

भ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह में पारिवारिक व्यवस्था (Family System in Fraternal Polyandary)

इस प्रकार के परिवार मे बड़े भाई का एकाधिकार होता है। छोटे भाइयो का पत्नी के साथ लैंगिक सम्बन्ध बड़े भाई की इच्छा पर ही निर्भर रहता है। पोमेराय ने लिखा है, 'अधिकाश बहुपति विवाह समुदायो में एक स्त्री के पति प्राय भाई या रक्त सम्बन्धी होते हैं और यह देखा जाता है कि छोट भाइयों द्वारा पत्नी की साझेदारी बड़े भाई की उदारता पर निर्भर करती है जो कि वह छोटे भाइयों के प्रति दिखाता है अन्यथा स्त्रियों की कमी के कारण उन्हे पत्नी रहित रहना पड़ता है।'[2]

---

[1] "When a boy is married to a girl she usually becomes the wife of his brothers at the same time and any brother born later will similarly be regarded as sharing his elder brother s right" Westermarck 'History of Human Marriage'

[2] "In most polyandrous communities a woman's husband

(ब) अभ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह
(Non-fraternal Polyandry)

यह बहुपति विवाह का वह स्वरूप है जिसमें एक स्त्री के अनेकों पति आपस में सहोदर भ्राता न होकर अनेकों गोत्रों (Clans) के व्यक्ति होते हैं, जो एक दूसरे से अपरिचित होते हैं । दक्षिण भारत की जन-जातियां विशेष तौर से मालाबार और कोचीन की नैयर जाति में यह मुख्यतया प्रचलित है । नैयर जन-जाति में पतियों का भाई होना अनिवार्य नहीं है । मालाबार और कोचीन में बहुपति विवाह दूसरे गोत्र के सदस्यों के साथ भी हो सकता है ।

अभ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह में पारिवारिक व्यवस्था
(Family Systems in Non-fraternal Polyandry)

इसमें कोई संगठित पारिवारिक व्यवस्था नहीं होती है । पति विभिन्न परिवारों या गोत्रों के सदस्य होते हैं जो अलग अलग रहते हैं । स्त्री अपने पतियों के पास बारी बारी से दौरा लगाती रहती है । वह अपनी इच्छानुसार किसी भी पति के पास चाहे जितने दिनों तक ठहर सकती है और उस समय तक दूसरे पतियों का उस पर कोई अधिकार नहीं होता है । इस प्रकार के विवाह अस्थाई होते हैं और छोटे छोटे झगड़ों से ही विवाह समझौते टूट जाते हैं । सबसे बड़ी कमी यह होती है कि इसमें उत्तरदायी पिता का अभाव होता है । नैयरों में पति अपनी पत्नी और उसके बच्चों का प्रबन्ध करने के लिये बाध्य नहीं होता है । वेस्टरमार्क ने लिखा है, "नैयर जाति के बहुपति विवाह सम्बन्धी समूह, कठिनाई से विवाह कहे जा सकते हैं । एक अवैधानिक दृष्टिकोण से भी यदि हम विचार करें तो वे लचीली तथा अत्यधिक अनियमित लक्षण की थी एवम् पुरुष कभी स्त्री के साथ नहीं रहे तथा कुछ विवरण वेत्ताओं के अनुसार पितृत्व के कर्तव्य की सर्वथा उपेक्षा की गई ।"[1] लेकिन १८६० के मालाबार

are usually brothers or blood relations, and it would seem that the sharing of a wife is an act of benevolence on the part of the elder brothers to the younger ones, who, owing to the shortage of women would otherwise wouldhave to go wifeless" Ralph De Pomerai 'Marriage, Past, Present & Future' (1930) p 46

[1] "The polyandrous unions of the Nayars can hardly be called marriages even from a non-legal point of view considering that they were of loosest and most fugitive character, that the male partners never lived with the woman, and that, according to some accounts, the duties of fatherhood entirely ignored" Westermarck 'The History of Human Marriage'

विवाह आयोग (The Malabar Marriage Commission of 1890) ने सब विवाहों के पंजीकरण (Registration) का नियम पारित कर दिया और १८९६ के बाद बच्चे पिता की आधी सम्पत्ति के कानूनी उत्तराधिकारी बनने लगे और पति की मृत्यु की स्थिति मे सम्पूर्ण सम्पत्ति पर पत्नी और बच्चों का अधिकार हो जाता है।

बहुपति विवाह के कारण (Causes of Polyandry)

(१) स्त्रियों की संख्या की अपेक्षा पुरुषों का अधिक संख्या में होना। स्त्रीलिंग शिशु हत्या के कारण भारत की टोडा, खासा, कोटा, नैयर आदि जन जातियों में स्त्रियों की कमी हो गई।

(२) तिब्बत, हिमालय तथा दक्षिणी भारत की जन जातियो मे बहुपति विवाह स्त्री को संकट से बचाने के लिये किया जाता है। पति जब अधिक समय के लिये घर से बाहर चला जाता है तो पत्नी अकेली रह जाती है। नैयर लोग अधिकतर सेना में प्रविष्ट हो जाते हैं। अत वैस्टरमार्क के विचारानुसार बहुपति विवाह पत्नी को संकटमय परिस्थितियों से बचाने के लिये किया जाता है।

(३) बहुपति विवाह का प्रमुख कारण आर्थिक संकट है। दरिद्र होने के कारण भारत के खासा तथा टोडा वधू मूल्य (Bride price) देने में असमर्थ होते हैं। अतएव इन जातियों मे एक ओर तो स्त्रियों का अभाव रहता है दूसरी ओर वधू मूल्य इतना अधिक होता है कि उसे चुकाना एक मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर होता है। अतएव कुछ लोग मिलकर एक वधू का क्रय कर लेते हैं। टोडा तथा खासा जन जातियों में सब भाई मिलकर एक वधू को क्रय कर लेते हैं जो सामान्य रूप से सभी की पत्नी होती है।

(४) टोडा तथा अन्य भारतीय जनजातियों में स्त्रीलिंग शिशु हत्या बहुपति विवाह का एक प्रमुख कारण है। इन जातियों में स्त्री को बहुत कम महत्व दिया जाता है। किन्तु कुछ मानवशास्त्रियों के अनुसार स्त्रीलिंग शिशु हत्या केवल बहुपति विवाह वाले समाजों मे ही प्रचलित नहीं अपितु राजपूतों तथा अन्य जातियों म भी इस प्रकार की प्रथा पाई गई है। परन्तु एस्किमों तथा तिब्बतियों में इसका कारण स्त्रीलिंग शिशु हत्या ही है।

(५) बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने के लिये भी अनेक जातियाँ बहुपति विवाह प्रथा का प्रयोग करती हैं।

(६) भौगोलिक पृथकता के कारण उनका दूसरे समूहों से सम्पर्क नहीं होता है, अत वे एक सीमित क्षेत्र में ही विवाह करते हैं। इस सीमित क्षेत्र में जब स्त्रियाँ कम होती हैं और बाहर से सम्पर्क के अभाव में स्त्रियाँ आ नहीं सकतीं

तो बहुपति विवाह की आवश्यकता पड़ती है। अतएव ऐसी जनजातियों में जो भौगोलिक दृष्टि से पृथक् हैं यह प्रथा साधारण रूप से प्रचलित है।

(७) संयुक्त परिवार को शक्तिशाली बनाये रखने की इच्छा भी बहुपति विवाह, विशेषकर भ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह (Fraternal Polyandry), का प्रमुख कारण है।

बहुपति विवाह घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, अत. अब धीरे धीरे इसका लोप होता जा रहा है। इसके स्थान पर अधिकतर जनजातियों में एक विवाह (Monogamy) की प्रथा का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। लॉवी ने लिखा भी है, "वास्तव में प्रमाणित घटनायें एक हाथ की अँगुलियों पर गिनी जा सकती हैं।"[1] इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि विज्ञान की प्रगति के साथ भौगोलिक सीमायें टूट गई हैं और जातीय तथा धार्मिक प्रतिबन्ध ढीले पड़ते जा रहे हैं। अतः एक जाति में स्त्रियों की कमी होने के कारण दूसरी जाति की लड़की से शादी की जा सकती है। कन्यामूल्य को अनैतिक समझा जाने लगा है। अत. आर्थिक अभाव और विवाह के सम्बन्ध भी टूटते जा रहे हैं।

(४) यूथ अथवा समूह विवाह
(Group Marriage or Cenogamy)

समूह विवाह वह विवाह है जिसके अनुसार पुरुषों का एक समूह स्त्रियों के एक समूह से विवाह करता है, परन्तु समूह का प्रत्येक पुरुष, समूह की प्रत्येक स्त्री के साथ यौन सम्बन्ध रख सकता है। प्रायः एक समूह के भाई दूसरे समूह की बहिनों से विवाह करते हैं जिसमे सब स्त्रियाँ सब पुरुषों की सामूहिक रूप से पत्नियाँ होती हैं। समूह विवाह बहुत कम समाजों में विद्यमान है। भारत की टोडा जाति में बहुपति विवाह प्रचलित होने के कारण कभी कभी समूह विवाह भी हो जाता है। समूह विवाह अधिकतर बहुपति विवाहमय समाजों (Polyandrous Societies) में ही प्रचलित है। यह साधारण रूप से तिब्बत, सिक्किम, भूटान, लङ्का की सिंहली (Sinhalese of Ceylon) मे पाया जाता है। राइवर्स (Rivers) समूह विवाह (Cenogamy) शब्द को उचित नहीं समझता, वह इसे लिंग साम्यवाद (Sexual Communism) के नाम से पुकारना उचित समझता है। मार्गन (Morgan) ने समूह विवाह (Cenogamy) और लिंग साम्यवाद (Sexual Communism) में अन्तर किया है। उसके अनुसार लिंग साम्यवाद विवाह का प्रथम स्तर है तथा समूह विवाह उसके बाद

[1] "Indeed well authenticated cases may be counted on the fingers of one hand". R H Lowie 'Primitive Society'

का। वेस्टरमार्क ने इस तथ्य का खण्डन करते हुए लिखा है कि लिंग साम्यवाद समूह विवाह का प्रथम स्तर कभी नहीं माना जा सकता। कुछ विद्वानों का मत है कि समूह विवाह, विवाह का प्रथम स्तर है तथा अन्य सब विवाह इसी से विकसित हुये हैं, किन्तु इसके विपरीत कुछ समाजशास्त्री यह नहीं मानते कि समूह विवाह सभी आदिकालीन समाजों में रहा होगा।

रक्त सम्बन्धी विवाह (Affineal Marriages)

रक्त सम्बन्धी विवाह के अन्तर्गत वे विवाह आते हैं जो कि विवाहित युग्म के परिवारों के बीच में होते हैं। दूसरे शब्दों में इस विवाह के कारण सम्बन्धित (In Laws) दो व्यक्तियों मे विवाह होता है। इन विवाहों के दो स्वरूप हैं —

(अ) देवर या भाभी विवाह (Levirate)

जब एक स्त्री अपने देवर से विवाह कर लेती है तो उसे देवर विवाह कहते हैं। यह प्राय: सभी विद्यमान समाजों में प्रचलित है। देवर विवाह तीन प्रकार का होता है।

(i) कनिष्ठ देवर विवाह (Junior Levirate)

इसमें लघु भ्राता ही अपने भाई का उत्तराधिकारी होता है। बड़े भाई की मृत्यु के उपरान्त प्राय छोटे भाई का बड़े भाई की पत्नी के साथ विवाह हो जाता है। भारत की हिन्दू जाति में भाभी को लघु भ्राता की अर्द्ध पत्नी (Half Wife) कह कर पुकारा गया है।

(ii) ज्येष्ठ देवर विवाह (Senior Levirate)

इस विवाह के अनुसार अग्रज भ्राता ही भाई का उत्तराधिकारी होता है। देवर विवाह की ये प्रथायें प्राय. भारत की टोडा, तियान खासा, कोटा आदि जन जातियों में प्रचलित हैं। जाटों तथा अन्य निम्न श्रेणी की जातियों में भी कनिष्ठ देवर विवाह की प्रथा सर्वत्र प्रचलित है। टोडा जाति मे एक भाई के विवाह के पश्चात् अन्ततोगत्वा सभी भाई उसकी पत्नी के पति हो जाते हैं। इस प्रकार का भ्राता सम्बन्धी बहुविवाह (Fraternal Polyandry) भी एक प्रकार से देवर विवाह (Levirate) है।

(iii) पूर्वत देवर विवाह (Anticipatory Levirate)

इस विचार को ध्यान में रखते हुये कि लघुभ्राता एक दिन अवश्य अपने ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी का पति बनेगा, किन्हीं समाजों में यह प्रथा भी प्रचलित है कि ज्येष्ठ भ्राता की शादी होने के उपरान्त लघु भ्राता ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी का पति मान लिया जाता है। इस अवस्था में एक भाई दूसरे भाई की जीवित अवस्था में ही देवर विवाह का उपयोग करने का अधिकारी हो जाता है।

देवर विवाह का उद्देश्य पूर्व विवाह द्वारा सम्बद्ध परिवारों से आबद्ध रखना ही है। एक भाई की मृत्यु के पश्चात दूसरा भाई घर की देखभाल कर लेता है और ऐसी स्थिति में परिवार विघटित होने से बचता है और परिवार का रुधिर निरन्तर एक वंश से दूसरे वंश को हस्तान्तरित होता रहता है। इस प्रकार यह परिवार तथा गोत्र संगठन की रक्षा करता है।

(घ) साली विवाह (Sororate)

साली विवाह (Sororate) वह विवाह होता है जिसके अनुसार पुरुष पत्नी की भगिनी के साथ विवाह करता है। यह दो प्रकार का होता है.--

(i) सीमित साली विवाह (Restricted Sororate)

इसमें एक पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उसकी दूसरी छोटी बहिन से विवाह कर लिया जाता है। यह प्रायः सभी समाजों में प्रचलित है।

(ii) समकालिक साली विवाह (Simultaneous Sororate)

इसके अनुसार पुरुष के एक स्त्री से विवाह करने के पश्चात् उस स्त्री की अन्य भगिनियाँ गुप्तरूप से (Potentially) उस पुरुष की पत्नियाँ बन जाती हैं। इस प्रकार यह एक बहुभगिनी सम्बन्धी (Sororal Polygyny) है। साधारणतया जिस स्त्री के साथ विवाह होता है उसकी छोटी बहिनें ही पत्नियाँ बनती हैं, क्योंकि बड़ी बहिनों का विवाह पहले होता है। यह प्रथा उन जनजातियों में प्रचलित है जहाँ पत्नी मूल्य (Bride Price) और दहेज मूल्य (Dowry) अत्यधिक होता है। दहेज की कीमत अधिक होने पर पिता सब पुत्रियों की शादियों में दहेज देने में असमर्थ होता है अतः एक पुत्री की शादी में अन्य पुत्रियों को बिना विवाह ही उस पुरुष को सौंप दिया जाता है और पुरुष को एक पत्नी की मृत्यु हो जाने पर दूसरी पत्नी के विवाह में मूल्य नहीं देना पड़ता है। भारत के राजपूतों में यह साधारणतया प्रचलित है। लेकिन अविवाहित पत्नी की स्थिति (Status) विवाहित पत्नी से निम्न होती है।

जीवन साथी का चुनाव (Selection of Mate)

विवाह करने में सबसे बड़ा प्रश्न यह आता है कि जीवन साथी का चुनाव किन लोगों में से करना होगा, यह कठिन समस्या होती है। इनके कुछ दायरों पर अब हम प्रकाश डालेंगे।

रक्त सम्बन्धी विवाह (Consanguine Marriage)

रक्त सम्बन्धी विवाह वह विवाह पद्धति है जिसके अनुसार जीवन साथी का चुनाव निकट रक्त सम्बन्धियों में से ही करना पड़ता है।

पूर्वी अफ्रीका की कुछ आदिम जातियों मे पुरुष अपनी माताओं और बहिनों के साथ विवाह करते हैं। मिश्र के शाही परिवारों मे रक्त शुद्ध रखने के दृष्टिकोण से ऐसे विवाह करते हैं। हिन्दू देवता यामा और यामी, जो भाई बहिन थे, ने विवाह किया था। नाइजीरिया के शाही परिवारों में भी ऐसा होता है। त्रिपुरा के राजाओं मे भी यह प्रथा पाई जाती है।

अन्तर्विवाह (Endogamy)

अन्तर्विवाह वह विवाह है जिसके अनुसार एक व्यक्ति अपने समूह के अन्दर ही विवाह कर सकता है। यह समूह विभिन्न व्यक्तियों के लिये विभिन्न हो सकते हैं। फोलसम (Folsom) ने इसकी परिभाषा निम्न शब्दों मे की है, "अन्तर्विवाह वह नियम है जिसके अनुसार एक व्यक्ति को अपनी ही जाति या समूह मे विवाह करना पड़ेगा। हालाँकि निकट के रक्त सम्बन्धियों से विवाह की अनुमति नहीं होती है।"[1]

अन्तर्विवाह (Endogamy) और वहिर्विवाह (Exogamy) सापेक्ष शब्द हैं। वही एक दृष्टिकोण से अन्तर्विवाह है तो दूसरे दृष्टिकोण से वहिर्विवाह। हिन्दुओं के जाति अन्तर्विवाह को लीजिये। यह उपजाति वहिर्विवाह (Sub-caste Exogamy) हुआ क्योंकि उपजाति समूह के बाहर विवाह किया जाता है, परन्तु जब प्रजाति (Race) राष्ट्र (Nation) इत्यादि की दृष्टि से देखते हैं तो यह अन्तर्विवाह है। अत: अन्तर्विवाह (Endogamy) दो रेखाओं के बीच विवाह करने की अनुमति प्रदान करता है। यह ऐसी सीमाओं का निर्धारण करता है कि अमुक समूह के बाहर और अमुक समूह के अन्दर विवाह होना चाहिये।

अन्तर्विवाह के प्रकार (Forms of Endogamy)

(i) विभागीय तथा वन्य जाति अन्तर्विवाह

यह वह अन्तर्विवाह है जिसके अनुसार वन्य जाति के बाहर कोई भी स्त्री या पुरुष विवाह नहीं कर सकता।

(ii) वर्ग अन्तर्विवाह (Class Endogamy)

इसके अनुसार विवाह वर्ग के अन्दर ही होना चाहिये।

---

[1] "Endogamy is the rule that one must marry within one's own caste or other group However, it seldom permits marriage of close kin" Folsom, J K 'The Family and Democratic Society' Routledge and Kegan Paul Ltd, London, p 64

(iii) जाति अन्तर्विवाह (Caste Endogamy)

इसके अनुसार जाति के बाहर विवाह नहीं किया जा सकता। जैसे भारत में खत्री तथा अन्य जातियाँ।

(iv) उपजाति अन्तर्विवाह (Sub caste Endogamy)

भारत में विवाह न केवल एक जाति में होते हैं बल्कि उनकी सीमा उपजाति तक रहती है। डा० श्रीनिवास ने लिखा है, "जाति से मेरा अभिप्राय वेदों के अनुसार जातियों से नहीं है परन्तु उपजाति से है जो कि अन्तर्विवाह की वास्तविक इकाई है।"[1]

(v) प्रजाति अन्तर्विवाह (Race Endogamy)

इस नियम के अनुसार एक प्रजाति में ही विवाह किया जा सकता है। जैसे श्वेत प्रजाति (White race) के व्यक्ति केवल अपनी प्रजाति में ही विवाह करते हैं। वेदा (Veddahs) प्रजाति के व्यक्ति कभी भी अपनी प्रजाति के बाहर विवाह नहीं करते। एक प्रजाति के अन्तर्गत भी कई संस्कृतियों के व्यक्ति रहते हैं, कई बार वे आपस में विवाह कर लेते हैं।

(vi) राष्ट्रीय अन्तर्विवाह (National Endogamy)

इस प्रथा के अनुसार एक राष्ट्र के व्यक्ति ही आपस में विवाह कर सकते हैं। व्यवहारिक रूप में संसार के समस्त राज्य ऐसा ही करते हैं। एस्कीमो (Eskimos) कभी भी अपने राष्ट्र के बाहर विवाह नहीं करते।

अन्तर्विवाह के कारण (Causes of Endogamy)

(i) पृथकता की नीति।
(ii) भूमि तथा अन्य सम्पत्ति समूह में ही रखने का उद्देश्य।
(iii) व्यवसाय के रहस्य को गुप्त रखने के लिये।
(iv) यह विचार कि संख्या में शक्ति होती है और एक स्त्री के समूह के बाहर जाने का अर्थ यह होता है कि कई लोगों को समूह ने खो दिया।
(v) राष्ट्र की एकता बनाये रखने के लिये।
(vi) भौगोलिक पृथकता से विवश होकर।
(vii) धर्म की भिन्नता के कारण।

अन्तर्विवाह के लाभ (Merits of Endogamy)

(i) समूह में एकता की भावना तीव्र रहती है।

---

[1] "By caste I do not mean the Vedic caste but the sub caste which is the real unit of endogamy" Dr M N Srinivas, 'Marriage and Family in Mysore.'

(ii) समूह के व्यवसायिक रहस्य एव अन्य सम्पत्ति दूसरों को मालूम नहीं हो सकती ।

(iii) स्त्रियाँ सुखी रहती हैं ।

अन्तर्विवाह की हानियाँ (Demerits of Endogamy)

(i) राष्ट्रीय एकता में बाधा पहुँचाती है ।

(ii) दूसरे समूह के प्रति द्वेष और ईर्ष्या को जन्म देती है ।

(iii) जीवन साथियों के चुनाव का क्षेत्र सीमित रहता है ।

(iv) आधुनिक युग में इस प्रकार के सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है ।

बहिर्विवाह (Exogamy)

बहिर्विवाह वह प्रथा है जिसके अनुसार एक व्यक्ति को अपने समूह के बाहर ही विवाह करना होता है ।

बहिर्विवाह के लाभ (Merits of Exogamy)

(i) बहिर्विवाह (Exogamy), प्राणीशास्त्रीय (Biological) दृष्टिकोण से अच्छा रहता है । सन्तानें सुन्दर हृष्ट पुष्ट एव बुद्धिमान होती हैं ।

(ii) बहिर्विवाह प्रगति का चिह्न है । समनर (Sumner) और कैलर (Keller) ने लिखा है कि ' अन्तर्विवाह रूढ़िवादी है, जब कि बहिर्विवाह प्रगतिवादी है । "[1]

(iii) विभिन्न संस्कृतियाँ सम्पर्क में आती हैं ।

(iv) विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास होता है ।

(v) राजनैतिक दृष्टिकोण से भी हितकर है ।

अनुलोमा (Hypergamy)

अनुलोमा विवाह वह प्रथा है जिसके अनुसार पति, पत्नी के समूह से ऊँचे समूह या कुल का होना चाहिए । साधारणतया लड़की को ऊँचे ही कुल में दिया जाता है । ऊचे होने का माप दण्ड कोई एक निश्चित नहीं है । कहीं पर धन है कहीं पर समाज में स्थिति और कहीं पर जाति इत्यादि हैं । भारतवर्ष में इस प्रथा का बड़ा अनुसरण किया जाता है । कान्यकुब्जों में बिसवा मर्यादा के आधार पर विवाह होता है । हर एक, अपनी लड़की का विवाह अपने स ऊचे बिस्वे के लड़कों स करना चाहता है ।

---

[1] "Endogamy is conservative while Exogamy is progressive" Sumner and Keller, 'The Science of Society,' Vol III, p 1618

प्रतिलोमा (Hypogamy)

प्रतिलोमा विवाह की वह प्रथा है जिसमें पति, पत्नी के समूह से नीचे समूह का होता है। इस प्रकार का विवाह साधारणतया नहीं किया जाता है।

जीवन साथी प्राप्त करने की पद्धतियाँ (Methods of Acquiring Mates)

इस अध्याय में हमने विचार किया कि किस प्रकार से विवाह के स्वरूप परिवर्तित होते रहते हैं। हमने इस पर भी प्रकाश डाला है कि विवाह कितने लोगों के साथ किया जा सकता है और जीवन साथी कौन होना चाहिये। अब हम विवाह की विधियों या जीवन साथी को प्राप्त करने की पद्धतियों पर विचार करेंगे। प्रत्येक समाज में विवाह करने की विशिष्ट पद्धतियाँ होती हैं। जिनके अनुसार स्त्री पुरुष विवाह करते हैं। ये पद्धतियाँ समाज द्वारा मान्य होती हैं। यदि समाज किसी पद्धति को मान्यता नहीं दे तो उसे विवाह नहीं कहा जा सकता। समाज द्वारा स्वीकृत ये पद्धतियाँ भिन्न भिन्न समाजों में भिन्न भिन्न हैं। प्राचीन काल में अधिकतर अपहरण पत्नीक्रय परीक्षा, यज्ञों आदि में जीतकर कई तरीकों से पत्नियाँ प्राप्त की जाती थीं और अनेकों आदिम जातियों और अविकसित समाजों में आज भी ये पद्धतियाँ औपचारिकता आदि के रूप में प्रचलित हैं। साधारणतया विवाह की निम्नलिखित पद्धतियाँ हैं —

(१) अपहरण विवाह (Marriage by Capture)
(२) विनिमय विवाह (Marriage by Exchange)
(३) पत्नीक्रय विवाह (Marriage by Purchase)
(४) पलायन विवाह (Marriage by Elopment)
(५) सेवा द्वारा विवाह (Marriage by Service)
(६) हठागम विवाह (Marriage by Intrusion)
(७) परीक्षा विवाह (Marriage by Trial)
(८) सम्मति पूर्वक विवाह (Marriage by Mutual Consent)
(९) परीक्ष्य विवाह (Probationary Marriage)

ये सब पद्धतियाँ विश्व की विभिन्न जातियों और समाजों में पाई जाती हैं। प्रत्येक जाति में विवाह करने की अपनी ही एक पद्धति है। जिसके अनुसार ही पुरुष अथवा स्त्री को विवाह करना पड़ता है। यहाँ पर हम प्रत्येक पद्धति पर विस्तार से प्रकाश डालेंगे।

(१) अपहरण विवाह (Marriage by Capture)

अपहरण विवाह पद्धति में पुरुष स्त्री को बलपूर्वक छीन कर ले जाता है।

पुरुष यदि दूसरे समूह की स्त्री को बलपूर्वक छीन कर लाने में सफल हो जाता है तो समाज द्वारा उन दोनों को विवाहित समझ लिया जाता है। असफल होने पर अविवाहित ही रहता है और उसे पहले की भाँति फिर से इस कार्य की सफलता के लिये प्रयत्न करने पड़ते हैं। इस विवाह में एक प्रकार से युद्ध को काम में लाया जाता है। अपहरण विवाह का जन्म आदि काल में अगम्यागमन (Incest) के प्रति घृणा, स्त्री भ्रूण हत्या और दूर के समूहों के विवाह करने की प्रवृत्ति से हुआ। अपहरण द्वारा विवाह की प्रथा सर्व प्रचलित प्रथा थी। मेलानेसिया (Melanesia), न्यूगायना (New Guinea) की पापुआना (Papuans) जाति, फिजियानों (Fijians) और आस्ट्रेलिया में यह अत्यधिक प्रचलित थी। बाइबिल (Bible) में भी इसी प्रकार के कई उदाहरण मिलते हैं, जिनके अनुसार बेंजामिन (Benjamines) जाति के लोग जाबेश गिल्ड (Jabesh Gilead) के निवासियों की चार सौ कुमारी लड़कियों को भगाकर ले गये, जब कि वे उत्सव के अवसर पर नाच गाना कर रहे थे। इसी प्रकार की प्रथाए रोम और प्राचीन ग्रीस में भी प्रचलित थीं। भारतवर्ष में यह प्रथा बहुत प्राचीन काल में प्रचलित थी। मनुस्मृति में यह स्पष्ट वर्जित है कि इस प्रथा के अनुसार एक स्त्री का उसके घर से जबरदस्ती अपहरण होता है, जब कि वह चिल्लाती है, रोती है, उसके सम्बन्धियों की हत्या कर दी गई है, या उन्हें घायल कर दिया गया है और उनके मकानों को तोड़ दिया गया है।[1] आजकल भारत में यह पद्धति छोटे नागपुर के हो (Ho) मुन्डा, भूमिजा, सथाल आदि में साधारणतया प्रचलित है। खेरिया तथा बिहोर जाति में बलपूर्वक छीनकर विवाह की अपेक्षा सस्कार पूर्वक बल विवाह (Ceremonial Capture) प्रचलित है, जिसके अनुसार वर त्योहार के दिन कुंकुम लगा देता है। आसाम में बलपूर्वक विवाह युद्ध के साथ और मध्य भारत में शान्ति पूर्वक होते हैं।

(२) पत्नीक्रय विवाह (Marriage by Purchase)

अपहरण विवाह के बाद विवाह के इतिहास में विकास का द्वितीय चरण पत्नीक्रय विवाह का आता है, जिसके अनुसार पिता को मूल्य देकर उसकी लड़की से विवाह किया जाता है। पत्नीक्रय विवाह को अपहरण विवाह के प्रति घृणा का परिणाम कहा जा सकता है। पोमेराय ने लिखा है, [2] "सभ्यता के अग्रिम

---

[1] मनुस्मृति ३।३३। पृष्ठ २६

[2] "With the further development of civilization, the custom fell in to disfavour and was gradually succeeded by marriage by purchase" Ralph De Pomerai 'Marriage Past, Present and Future', (1930), p 69.

विकास के साथ यह प्रथा (अपहरण विवाह) अनादर की शिकारी बनी और यथाक्रम से धीरे धीरे पत्नीक्रय विवाह के रूप में परिणित हुई।"[13] हर्बर्ट स्पेन्सर और कोईनिसवाटॅर (Koenigswatter) का मत है कि अपहरण विवाह से पत्नीक्रय विवाह तक के बीच के परिवर्तन काल में अपहरणकर्त्ता अपहृत पत्नी के पिता अथवा सम्बन्धियों को, उनके प्रतिशोध और प्रतिहिंसात्मक क्रोध से बचने के लिये कुछ धन क्षति पूर्ति शतक के रूप में भेंट किया करता था, जिसने धीरे-धीरे प्रथा का रूप ले लिया और पत्नीमूल्य (Bride Price) कहलाने लगा। यह प्रथा टर्की, परसिया, भारत, न्यूगायना (New Guninea) की पापुआ जाति और मोरिस (Maoris) तथा बॉटू (Bantu) जातियों में अत्यधिक रूप में प्रचलित थी। टर्की और पर्सिया में वर को वधू के घर, वधू मूल्य (Bride Price) लेकर जाना होता था अन्यथा उसे निराश लौटना पड़ता था अथवा अपहरण से विवाह करना होता था। अरब के देशों में प्राय. पत्नी मूल्य ऊँटों और घोड़ों के रूप में दिया जाता है। पत्नीक्रय द्वारा विवाह भारत में अति व्यापक है। इसमें वधू का मूल्य देकर वर उसे अपने घर ले जाता है। 'वधूमूल्य' वस्तुओं के रूप में अथवा रोकड़ (Cash) में ही दिया जाता है। वधू का मूल्य उस वन्य जाति की आर्थिक स्थिति पर तथा वधू के रूप तथा सौन्दर्य पर निर्भर करता है। नागा जाति एवम् मध्य प्रदेश की जातियों में वधू मूल्य इतना अधिक है कि उसे देना एक व्यक्ति की स्थिति के बाहर की वस्तु है। इसी कारण यहाँ कई स्त्री एवम् पुरुष अविवाहित ही रह जाते हैं।

(३) विनमय विवाह (Marriage by Exchange)

अधिक पत्नी मूल्य से बचने के लिये कुछ वन्य जातियों में स्त्रियों के आदान प्रदान द्वारा ही विवाह प्रचलित है। इस पद्धति के अनुसार पति अपनी बहन अथवा किसी अन्य सम्बन्धित स्त्री का पत्नी के परिवार के किसी पुरुष के साथ विवाह कर देता है। इस प्रथा के अनुसार पत्नी के बदले में दूसरी पत्नी देनी पड़ती है। यह प्रथा लगभग सभी वन्य जातियों और अप्रतिष्ठित लोगों मे, जिनको बिना बदले स्त्रियाँ मिलना असम्भव है, प्रचलित है। भारत की खासा जाति में इस पर निषेध है। पश्चिमी पंजाब और राजस्थान की कुछ जातियों में इस प्रकार के विवाह अवश्य होते हैं, लेकिन यह एक घृणित प्रथा समझी जाती है। आस्ट्रेलिया में बहिन देकर पत्नी लेने की प्रथा बहुत साधारण है। जावा, सुमात्रा आदि द्वीप-समूहों में भी इस प्रकार के विवाह होते हैं, लेकिन बहुत न्यून मात्रा में।

(४) पलायन विवाह (Marriage by Elopement)

विवाह की एक पद्धति पलायन विवाह भी है, जो आदिवासियों में अत्यन्त

व्यापक है। इस पद्धति के अनुसार 'वर' वधू को गुप्त रूप से भगाकर ले जाता है और अपनी पत्नी बना लेता है। जब स्त्री और पुरुष दोनों में प्रेम होता है और माता-पिता यदि उनके विवाह को अस्वीकार करते हैं तो 'वर वधू' कुछ महीनों तक गुप्त रूप से जीवन व्यतीत करते हैं। तत्पश्चात् वे अपने गाँव मे लौट आते हैं। समाज उनके विवाह को मूक स्वीकृति प्रदान कर देता है। कहीं-कहीं पर वधू मूल्य के अधिक भार मे बचने के लिये यह प्रथा प्रचलित है। 'वधू मूल्य' अधिक होने के कारण वर उसे देने मे असमर्थ होता है, अत वह वधू को भगाकर ले जाता है।

(५) सेवा द्वारा विवाह (Marriage by Service)

आदि निवासियों मे पति द्वारा पत्नी के पिता की सेवा के द्वारा विवाह की पद्धति भी सर्वव्यापी है। यह प्रथा विश्व के अनेक हिस्सों में प्रचलित है। खताया माया (Mayas), हेब्रू (Hebrews), सेमिते, (Semites), साइबेरिया और भारत में बगाल के लिम्बू (Limboos), और किराती (Kirantie) जातियाँ, मीनापुर के पुरुम्स तथा रखखोल, कुकि एमोलस एनालस, पिहस और सतपूड़ा प्रदेशों में यह प्रचलित है। माया (Mayas) जाति में वर को अपने ससुर के घर दूसरा मकान बनाकर रहना पड़ता था और पाच या छ वर्ष तक उसकी सेवायें करनी पड़ती थीं। बाइबिल में लिखे कुछ प्रसगों से स्पष्ट होता है कि जेकब (Jacob) नामक पुरुष ने पत्नी प्राप्त करने के लिये लेबन (Labon) की सात वर्ष तक सेवा की थी और विवाह के उपरान्त भी उसे अगले सात वर्ष तक फिर सेवा करनी पड़ी। सेवा विवाह कुछ जातियों मे पत्नी मूल्य देने में असमर्थता के कारण भी होता है। उत्तरी भारत तथा सतपूड़ा के प्रदेश में प्रायः यह प्रथा प्रचलित है कि जब ससुर के कोई पुत्र नहीं होता तो वह दामाद को ही अपना उत्तराधिकारी मान लेता है। गोंड और बैगा जातियों में भी पुरुष जो कि 'लमानिया तथा लेयसेना' या 'गहरिया' कहलाता है, एक निश्चित समय तक श्वसुर के घर रहने के पश्चात् विवाह कर लेता है। जालसर खासा के यहाँ नैपाल के गोरखा पुरुष खेती का कार्य करते हैं और इसके बदले में जानसर खासा अपनी पुत्रियों का विवाह उनके साथ कर देते हैं।

(६) धृष्टागम विवाह (*Marriage by Intrusion*)

बलपूर्वक विवाह पद्धति के विपरीत यदि कोई स्त्री किसी पुरुष से विवाह करना चाहती है तो वह उसके घर धरना देकर बैठ जाती है। प्रेमी युवक एवम् युवती में जब सस्कार पूर्ण विवाह होने में कठिनाई होती हो अथवा जब प्रेमी विवाह करने से अस्वीकार करे, उस समय वधू उसके घर मे घुस कर बैठ जाती

है। घर की माता उसे बाहर निकालने की भरसक चेष्टा करती है। यदि माता उसे निकालने में असफल होती है अथवा लड़की भीतर ही रह जाने में समर्थ हो जाती है तो वर को वधू से विवाह करना पड़ता है। भारत में बिहार तथा हो (Ho) वन्य जाति में यह प्रथा अत्यन्त व्यापक है। हो जाती में इस पद्धति को 'अनादर' जिसका तात्पर्य बलपूर्वक है, कहते हैं। लड़की के साथ इस समय बहुत बुरा व्यवहार किया जाता है। उसे मारा जाता है, सताया जाता है, किन्तु इसके पश्चात् भी यदि युवती नहीं जाती तो पुरुष को उससे विवाह करना अनिवार्य हो जाता है।

(७) परीक्षा विवाह (Marriage by Trial)

यह विवाह भारतीय वन्य जातियों में प्रचलित है। इसके अनुसार पुरुष की शक्ति की परीक्षा ली जाती है। भील जाति में घर को विवाह के लिये अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना पड़ता है। उनके अनुसार शारीरिक बल सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है। अतः परीक्षा विवाह में यदि पुरुष अपनी शक्ति को प्रमाणित करने में सफल हो जाता है तो उसका विवाह कर दिया जाता है अन्यथा उसको अविवाहित रहना पड़ता है। शक्ति प्रदर्शन की प्रथा भी अनोखी होती है। होली के त्यौहार के समय एक ऊँचे पेड़ के सिरे पर नारियल तथा गुड़ बाँध दिया जाता है। पेड़ के नीचे कुँवारी युवतियाँ एक गोलाकार घेरा बनाकर खड़ी हो जाती हैं। कुँवारा युवक उस गोल घेरे को तोड़ कर पेड़ पर चढ़ने की चेष्टा करता है। यदि इस प्रयत्न में युवक सफल हो जाता है तो उसे यह अधिकार होता है कि वह उस गोले में खड़ी युवतियों में से किसी भी मनपसन्द युवती से विवाह कर सके। युवतियाँ युवक को पेड़ पर चढ़ने से रोकती हैं और अनेकों प्रकार से उसे नीचे गिराने की चेष्टा करती हैं और युवक के प्रयत्नों में रोड़े अटकाती हैं। यदि युवक असफल रहता है तो वह अविवाहित ही रहता है और सफल होने पर किसी भी एक युवती से विवाह कर सकता है।

सम्मति पूर्वक विवाह (Marriage by Mutual Consent)

सम्मति पूर्वक विवाह की पद्धति वर्तमान तथा आदि दोनों ही समाजों में प्रचलित है। इस पद्धति के अनुसार पति और पत्नी जब अपनी सम्मति विवाह के लिये दे देते हैं तो विवाह हो जाता है। सम्मति पूर्वक विवाह पद्धति का विकास स्त्री और पुरुष की स्वछन्द और स्वतन्त्र भावनाओं के साथ हुआ। प्राचीन समाजों में भी आस्ट्रेलिया को छोड़कर सभी जगह प्राय लड़के लड़की की सम्मति ली जाती थी, लेकिन अधिकारा विवाह माता पिता की इच्छा पर ही निर्भर करता था। चीन के विवाह विधान में तो अभी बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक विवाह

सम्बन्धी समस्त अधिकार माता पिता के हाथ थे चाहे वर-वधू की आयु वृद्ध भी हो। इसी प्रकार रोम ग्रीक भारतीय और यूरोपीय सभ्यताओं में भी विवाह अधिकार माता पिता की इच्छा पर ही आधारित थे। भारत के हिन्दू समाज में तो आज भी युवक युवती की स्वतन्त्र इच्छा से किया हुआ विवाह एक कटु आलोचना का विषय बन जाता है। लेकिन बढ़ती हुई जनतान्त्रिक भावनाओं के साथ शिक्षा का विकास का स्वतन्त्र और युवक-युवती की स्वहमती सम्मति की प्रवाह गंगा के कगार तक पहुँचने में सफल हुआ है। आज के युवक युवतियाँ यह नहीं चाहते कि माता पिता के स्वार्थ के कारण अनुपयुक्त और बनने विवाह करके उनके जीवन को नरक बनाया जाय। पश्चिमी सभ्यता के सहयोग से भारत भी इस दिशा में शीघ्र प्रगति कर रहा है।

(९) परीक्षा विवाह (Probationary Marriage)

इस विवाह पद्धति के अनुसार युवक युवती को कुछ समय के लिये साथ साथ रहने दिया जाता है। इस काल में वे एक दूसरे का प्रकृति और स्वभाव से परिचित हो जाते हैं। यदि उनके स्वभाव और व्यवहार प्रतिमान एक दूसरे के अनुकूल पड़ते हों तो वे आपस में विवाह कर लेते हैं। यदि विवाह नहीं होता है तो युवक को युवती के माता पिता को कुछ भत्ता देना पड़ता है। यह प्रथा भारत की कुकी वन्य जाति में प्रचलित है।

प्रश्न

१ विवाह के विभिन्न प्रकार क्या हैं ?
   (What are the various form of marriage ?)

२ निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिये —
   (अ) एक विवाह (ब) बहुविवाह (स) बहुपत्नी विवाह (प) बहुपति विवाह (य) साली विवाह एवम् साली विवाह (न) अनुलोमा तथा प्रतिलोमा।
   Write note on the following —
   (a) Monogamy, (b) Polygamy, (c) Polygyny (d) Polyandry (e) Levirate and Sororate (f) Hypergamy and Hypogamy

३ अन्तर्विवाह और बहिर्विवाह सापेक्ष शब्द हैं व्याख्या कीजिये।
   (Endogamy and Exogamy are relative term Discuss)

४ निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —
   (अ) अन्तर्विवाह

(ब) अन्तर्विवाह, बहिर्विवाह तथा अनुलोमा

(स) प्रतिलोमा

Write short notes on the following:—

(a) Endogamy (Agra, 1951)

(b) Exogamy, Endogamy and Hypergamy. (Agra 1953 and 1956)

(c) Pratiloma marriage (Patna, 1958)

SELECTED READINGS

1 Sumner and Keller, 'The Science of Society' Vol. III.

2. Folsom, J K. 'The Family and Democratic Society. chapter III and IV.

अध्याय ५

परिवार : पारिवारिक विघटन

(Family Family Disorganisation)

पारिवारिक विघटन पर विचार करने के पूर्व पारिवारिक सगठन पर विचार करना होगा क्योंकि बिना सगठन पर विचार किये हमारे लिये यह समझने में कठिनाई होगी कि किस वस्तु का नाश हो रहा है।

परिवारिक सगठन (Family Organisation)

पारिवारिक सगठन को यदि बाह्य रूप से देखें तो पुरुष और स्त्री जब तक एक घर में एक साथ रहते हैं, सगठित हैं। परन्तु यह विचार ठीक नहीं है। हम आगे चल कर देखेंगे कि इसके पूर्व कि पति पत्नी एक दूसरे से सम्बन्ध विच्छेद करते हैं पारिवारिक संगठन का अभाव दीर्घ समय से प्रारम्भ हो चुका होता है और विच्छेद उस असन्तोष एव विघटन का अन्तिम लक्षण या क्रिया है। कुछ परिवार अत्यधिक सुखी होते हैं और स्वर्ग का निर्माण अपने घरों म कर लेते हैं और कुछ परिवार दुख एवम् क्लेश का दृश्य प्रस्तुत कर नरक की याद दिलाते हैं। किसी परिवार के सगठन को नापने के लिये निम्न कारकों को उपयोग मे लाया जा सकता है। यदि ये कारक पूर्णतया पाये जाते हैं तो वह परिवार पूर्ण सगठित होता है।

(१) हितों की एकता (Unity of Interest)

परिवार में हितों की एकता होनी चाहिए। जब तक परिवार में एक दूसर के हितों को अपना हित नहीं समझा जाता उस समय तक परिवार सुख का अनुभव नहीं कर सकता। माता अपने बच्चों को सुखी देखना ही अपना हित समझती है, इसलिये *रात भर जगना, मल-मूत्र उठाना एवम् अन्य कार्य करना* उसे कष्टप्रद प्रतीत नहीं होता। पति अपनी पत्नी के मुख पर उल्लास देखना चाहता है और उसके लिये वह सब कुछ न्यौछावर करने को तत्पर रहता है। परिवार में एक दूसरे के लिये त्याग तभी हो पाता है जब कि दूसरे के हितों को अपना हित समझा जाय।

(२) व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओं की एकता
(Unity of personal ambitions)

प्रत्येक व्यक्ति की आकाक्षायें होती हैं और वह उन्हें हर मूल्य पर पूरा

करना चाहता है। परिवार में भी हर सदस्य की अपनी अपनी आकांक्षायें होती हैं परन्तु धन, समय एवम् अवसरों द्वारा एक सीमा निर्धारित कर दी जाती है और सारी आकांक्षायें इसी सीमा के अन्दर पूरी करनी होती हैं। परिवार के सदस्यों को एक दूसरे की आकांक्षाओं का आदर करना चाहिये और उनमें से जो अति आवश्यक हों उन्हें पूर्ण करना चाहिए। मान लिजिये एक माता को शृङ्गार का बड़ा शौक है और वह अधिकांश धन, इस बात की चिन्ता न करते हुए कि उसके बच्चों को अच्छी शिक्षा के लिये धनाभाव के कारण प्रबन्ध नहीं हो पाता, फिर भी व्यय कर देती है, तो यह सामाजिक विघटन का एक लक्षण है। परिवार में एक दूसरे की आकांक्षाओं का ध्यान रखते हुये सुन्दर सतुलन रखना चाहिये।

(३) उद्देश्यों की एकता (Unity of objectives)

परिवार के सदस्यों म उद्देश्यों की एकता भी होनी चाहिये। उद्देश्यों की एकता से अभिप्राय यह है कि परिवार की प्रमुख समस्याओं पर सबका मत करीब करीब एकसा होना चाहिये। यदि परिवार की प्रमुख समस्याओं पर मतैक्य नहीं होगा तो परिवार चल ही नहीं सकता। अत एक संगठित परिवार में उद्देश्यों की एकता परम आवश्यक है।

(४) परिवार के प्रति प्रेम (Love for family)

जब परिवार सगठित होता है तो सुख का केन्द्र बन जाता है। सुख का केन्द्र बनने के लिये आवश्यक है कि परिवार का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे को प्यार करे और दूसरे को देखकर प्रसन्न हो। परिवार में जब पति पग धरता है तो हर एक के मुख खिल उठते हैं। यह इस बात का द्योतक है कि परिवार में एक दूसरे के प्रति प्रेम पाया जाता है।

(५) यौन इच्छाओं की पूर्ति केवल परिवार में (Fulfilment of Sexual desires in the family)

यौन इच्छाओं की पूर्ति पति पत्नी को एक दूसरे से ही करनी चाहिये। पारिवारिक विघटन की क्रिया का अधिकांश रूप से प्रारम्भ यौन सम्बन्धों की असन्तुष्ट पूर्ति से होता है। जब तक पति पत्नी इस सम्बन्ध से सन्तुष्ट रहते हैं तो कोई भी झगड़ा प्रारम्भ नहीं होता। यौन सम्बन्ध की असन्तुष्टी पारिवारिक विघटन का मूल कारण है।

पारिवारिक विघटन (Family Disorganisation)

पारिवारिक विघटन कोई मूर्त वस्तु नहीं है बल्कि एक दशा है। पारिवारिक सम्बन्धों मे सामञ्जस्य एवम् सगठन का लोप पारिवारिक विघटन है। किसी का

भी कटु सम्बन्ध या तनाव जो कि पति पत्नी या बच्चों के बीच पाया जाता है उसे पारिवारिक विघटन कहते हैं।

पारिवारिक विघटन से हम बाह्य लक्षणों को समझते हैं। जैसे—परित्याग (Desertion), पृथक्करण (Separation), विवाह विच्छेद (Divorce) या शारीरिक प्रताड़ण (Physical Violence)। परन्तु ये बाह्य लक्षण पारिवारिक विघटन के अन्तिम लक्षण हैं। कई व्यक्ति पारिवारिक दुख और क्लेश के होते हुए भी धार्मिक विचारों के कारण साथ बने रहते हैं। कई बार पति पत्नियों में प्रेम का अत्यन्त अभाव होता है और वे किसी सम्पत्ति के कारण, सामाजिक नियमों के कारण, विवशताओं के कारण, बच्चों के हित के कारण, साथ रहते हैं। परन्तु साथ साथ रहना ही पारिवारिक संगठन का द्योतक नहीं है। अत: पारिवारिक विघटन उन लक्षणों के अभाव में पाया जाता है जिनका विवरण हम पारिवारिक संगठन में कर चुके हैं। यद्यपि आधुनिक युग में लोगों का कहना है कि पारिवारिक विघटन इतने प्रतिशत हैं और वे इस संख्या को विवाह विच्छेद की संख्या से निकालते हैं परन्तु विवाह विच्छेद की संख्या से कई गुना अधिक परिवार विघटन के चक्र में पिस रहे हैं। डासन और गेटिस (Dawson and Gettys) ने उचित ही लिखा है, "इन संख्याओं की तुलना में निस्सन्देह ही पारिवारिक विघटन अत्यधिक फैला हुआ अनुलक्षण है क्योंकि यह सांख्यिकी उन दशाओं के विषय में बताती है जहाँ पर प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है।"[1]

पारिवारिक विघटन के कारण

(i) यौन सम्बन्धों की असन्तुष्टि
(Dis-satisfaction of sexual relations)

पारिवारिक विघटन का मुख्य कारण यौन सम्बन्धों की असन्तुष्टि है। अधिकांश झगड़े यहीं से प्रारम्भ होते हैं। एक प्रकार की झुँझलाहट मस्तिष्क में भरी रहती है और पति पत्नी एक दूसरे से घृणा करने लगते हैं। यही झुँझलाहट और घृणा छोटी मोटी बातों को बढ़कर बना देती है और परिवार में द्वेष, क्लेश एवं दुख का जन्म होता है।[2]

---

[1] "Family disorganisation is no doubt a far more wide-spread phenomenon than such statistics indicate for they deal only those cases where the process is practically complete." Dawson and Gettys, 'Introduction to Society' p 266

[2] Read Exner, M J, 'The Sexual side of Marriage' G. V Hamilton, 'A Research in marriage' and writing of Havelock Ellis.

यदि पति और पत्नी इस दृष्टि से प्रसन्न हैं तो अन्य कठिनाइयाँ सरलता से सहन की जा सकती हैं। इलिस ने लिखा है, "यौन सम्बन्धी शान्ति भंग होने पर विवाह का ढाँचा ढहती हुई बालू पर खड़ा होता है।"[1]

(ii) सामाजिक मूल्यों की विभिन्नता (Different Social Values)

जब समाज में विभिन्न सामाजिक मूल्य होते हैं तो इसका फल अच्छा नहीं होता। यह पारिवारिक विघटन को भी सहायता पहुँचाता है। जब सामाजिक मूल्य विभिन्न होंगे तो परिवार के सदस्यों में भी संघर्ष होगा। माता एक विचारधारा को मूल्यवान समझती है, पिता दूसरी को और बच्चे तीसरी को। इसका प्रभाव यह होगा कि वे एकमत न हो सकेंगे। पारिवारिक संगठन के लिये मतैक्य का होना अत्यन्त आवश्यक है। बदलते हुए समाज में दो पीढ़ियों के सदस्यों के विचारों में भिन्नता पाई जाना स्वाभाविक है। पिता और माता एक ओर पुरानी विचारधारा को मूल्यवान समझते हैं, दूसरी ओर बच्चे नवीन विचारधारा के अनुयायी होते हैं। इसका फल स्पष्ट है कि दोनों की विचारधाराओं में संघर्ष होगा, और यह संघर्ष पारिवारिक विघटन को निमन्त्रण देगा।

(iii) सदस्यों की स्वार्थ की भावना

जब परिवार के सदस्यों में स्वार्थ की भावना अधिक होती है और वे एक दूसरे के हित का ध्यान नहीं रखते हैं तो पारिवारिक विघटन आरम्भ हो जाता है। परिवार में धापाधापी शुरू हो जाती है, कोई किसी की चिन्ता नहीं करता।

(iv) सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन

पारिवारिक विघटन का सामाजिक ढाँचे के परिवर्तन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अध्याय १ में सामाजिक ढाँचे पर हम प्रकाश डाल चुके हैं। सामाजिक ढाँचा समाज में व्यक्तियों की स्थिति (Status) और कार्य (Role) निश्चित करता है। शताब्दियों में परिवार का ढाँचा बन पाया है और इस ढाँचे में परिवार की प्रत्येक सदस्य की स्थिति (Status) और कार्य (Role) निश्चित हो गये हैं। समाज में भीषण परिवर्तन होते जा रहे हैं और इसका प्रभाव परिवार पर भी पड़ रहा है और पुरुष एवम् स्त्रियाँ यह निश्चित नहीं कर पाती हैं कि उनके क्या

---

[1] "With failure of sexual harmony, the marriage structure rests on shifting sands" Ellis, Havelock, 'Little Essays of Love and Virtues'

कार्य हैं। स्त्रियों का विकास होता जा रहा है और वे अपने लिये पूर्व निश्चित कार्यों से असन्तुष्ट हैं। दूसरी ओर स्त्रियों की स्वतन्त्रता बढ़ती जा रही है, परन्तु पति अपनी पूर्व स्थिति एवम् मान को धक्का नहीं पहुँचने देना चाहता है। इसका फल स्पष्ट है—पति और पत्नी का सघर्ष।

(v) सामाजिक परिवर्तन (Social Change)

सामाजिक परिवर्तन पारिवारिक विघटन में बड़ी सहायता पहुँचाता है। समाज के सम्बन्धों में सब ओर तीव्रता से परिवर्तन हो रहा है, सारी ही संस्थाओं पर इसका प्रभाव पड़ रहा है। परिवार भी इससे बच नहीं रह सका है।

(vi) औद्योगीकरण का प्रभाव (Effect of Industrialisation)

औद्योगीकरण होने के कारण परिवार के अधिकाश कार्य दूसरी समितियों ने ले लिये हैं। पति उत्पादन एव धनोपार्जन के लिये घर के बाहर मिलों और फैक्ट्रियों में जाता है, बच्चे शिक्षा प्राप्त करने विद्यालयों में जाते हैं और पत्नियाँ भी काम करने घर के बाहर जाती हैं। इसका फल यह होता है कि सब लोग एक दूसरे से अलग रहते हैं और आपस में सहयोग नहीं कर पाते। साथ-साथ रहने से जो प्रेम उत्पन्न हो सकता है उसका भी अभाव होता जाता है। इन सब कारणों से पारिवारिक विघटन को सहायता मिलती है।

(vii) भौतिकवादी एवं व्यक्तिवादी विचारधारा (Materialistic and Individualistic Philosophy)

भौतिकवादी एवम् व्यक्तिवादी विचारधारायें परिवार के सगठन के आधार के विपरीत हैं। एक ओर परिवार, एक दूसरे के लिये त्याग, प्रेम एवम् कष्ट उठाने की शिक्षा देता है तो दूसरी ओर भौतिकवादी एवम् व्यक्तिवादी विचार-धारायें केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति का उपदेश देती हैं। इन विचारधाराओं के कारण परिवार में त्याग एव परोपकार की भावना कम होती जाती है, जो कि पारिवारिक संगठन की जड़ों को निर्बल कर देती है।

(viii) विवाह के आधार में परिवर्तन (Change in the Basis of Marriage)

विवाह के आधार में प्रतिदिन परिवर्तन होता जा रहा है। पहले विवाह का आधार धार्मिक था और इस भावना से ओत प्रोत था कि विवाह एक पवित्र अटूट बन्धन है और इसे केवल मृत्यु ही तोड़ सकती है। परन्तु अब विवाह को केवल एक समझौता समझा जाता है, जिसे चाहे जब समाप्त किया जा सकता है। इसका प्रभाव यह होता है कि पति और पत्नी इसके बजाय कि एक दूसरे के अनुसार अपने को बनाए, तनिक-सी भी अरुचिकर बात हुई, विवाह विच्छेद की

तैयारी में लग जाते हैं। वास्तविक जीवन का ऐसा अनुभव है कि दो व्यक्तियों को आपस में एक दूसरे के दोषों को क्षमा करते हुए एक दूसरे के अनुसार बनना पड़ता है तभी सम्बन्ध रह सकते हैं, क्योंकि ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो दोष रहित हो केलर ने उचित ही लिखा है, 'कोई भी मानव सम्बन्ध साधारण जीवन निर्वाह के लिये, सुखपूर्ण सम्बन्ध के विषय में तो कहना ही नहीं है तब तक स्थायी नहीं रह सकता जब तक कि जो व्यक्ति उसमें भाग ले रहे हैं अपने को एक दूसरे के अनुसार उन बातों में व्यवस्थित नहीं करते जो कि उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को सीमित करते हैं।"[1]

इस प्रकार के समझौते की भावना ने पारिवारिक नींव ही हिला दी है।

(ix) रोमांस पर आधारित विवाह (Marriages Based on Romance)

रोमांस भोग विलास और विषय सुख की कामना पर आधारित है। इस आदर्श के अनुसार पति पत्नी अन्य हितों के कारण विवाह नहीं करते, बल्कि केवल प्रेम के आधार पर करते हैं। इस विचारधारा में भोग विलास एवं विषय-सुख की भावना का आधिक्य पाया जाता है। इसके कारण परिवार का आधार मजबूत नहीं रहता। आशिर्वादम् ने लिखा है "विवाह का रोमांसवादी आदर्श जो कि भोग विलास और विषय सुख की कामना पर अपने आप को आधारित करता है, परिवार को विघटन करने के लिये परवश है।"[2] इसी विचार की पुष्टि करते हुए इलियट और मेरिल ने लिखा है, 'इसलिये रोमान्सपूर्ण विवाह, विवाह विच्छेद की ओर परिचालन करता है।'[3]

विवाह का आधार पारिवारिक संगठन के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जब यह आधार ही खोखला होगा तो पारिवारिक संगठन किस वस्तु पर टिका रहेगा।

(x) दरिद्रता (Poverty)

दरिद्रता भी पारिवारिक विघटन को जन्म देती है। परिवार में जब धन की

---

[1] " ... no human relationship whatsoever is livable, not to say happy, unless those who share it are prepared to adjust themselves daily in ways that limit their personal freedom" Keller, 'Mans' Rough Road, p 393

[2] "The romantic ideal of marriage which bases itself upon lust is bound to break up the family" Asirvatham, F, 'A New Social Order,' p 317

[3] 'Romantic marriage thus lead to romantic divorce" Elliot, M A and Merrill, F E 'Social Disorganisation', p 367

कमी रहती है तो सदस्यों में तनाव बना रहता है जो कि आपसी सम्बन्धों में कटुता एव द्वेष को पैदा करता है।

(xi) विभिन्न उद्देश्य (Different interests)

जब परिवार के सदस्यों का उद्देश्य एक रहता है तो सारे सदस्य सहयोग की भावना के साथ उस उद्देश्य की पूर्ति में लगे रहते हैं। आजकल सदस्यों के विभिन्न उद्देश्य होते हैं और वे पृथक्-पृथक् उनकी पूर्ति मे लगे रहते हैं। इसका फल यह होता है कि आपस मे सहयोग न होकर स्वार्थ की भावना बढ़ जाती है।

(xii) आत्मनिर्भरता (Self dependence)

आधुनिक युग में आत्मनिर्भता बढ़ती जा रही है और परिवार के सदस्यों का एक दूसरे से कोई विशेष कार्य नहीं पड़ता है, इस कारण से वे एक दूसरे की चिन्ता नहीं करते। यह लापरवाही और असहयोग को जन्म देता है और यह तत्व पारिवारिक विघटन को उत्साहित करता है।

(xiii) प्रतिकूल परिस्थितियाँ (Unfavourable Conditions)

कई बार प्रतिकूल परिस्थितियाँ जैसे—बीमारी, नौकरी छूट जाना, आर्थिक दशा-खराब हो जाना इत्यादि भी पारिवारिक विघटन को बढ़ाते हैं।

(xiv) साँस्कृतिक पृष्ठ-भूमि में असमानता
(Different Cultural Background)

जब पती और पत्नी विभिन्न साँस्कृतिक पृष्ठ-भूमि के होते हैं तो आपस मे सघर्ष अति सरल हो जाता है क्योंकि दोनों हर वस्तु को अपनी अपनी सस्कृति के अनुसार मापते हैं और कभी भी एक मत नहीं हो पाते। पति किसी बात को अच्छी समझता है तो पत्नी उसे बुरा समझती है और किसी बात को पत्नी अच्छा मानती है तो पति को वह बात भली नहीं लगती।

(xv) व्यक्तित्व के दोष (Defects of Personality)

जब पति, पत्नी में से किसी में भी व्यक्तित्व के दोष होते हैं तो सघर्ष एव कलह प्रारम्भ हो जाती है, जिसका फल पारिवारिक विघटन होता है। व्यक्तित्व के दोष के उदाहरण मदिरा पान, चरित्रहीनता एवं अन्य मानसिक दोष हैं।

विवाह-विच्छेद (Divorce)

पारिवारिक विघटन के कारणों पर हमने विचार किया। पारिवारिक विघटन का अन्तिम फल एव सुस्पष्ट लक्ष णविवाह विच्छेद (Divorce) है। अत इस पर भी थोड़ा सा प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है।

विवाह विच्छेद वह क्रिया है जो पति और पत्नि को एक दूसरे से पृथक् होने की अनुमति प्रदान करती है। विवाह विच्छेद कोई भी स्त्री या पुरुष अपनी

इच्छा से नहीं कर सकता। इसके लिये राज्य की अनुमति आवश्यक है। कहीं कहीं पर धार्मिक संस्थाओं में भी यह अधिकार निहित होता है। विवाह विच्छेद प्राय सभी समाजों में पाया जाता है और पाया जाता रहा है, यद्यपि धार्मिक ग्रन्थ इसकी सदैव निन्दा करते रहे हैं। विवाह विच्छेद के पक्ष एवम् विपक्ष दोनों के लिये ही बड़े बड़े तर्क दिये जाते हैं। यहाँ पर हम इस प्रश्न पर अधिक प्रकाश न डालेंगे क्योंकि इसको व्यवहारिक दृष्टि से सभी समाजों ने स्वीकार किया है। ग्रीन लिखता है, 'विवाह विच्छेद को प्राय. सार्वभौमिक मान्यता प्राप्त है, यद्यपि कोई भी समाज इसे सिद्धान्त के रूप में स्वीकार नहीं करता।"[1]

विवाह विच्छेद विधि के अनुसार अधिकांश देशों में निम्न कारणों पर स्वीकार किये जाते हैं —

(i) व्यभिचार (Adultery)

(ii) द्विपत्नी विवाह या द्विपति विवाह (Bigamy) —आधुनिक युग में अधिकांश देशों ने एक विवाह प्रथा को स्वीकार किया है, इस कारण से इन देशों में जो पति या पत्नी दो विवाह कर लेते हैं, उनमें से एक को विवाह विच्छेद करने का अधिकार होता है। अधिकांश देशों में एक पति या पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह नहीं हो सकता।

(iii) क्रूरता (Cruelty) —यदि कोई पति अपनी पत्नी के साथ निर्दयतापूर्वक व्यवहार करता है तो विवाह विच्छेद हो सकता है।

(iv) मदिरापान (Drunkenness) —जो व्यक्ति मदिरापान का आदी हो और नशे में परिवार के लोगों को दुख पहुँचाता हो एवं कार्य न करता हो तो उससे विवाह-विच्छेद किया जा सकता है। कभी कभी मदिरापान करना विवाह विच्छेद का कारण नहीं माना जाता।

(v) परित्याग (Desertion) —यदि पति और पत्नी कोई भी एक दूसरे का परित्याग कर दे और वे कई वर्षों तक साथ न रहें तो विवाह-विच्छेद हो सकता है।

(vi) नपुंसकता (Impotence) —नपुंसकता या यौन सम्बन्ध करने की अयोग्यता पर विवाह-विच्छेद हो सकता है, परन्तु नपुंसकता स्थायी होनी चाहिये।

(vii) पागलपन (Insanity)।

---

[1] 'Divorce is almost universally recognized even though no society approves of it in principle" Green, 'Sociology', p 366

(viii) पालन पोषण करना (Non support) —जब पति, पत्नी की सहायता नहीं करता है तो पत्नी विवाह विच्छेद कर सकती है।

भारतवर्ष में हिन्दू विवाह अधिनियम पास हो गया है और उसमें भी विवाह विच्छेद की व्यवस्था रक्खी गई है।

प्रश्न

१ आप पारिवारिक सगठन स क्या समझते हैं ?
 (What do you understand by the term family organisation ?)
२ परिवार का प्राथमिक समूह के स्वरूप में विघटन आधुनिक सभ्यता का न टाला जा सकने वाला परिणाम है।
 (Disorganisation of the family as a primary group is an unavoidable consequence of modern civilization) Agra, 1955, Rajasthan 1958.

SELECTED READINGS

1. Mowrer, 'Disorganisation, Personal and Social,' Chapters XVII and XVIII
2 Elliott and Merrill, 'Social Disorganisation' Chapters XVI, XVIII.
3 Baber, 'Marriage and the Family' Chapters XIII and XIV

अध्याय ६

संयुक्त परिवार

(Joint Family)

सयुक्त परिवार प्रणाली, प्राथमिक जीवन से सभ्यता में प्रवेश करने का एक महत्वपूर्ण पथ है। सामाजिक आज्ञापालन के सिद्धान्त की स्थापना करके इसने सगठित तथा सयुक्त जीवन का श्री गणेश किया। इसके साथ ही यह सदैव स्मरणीय है कि इस सगठन म रक्त सम्बन्धों से सम्बन्धित मानव समूह (Human Group) ही सम्मिलित होते हैं। साथ ही साथ यह भी सर्वप्रथम स्पष्ट हो जाना आवश्यक है कि सयुक्त परिवार प्रणाली की प्रकृति मिथुनधर्मा सामाजिक व्यवस्था की ओर है।

पूर्व (East) में परिवार का यह विशिष्ट प्रकार सामान्य अवस्था के रूप म पाया जाता है। इस संयुक्त परिवार (Joint Family) अथवा अविभक्त परिवार (Undivided Family) नाम दिया गया है। सयुक्त परिवार भारतीय मनोवृत्ति का, जो समष्टि की ओर झुकी हुई है, द्योतक है। अब हम सयुक्त परिवार के अर्थ को समझने का प्रयत्न करेंगे।

सयुक्त परिवार का अर्थ (Meaning of Joint Family)

इसे व्यष्टियात्मक परिवारों का सयुक्त समूह कहा गया है। सयुक्त परिवार में कई पीढ़ियों के सदस्य, अपने पूर्णतया विस्तारित वंश के साथ एक मुखिया (जो वयोवृद्ध होता है) के नेतृत्व में रहते हैं। सयुक्त परिवार एक इकाई है जिसमें रक्त सम्बन्धों से बद्ध अथवा गोद लेने की प्रक्रिया से सम्बन्धित व्यक्ति ही सदस्य होते हैं, इससे बाहर के किसी भी अन्य व्यक्ति को समझौते आदि के द्वारा इसका सदस्य नहीं बनाया जा सकता है। "सयुक्त परिवार स हमारा अभिप्राय उस परिवार स होता है जिसमें कई पीढ़िया के सदस्य एक दूसरे के प्रति पारस्परिक कर्तव्य परायणता के बन्धन से बधे हुये रहते हैं।"* जोली (Jolly) ने उचित ही

*"By Joint Family we mean a family in which several generations live to gether within the context of mutual obligations" Consultation Findings, held at Rajpur, Dehradun 1957 in which author also had the proud privilege to participate, *Bulletin of the Christian Institute for the Study of Society*, Vol IV, No 2 Sept 1957 (Christian Institute for the Study of Society, Binnypet, Bangalore-2) p 48

लिखा है, न केवल माता पिता तथा सन्तानें भाई तथा सौतेले भाई, सामान्य सम्पत्ति पर रहते हैं बल्कि कभी कभी इसमें कई पीढ़ियो तक की सन्ताने, पूर्वज तथा समानान्तर सम्बन्धी भी सम्मिलित रहते हैं।"[1] उपरोक्त परिभाषाओं का यदि मूल्याङ्कन किया जाय तो स्पष्ट होगा कि सयुक्त परिवार की निश्चित परिभाषा करना अत्यन्त कठिन है। कुछ लोग परिवार की सयुक्त प्रकृति पारस्परिक कर्त्तव्यपरायणता (Mutual Obligations) पर आधारित करते हैं तो कुछ साथ साथ निवास (Common Residence) पर। श्रीमती कर्वे ने लिखा है, "एक सयुक्त परिवार उन व्यक्तियों का समूह है जो सामान्यतया एक भवन में रहते हैं जो एक रसोई का पका भोजन करते हैं, जो सामान्य सम्पत्ति के स्वामी होते हैं और जो सामान्य पूजा मे भाग लेते है तथा जो किसी न किसी प्रकार एक दूसरे के रक्त सम्बन्धी हैं।"[2] इन सामान्य लक्षणो से इतर विद्वानों ने कुछ और सामान्य लक्षण सयुक्त परिवार मे बताये हैं। सयुक्त परिवार की उपरोक्त परिभाषाओं मे पूर्णता प्राप्त करने की चेष्टा से अलग यदि हम सयुक्त परिवार के सामान्य लक्षणों पर विचार करें तो अधिक उपयुक्त होगा। अतः अब हम सयुक्त परिवार के महत्वपूर्ण लक्षणों पर प्रकाश डालेंगे।

(१) सामान्य निवास (Common Residence)

संयुक्त परिवार का एक प्रमुख लक्षण एक ही स्थान पर निवास करना है। सम्पूर्ण गृह, परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिये खुला रहता है।

(२) सामान्य पाकशाला (Common Kitchen)

संयुक्त परिवार का दूसरा प्रमुख लक्षण सामान्य पाकशाला है। परिवार का प्रत्येक सदस्य यहीं पर भोजन करता है।

(३) सामान्य कोष (Common Purse)

संयुक्त परिवार का तीसरा प्रमुख लक्षण सामान्य आय व्यय है। परिवार का एक सामान्य कोष होता है। परिवार के समस्त सदस्यों की आय सामान्य

---

[1] "Not only parents and children, brothers and stepbrothers live on the common property but it may sometimes include ascendants, descendants and collaterals upto many generations." Jolly 'Hindu Law and Custom', p. 168.

[2] "A joint family is a group of people who generally live under one roof. Who eat food cooked at one hearth, who hold property in common and who participate in common worship and are related to each other as some particular type of kindred." Dr I Karve 'Kinship Organisation in India,' p 10.

कोष में जमा हो जाती है तथा इसमें सम्पूर्ण परिवार का व्यय चलता है। व्यय इस पर आधारित नहीं रहता कि किसने कितनी आय की है, अपितु प्रत्येक की आवश्यकता पर आधारित रहता है। परिवार के सभी सदस्य-पुरुष चाहे वे कमाते हों या नहीं, स्त्रियाँ विवाहित, अविवाहित, विधवा इत्यादि तथा बच्चे परिवार में *उपलब्ध सभी प्रकार की सुख सुविधाओं के उपयोग के समान अधिकारी होते हैं।* संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार (According to his Needs) प्राप्त होता है तथा यह उसकी आय पर आधारित नहीं होता। व्यक्ति द्वारा प्रदत्त सहयोग की तुलना में मिलने वाली सुविधाओं की मात्रा की इस उदार व्यवस्था के लिये अत्यधिक सहनशीलता, प्रेम, सहानुभूति एव अनुकूलन की आवश्यकता होती है। सामर्थ्य के अनुसार सहयोग करना या देना एवं आवश्यकतानुसार लेना, के सिद्धान्त, पर संयुक्त परिवार का अस्तित्व टिका हुआ है। सयुक्त परिवार में सम्पत्ति परिवार की होती है, न कि एक व्यक्ति की। चन्द्रशेखर ने उचित ही लिखा है, "संक्षेप में, सयुक्त परिवार केवल उत्पादन के साधनों का सामान्य स्वामित्व तथा श्रम के प्रतिफल का सामान्य उपयोग है।" *

(४) सामान्य पूजा तथा धर्म कर्म (Common Worship)

संयुक्त परिवार का एक आवश्यक महत्वपूर्ण लक्षण सामान्य पूजा तथा धर्म कर्म है। सामान्य पितृ पूजा के कारण सम्बन्धी एक दूसरे से बधे रहते हैं। प्राचीन काल में धर्म का एक विशेष रूप *पितरों या पूर्वजों की पूजा* (Ancestor Worship) थी। पितृ पूजा परिवार की संस्था को कई प्रकार से प्रभावित करती है। इसे पारिवारिक जन सामूहिक रूप से करते हैं, उनकी पूजा का स्थान वही होता है जो उनके पूर्वजों का था। इस स्थान के साथ एक पवित्रता का सम्बन्ध जुड़ जाता है। श्री राधाविनोद पाल ने उचित ही लिखा है, "धार्मिक विधियों का प्रारम्भिक रूप मृत व्यक्तियों की पूजा थी। वंशजों का यह कर्तव्य था कि वे उस पूजा को जारी रखें। अत इससे पूर्ण रूप से न सही, आंशिक रूप से ही परिवार के संरक्षण को सर्वत्र बड़ा महत्व मिला। इसीलिये हिन्दू यूनानी और रोमन कनूनों में पुरानी सीमाओं (पूर्वजों द्वारा बनाई पारिवारिक भूसम्पत्ति

---

* "In a word, the joint family is simply the common ownership of the means of production and the common enjoyment of fruits of labour." Chandrasekher 'The Family Pattern in Ind a,' an article in the 'Illustrated Weekly of India' Nov 2 1918 P. 9.

की) के उल्लंघन के लिये कठोर दण्ड नियत किये गये थे। प्रारम्भिक युगों के लोगों ने परिवार तथा भूमि में एक रहस्यमय सम्बन्ध की कल्पना की थी। परिवार के सदस्यों के पितरों के प्रति धर्म पालन के कुछ कर्त्तव्य होते थे। वे उन कर्त्तव्यों से (पारिवारिक) भूमि और यज्ञ वेदी से जुड़े रहते थे। जैसे यज्ञ वेदी भूमि से संयुक्त रहती थी, उसी प्रकार परिवार भूमि के साथ बंधा रहता था।"* दैनिक पूजा, त्योहारों के अवसर पर पूजा संस्कार तथा श्रद्धा इत्यादि परिवार के सदस्यों को एक दूसरे से बाँधे रहते हैं।

ये संयुक्त परिवार के प्रमुख लक्षण हैं। इनके फलस्वरूप संयुक्त जीवन व्यतीत करने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। ऋग्वेद मे संयुक्त परिवार के मर्म को इन शब्दों में समझाया गया है, "मनुष्यों को एक साथ चलना चाहिये, एक साथ बोलना चाहिये और एक दूसरे के मन को अच्छी तरह समझना चाहिये।"*

संयुक्त परिवार के उपर्युक्त समस्त लक्षण एक प्रकार से भौतिक हैं तथा इन्हें हम संयुक्त परिवार का शरीर कह सकते हैं। परन्तु यह स्मरणीय है कि यदि हम संयुक्त परिवार की धारणा (Concept of Joint Family) को सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो स्पष्ट होगा कि यह आवश्यक नहीं है कि जब ये सब लक्षण उपस्थित हों, तभी परिवार संयुक्त कहलावेगा। वास्तव मे संयुक्त परिवार की आत्मा पारस्परिक कर्त्तव्य परायणता (Mutual Obligation) है। जब तक व्यक्ति इस सूत्र में बँधे हैं तब तक वे संयुक्त परिवार के सदस्य हैं। इसका आधार न केवल सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक है अपितु मनोवैज्ञानिक भी है। भावना संयुक्त परिवार की प्रमुख आधार है तथा पारस्परिक कर्तव्य परायणता की जननी है। आधुनिक युग मे यद्यपि संयुक्त परिवार का भौतिक शरीर नष्ट हो रहा है तथापि उसकी आत्मा अभी भी अमर है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया होगा कि भावना एवं पारस्परिक कर्त्तव्य परायणता संयुक्त परिवार के प्रमुख तत्व एवं लक्षण हैं। डाक्टर आई० पी० देसाई के अनुसार किसी परिवार के प्रकार का निश्चय उस परिवार के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध पर आधारित है। एक व्यक्ति भले ही अपनी पत्नी और बच्चों सहित अलग रहता हो, पृथक् भोजन बनाता हो तथा उसकी आय के साधन भी पृथक् हों एवम् उसकी सम्पत्ति पर केवल उसका ही अधिकार हो, इस पर भी यदि वह अपने विस्तृत परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति उन कर्त्तव्यों को निभाता है जो कि एक संयुक्त परिवार के सदस्य के लिए आवश्यक है तो उसका परिवार एकाकी परिवार (Nuclear

*Radhavinod Pal Law of Primogeniture, P 45

*"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।" ऋग्वेद १० । १९१–१९२ ।

Family) नहीं माना जावेगा। इसे संयुक्त परिवार का आधुनिक संस्करण भी कहा जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि संयुक्त परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक ही हो। डाक्टर देसाई ने इस पर इन शब्दों में प्रकाश डाला है, "स्पष्टतः संयुक्त परिवार से एक बड़ा परिवार समझा जाता है। यह कहना आवश्यक नहीं है कि यह एक भ्रान्तिमूलक धारणा है।"* डाक्टर देसाई के अनुसार संयुक्त परिवार का प्रकार सामान्य निवास (Co-Residence) सामान्य पाकशाला या समूह के सदस्यों की संख्या के आधार पर आधारित नहीं है। उनके अनुसार यह नातेदारी (Kinship), पीढ़ियों की संख्या (Generation Depth), सम्पत्ति (Property), आय (Income) तथा पारस्परिक सहयोग (Mutual Co operation) पर आधारित है। संयुक्त परिवार की परिभाषा करते हुए उन्होंने लिखा है, ' हम, उस गृह को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें एकाकी परिवार से अधिक पीढ़ियों के सदस्य (अर्थात् तीन या अधिक पीढ़ियों के) रहते हों तथा उसके सदस्य एक दूसरे से सम्पत्ति, आय तथा पारस्परिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के द्वारा सम्बन्धित हों।"**

संयुक्त परिवार व्यवस्था की उत्पत्ति

(The Origin of the Joint Family System)

समाजशास्त्रियों तथा अर्थशास्त्रियों ने संयुक्त परिवार व्यवस्था की उपस्थिति पाषाण युग से आधुनिक सभ्यता के युग तक निरन्तर बतलाई है। अवश्य औद्योगिक युग में संयुक्त परिवार व्यवस्था की धारणा तथा स्थिति में ह्रास आया। विद्वानों का मत है कि यह व्यवस्था केवल कृषि उद्योग क्षेत्र मे ही चल सकती है। इससे यह स्पष्ट होता है, कि जैसे ही मानव ने मिट्टी खोदना प्रारम्भ किया उसी समय से संयुक्त परिवार व्यवस्था का भी प्रारम्भ समझना चाहिये। यहीं पर हमें परिवार के पितृ सत्तात्मक (Patriarchal) स्वरूप की उत्पत्ति के बीज दृष्टिगोचर होते हैं।

* "Obviously the joint family is a large family It is hardly necessary to say that this is an erroneous conception" I. P. Desai The Joint Family in India-An Analysis' an article in Sociological Bulletin, Vol V No 2 (Sept, 1956), p 144

** "We call that household a joint family which has greater generation depth (i e three or more) than the nuclear family and the members of which are related to one another by property, income and the mutual rights and obligations" Ibid, p 148.

संसार के विभिन्न भागों में आर्य प्रजाति के बस जाने के उपरान्त इस व्यवस्था की उत्पत्ति बतलाई गयी है। यद्यपि भारत को सयुक्त परिवार व्यवस्था का स्रोत पूर्णतया नहीं कहा जा सकता तब भी क्योंकि भारत प्रारम्भ से ही एक कृषि प्रधान देश रहा है अत भारत को सयुक्त परिवार व्यवस्था का केन्द्र कहा जा सकता है। ग्रीक तथा रोमन समाज मे भी यह व्यवस्था पाई जाती है, जिनमें परिवार के मुखिया के सर्वोच्च अधिकारों को पेट्रीया पोटेस्टेस (Patria Potestas) कहते हैं।

सयुक्त परिवार व्यवस्था को जन्म मे रक्तसम्बन्ध, धर्म, सामाजिक परम्परा आदि का तो महत्वपूर्ण हाथ रहा ही हैं, परन्तु इसके साथ ही साथ विभिन्न सस्कृतियो तथा समूहो की आर्थिक व्यवस्था तथा श्रम विशेषज्ञता की भावना ने भी इस व्यवस्था को जन्म देने में महत्वपूर्ण कार्य किया है। पुरातन काल में यातायात आदि की असुविधा के कारण मनुष्य स्वाभाविक रूप से ही अपने परिवार में रहकर स्थायी रूप से वश परम्परा से चले आये हुए कृषि अथवा अन्य उद्योग में सलग्न हो जाता था। इसकी योग्यता के अनुसार आय तथा आवश्यकता के अनुसार व्यय की प्रकृति के कारण इसे समाजवादी सिद्धान्तो पर आधारित समुदाय भी कहा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सयुक्त परिवार व्यवस्था की उत्पत्ति स्वाभाविक रूप में ही हुई, न कि किसी निश्चित काल अथवा व्यक्ति द्वारा। मानव की आवश्यकता ने मूल रूप से इसे जन्म दिया है।

सयुक्त परिवार के गुण (Merits of Joint Family)

सयुक्त परिवार व्यवस्था अपने मे विशिष्टता तथा बहुत महत्वपूर्ण तत्व लिये हुए है। इसके अनेक लाभ हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है :—

(१) बच्चों का समुचित पालन पोषण (Proper Nurture of Children)—सयुक्त परिवार का सबसे बड़ा लाभ बच्चो का समुचित पालन पोषण की व्यवस्था का होना है। परिवार में अनेक सदस्य होने के कारण बच्चो की देखभाल की चिन्ता नहीं रहती है। एकाकी परिवार में यदि पति अपने कार्य पर चला जावे तथा पत्नी घर के कार्य में व्यस्त रहे, तो बच्चो की देखभाल कौन करे। यह कार्य परिवार के मौलिक सार्वमौलिक कार्यों में से एक है, प्राय बच्चो की देखभाल दादा, दादी तथा अन्य वृद्ध व्यक्ति करते हैं क्योकि उनके पास अधिक कार्य भी नहीं होता तथा ऐसा कहा जाता है कि वृद्धावस्था मे प्रकृति बाल्यावस्था से मिलती जुलती है। इसके कारण बच्चो तथा वृद्धों की सङ्गति अत्यन्त रोचक होती है। सयुक्त परिवार मे यह सम्भव है।

(२) परोपकारी एवं सामूहिक जीवन (Altruistic & Collective Life)—संयुक्त परिवार में परोपकारी एवं सामूहिक जीवन को प्रोत्साहन मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के सुख की कामना करता है तथा एक दूसरे की सहायता करता है। परिवार में अनेक सदस्यों के होने के कारण सामूहिक जीवन की शिक्षा प्राप्त होती है। इसके फलस्वरूप लोग परोपकारी हो जाते हैं।

(३) आपत्तियों का पारिवारिक बीमा (Family Insurance of Misfortunes)—संयुक्त परिवार आपत्तियों का बीमा करता है। यदि किसी परिवार का कोई भी सदस्य किसी आपत्ति में फँस जाता है, तो परिवार के अन्य सदस्य उसकी सहायता करते हैं। यदि किसी व्यक्ति की नौकरी छूट जाती है तो संयुक्त परिवार भोजन की व्यवस्था करता है, यदि कोई बीमार हो जाता है तो परिवार उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध करता है और यदि किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती है तो उसके बच्चों तथा अन्य आश्रितों का पालन पोषण भी परिवार ही करता है। इस प्रकार इस व्यवस्था में इसके किसी भी सदस्य पर आपत्ति आने पर संयुक्त परिवार सदैव सहायता के लिये तत्पर रहता है।

(४) वृद्धावस्था में सुरक्षा (Security in Old Age)

संयुक्त परिवार में वृद्ध सदस्यों, जो कि कमाने में अथवा किसी भी अन्य कार्य के करने में असमर्थ हो गये हों, का भी उसी प्रकार प्रबन्ध किया जाता है जिस प्रकार अन्य सदस्यों का। प्रत्येक व्यक्ति इस सुरक्षा का अनुभव करता है कि वृद्धावस्था में उसे किसी प्रकार कष्ट नहीं होगा।

(५) सुरक्षा की भावना (Sense of Security)

संयुक्त परिवार प्रत्येक दृष्टि से आर्थिक, सामाजिक, भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक सुरक्षायें प्रदान करता है। व्यक्ति अपने को हर प्रकार से सुरक्षित समझता है।

(६) समष्टिवाद की भावना (Feeling of Collectivism)

संयुक्त परिवार अपने सदस्यों में सामाजिक जीवन के प्रति समष्टिवाद की भावना उत्पन्न करता है। प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त होता है तथा इसके लिये उसकी आय का माप दण्ड नहीं होता। प्रत्येक सदस्य परस्पर एक दूसरे के लिये कार्य करते हैं इसके फलस्वरूप समष्टिवाद की भावना विकसित होती है।

(७) नवीन पति पत्नियों पर हलका भार
(Light Burden on New Husband and Wife)

संयुक्त परिवार व्यवस्था में नव विवाहित पति-पत्नियों पर परिवार का अधिक भार नहीं पड़ता क्योंकि अन्य सदस्य इसे अपने श्रम द्वारा हलका कर देते हैं। वे सुख एवम् आनन्द से अपने जीवन को व्यतीत कर सकते हैं।

(८) आदर की भावना (Sense of Respect)

सामाजिक व्यवस्था के सुचारू रूप से चलते रहने के लिये उसके सदस्यों में आदर तथा आज्ञा पालन की भावना का होना अनिवार्य है। इस आवश्यकता की पूर्ति, सयुक्त परिवार व्यवस्था अपने सदस्यों को आज्ञापालन तथा आदर की शिक्षा देकर, करता है।

(९) योग्यता के अनुसार कार्य (Work According to Ability)

सयुक्त परिवार में इसके प्रत्येक सदस्य, चाहे वह स्त्री, पुरुष, बालक वृद्ध अथवा अपंग हो, को उसकी योग्यता तथा उसकी कार्य-कुशलता के आधार पर कार्य दिया जाता है। इस प्रकार इस व्यवस्था के द्वारा श्रम विभाजन (Division of Labour) के पूर्ण लाभों का उपयोग किया जाता है।

(१०) मितव्ययता (Economy)

संयुक्त परिवार व्यवस्था का सबसे बड़ा गुण यह है कि जीवन सचालन के अत्यन्त न्यून साधन होने पर भी सब सदस्य अपने सहयोग द्वारा इसका सुचारु रूप से संचालन कर सकते हैं। इस प्रकार आर्थिक दृष्टिकोण से भी इसमें बहुत अधिक बचत होती है।

(११) शक्ति की इकाई (Unity of Strength)

संयुक्त परिवार अपने में एक अत्यन्त शक्तिशाली इकाई है। इसमें शारीरिक, आर्थिक, मानसिक, बौद्धिक आदि शक्तियों का सम्मिलन अपने अधिकतम सम्भव रूप में होता है।

उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त सयुक्त परिवार में अन्य अनेक गुण पाये जाते हैं। कृषि भूमि को छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जाने से यह व्यवस्था रोकती है। अनाथ बालक तथा विधवा को पूर्ण आश्रय देती है आदि। इसके अनेक गुणों के कारण ही समाजशास्त्री इस व्यवस्था को बनाये रखना चाहते हैं यद्यपि कुछ सूक्ष्म परिवर्तन करके।

संयुक्त परिवार के दोष (Demerits of Joint Family)

प्रत्येक मानव संस्था चाहे वह कितनी शक्तिशाली तथा उपयोगी क्यों न हो उसमें दोष एवं सीमायें भी पाई जाती हैं। समय के साथ-साथ संयुक्त परिवार तथा सामाजिक जीवन परिवर्तित होता गया। सयुक्त परिवार में अनेक दोष उत्पन्न होते गये तथा वह समय की गति के साथ साथ पग मिलाकर न चल सका। संयुक्त परिवार प्रथा के प्रमुख दोष निम्न हैं:—

(१) औपचारिक सम्बन्ध (Formal Relations)

संयुक्त परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण आपस में

सम्बन्ध घनिष्ठ नहीं हो पाते तथा औपचारिक रहते हैं। इसके फलस्वरूप इस व्यवस्था में परिवार के सबसे महत्वपूर्ण तत्व, आत्मीयता का अभाव रहता है जो कि परिवार में मनोवैज्ञानिक असुरक्षा प्रदान करता है। इस औपचारिक सम्बन्ध के कारण घर का सम्पूर्ण वातावरण शुष्क तथा नीरस रहता है।

(२) द्वेष एव क्लेश का केन्द्र (Centre of Prejudices and Tensions)

सयुक्त परिवार एक ऐसा स्थान है कि जहाँ पर सदैव द्वेष एव क्लेश बना रहता है क्योंकि एक सदस्य का दूसरे सदस्य स हितों का सघर्ष होता रहता है। स्त्रियों में सदा मनमुटाव तथा ईर्ष्या रहती है तथा छोटी छोटी बातों पर झगड़ा होना नियमित तथा स्वाभाविक है। परिवार के सभी सदस्य असन्तोष तथा द्वेष के कारण मन ही मन घुटते रहते हैं तथा अपना अधिकतम समय व मस्तिष्क इसी में व्यय करते रहते हैं। इस पारिवारिक कलह के फलस्वरूप परिवार का विनाश हो जाता है। सरकार (Sarkar) ने उचित लिखा है कि "सयुक्त परिवार में पहले हिन्दू ऐसे वर्ग की कल्पना नहीं कर सकते जहाँ सयुक्त कुटुम्ब न हो।"* इन दैनिक विवादों और कलहों से सयुक्त परिवार का जीवन बड़ा दु खमय तथा नारकीय बन जाता है। इसका एक प्रमुख दुष्परिणाम मुकदमेबाजी है।

(३) आर्थिक निर्भरता (Economic Dependence)

सयुक्त परिवार के कारण परिवार के अधिकाश सदस्य आर्थिक दृष्टि से परिवार पर निर्भर रहत हैं। इसका स्वाभाविक फल यह होता है कि लोग काम चोरी का स्वभाव बना लेते हैं।

(४) अकर्मण्य व्यक्तियों की वृद्धि (Increase in Idle Persons)

सयुक्त परिवार की व्यवस्था के कारण अकर्मण्यता को प्रोत्साहन मिलता है तथा अकर्मण्य व्यक्तियों की वृद्धि होती है। बहुत से लोग केवल इसलिये कार्य नहीं करते क्योंकि उन्हें सयुक्त परिवार में बिना परिश्रम के सब सुविधायें उपलब्ध हो जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि परिवार में कमाने वाले सदस्यों में तथा उनकी स्त्रियों में अन्य अकर्मण्यों की स्त्रियों से कलह आदि प्रारम्भ हो जाता है।

(५) कमाने वालों में असन्तोष (Dissatisfaction Among Earners)

सयुक्त परिवार व्यवस्था में परिश्रम करने वाले तथा उसकी फल प्रति में कोई सम्बन्ध नहीं होता। यह एक मानव प्रकृति है कि जो जितना परिश्रम करता

*Sarkar Hindu Law, p 242

है प्रतिदिन मे उतना फल प्राप्त करना चाहता है, परन्तु सयुक्त परिवार व्यवस्था मे इस भावना की पूर्णतया अवहेलना होती है। इस कारण सयुक्त परिवार के कमाने वाले सदस्यों मे अधिकाशत, असन्तोष बना रहता है तथा उनकी पसीने की कमाई दूसरों पर व्यय होती है और निठल्ले आनन्द करते है। कई बार तो कमाने वाले सदस्य भी आलस करने लगते है क्योंकि उनकी कमाई का फल उनको नहीं मिलता।

(६) भय का पर्यावरण (Environment of Fear)

सयुक्त परिवार मे परस्पर के दोषारोपण सम्बन्धी भय का पर्यावरण बना रहता है। इसके फलस्वरूप सदस्यो का व्यवहार औपचारिक हो जाता हे तथा उनका विकास उचित नहीं हो पाता।

(७) गोपनीय स्थान का अभाव (Lack of Private Accommodation)

संयुक्त परिवार मे सदस्यो की सख्या अधिक होने के कारण गोपनीय स्थान का अभाव रहता है। इसके फलस्वरूप पति पत्नी एक दूसरे से नही मिल पाते तथा असन्तोष बढ़ता है। यदि मिलते भी हैं तो अन्य बालक बालिकाओं पर जो उन्हे देखते हैं, बुरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार लिंग सम्बन्ध अर्धसार्वजनिक बन जाते हैं।

(८) स्त्रियों की दुर्दशा (Plight of Women)

सयुक्त परिवार मे विशेषतया स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय रहती है। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने उचित लिखा है कि पति पत्नी इतनी कृत्रिम एवम् अस्वाभाविक परिस्थितियो मे मिलते हैं कि उनमे प्रेम का विकास तो दूर की बात है, मामूली परिचय भी कम ही होता है। (देखिये उनकी 'आत्मकथा')। स्त्रियो का जीवन केवल भोजन बनाने मे ही बीतता है तथा उनके व्यक्तित्व का विकास बिल्कुल भी नहीं हो पाता। सास ननद तथा बहू का झगड़ा सदैव होता रहता है। इनमे विशेषकर बहू का जीना भी दुर्लभ हो जाता है। सयुक्त परिवारो मे इन्हीं कारणो से आत्महत्यायें भी अनेक बार हो जाती है। स्त्री का जीवन संयुक्त परिवार मे अविरल सेवा का एक दीर्घकाल होता है तथा उसे दासी के समान कार्य करना पड़ता है। इतना कार्य करते हुए भी उसका छोटी छोटी बातो पर जान बूझ कर अथवा आदत के रूप मे अपमान किया जाता है। परिणामस्वरूप स्त्रियाँ, चाहे वे सास हों, ननद हो अथवा बहू हो अपनी किस्मत को कोसती रहती हैं।

(९) बाल विवाहों को प्रोत्साहन
(Encouragement to Child Marriage)

संयुक्त परिवार बाल विवाहों को प्रोत्साहित करता है। यद्यपि बाल विवाह प्रत्येक दृष्टि से हानिकर है परन्तु संयुक्त परिवार होने के कारण बच्चों का विवाह अत्यन्त अल्पायु में कर दिया जाता है। विवाह करने वाले व्यक्ति को विवाह योग्य पत्नी के पालन करने की क्षमता के विकसित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जब तक वह विवाह के अर्थ को समझ पाता है तब तक अपने को अत्यधिक भार से दबा हुआ अनेक बच्चों का बाप पाता है।

(१०) अधिक सन्तान उत्पादन (More Children)

संयुक्त परिवार के फलस्वरूप सन्तानें भी अधिक होती हैं। प्रथम तो बाल विवाह होने के कारण अधिक सन्तानें होती हैं तथा द्वितीय कोई उत्तरदायित्व नहीं होने के कारण लोग अन्धाधुन्ध सन्तानें उत्पन्न करते हैं।

(११) व्यक्तित्व के विकास में बाधक
(Obstacle in the Development of Personality)

संयुक्त परिवार स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास में भी अनेक बाधायें उपस्थित करता है। बलसारा ने उचित ही लिखा है, "यह (संयुक्त परिवार) आलसी मनुष्यों को जन्म देता है, जिनमें स्वाभिमान तथा उत्तरदायित्व के भाव का सर्वथा अभाव होता है।"* बाल्यावस्था से परतन्त्र तथा परोपजीवी रहने के कारण परिवार के सदस्यों में अपने पैरों पर खड़े होने की क्षमता नहीं विकसित होती। स्वावलम्बन का पाठ वह नहीं पढ़ पाता। इस प्रकार संयुक्त परिवार में व्यक्ति अपनी आत्मा का विकास और वैयक्तिक योग्यताओं की वृद्धि भी नहीं कर सकता। संयुक्त परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण उनकी देखभाल हेतु व्यक्तिगत ध्यान किसी की ओर भी नहीं दिया जा सकता। कठोर अनुशासन के कारण व्यक्ति की क्षमताएँ मर जाती हैं। छोटी से छोटी बात के लिये परिवार के मुखिया द्वारा बताये गये कठोर नियमों पर चलना पड़ता है तथा इससे व्यक्ति का स्वतन्त्र विकास असम्भव है।

(१२) अप्राकृतिक (Unnatural)

संयुक्त परिवार अप्राकृतिक प्रतीत होते हैं, क्योंकि जो प्रेम बच्चों के प्रति

---

* "It breeds drones in the family, lacking in the sense of self respect and responsibility" F N Balsara 'Sociology', p 359

माता और पिता का होता है वह दूसरों का नहीं हो सकता। सयुक्त परिवार मे माता पिता अपने बच्चों की देखभाल अपनी निजी इच्छानुसार नहीं कर सकते। यहाँ तक कि पति और पत्नी मे भी केवल परस्पर मैथुन करने का सम्बन्ध रह जाता है।

सयुक्त परिवार के उपरोक्त दोषों के अतिरिक्त अन्य कारक भी है जो इसे विघटित कर रहे हैं। अब हम इन कारको पर प्रकाश डालगे।

सयुक्त परिवार को विघटित करने वाले कारक (Factors Disintegrating Joint Family)

सभ्यता के विकसित होने तथा कृषि युग स औद्योगिक युग के प्रारम्भ से ही, सयुक्त परिवार व्यवस्था को नई सभ्यता की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ समझा जाने लगा। वर्तमान स्थिति तथा परिस्थितियाँ सयुक्त परिवार के पक्ष में नहीं हैं।

(१) वर्तमान आर्थिक व्यवस्था (Present Economic System)

सयुक्त परिवार को विघटित करने वाले कारकों मे वर्तमान आर्थिक व्यवस्था महत्वपूर्ण है। औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) स आर्थिक उत्पादन की प्रक्रिया में मौलिक परिवर्तन हो गये है। एक कृषि प्रधान देश के स्थान पर नवीन औद्योगिक देश का निर्माण हो रहा है। हजारों किसान प्रात काल बैल तथा हल के साथ अपने संयुक्त परिवार से गाँवों से लगे हुए खेतों की ओर न जाकर मिल की सीटी की अन्तर्ध्वनि पर बड़े बड़े नगरों मे अपने गाँवों से बहुत दूर मशीनो पर कार्य करने जाते हैं। ग्राम उजड़ रहे हें तथा नवीन विशाल नगर बस रहे हैं। लोग अधिकाधिक अपने सयुक्त परिवारो को छोड़ कर अपने जीविकोपार्जन के स्थान पर जा रहे हैं। परिवार उत्पादन की इकाई नही रह गया है। व्यक्ति अपनी जीविका परिवार से दूर रह कर भी कमा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान नवीन आर्थिक व्यवस्था ने व्यक्ति को आर्थिक स्वावलम्बन प्रदान किया है। इसके फलस्वरूप सयुक्त परिवार विघटित होते जा रहे हैं।

(२) पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव (Effect of Western Culture)

सयुक्त परिवार को विघटित करने का दूसरा कारक पश्चिमी विचारो का प्रभाव है। पूर्व व पश्चिम मे एक मौलिक मतभेद है। पश्चिम मे मनुष्य के अधिकारो पर अधिक बल दिया जाता है, पूर्व मे कर्तव्यों पर। पश्चिम का सारा प्रयत्न इसी दिशा मे है कि व्यक्तियों के स्वार्थो को सुरक्षित बनाया जाय। पूर्व

सभ्यता इस बात पर जोर देते हुए नहीं थकती कि प्रत्येक मनुष्य को अपने दायित्व को पूर्ण करना चाहिये। आर्थिक क्षेत्रों में पूँजीवाद, दार्शनिक क्षेत्र में सहिष्णुतावाद तथा सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्थाओं में समानता का सिद्धान्त प्रचलित हो रहा है। व्यक्ति का महत्व बढ़ रहा है। इन प्रवृत्तियों के कारण *व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, सामाजिक स्वतन्त्रता, आर्थिक स्वतन्त्रता, पारिवारिक* स्वतन्त्रता तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता के आदर्श विकसित हो गये हैं। समष्टिवाद के स्थान पर व्यष्टिवाद का बोलबाला है। इन परिवर्तनों के कारण संयुक्त परिवार की आधार भूत शिलायें नष्ट होती जा रही हैं।

(३) पाश्चात्य शिक्षा (Western Education)

पाश्चात्य शिक्षा भी संयुक्त परिवार को विघटित कर रही है। इस शिक्षा के द्वारा नवीन विचार युवकों को प्राप्त होते हैं तथा इसका प्रभाव सामाजिक व्यवस्था पर पड़ता है।

(४) स्त्री शिक्षा (Women Education)

स्त्री शिक्षा भी संयुक्त परिवार को विघटित कर रही है। स्त्री शिक्षा भी बढ़ती जा रही है। भारत की १९५१ में की गई जन गणना के अनुसार १३,६५०,६८३ स्त्रियाँ शिक्षित हैं जिनमें से २,९१२,०६० हाई स्कूल, ९१,३७१ अन्डर ग्रेजुएट, ३६,९४४ स्नातिकाएँ तथा ६,८३७ उच्चतर स्नातिकाएँ हैं। अधिकांश शिक्षित स्त्रियाँ संयुक्त परिवार में नहीं रहना चाहतीं। आज की शिक्षित स्त्रियाँ संयुक्त परिवार में अस्वाभाविक जीवन को भय से देखती हैं। श्री बलसारा (F. N. Balsara) ने लिखा है कि संयुक्त परिवार के विषय में जब स्त्रियों से प्रश्न पूछे गए तो उनमें से ७५% स्त्रियाँ इसके विरुद्ध थीं तथा बची हुई २५% की अपनी कोई राय न थी।

उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त भारत में, जो कि संयुक्त परिवार व्यवस्था का केन्द्र है, संयुक्त परिवार व्यवस्था को विघटित करने वाले कुछ विशेष कारकों का उल्लेख भी यहाँ आवश्यक है।

(५) अंग्रेजों द्वारा हिन्दू कानून का प्रयोग (Application of Hindu Law by Britishers)

अंग्रेजी न्यायालयों द्वारा हिन्दू कानून को विज्ञानेश्वर तथा जीमूतवाहन के आधार पर मान लिया गया। इन दोनों शास्त्रकारों ने संयुक्त परिवार प्रथा को स्वीकार किया है। अंग्रेजी न्यायालय हिन्दुओं के पारिवारिक संगठन तथा संस्कृत भाषा से परिचित नहीं थे। इसका फल यह हुआ कि हिन्दू कानून का उद्विकास

वहीं पर रुक गया। इन दोनों कानून विशेषज्ञों की व्याख्या स्वीकार करने के कारण दो विचारधाराओं का जन्म हुआ—दायभाग तथा मिताक्षरा। नन्दा पंडित, नीलकण्ठ तथा बाणभट्ट के लेखों पर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया। परिणाम स्वरूप हिन्दू कानून का विकास एवं गतिशीलता समाप्त हो गई। इसके अतिरिक्त *अंग्रेजी कानून के न्याय (I q it) के सिद्धान्त को हिन्दू समाज पर लागू किया।* इसके कारण संयुक्त परिवार विघटित होता गया।

(६) नवीन अधिनियमों का प्रभाव (Effect of New Acts)

ब्रिटिश शासन ने नये नये अधिनियम पारित किये जो संयुक्त परिवार की प्रवृत्ति के विरुद्ध थे। ब्रिटिश न्यायालय भी इस प्रकार का निर्णय देते थे जिसके कारण संयुक्त परिवार को क्षति पहुँचती थी। डा० राधाकमल मुकर्जी ने उचित ही लिखा है, "इस प्रकार संयुक्त परिवार एक बहुत महत्वपूर्ण विशेषता खो रहा है। संयुक्त परिवार वर्तमान समय में न्यायालयों द्वारा प्रोत्साहित की जाने वाली व्यष्टिवादी प्रवृत्तियों का शिकार बन रहा है।"[1] संयुक्त परिवार में स्त्रियों को साम्पत्तिक अधिकार देकर और भी अधिक संयुक्त परिवार का विघटन किया जा रहा है। निम्न दोनों अधिनियम उसके साक्षी हैं—

( ) The Hindu Law of Inheritance (Amendment Act, of 1929)

(2) Hindu women's Right to Act of 1937.

आधुनिक अन्य विधान भी संयुक्त परिवार को विघटित कर रहा है। डाक्टर कपाड़िया ने उचित ही लिखा है, 'वे (अधिनियम) न्यायालयों द्वारा मौलिकता प्राप्त किये हुए विघटन के कार्य को आगे बढ़ाते हैं।'[2]

(७) नवीन सामाजिक सुरक्षायें
(New Social Security Measures)

वर्तमान समय में अनेक सामाजिक सुरक्षाओं की व्यवस्था की जा रही है। प्राय हर विभाग में ही अनिवार्य बीमा, प्रोवीडेन्ट फन्ड, बोनस योजना इत्यादि का प्रबन्ध हो रहा है। पैन्शन भी इसी प्रकार की व्यवस्था है। विभिन्न प्रकार के श्रमिकों के लिए जो भी कल्याण योजनायें लागू की जा रही हैं वे सभी इसके

[1] R K Muke ji 'Principles of Comparative Economics' pp 23 24

[2] 'They carry forward the w k f d snte r t on r n l chieved by the Judiciary' K M K d 'M i e d Family in India,' (1959), p 207

अन्तर्गत आ जाती है। ये समस्त सामाजिक सुरक्षाये सयुक्त परिवार की जड़ों को खोखला कर रही हैं।

श्री देसाई ने अपने सर्वेक्षण के पश्चात् उचित ही लिखा है, "हम यह कहने के लिये उत्तेजित होते हैं कि एकाकिता का विकास और सयुक्तता का ह्रास हो रहा है।'*

सयुक्त परिवार के विघटन पर हम और भी विस्तार से विचार आगे 'पारिवारिक विघटन अध्याय में करेंगे।

संयुक्त परिवार को बनाये रखने वाले घटक (Factors that maintain Joint Family)

हमने देखा कि आधुनिक विचारधारा के अनुसार सयुक्त परिवार व्यवस्था उपयुक्त नहीं रहती तथा विघटित होती जा रही है परन्तु फिर भी सयुक्त परिवार बने हुए हैं तथा बने रहेंगे, इसके अनेक कारण हैं। इन पर विचार करने से पूर्व इस सत्य का ज्ञान हो जाना आवश्यक है कि सयुक्त परिवार व्यवस्था वर्तमान काल में केवल मात्र प्रथा तथा औपचारिक रूप में ही रह गई है। फिर भी कुछ *ऐसे कारक हैं जिनके कारण यह पूर्णतया विच्छिन्न नहीं हुए हैं।* परिवार का स्वरूप इच्छा पर आधारित नहीं है, अपितु वह समाज के मूल्यों एव आदर्शों का एक साक्षात् प्रतिरूप होता है। इस प्रकार सयुक्त परिवार को बनाये रखने वाले सामाजिक मूल्य, आदर्श तथा रूढ़ियाँ आदि भी जान लेना आवश्यक है। हम यहाँ *इनका वर्णन विशेषकर भारत के प्रसङ्ग सहित करेंगे। क्योंकि भारत सयुक्त* परिवार व्यवस्था का केन्द्र है अब हम सयुक्त परिवार को बनाये रखने वाले प्रमुख कारकों पर विचार करेंगे।

(१) पितृपूजा की प्रथा (Custom of Ancestor Worship)

पितृपूजा परिवार की सस्था को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। यह *सयुक्त परिवार का पोषक घटक है, क्योंकि पारिवारिक सदस्य सामूहिक रूप से* पितृपूजा करते हैं, तथा उनकी पूजा का स्थान वही होता है जो उनके पूर्वजों का था एव वे इस स्थान को एक पवित्र स्थान समझते हैं। प्राचीन काल में इस पूजा का अत्यधिक महत्व था। इसे करने वालों को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी समझा जाता था। इस प्रथा के कारण सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बधे रहते थे तथा *पृथक् नहीं होना चाहते थे।*

---

*'We are tempted to say that nuclearity is increasin, nd jointness is decre sing" D sai I P 'The Joint Family n Ind An Analysis,' Soc, Bul, Vol No 2

(२) अग्निपूजा (Fire Worship)

अग्निपूजा तथा पितृपूजा हिन्दू परिवार को सयुक्त बनाये रखने म महत्वपूर्ण योग प्रदान करते रह हैं। ऋग्वेद म हम सदा घर म रहन वाली (यो दम ग्रास नित्य ।७।१।१२) तथा घर की रक्षा करने वाली अग्नि की सूचना मिलती ह। सायकाल और प्रात काल (दोषावस्तो) सयुक्त रूप में सब सदस्यो द्वारा इसकी उपासना करन का विधान हे।

(३) खेतिहर आर्थिक व्यवस्था
(Agriculture Economic System)

हम पहले लिख चुके हैं कि सयुक्त परिवार व्यवस्था की प्रकृति खतिहर स्थानो स सम्बन्धित ह तथा औद्योगिक युग के अत्यधिक प्रचलन क पश्चात यह नहीं कहा जा सकता कि खतिहर क्षेत्रो की सख्या कम है। विशपकर भारतवर्ष अब भी कृषि प्रधान देश है। कृषि करन म यह आवश्यकता पड़ती है कि कई व्यक्ति कार्य कर। एकाकी (Nuclear) परिवार क लिय कृषि करना अत्य त कठिन काय है। भूमि स बध होन क कारण प्रत्यक व्यक्ति अपनी जीविका परिवार की सामूहिक क्रियाओं स ही प्राप्त कर सकता ह। फलस्वरूप वह परिवार स एक एस ब धन में बधा हुआ हे कि पृथक होन की कल्पना भी नहीं कर सकता। इस प्रकार आर्थिक व्यवस्था सदव सयुक्त परिवार व्यवस्था के लिये उत्तरदायी होती है।

(४) पितृसत्तात्मक परिवार (Patriarchal Family)

पितृसत्तात्मक परिवार प्रथा (जो कि अधिकतर सभी स्थानों पर है) भी सयुक्त परिवार व्यवस्था को बनाये रखन म एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक है। पितृसत्तात्मक परिवार के कारण सयुक्त परिवार को एक सूत्र म बध रहन म बड़ी सहायता मिलती रही। प्रारम्भ स ही बच्चे पिता का आदर तथा उनकी आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा समझत रहत हैं।

भारत में हिन्दू सयुक्त परिवार व्यवस्था
(Hindu Joint Family System in India)

हिन्दू विधि सहिताऐं (Hindu Legal Codes) भी सयुक्त परिवार की पोषक रही हैं। पिता परिवार का मुखिया होन स सम्पत्ति पर एकाधिकार रखता था। सन्तानो का अधिकार पारिवारिक सम्पत्ति म केवल नैतिक था कानूनी नहीं। यह पिता की इच्छा पर निर्भर था। कुछ समय उपरान्त पुत्रो को बटवारा करन का अधिकार दिया गया। पिता के जीवन काल म उसकी शक्ति स

परिवार के सब सदस्य एक सूत्र में बँधे रहते थे। साधारणतया पिता के जीवन काल में बटवारा नहीं होता था। गौतम[1] दायभाग के नियमों का वर्णन करता हुआ कई वैकल्पिक व्यवस्थाएं करता है। इनमें पहली यह कि ज्येष्ठ पुत्र सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बने। वही सबका भरण-पोषण करे। शख भी भाइयों को यह सलाह देता है कि सबको इकट्ठा रहना चाहिये। कौटिल्य[2] का भी यही परामर्श है। मनु की दायभाग की कई व्यवस्थाओं में से एक यह भी है कि ज्येष्ठ ही सारे पैतृक धन को ग्रहण करे। जैसे पिता के अवलम्बन से पुत्र रहते हैं, उसी प्रकार छोटा भाई बड़े भाई की सहायता से जीवन बिताये।[3] यद्यपि मनु यह कहता है कि धर्म की वृद्धि के लिये यदि भाई चाहें तो बटवारा कर सकते हैं। किन्तु फिर भी वे संयुक्त परिवार के ही पक्ष में अधिक हैं। ज्येष्ठ पुत्र की अध्यक्षता में संयुक्त परिवार का वह बड़े विस्तार से वर्णन करते हैं। मनु की एक दूसरी व्यवस्था उसके सम्मिलित परिवार सम्बन्धी पक्षपात को सूचित करती है। आज यदि कोई भाई संयुक्त परिवार में रहना नहीं चाहता है तो वह अपना हिस्सा लेकर अलग हो जाता है। मनु की व्यवस्था ऐसी नहीं है। वह अलग होने वाले समर्थ भाई को नाम मात्र का हिस्सा प्रदान करता है। याज्ञवल्क्य भी इसी व्यवस्था को दोहराता है। ये विधान संयुक्त परिवार के प्रति उनकी सहानुभूति को प्रकट करते हैं।

संयुक्त परिवार व्यवस्था प्रारम्भ से ही भारतवर्ष का सांस्कृतिक आदर्श (Cultural Ideal) बना रहा है। संयुक्त परिवार का और भी अधिक परिचय प्राप्त करने के लिये अब हम हिन्दू परिवार की प्रकृति का वर्णन करेंगे।

हिन्दू परिवार की प्रकृति (Nature of Hindu Family)

अधिकांश रूप से हिन्दू परिवार की प्रकृति संयुक्त है। शिवदत्त ज्ञानी ने उचित ही लिखा है, *प्राचीन भारत के पारिवारिक जीवन की आधारशिला संयुक्त परिवार प्रथा थी।*[4] वैदिक युग में संयुक्त कुटुम्ब पद्धति की सूचना हमें स्थापत्य और साम्मनस्य सूक्तों (अथर्व० ३ ३०) से भी मिलती है। इनमें पहिला सूक्त उस समय की संयुक्त परिवार की प्रथा और सत्ता पर बड़ा मनोरंजक प्रकाश डालता है। साम्मनस्य सूक्त में 'मा वियोष्ट' कह कर स्पष्ट रूप से कुटुम्ब को संयुक्त बनाये रखने का आदेश दिया गया है। यहाँ संयुक्त परिवार में केवल

---

[1]गौ० ध० सू० २८,३. [2]३.५ (मनु० ९—१०४)

[4]शिवदत्त ज्ञानी · भारतीय संस्कृति (राजकमल प्रकाशन, बम्बई, १९५४) पृष्ठ ८८.

एक साथ भोजन करने तथा एक साथ अग्नि पूजा करने का ही उल्लेख नहीं है किन्तु एक साथ कार्यों की सिद्धि करने तथा एक ही साथ कार्य भार को उठाने और एक साथ मिलकर मेहनत से ही संयुक्त परिवार के आर्थिक उद्देश्यों की समानता पर भी बल दिया गया है। उन्हें स्पष्ट रूप से एक जुए में (समानेयोक्त्रे) जुड़े रहने को कहा गया है। समान जुये में जुड़ने का मतलब है मिलकर एक पेशा या वृत्ति करना। परिवार के सदस्य जिन बन्धनों से ग्रथित और संयुक्त रहते हैं, इस सूत्र में प्राय उन सभी बन्धनों का उल्लेख है। आप्टे ने भी लिखा है "संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी।"[1]

आधुनिक युग में भी अधिकांशत हिन्दू परिवार की प्रकृति संयुक्त है। प्रभु ने उचित ही लिखा है, हिन्दू परिवार पर विचार करते समय जो प्रथम वस्तु आलोकित होती है वह उसकी संयुक्त पद्धति है।'[2] कपाडिया ने भी इस विचार को इस प्रकार व्यक्त किया है, सामान्यतया संयुक्त परिवार को हिन्दुओं की एक विशेष विशेषता माना जाता है।'[3] संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति की आधार-शिला है तथा वे व्यष्टिवाद के स्थान पर समष्टिवाद के आदर्शों की पुष्टि करते हैं। बीसवीं शताब्दी के अर्द्धांश में कुछ स्थिति परिवर्तित होती जा रही है। कुछ लोगों का मत है कि संयुक्त परिवार प्रथा के स्थान को एकाकी परिवार लेते जा रहे हैं। इस विषय में विभिन्न मत हैं। भारतीय जनगणना १९५१ के अनुसार संयुक्त परिवार समाप्त होते जा रहे हैं। भारत में जनगणना आयुक्त (Census Commissioner) ने लिखा है, 'छोटे परिवारों का अधिक अनुपात (३३ प्रतिशत ग्रामों में तथा ३८ प्रतिशत नगरों में) इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि देश की परम्परात्मक प्रथा के अनुसार संयुक्त परिवार स्थिर नहीं रह पा रहे हैं, तथा संयुक्त परिवार से विभक्त होने की एवं पृथक् गृह निर्माण की आदत काफी

---

[1] "The Joint family system prevailed' V M Apte 'Social and Religious life in the Grihya Sutras' (The Popular Book Depot., Lamington Road Bombay, (1954), p 46.

[2] "The first thing that strikes us when we consider the Hindu Family is its joint nature." P N 'Prabhu 'Hindu Social Organization', (1958), p 217

[3] "The joint family is generally supposed to be a characteristic peculiar to the Hindus" K M Kapadia 'Marriage and Family in India' (1959), p. 233

शक्तिशाली है।"[1] कुछ अन्य निम्न अध्ययनों[2] से भी ऐसा ज्ञात होता है।

परिवार का प्रकार	समूह का नाम जिसका अध्ययन किया गया			
	क्लर्क[3]	ओसवाल[4]	मारवाड़ी[5]	राजस्थानी[6]
एकाकी परिवार	४४ २	२८·७५	३६.९	४२·०
अर्ध संयुक्त परिवार	३२ ५	—	६·२	९१·०
संयुक्त परिवार	२३ ३	७१·२५	५६.९	४१·९
	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०

क्लर्कों का अध्ययन जयपुर नगर, जो कि राजस्थान की राजधानी है में किया गया है। इसमें ७७ परिवारों का अध्ययन किया है। दूसरा अध्ययन ओसवालों का ब्यावर नगर में किया गया। इसमें ८० परिवारों का अध्ययन किया गया है। मारवाड़ी समाज का भी अध्ययन ब्यावर नगर में किया गया, इसमें ६५ परिवारों का अध्ययन किया गया है। राजस्थानी परिवारों का अध्ययन भी ब्यावर नगर में किया गया तथा १०० परिवारों का सर्वेक्षण किया गया है। ब्यावर एक औद्योगिक कस्बा है जहाँ पर ३ बड़ी सूती कपड़े की मिलें हैं तथा एक व्यापारिक मण्डी होने के अतिरिक्त कच्चे ऊन की भारत में सबसे बड़ी मण्डी है। स्मरण रहे कि यह क्षेत्र सदैव से ही अंग्रेजों के शासन में रहा है एवं पाश्चात्य

[1] "A large proportion of small households (33% in villages and 38% in towns) is a primafacie indication that families do not continue to be 'Joint' according to the traditional custom *of the country and the habit of breaking away from the joint* family and sitting up seperate households is quite strong "

[2] These studies have been conducted under the supervision of the author

[3] R C Harit Socio-Economic Conditions of L D C's in Rajasthan Secretariat Jaipur, (Unpublished Thesis, 1958, Varsity of Rajasthan), p 76.

[4] तेजमल दक : ओसवाल समाज के पारिवारिक प्रतिमान (अप्रकाशित विज्ञप्ति १९५९) पृ० ३६-३७.

[5] Mrs K K Halakhandi The Status of Marwari Women (Unpublished Thesis, 1959, 'Varsity of Rajasthan') p 20.

[6] P C Sharma Changing Family Structure (Unpublished Thesis, 1958, 'Varsity of Rajasthan') p 20

सभ्यता का प्रत्यक्ष सद्भाव होता जा रहा है। फिर भी देशी राज्यों से घिरे रहने के कारण इसका सांस्कृतिक स्तर बहुत कुछ भारत के पिछड़े हुए भागों जैसा है। उपरोक्त तालिका में एकाकी परिवारों की संख्या भारतीय जनगणना के औसत से मिलती जुलती है। केवल ओसवाल परिवारों में २८·७५ प्रतिशत परिवार एकाकी हैं। वैश्यों में अभी भी सयुक्त परिवार की प्रवृत्ति अन्य जातियों से अधिक पाई जाती है। निम्न तालिका में कुछ राजस्थान की प्रमुख विमुक्त जातियों (Exbriminal Tribes) के परिवारों की प्रवृत्ति पर आँकड़े दिये गये हैं। इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि मीणा जाति को छोड़कर अन्य सभी अत्य-

परिवार का प्रकार	प्रतिशत में					
	बावरी*	बागरी[1]	साँसी[2]	मीना[3]	कंजर[4]	कालबेलिया[5]
एकाकी परिवार	५३·०	६४·७४	६८·४	२६·७	७४·०	८८·०
अर्ध सं. परिवार	१८·०	—	—	—	—	५·०
संयुक्त परिवार	२६·०	५·२६	३१·६	७३.३	२६·०	७·०
योग	१००·०	१००·००	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०

धिक मात्रा में एकाकी परिवार की प्रवृत्ति रखते हैं। बावरी जाति में ५३·० प्रतिशत, बागरी जाति में ६४·७४ प्रतिशत, साँसी जाति में ६८·४ प्रतिशत, मीना जाति में २६ ७ प्रतिशत, कंजर जाति में ७४·० प्रतिशत तथा कालबेलिया जाति में ८८·० प्रतिशत परिवार एकाकी प्रवृत्ति के पाए जाते हैं स्मरण रहे कि ये जातियाँ राजस्थान के पिछड़े क्षेत्रों में परिवार के विरुद्ध पाई जाती हैं। ऐसा ही

Note All these studies have been carried out under the supervision of the author (Unpublished Thesis for Rajasthan 'Varsity)

* R L Agrawal, The Bawaries, 1959, p 40

[1] G P Tripathi, The Study of Bagaries, 1959 p 25,

[2] R K Bazaz, The Sansis, 1959, p 25

[3] अमरीकसिंह : चौकीदार मीणा (१६५८), पृ० ५०

[4] नरेन्द्रसिंह राठौर : कंजर (१६५८), पृ० १६.

[5] S K Mehru, Kalbelia (Snake Charmers), 1958, p 51.

निष्कर्ष एक अन्य अध्ययन के द्वारा भी निकला है। प्रेमचन्द शर्मा[1] के अनुसार राजस्थान के शूद्र परिवारों में ७०·७ प्रतिशत एकाकी परिवार पाये गये। ब्राह्मणों में ३८·८ प्रतिशत, क्षत्रियों में ३१·२ प्रतिशत तथा वैश्यों में १८·७ प्रतिशत एकाकी पाये गये। इससे स्पष्ट है कि शूद्रों में उच्च जातियों की तुलना में दुगने अनुपात में एकाकी परिवार पाये जाते हैं। वैश्यों में एकाकी परिवारों का प्रतिशत (१८·७) अत्यधिक न्यून है। ये आँकड़े निम्न तालिका में देखिये।

जाति	एकाकी परिवार	अर्ध संयुक्त परिवार	संयुक्त परिवार	योग
ब्राह्मण	३८·८	११·१	५०·१	१००·०
राजपूत	३१·२	१२·५	५५·३	१००·०
वैश्य	१८·७	१५·५	६५·८	१००·०
शूद्र	७०·७	५·८	२३·५	१००·०

वैश्यों में संयुक्त परिवार की प्रवृत्ति अधिक होने के अनेक कारण हैं। वैश्य परिवार अधिकांशतः व्यापारी तथा उद्योगपति हैं। व्यापार अधिक पूंजी से अच्छा किया जा सकता है इसलिये वे साथ में ही रहते हैं यदि वे पृथक हो जायें तो पूँजी बिखर जायेगी तथा उसका महत्व समाप्त हो जायेगा। साख (Credit) भी परिवार की सम्पत्ति पर आधारित रहती है। इसमें एक कहावत भी प्रसिद्ध है "बँधी मुठी लाख की खुले पीछे खाक की" अर्थात् बँधी हुई मुट्ठी लाख रु० की होती है तथा खुलने के उपरान्त उसका कोई मूल्य नहीं रहता। यह जाति मिताचरता से अनुशासित होती है। इनमें शिक्षा भी बहुत कम पाई जाती है।

उपरोक्त परिवर्तन अन्य अध्ययनों से भी स्पष्ट होता है। डाक्टर कपाडिया[2] के नवसारी (Navsari) कस्बे के अध्ययन से भी ऐसा ही ज्ञात होता है। निम्न तालिका देखिए —

[1] P C Sharma, op, cit, p 20

[2] K M Kapadia Rural Family Patterns in Sociological Bulletin, Vol V No 2 p 113

जाति	एकाकी परिवारों की सख्या	संयुक्त परिवारों की संख्या	एकाकी परिवार प्रतिशत में	संयुक्त परिवार प्रतिशत में
कोली	३१५	२६४	५३·७	४५·७
व्यावसायिक जातियाँ (१)	५२	६८	४३ ३	५६ ७
व्यावसायिक जातियाँ (२)	१५	१२	५५ ६	४४·४
पट्टीदार राजपूत			२८·१	६१·६
बनिया जैन	२७	३८	४४·४	५५·७
भैया	८	१०	—	—
भरवाड़	१६	१	५७·१	४२·६
निम्न जातियाँ	६	१२	—	—
अस्पष्ट जातियाँ	७५	७५	५०·०	५०·०
योग ·	५५३	५४६	५० ३	४६ ७

व्यवसायिक जाति (१) में बढ़ाई, दर्जी, सुनार, लोहार, काछी, कुम्हार, तेली, चुड़ागर (चुड़ी बेचने वाले), धान बेचने वाले सम्मिलित हैं। व्यवसायिक (२) में धोबी, नाई, मोची माली तथा मछली पकड़ने वाले सम्मिलित है। निम्न जातियों में चटाई बनाने वाले गोसाई तथा जोगी सम्मिलित हैं। कपाड़िया ने लिखा है, "ग्रामीण समुदाय में भी संयुक्त परिवारों का अनुपात एकाकी परिवारों के प्रायः समान है।"*कपाड़िया ने भी यही निष्कर्ष निकाला है कि एकाकी परिवार निम्न जातियों में अधिक पाये जाते है। उन्होंने लिखा है "जब हम परिवार के प्रतिमान की प्रकृति पर जातियों की दृष्टि से विचार करते हैं कि उच्च जातियाँ जैसे पट्टीदार ब्राह्मण तथा बनियों मे भी संयुक्त परिवार अत्यधिक मात्रा में पाये जाते हैं। संयुक्त परिवार का अनुपात एकाकी परिवार से ५.३ है। तुलनात्मक दृष्टि से निम्न जातियाँ जैसे कोली, व्यवसायिक जातियाँ (२) तथा मारवाड़ में एकाकी परिवार अधिक पाये जाते हैं, संयुक्त परिवार का एकाकी परिवार से अनुपात ६.११ है। अर्थात निम्न जातियों में प्रत्येक संयुक्त परिवार के पीछे १.⁻ एकाकी

*"In the rural community, the proportion of joint families is almost the same as that of nuclear families" Ibid p 113

परिवार पाये जाते हैं जब कि उच्च जातियों में प्रत्येक ०.६ एकाकी परिवार के पीछे एक संयुक्त परिवार पाया जाता है।"[1]

डा० देसाई के महुवा (Mahuwa) कस्बे का अध्ययन भी महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। उनके अध्ययन में भी ५३ प्रतिशत एकाकी परिवार पाये गये। उन्होंने लिखा है "अब यदि हम निवास स्थान के आधार पर एकाकी समूह को एकाकी परिवार मानें तो प्राय ५३ प्रतिशत परिवार एकाकी हैं।"[2]

डा० देसाई ने परिवार की प्रकृति केवल सहनिवास (Co-Residence) सहभोजन (Commensality), आकार तथा गृह में पारस्परिक सम्बन्धों पर ही आधारित नहीं मानी है। उनके अनुसार अन्य तत्व भी इससे अधिक महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने लिखा है, "सहनिवास, सहभोजन, आकार तथा गृह के अन्तर्गत सम्बन्ध की कसौटियाँ अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं। जो अधिक महत्वपूर्ण हैं वे सम्पत्ति आय तथा गृह के अन्तर्गत सदस्यों के बीच एवं उनके बाहर के नाते दारों के बीच के अधिकार तथा पारस्परिक कर्त्तव्य परायणता है।"[3] इस परिभाषा के आधार पर डा. देसाई ने ७२% परिवार अपने अध्ययन में संयुक्त परिवार बताये हैं तथा २७% एकाकी परिवार।

डा. कपडिया तथा डा. देसाई दोनों ने ही यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि संयुक्त परिवार अभी भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं तथा एकाकी परिवार की प्रवृत्ति अधिक नहीं है। डा. कपाडिया ने लिखा है, "इस प्रकार आज भी

---

[1] "However, when the nature of the family pattern is viewed in relation to castes, it is evident that the higher castes, viz the Patidars the Brahmins and even the Banias have predominantly joint family, its proportion to the nuclear family being nearly 5 3 The comparatively lower castes such as the Kolis funcional castes II and the Bharwads show a greater incidence of nutclear family, the proportion of joint family to the nuclear family being 9 11 That is, whil eamong the higher castes we find 0 6 nuclear family per eyery joint family, among the lower castes every joint family has as its counterpart 1 2 nuckar families" ibid, p 113

[2] "Now if we take the residentialy nuclear group as the nuclear family nearly 53 percent families are nuclear families," Dr I P Desai The joint Family of India—An analysis in Sociological Bulletin Vol V No 11 Sept 1956, p 154

[3] "What matters are the property, income, and the rights and obligations between persons within the households and the kin without it" Ibid p 144

हिन्दू भावनायें सयुक्त परिवार के पक्ष में हैं।"[1] इन विद्वान समाजशास्त्रियो के निष्कर्ष की प्रवृत्ति से मेरा विनम्र मतभेद है। जहाँ तक डा देशाई द्वारा सयुक्त परिवार की परिभाषा का आधार परम्परात्मक लक्षणो के स्थान पर नवीन लक्षणो का है, वह एक सरहानीय तथ्य है। उन्होंने इस पक्ष पर बल देकर सयुक्त परिवार के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट कर दिया है। वास्तव मे केवल परिवारों के पृथक रहने या भोजन करने इत्यादि स ही उन्हे एकाकी परिवार नहीं समझ लेना चाहिये। इस पर भी यह निश्चित है कि सयुक्त परिवारों की सख्या मे दिन प्रति दिन ह्रास होता जा रहा है। तथा एकाकी परिवारों की सख्या मे वृद्धि होती जा रही है। यह कहना उचित नहीं होगा कि एकाकी परिवार नहीं बढ रहे हैं। अन्यत्र इन दोनों ही लेखको ने अप्रत्यक्ष रूप से इस तथ्य को स्वीकार किया है। भारत के जनगणना आयुक्त के अनुसार एकाकी परिवार ग्रामो में ३३ प्रतिशत तथा नगरो में ३८ प्रतिशत पाये जाते हैं। डा. देसाई द्वारा निर्मित कठोर कसौटियो पर चढ़ने के उपरान्त उनके अध्ययन मे २८ प्रतिशत परिवार एकाकी पाये गये। भविष्य की गति इङ्गित करने के लिये परम्परा स इतना अन्तर पर्याप्त है। इसके लिये तथ्यों के होते हुए तर्क की आवश्यकता नहीं है। डा. कपाड़िया ने भी लिखा है "इन दोनों अन्वेषणों के परिणाम यह स्पष्ट करते हैं कि पिछले २० वर्षों मे स्नातको का संयुक्त परिवार म रहना लगभग ५ प्रतिशत कम हो गया है। परन्तु सयुक्त परिवार मे रहने की इच्छा अत्यधिक बढ़ गई है। जो सयुक्त परिवार में रहना चाहते हैं उनकी सख्या दुगुनी हो गई हे तथा इसके विरोधियों की आधी रह गई है।"[2] इससे यह स्पष्ट ह कि इच्छा का प्रश्न बहुत कुछ प्राचीन आदर्श से चिपके रहने की मनोवृत्ति पर आधारित है। यह भारतीय सस्कृति की विशेषता हे कि जीवन के आदर्श कुछ और होते हैं। तथा व्यवहारिक रूप मे कार्य उनके विपरीत आदर्शों के द्वारा होता हे। कई बार कुछ वस्तुए दूर से प्रिय लगती हैं तथा मनुष्य उनकी इच्छा करता है, परन्तु व्यवहार का अनुभव उसे वास्तविकता का ज्ञान करा देता है। सयुक्त परिवार के विषय मे

[1] "Hindu sentiments are hence even to day in favour of the Joint family" K M Kapadia 'Marriage and Family in India' 1958, p 232

[2] The results of these two inquiries suggest that the number of graduates living in joint family has declined by about 5 percent in the last twenty years, but the desire to live jointly has increased immensely the number of those desirous having doubled and that of those opposing having halved" Ibid, p 260

भी यह अक्षरशः सत्य है। तथ्य स्पष्ट रूप से इङ्गित कर रहे हैं कि संयुक्त परिवारों की संख्या कम होती जा रही है। अतः हम चाहें या न चाहें वर्तमान परिस्थितियों में संयुक्त परिवार कम होते जा रहे हैं तथा कम होते जावेंगे। उपरोक्त विवरण से हमें हिन्दू परिवारों की प्रकृति की वर्तमान अवस्था का सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो गया। अन्त में हम संयुक्त परिवार के भविष्य पर विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

संयुक्त परिवार का भविष्य
(Future of the Joint Family)

डा कपाडिया ने उचित ही लिखा है, 'अभी तक संयुक्त परिवार ने ऐसे कष्टमय समय को पार किया तथा उसका भविष्य खराब नहीं है।"[1] संयुक्त परिवार के आनन्दों को जयशङ्कर प्रसाद ने अत्यन्त सुन्दर काव्यमय भाषा में व्यक्त किया है·—

> बच्चे बच्चों से खेलें, हो स्नेह बढ़ा उनके मन में
> कुल लक्ष्मी हो मुदित, भरा हो मङ्गल उनके जीवन में।
> बन्धुवर्ग हों सम्मानित, हो सेवक सुखी प्रणत अनुचर,
> शान्तिपूर्ण हो स्वामी का मन, तो स्पृहणीय न हो क्यों घर।[2]

परन्तु वास्तविकता यह कि श्री प्रसाद का यह आदर्श गृह अब संयुक्त परिवारों में नहीं पाया जाता तथा भविष्य में ऐसी कोई आशा भी नहीं की जा सकती। इसमें सन्देह नहीं कि संयुक्त परिवार अति शनैः शनैः परिवर्तित हो रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि *संयुक्त परिवार का विघटन होने पर भी कई दृष्टियों से यह काफी समय तक अपना महत्व बनाये रखेगी व प्रभावित करती रहेगी, विशेषकर हिन्दू समाज को। आसाम की १९३१ की जनगणना विज्ञप्ति में संयुक्त परिवार हैं, के शीघ्र समाप्त होने पर बड़ा सन्देह प्रकट किया है। मद्रास तथा अन्य राज्यों में भी यही अवस्था है।*

परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि संयुक्त परिवार का भौतिक स्वरूप छिन्न भिन्न हो चुका है तथा उसकी विशेषतायें भी समाप्त होती जा रही हैं। संयुक्त परिवार के समाप्त होने पर एक नवीन परिवार प्रतिमान का उदय हो रहा है। परिवार

---

[1] "The joint family has so far survived such strains and stresses and its future is not black." K. M Kapdia, "Marriage and Family in India", (1959), p 272.

[2] अजात शत्रु, प्रथम दृश्य। जयशङ्कर प्रसाद।

की संस्था के लिये वर्तमान समय संक्रान्ति काल है। नवीन प्रतिमान शनैः शनैः विकसित हो रहा है परन्तु उसकी निश्चित रूपरेखा अभी नहीं खींची जा सकती। नवीन प्रतिमान पूर्व तथा पश्चिम के समिश्रण द्वारा आधुनिक परिस्थितियों का परिणाम होगा। सम्भव है कि भौतिक दृष्टि से पृथक छोटे छोटे परिवार विकसित हो जायें तथा उनके सदस्य अपने अन्य सम्बन्धियों के प्रति अपने कर्त्तव्य पृथक् रहते हुए भी निभाते रहें। वर्तमान समय में परिवार बहुत कुछ इसी प्रकार के पाये जाते हैं।

अध्याय ६

आधुनिक परिवार

(Modern Family)

परिवार अनेक नवीन सामाजिक परिवर्तनों के कारण परिवर्तित होता जा रहा है आधुनिक परिवार इन परिवर्तनों का प्रतिफल है। इस अध्याय में हम आधुनिक *परिवार के ढाँचे एवं कार्यों का विश्लेषण करेंगे।*

आधुनिक परिवार का ढाँचा
(Structure of the Modern Family)

आधुनिक परिवार का ढाँचा परम्परात्मक परिवार से अत्यधिक भिन्न है। परम्परात्मक परिवार का अध्ययन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। अब हम *आधुनिक परिवार के ढाँचे के प्रमुख लक्षणों का विश्लेषण करेंगे।*

(१) पितृसत्तात्मक अधिकार में कमी
(The Decline of Patriarchal Authority)

पूर्व के परिवारों में पिता या पति को अत्यधिक शक्ति एवं अधिकार हुआ करते थे। यहाँ तक कि पितृसत्तात्मक अपनी पत्नी तथा बच्चों को बेच भी सकता *था। स्त्रियों को सम्पत्ति के कोई भी अधिकार नहीं थे। बच्चे तथा स्त्रियाँ प्रत्येक* दृष्टि से पितृसत्ताक (Patriarch) पर आश्रित रहते थे। वह परिवार का स्वामी तथा राजा होता था।

आधुनिक युग में पितृसत्ताक के ये अधिकार अति न्यून रह गये हैं। उसके समस्त अधिकार छिन गये हैं। एक प्रकार से वह परिवार का वैधानिक मुखिया है। उसकी तुलना इङ्गलैण्ड के राजा से की जा सकती है। आधुनिक परिवार का मुखिया वैधानिक अधिकारी है, न कि निरंकुश पितृसत्ताक देश के कानूनों के अनुसार स्त्रियों तथा बच्चों को अनेकों अधिकार प्राप्त हो गये हैं। बच्चों पर माता तथा पिता दोनों का समान अधिकार होता है। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति उच्च होती जा रही है। पुरुष तथा स्त्री की स्थिति परिवार में समान होती है। समसत्तात्मक (Equalitarian) परिवार आधुनिक युग में पाये जाते हैं। *बच्चों की शक्ति भी बढ़ती जा रही है। माउरर (Mowrer) ने उचित ही* लिखा है, ' वास्तव में वे परिस्थितियों में प्रबलता प्राप्त करने की ओर ध्यान देते हैं,

उनकी इच्छायें परिवार की नीति को निश्चित करती हैं। अतः झुकाव सन्तानात्मक परिवार की ओर है जिसमें बच्चा प्रवज्ञ कार्य करता है।"* यदि बच्चों की शक्ति इसी प्रकार बढ़ती जा रही है तो शीघ्र ही आधुनिक परिवार सन्तानात्मक परिवार (Foliocentric Family) हो जायगा।

(२) परिवार के आकार में ह्रास

(The Decline in the Size of the Family)

आधुनिक परिवार का आकार छोटा होता जा रहा है। पति पत्नी तथा बच्चों के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धी साथ में बहुत कम रहते हैं। अधिकतर नवविवाहित-युग्म अपने सास श्वसुर के साथ रहना पसन्द नहीं करते हैं।[1] इतना ही नहीं अपितु कुछ देशों में तो बच्चे उत्पन्न करना भी माता पिता उपयुक्त नहीं समझते। अमेरिका में नि.सन्तान परिवारों की सख्या अत्यधिक है। जन गणना के अनुसार ४८.६ प्रतिशत परिवारों में १८ वर्ष से कम उम्र का कोई बालक नहीं पाया गया तथा २१.३ प्रतिशत परिवारों में १८ वर्ष से कम उम्र का केवल १ बालक पाया गया। इङ्गलैंड तथा वेल्स में १६३१ ई० में औसत परिवार का आकार ३.७२ व्यक्ति था। इसी वर्ष ६,८६,००० व्यक्ति बिना घर-बार के अकेले रहते हुए पाये गये[2]। अमेरिका में तो जनसंख्या अत्यधिक गिरती जा रही है तथा वहाँ के नेताओं को इसकी बड़ी चिन्ता है। फोल्सम (Folsom) ने लिखा है, "दो बच्चों का परिवार आजकल का व्यापक सामाजिक नियम या आदर्श है।"[3] अमेरिका आधुनिक परिवारों के प्रतिमानों का एक छोर है।

परिवार में कृषि का कार्य न होने के कारण अधिक सदस्यों की आवश्यकता नहीं पड़ती। अन्य आर्थिक कारक भी परिवार के आकार को छोटा करते जा रहे हैं

---

*"They in fact tend to dominate the scene, their wishes determining the policy of the family Thus the trend seems to be toward the foliocentric family in which the child plays the dominant role" Ernest R Mowrer 'The Family' University of Chicago, Chicago Press, (1932), p. 274

[1] See Howard M Bell Youth Tell Their Story, American Council on Education, Washington, D C (1938), pp 43, 257

[2] See Sixteen Census of the United States Population 'Families', (1943), p 72

[3] "The two-child family is now a prevailing social standard or ideal" J. K Folsom The Family and Democratic Society, p 188

प्राकृतिक परिवार भी बड़ा नहीं हो पाता है, क्योंकि सन्तान निरोध के अनेक साधन उपलब्ध हैं। इन कारकों के फलस्वरूप आधुनिक परिवार आकार की दृष्टि से बहुत छोटा हो गया है।

(३) अस्थायी परिवार (Instable Family)

आधुनिक परिवार अस्थाई होता है। सामाजिक गतिशीलता अत्यधिक बढ़ गई है, इसके फलस्वरूप परिवार एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते रहते हैं।

विवाह विच्छेद भी अत्यधिक बढ़ गये हैं। भारत जैसे रूढ़िवादी एवं धर्म परायण देश में भी विवाह-विच्छेद स्वीकार कर लिया गया है। अमेरिका में १९४० ई० में १६८ विवाह विच्छेद १००० विवाहों में पाये गये।*

(४) घर अमहत्वपूर्ण (Home Unimportant)

आधुनिक परिवार के लिये घर नाम की वस्तु कोई महत्व नहीं रखती। लोग किराये के मकानों तथा होटलों में रहना अधिक पसन्द करते हैं। यह अमेरिका के विषय में अत्यन्त सत्य है। डा० प्लान्ट (Plant) ने लिखा है कि न्यू जेरेसी में रहने वाली ७८ प्रतिशत जनसंख्या ५ वर्ष के उपरान्त अपना घर बदल देती है। माउरर (Mowrer) ने भी लिखा है कि शिकागो में टेलीफोन रखने वाली जनसंख्या एक स्थान पर औसत रूप से २.८३ वर्ष रहती है।

(५) नातेदारी—कम महत्वपूर्ण (kinship—Lessimportant)

आधुनिक परिवार के लिये नातेदारी का अधिक महत्व नहीं रहा। लोग अपने रिश्तेदारों से अधिक सम्बन्ध नहीं रखते। पहले प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति को निश्चित करने के लिये अपने रिश्तेदारों का पूर्ण विवरण दिया करता था। परिवार उसकी सामाजिक स्थिति निश्चित करता था। आधुनिक परिवार का इस दृष्टि से कोई महत्व नहीं है। व्यक्ति अपने कार्य एवं योग्यता के द्वारा अपनी सामाजिक स्थिति को प्राप्त करता है। इन कारणों के फलस्वरूप नातेदारी का आधुनिक परिवार के लिये कोई महत्व नहीं रहा है।

(६) लिङ्गों के सम्बन्ध (Relation of the Sexes)

आधुनिक परिवार में लिंगों के सम्बन्ध भी परिवर्तित हो गये हैं। पुरुष परिवार का निरंकुश स्वामी नहीं रहा है। स्त्री के अधिकार परिवार में बढ़ गये हैं। कुछ देशों में तो स्त्रियों के अधिकार इतने बढ़ गये हैं कि लोगों को सन्देह है कि निकट भविष्य में ये परिवार मातृसत्तात्मक (Matriarchal) न बन जायें। माउरर ने लिखा है, "यद्यपि अब भी पति परिवार को नाम प्रदान करता है तथा उसकी पत्नी उसका उपनाम अधिक औपचारिक अवसरों पर प्रयोग किया करती

*See Statistical Abstract of the Unit d States (1923)

है, इन तथ्यों के होते हुए भी पति अब अनेक परिवारों में अनेक परिवार का मुखिया नहीं रहा। वह अब पारिवारिक दायरे से उस निरंकुश राजा के समान भी नहीं रहा, जिसके शब्द ही विधि हों। वस्तुत वह (पिता) भाग्यशाली है यदि उसके बच्चे उस पर हस्तक्षेप करने वाले बाहरी व्यक्ति के समान नहीं समझते हैं अथवा प्रबन्ध करने वाले उस सम्बन्धी की तरह जिसके सहयोग की, बच्चों के किसी कार्य-क्रम के प्रति उसकी पत्नी के विरोध को समाप्त करने के लिये, आवश्यकता हो।

इसके विपरीत पत्नी पारिवारिक दायरे में अपने आपको अपने पति से उच्चतर नहीं तो पूर्णतः समान अवश्य समझती है। वह पारिवारिक समूह के भाग्य को सहानुभूतिपूर्वक नियन्त्रित करती है लेकिन अल्प प्रतिज्ञ व्यक्ति की तरह नहीं। वह अब पहले की तरह दास वृत्ति करने वाली गुलाम नहीं रही। जहाँ तक बच्चों का प्रश्न है पिता से अधिक उसकी (माता की) आज्ञाओं पर ध्यान दिया जाता है।"

स्त्रियों ने आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ साथ सामाजिक तथा राजनैतिक शक्ति को भी प्राप्त किया है। इसके फलस्वरूप परिवार में उसकी स्थिति उच्च हो गई है।

(७) विवाहित स्त्रियों के कार्य (Jobs for Married Women)

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विवाहित स्त्रियों का घर में काम बहुत हल्का हो गया है। आर्थिक आवश्यकतायें भी इतनी बढ़ गई हैं कि साधारण परिवारों की आमदनी पूरी नहीं पड़ती। इन कारणों से साधारण आधुनिक परिवार की स्त्रियों के लिए यह अनिवार्य हो गया है और उन्हें बाहर कार्य करना पड़ता है। कुछ स्त्रियाँ जो उच्च शिक्षा प्राप्त हैं तथा जिन्हें नौकरों इत्यादि की सुविधा प्राप्त

---

*"The husband is no longer the head of the household in many families in spite of the fact that he still provides the family names as well as the christian name which his wife uses upon more formal occasions Within the family circle, however, he is no longer the autocrat whose word is law In fact, he is lucky if his children look upon him other than as a middlesome outsider, or as an ally to be catered to when support is needed in breaking down his wife's opposition to some programme of the children

The wife, on the other hand, finds herself quite the equal of her husband in the family circle, if not the superior She rules the destiny of the family group with sympathetic, but none the less determined hand She is no longer the drudge and slave of other days So far as the children are concerned, her commands are even more be taken into account than those of the father" Ernest R Mowrer 'The Family, (1932)', pp 274-275

है वे अन्य बाहरी कार्यों में अपना समय व्यतीत करती हैं। उदाहरण के लिये सामाजिक गतिविधियाँ जैसे महिला समिति, ताश खेलना, चाय पार्टी इत्यादि, राजनैतिक गतिविधियाँ, सामाजिक सेवा कार्य अन्य परमार्थिक तथा धार्मिक कार्य तथा कला एवं साहित्यिक गतिविधियाँ इत्यादि। इन प्रवृत्तियों के कारण आधुनिक परिवार का ढाँचा ही बदल गया है।

(८) लिङ्ग के प्रति बदलती धारणाएं
(*Changing Attitudes towards Sex*)

लिंग के प्रति धारणाएँ बदलती जा रही हैं। अनेक लिंग प्रतिबन्ध समाप्त हो गये हैं। स्त्रियाँ तथा पुरुष साथ साथ घूम फिर सकते हैं तथा सम्बन्ध रख सकते हैं। लिंग के विषय में ज्ञान बढ़ता जा रहा है। यौन शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है।

स्त्रियों की लिंग सम्बन्धी स्वतन्त्रता के कारण विवाह के पूर्व लिंग सम्बन्धों की संख्या बढ़ गई है। इस दृष्टि से अधिक कहना कठिन है क्योंकि यह गुप्त कार्य है तथा इसका अध्ययन अत्यन्त कठिन है। फिर भी इस प्रकार के कुछ अध्ययन अमेरिका इत्यादि देशों में किये गये।* इन प्रवृत्तियों के कारण स्त्रियों का आधार ही बदल गया है। फोल्सम ने उचित ही लिखा है, "पुन आधुनिक लैङ्गिक स्वतन्त्रता स्त्रियों को साधारण स्त्रियों में आदर्श स्वरूप बनने के लिये बाध्य करने के विपरीत उन्हें उनके व्यक्तित्व एव आवश्यकता के अनुसार मौलिक रूप से पृथक लैङ्गिक जीवन बिताने की अनुमति दे देती है।"† स्त्रियों तथा पुरुषों दोनों

*See G V Hamilton Research in Marriage pp 77–83, Albert and Charles Boni Inc, New York (1929) Katharine B Davis Factors in the sex life of twenty two hundred women pp 18–19, Harper and Brothers, New York (1929) Lewis M Terman *Psychological Factors in Marital Happiness* pp 319-341, McGrow Hill Book Company, Inc, New York (1938) D D Bromley and F H Britten Youth and Sex Harper and Brothers, New York (1938) A C Kinsey Sexual Behavier in Human Male W B Sounders Comp *Philadelphia* (*1948*) pp 547–594

† "Again modern sex liberalism allow women to live radically different sexual lives according to their personalties and needs, instead of forcing them to confirm to a common 'feminine' pattern" J K Folsom 'Family and Democratic Society' p 179

को ही लिंग सम्बन्धों के समान अधिकार प्राप्त हो गए हैं। लिंग नैतिकता का दोहरा सिद्धान्त (Double Standard of Morality) समाप्त हो गया है। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप परिवार के ढाँचे में अनेक परिवर्तन हुए हैं। सदरलैण्ड तथा वुडवर्ड ने उचित ही लिखा है, "लिंग रूढ़ियों में परिवर्तन के द्वारा परिवार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।"[1]

आधुनिक परिवार के कार्य (Function of Modern Family)

आधुनिक परिवार (Structure) तो परिवर्तित हो ही गया है जिसका विवरण हम ऊपर दे चुके हैं। ढाँचे के परिवर्तन के साथ साथ कार्य भी परिवर्तित होते रहते हैं। अब हम आधुनिक परिवार के महत्वपूर्ण कार्यों पर प्रकाश डालेंगे।

(१) सन्तानोत्पत्ति (Reproduction)

सन्तानोत्पत्ति आधुनिक परिवार का एक महत्वपूर्ण कार्य है। फोलसम ने लिखा है, "(सन्तानोत्पत्ति) यह परिवार का अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य है।"[2] आधुनिक परिवार भी यह कार्य कर रहा है परन्तु सन्तोषजनक स्थिति नहीं है। बच्चे आधुनिक परिवारों में बहुत कम पैदा होते हैं। फ्राँस तथा अमेरिका आदि देशों में यह एक बहुत बड़ी समस्या है। कई परिवार तो बिल्कुल ही बच्चा पैदा नहीं करते।

(२) स्नेह प्रदान करने का कार्य (Affectional Function)

आधुनिक परिवार का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य स्नेह प्रदान करना है। पहले परिवार में इस महत्वपूर्ण कार्य का इतना महत्व नहीं था। मेकाइवर ने उचित लिखा है, "पितृसत्तात्मक परिवार में पति पत्नी का सामञ्जस्य यदि आर्थिक आवश्यकता और सामाजिक दबाव के द्वारा प्राप्त नहीं किया जाता तो एक दूसरे पर लादा जाता था। आज आवश्यकता और दबाव कम हो गये हैं तथा परिवार यदि अनावश्यक कार्यों द्वारा असभ्यतापूर्वक जोड़ा गया तो अधिक समय तक शक्तिशाली नहीं रह सकेगा तथा एकता के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अतिक्रमण

---

[1] "The family has been greatly affected by the change in sex mores" Sutherland and Woodword 'Introductory Sociology (1943), p 605

[2] "This, of course, is the most essential societal function of the family" J K Folsom op cit p 187

अपनी शक्ति के आधार पर करना पड़ेगा।'[1] स्नेह आधुनिक युग में परिवार का अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार बन गया है। ऑगबर्न तथा निमकॉफ ने लिखा है, "यह आशा की जाती है कि आधुनिक विवाह में स्नेह प्रदान करने के कार्य पर अत्यधिक बल दिया जायेगा।"[2] बर्गेस तथा लॉक भी लिखते हैं, "पारस्परिक स्नेह विवाह और परिवार का आवश्यक आधार बनता जा रहा है।"[3]

(३) आर्थिक कार्य (Economic Functions)

आधुनिक परिवार के आर्थिक कार्य अत्यन्त भिन्न हो गये हैं। कुछ समाज शास्त्रियों का विचार है कि परिवार के आर्थिक कार्य समाप्त होते जा रहे हैं। यह कथन उतना सत्य नहीं है जितना कि प्रतीत होता है। इसमें सन्देह नहीं कि परिवार के आर्थिक कार्य जो परम्परात्मक परिवार के थे वे अब आधुनिक परिवार के नहीं हैं। आधुनिक परिवार के नवीन आर्थिक कार्य प्रारम्भ हो गये हैं। फोलसम ने उचित लिखा है 'आविष्कार पुराने कार्यों को कम कर देते हैं और नए कार्यों को उत्पन्न कर देते हैं।'[4] परिवार से उत्पादन का कार्य बड़ी २ फैक्टरियों तथा मिलों को हस्तान्तरित हो गये हैं। घर में बहुत कम वस्तुयें बनाई जाती हैं इसके स्थान पर अन्य आर्थिक कार्य जैसे-व्यक्तिगत सेवा (Personal Service), सामान को जमा करना (Storage) तथा उपभोग (Consumption) का कार्य विस्तृत हो गया है। उपभोग की दृष्टि से तो परिवार का अत्यधिक महत्व है। सदरलैंड तथा वुडवर्ड ने उचित ही लिखा है, "आर्थिक उत्पादन परिवार से हस्तान्तरित हो रहा है परन्तु हो सकता है एक उपभोग की इकाई के रूप में

---

[1] "In the patriarchal family the adjustment of the parthers to one another was imposed, if not otherwise attained, by economic necessity and social pressure To-day the necessity and the pressure are lessened and the family, no longer strong if rudely cemented by extraneous functions, has to surmount in its own strength the psychological tests of its cohesion" Robert M MacIver 'Society, A Text book of Sociology p 224

[2] "It is to be expected that in marriage to-day the affectional element would be emphasised to the extreme" Ogburn and Nimkoff A Hand book of Sociology, (1950) p 478

[3] "Mutual affection is becoming the essential basis of marriage and the family" Burgess and Locke The Family from Institution to Companionship (1953) p 25

[4] "Inventions eliminate old tasks and create new ones" J K. Folsom Family and Democratic Society, p 170

परिवार अभी भी वास्तविक महत्व रखता है।"*

(४) समाजीकरण (Socialization)

समाजीकरण वह प्रक्रिया है जो प्राणीशास्त्रीय व्यक्ति को उसके मानव पर्यावरण के अनुसार बनाती है तथा उसे इस योग्य बनाती है कि वह मानव समाज में, जिसमें कि वह पैदा हुआ है, सफलतापूर्वक कार्य कर सके। परिवार इस कार्य को सफलतापूर्वक करता रहा है तथा करता है। सदरलैण्ड तथा वुडवर्ड ने उचित लिखा है, "यह (परिवार) अत्यन्त महत्वपूर्ण समाजीकरण की समिति है।"[1]

इसमें सन्देह नहीं है कि समाजीकरण का कार्य परिवार के अतिरिक्त अन्य सस्थाओं तथा समितियों ने ले लिया है परन्तु फिर भी परिवार का प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सदरलैण्ड तथा वुडवर्ड ने उचित लिखा है, 'परन्तु परिवार वास्तविक शिल्पकार होता है वह व्यक्तित्व की मौलिक योजना का निर्माण करता है।"[2] आग्बर्न तथा निमकॉफ ने भी यही विचार व्यक्त किये हैं, उन्होंने लिखा है, "अत: एक वयस्क के व्यक्तित्व, जो कुछ भी वह है, को बनाने में पारिवारिक पर्यावरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है।"[3]

आधुनिक संसार में बच्चों के समाजीकरण करने के प्रयत्न कई सस्थाओं ने किये परन्तु कोई भी उसे उतनी सफलता के साथ नहीं कर सका। किण्डर गार्टेन्स (Kindergartens), नर्सरी विद्यालय, बाल पालन पोषण केन्द्र इत्यादि अनेक समितियाँ परिवार के इस कार्य में सहायता करती हैं परन्तु ये सब मिलकर भी परिवार की तुलना में कुछ भी नहीं हैं। अमेरिका में भी यह स्वीकार किया गया है कि बच्चों का समाजीकरण जितना अच्छा परिवार कर सकता है उतना कोई नहीं कर सकता। बच्चों के अधिकार पत्र से यह भावना स्पष्ट है। उसमें रखा गया है:-

* "Economic production may have been diverted from the family, but as a consumption unit the household still has real importance" Sutherland and Woodward 'Introductory Sociology' (1949), p. 612.

[1] "It is the most important socializing agency" Sutherland and Woodward Ibid. p. 613.

[2] "But the family remains the real architect, it lays down the basic plan of the personality" Ibid. p 613

[3] "Hence the family environment is the most important in making the personality of the adult what it is" Ogburn and Nimkoff · 'Handbook of Sociology,' p 483.

"प्रत्येक बच्चे के लिये एक घर तथा वह प्रेम एवम् सुरक्षा जो कि एक घर प्रदान करता है और उस बालक के लिये जिसे प्रतिपोषण (Foster Care) के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग न हो, उसके अपने घर का जैसा निकटतम प्रतिस्थापक।"†

समाजीकरण आधुनिक परिवार का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। आधुनिक परिवार में इस कार्य का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। व्यक्तित्व के विकास के लिए प्रेम तथा सुरक्षा का अत्यधिक महत्व है। आधुनिक संसार इतना अधिक अवैयक्तिक (Impersonal) हो गया है कि समस्त सुखों के होते हुए भी प्रेम तथा सहानुभूति प्राप्त करना दुर्लभ हो गया है। परिवार ही एक ऐसी समिति है जिसमें इसे प्राप्त किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति का विकास बिना प्रेम के नहीं हो सकता है। अतः समाजीकरण के लिए परिवार *अत्यन्त उपयुक्त समिति है तथा आधुनिक युग में वह और भी महत्वपूर्ण हो गई है।* सदरलैण्ड तथा वुडवर्ड ने उचित लिखा है, "बालक समाज में रहने की मौलिक प्रशिक्षा एक संस्था में नहीं अपितु परिवार में पाते रहेंगे।"**

(५) मनोरंजन के कार्य (Recreational Functions)

यद्यपि आधुनिक युग में अनेक व्यवसायिक मनोरंजन के साधन उपलब्ध होते हैं तथापि आधुनिक परिवार बिना पैसे के ऐसा मनोरंजन प्रदान करता है कि सारे दूसरे साधनों द्वारा प्राप्त मनोरजन फीके पड़ जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि परिवार के कुछ मनोरंजन के कार्य व्यवसायिक मनोरञ्जन की समितियों तथा अन्य समितियों ने ले लिये हैं परन्तु यह प्रक्रिया एक दिशा में ही नहीं हुई है। *वास्तव में परिवार से कुछ मनोरंजन के कार्य अन्य संस्थाओं ने ले लिये हैं तथा* अन्य संस्थाओं के कुल मनोरंजन कार्य एवम् नवीन मनोरंजक कार्य परिवार को प्राप्त हो गये हैं। फालसम ने उचित लिखा है, "मनोरंजन के कार्य कुछ परिवार

---

† "For every child a home and that love and security which a home provides and for that child who must receive foster care the nearest substitute for his own home" White House Conference Addresses and Abstracts of Committee Reports (Children's Chapter), p 45 (Published by D Appleton Century Co , Inc , New York, 1931), This position taken in 1930 was reaffirmed at the 1940 White House conference on Children in a Democracy, p 84, U S Children's Bureau Publication No 266, Washington, D C 1940

** "Children will continue to get their basic training for social living not in an institution but a home' Sutherland and Woodward 'Introductory Sociology,' p 614

को तथा कुछ परिवार से हस्तान्तरित हो रहे हैं।"* आधुनिक परिवार ने एक प्रकार से अपने इस कार्य में वृद्धि करली है तथा अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

(६) शिक्षा प्रदान करने का कार्य (Educational Function)

शिक्षा प्रदान करने का कार्य मुख्यतया अन्य संस्थाओं ने ले लिया है। बच्चों को स्कूलों तथा कालेजो में अधिक वर्षों तक पढ़ना पड़ता है। शिक्षा अत्यधिक विशिष्ट हो गई तथा विशिष्ट संस्थाएं इसे प्रदान करती हैं। फिर भी परिवार इस दृष्टि में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करता है।

आधुनिक परिवार की समस्यायें

(१) पति और पत्नी के सम्बन्ध

आज के युग में परिवार की सबसे बड़ी समस्या पति और पत्नी का सम्बन्ध है। प्राचीन युग एवं आधुनिक युग में संघर्ष चल रहा है। पति अपने को ऊँचा समझता है और पत्नी अपने को। पूर्व काल में स्त्री का कोई महत्व नहीं था। वह वे पढ़ी लिखी एवम् हर दृष्टिकोण से पति पर निर्भर थी। अब वह पूर्ण स्वतन्त्र एवम् आत्मनिर्भर होती जा रही है। यद्यपि सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है फिर भी एक दूसरे के अधिकारों एवम् कर्त्तव्यों की स्पष्ट व्याख्या नहीं हो पाई है।

(२) विवाह विच्छेद

आधुनिक युग में परिवार की दूसरी प्रमुख समस्या विवाह विच्छेद का अधिकार है। विवाह का आधार पवित्र समझौता न होकर वैज्ञानिक समझौता हो गया है, जिसे चाहे जब तोड़ा जा सकता है। विवाह का उद्देश्य जीवन के कार्यों की पूर्ति न होकर सुख, आनन्द एवं भोग विलास की सन्तुष्टि हो गयी है। दोनों को आपस में बाँधने के बन्धन समाप्त हो गये हैं।

(३) माता पिता एवं बच्चों का संघर्ष

माता पिता एवम् इनके बच्चों का संघर्ष दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। परिवार के हाथ में कोई भी ऐसी शक्तियाँ नहीं हैं जिनके द्वारा माता पिता बच्चों पर नियन्त्रण कर सकें।

---

* "Recreational function are being transferred, some to, and same from, the family" J K Folsom The Changing Role of the family in Annuals of the American Academy of Political and Social Science, 1940.

(४) सन्तानों के पालन पोषण की समस्याएँ

पति और पत्नी दोनों ही घर के बाहर कार्य करने जाते हैं, इसके कारण बच्चों के पालन पोषण की समस्या बढ़ती जा रही है। माता केवल घर की चहारदीवारी में न रह कर समाज के अन्य कार्यों एवम् उत्सवों में भाग लेती है, इसके कारण वह बच्चों की देखभाल नहीं कर पाती। यद्यपि दूसरी व्यवस्थायें की गई हैं परन्तु वे सन्तोषजनक फल नहीं पा रही हैं।

(५) सुरक्षा का अभाव

पहले पति पत्नी का सम्बन्ध स्थायी होता था और उसके कारण परिवार के सदस्यों में सुरक्षा की भावना बनी रहती थी। अब इस भावना का लोप हो गया है क्योंकि दोनों को ही सदैव यह डर बना रहता है कि जाने कब दूसरा साथी मुझे छोड़ दे। आपत्तिकाल में ऐसा अधिकांश रूप से देखा गया है कि किसी न किसी बहाने विवाह विच्छेद हो जाता है।

(६) पारस्परिक विश्वास की कमी

पारस्परिक विश्वास की अत्यधिक कमी पाई जाती है। एक दूसरे पर कोई विश्वास नहीं करता। यह परिवार न होकर एक संयुक्त सीमित कम्पनी हो गई है।

(७) न्यून जन्म दर

जन्म दर दिन प्रति दिन गिरती जा रही है। ऐसे बहुत से परिवार पाये जाते हैं, जिनमें बच्चे ही नहीं होते। इसके कारण राष्ट्र की जनसंख्या तो कम होती ही है साथ ही साथ परिवार अस्थायी होता जाता है। बच्चों के कारण पति और पत्नी बन्धन में बंध जाते हैं। जिन परिवारों में बच्चे होते हैं उनमें विवाह विच्छेद कम होता है।

पारिवारिक पुनर्गठन (Family Reorganisation)

परिवार के विघटन को रोकने के लिये पारिवारिक पुनर्गठन के प्रयत्न हो रहे हैं। अमेरिका एवम् इंगलैंड जैसे देशों में कई समितियाँ बन गई हैं। कॉलेजों में भी विवाह एवम् परिवार की शिक्षा दी जाने लगी है। १९२९ ई० में सर्व प्रथम उत्तरी कैरोलीना के विश्वविद्यालय ने विवाह एव परिवार का पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया। अब अधिकांश विश्वविद्यालयों एवम् महाविद्यालयों में इसकी शिक्षा दी जाती है। गृह अर्थशास्त्र (Home Economics) एवम् गृह विज्ञान (Home Science) के विषय भी प्रारम्भ कर दिये गये हैं। लिंग सम्बन्धी शिक्षा भी दी जाती है।

विवाह के विषय में विचार विमर्श की समितियाँ खुल गई हैं। सामाजिक सेवा कार्य (Social work) में इस कार्य का विशेष महत्व है। पारिवारिक संघर्षों को भी विवाह सम्बन्धी विचार विमर्श केन्द्रों पर सुलझाया जाता है।*

परिवार का भविष्य (Future of the Family)

यद्यपि परिवार के अधिकांश कार्य दूसरी संस्थाओं द्वारा ले लिये गये हैं फिर भी परिवार का आधुनिक समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। जो लोग ऐसा कहते हैं कि परिवार समाप्त हो रहा है, वे परिवार के एक विशेष स्वरूप को ही परिवार समझ बैठे हैं। परिवार मानव समाज का एक स्थायी आधार है और मानव प्रकृति का अङ्ग बन गया है। इसके समाप्त होने का विचार गलत है। यह हो सकता है कि इसका स्वरूप ही बदल जाय। बरगेस और लॉक ने उचित ही लिखा है, "परिवार का, परिवर्तित परिस्थितियों से अनुकूलता का दीर्घ इतिहास एवम् व्यक्तिगत सन्तुष्टि एव व्यक्तित्व के विकास में स्नेह के आदान प्रदान के कार्य की महत्ता के आधार पर यह भविष्यवाणी करते हुए सुरक्षा प्रतीत होती है कि परिवार जीवीत रहेगा।"**

प्रश्न

१. आधुनिक परिवार का विवरण विस्तार में लिखिये।
   (Describe in detail the Modern Family)
२. आधुनिक समुदायों में नवीन परिवर्तन विवाह और परिवार के स्वरूपों में क्यों हो रहे हैं ?
   (What are the causes of recent changes in marriage and family patterns in modern communities ?) Lucknow 1951.

* See The Training of full time Worker on Marriage and Family Counselling" Marriage and Family Living Vol VI, pp 70-71 and "Family Life Education" in Social Work Year Book 1951, p 179 Luther E Woodward

** " it seems safe to predict that the family will survive, both because of its long history of adaptability to changing conditions and because of the importance of its function of affection-giving and receiving in personal satisfaction and in personality development " Burgess and Locke, 'The Family' American Book Company Inc, New York 1945 p 750

३ संयुक्त परिवार प्रथा के गुण और दोष लिखिये ।
(Discuss briefly the merits and demrits of the joint family system) Agra, 1955, short note Agra, 1953 Patna, 1958.

४ "आर्थिक परिवर्तन ने परिवार के स्वरूप एव प्रकृति पर गहरा प्रभाव डाला है परन्तु इसने मौलिक प्राणीशास्त्रीय और सामाजिक आवश्यकताओं, जो कि परिवार के प्रमुख कार्यों का सृजन करती हैं पर कोई प्रभाव नहीं डाला है।' समालोचना कीजिये ?
("Economic change has deeply affected the form and character of the family, but it does not affect the basic bilogical facts and the Social needs which create the essential functions of the family." Comment.) Rajputana, 1953.

५ उन कारकों का विश्लेषण कीजिये जो कि पश्चिम में परिवार को निर्बल बना रहे हैं। परिवार की समिति के लिये नई समस्याएँ क्या हैं ?
(Examine the factors that are weakening the family in the west. what are the new problems for the association of the Family ? Rajputana, 1954

६. उन परिवर्तनों का वर्णन कीजिये जो कि आधुनिक परिवार में हो रहे हैं। उन कारकों का पूर्ण विवरण दीजिये जो कि पारिवारिक जीवन में ये परिवर्तन ला रहे हैं। उदाहरण दीजिए।
(Describe the changes that the modern family is undergoing Discuss fully the factors that have led to these changes in family life, 'Give examples) Rajputana, 1955

SELECTED READINGS

1 Prabhu, 'Hindu Social Organisation, Chapter VI.
2 Kapadia, 'Marriage and Family in India' Chapters X, XI, XII
3. Hindu Marriage Act, 1959.

अध्याय ७

स्थानीय समूह : खानाबदोशी झुण्ड गोत्र, वन्य जाति

(Spatial Groups . Horde, Clan, Tribe)

स्थानीय समूह वे समूह होते हैं जो एक निश्चित स्थान स सम्बन्ध रखते हैं। इस अध्याय में हम गोत्र (Clan) और वन्य जाति (Tribe) पर विशेष रूप स विचार करगे। इनके साथ खानाबदोशी झुण्ड पर भी कुछ प्रकाश डालेंग।

सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य किसी निश्चित स्थान पर नहीं रहता था। भोजन की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रस्थान करता रहता था। आधुनिक युग में यद्यपि अधिकाश ससार की जन सख्या निश्चित स्थान पर रहने लगी है तथापि कुछ ऐसे मानव समूह हैं जो आज भी घूमते फिरते हैं।

खानाबदोशी दल (Band)

खानाबदोशी दल भी उन लोगों का समूह है जो किसी न किसी कारण एक स्थान स दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं। भ्रमणशीलता इनकी प्रमुख विशेषता है। चूँकि यह एक निश्चित भू भाग पर भ्रमण करते रहते हैं इसलिये दल में सदस्यों की सख्या अधिक नहीं होती। पहले ये लोग फल फूल एव शिकार की खोज में घूमते थे परन्तु अब ये पशुपालन का कार्य करते हैं। एक स्थान स दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहने के कारण भी इनकी सख्या कम होती रहती है क्योंकि इनका जीवन कठिन एव दुष्कर होता है। भौगोलिक पर्यावरण एक ओर से वार करता है और प्राणीशास्त्रीय पर्यावरण दूसरी ओर से।

खानाबदोशी दल दो प्रकार के होते हैं—(१) शिकारी खानाबदोशी दल (Hunting Band), (२) पशुपालक खानाबदोशी दल (Pastoral Band)

खानाबदोशी झुण्ड (Horde)

खानाबदोशी झुण्ड उन खानाबदोशी दलों को कहते हैं जिनकी सख्या बहुत अधिक हो जाती है। इन दोनों में केवल अशों का अन्तर है। एक की सख्या कम रहती है और जब यही सख्या बढ़ जाती है तो उसे दूसरा नाम दे देते हैं।

हम की भावना (We' Sentiment)

खानाबदोशी दल (Band) और खानाबदोशी झुण्ड (Horde) दोनों में ही 'हम की भावना बड़ी दृढ़ होती है। जीवन का सम्पूर्ण समय साथ व्यतीत

करने के कारण एवं अधिकांश आपत्तियों का मिलजुल कर सामना करने के कारण प्रेम और बन्धुत्व की भावना बढ़ती जा रही है।

'हम' की भावना तो इनमें पाई ही जाती है और यह एक निश्चित् भू-भाग पर भ्रमण करते हैं, यद्यपि एक निश्चित् भू भाग में स्थायी रूप से निवास नहीं करते। ऐसी दशा में यह समुदाय (Community) कहलायेंगे या नहीं। मेरा विचार है कि इन्हें समुदाय कहना चाहिये क्योंकि इनके अन्दर 'हम' की भावना या सामुदायिक भावना (Community Sentiment) पाई जाती हैं और मनुष्य अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति इसी समूह में करता है इसमें मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत होता है। समुदाय की यह सबसे बड़ी विशेषता है।

गोत्र (Clan)

गोत्र का प्रारम्भ वंश समूह (Lineage) से हुआ है। वंश समूह वह समूह होता है जिसमें एक पूर्वज की सन्तानें होती हैं परन्तु इसमें केवल एक ओर के सम्बन्धी गिने जाते हैं अर्थात् माता की ओर के या पिता की ओर के। यह पूर्वज वास्तविक होता है जो कि अधिकाश पाँच या छः पीढ़ियों पहिले होता है।

गोत्र की परिभाषा डाक्टर मजूमदार और मदान ने निम्न शब्दों में की है, *"एक गोत्र अधिकांश रूप से कुछ वंश समूह का योग होता है और वे अपनी* उत्पत्ति एक कल्पित पूर्वज से मानते हैं। यह पूर्वज मानव, मानव के समान, पशु, पेड़, पौधा या निर्जीव वस्तु हो सकता है।"*

गोत्र दो प्रकार के होते हैं—एक मातृवंशीय गोत्र (Matrilineal clan) और दूसरा पितृवंशीय गोत्र (Patrilineal clan)। मातृवंशीय गोत्र में (Matrilineal clan) लड़की के जितने भी बच्चे होते हैं वे उस गोत्र में गिने जाते हैं। एक स्त्री के भाई और बहिनें सब गोत्र की होती हैं। उसके बच्चे और उसकी बहिनों के बच्चे और इन बच्चों में लड़कियों के बच्चे सब शामिल होते हैं। भाइयों के बच्चे इस गोत्र में सम्मिलित नहीं होते हैं।

इसी प्रकार पितृवंशीय गोत्र (Patrilineal clan) में एक आदमी के भाई और बहिन, उसकी सन्तानें और उसके भाइयों की सन्तानें सम्मिलित होती हैं परन्तु बहिनों की सन्तानें उस गोत्र की नहीं होतीं।

---

* *"Thus a sib or clan is often the combination of a few* lineages and descent may be ultimately traced to a mythical ancestor, who may be human, human like, animal, plant or even inanimate." Mazumdar, D N and Madan, T N. 'Social Anthropology', p 114.

गोत्र (Clan) की सदस्यता अनिवार्य एवं पूर्वनिश्चित होती है। गोत्र (Clan) ऐच्छिक (Voluntary) समिति नहीं है बल्कि जन्म होते ही बच्चे की सदस्यता निश्चित हो जाती है। कभी-कभी गोत्र बदल भी सकता है क्योंकि अधिकांश समाजों में गोद लेने की प्रथा (Adoption) पाई जाती है। साधारण परिस्थिति में एक बार एक व्यक्ति एक गोत्र का सदस्य हो गया तो जीवन भर उनका सदस्य बना रहना पड़ता है। कई बार कई मनुष्यों को दण्ड देने के लिये गोत्र से निष्कासित कर देते हैं। गोत्र से निष्कासन बड़ा कठोर दण्ड है। आधुनिक समाज का मृत्यु दण्ड और आदिम समाज का गोत्र निष्कासन समान है।

गोत्र और बहिर्विवाह (Clan and Exogamy)

गोत्र और बहिर्विवाह में घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक गोत्र के सदस्य आपस में विवाह नहीं करते। उनका विश्वास है कि उनकी उत्पत्ति एक पूर्वज से हुई है, अतः वे आपस में भाई बहिन हैं और भाई बहिन का यौन सम्बन्ध नहीं हो सकता इसलिये वे गोत्र के बाहर विवाह करते हैं।

गोत्रों के नाम

गोत्र के नाम निम्न बातों पर आधारित होते हैं।

(१) ऋषियों के नाम पर (Eponym)

बहुत से गोत्रों के नाम बड़े बड़े ऋषियों के नाम पर आधारित होते हैं। हिन्दुओं में गोत्रों के नाम अधिकांश ऋषियों के नाम पर आधारित हैं जैसे शाँडिल्य, भृगु, कश्यप, भारद्वाज इत्यादि।

(२) टोटम के नाम पर (Totemistic Names)

बहुत से गोत्र अपने नाम, जिस टोटम में विश्वास होता है उसके नाम पर, रखते हैं। जैसे—कुंजम (Kunjam—meaning goat), नाग सौरी (Nag Sori—meaning Snake) इत्यादि।

(३) उपहासपूर्ण नाम या उपनाम (Nick names)

कुछ गोत्रों के नाम उनके विशेष गुणों के कारण पड़ जाते हैं। कुछ के नाम उपहास की दृष्टि से भी पड़ जाते हैं। उदाहरणस्वरूप कमार (Kamar)। अन्य जाति के गोत्र का नाम जगत (Jagat) है। इसका कारण यह है कि उनके पूर्वज संसार भर में पर्यटन करते रहते थे।

(४) भू-भागीय नाम (Territorial Names)

जब किसी गोत्र का नाम उसके रहने के स्थान के कारण पड़ जाता है तो उसे भू भागीय कहते हैं।

गोत्र के कार्य

(१) पारस्परिक सहायता एवं सुरक्षा

गोत्र पारस्परिक सहायता एवं सुरक्षा प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण संगठन है जिसका आधार रक्त सम्बन्ध का होता है। व्यक्ति कभी अकेला नहीं रहता। *एक व्यक्ति बिना समूह के अपने को सुरक्षित नहीं समझता। परिवार में व्यक्ति* सुरक्षित रहता ही है, परन्तु गोत्र उसे और अधिक सुरक्षा प्रदान करता है।

ससार के लिये गोत्र के सदस्य एक व्यक्ति के समान होते हैं। उनका सिद्धांत होता है कि यदि कोई उनके गोत्रीय भाई को मारता है तो वह उसको मारता है। गोत्रीय भाई गलती पर हो या ठीक बात पर, परन्तु गोत्र उसका सदैव पक्ष लेगा। इसी प्रकार एक गोत्र अपने सदस्यों के हर कार्य के लिये उत्तरदायी होता है। यदि गोत्र का एक व्यक्ति कोई गलती करता है तो वह सम्पूर्ण गोत्र की गलती समझी जाती है।

(२) वैधानिक कार्य

गोत्र अपने सदस्यों के लिये नियम बनाता है और वन्य जाति से भी इस सम्बन्ध में जुड़ा रहता है।

(३) गोत्र के सदस्यों पर नियंत्रण

गोत्र अपने सदस्यो पर नियन्त्रण भी रखता है। नियन्त्रण रखने के लिये महत्वपूर्ण सामाजिक नियन्त्रण गोत्र निष्कासन (Expulsion from the clan) है। अधिकांश गोत्रों में एक समिति होती है जो कि प्रशासन एव न्याय का कार्य करती है।

(४) बहिर्विवाह (Exogamy)

गोत्र, बहिर्विवाह (Exogamy) के द्वारा, विवाहों को नियन्त्रित करता है। मेलिनवास्की (Malinowsky) के अनुसार बहिर्विवाह प्रथा वह स्वयं सुरक्षा की युक्ति है जिसके द्वारा गोत्र अपनी एकता को बनाये रखता है, क्योंकि यौन *सम्बन्धी इच्छाओं को गोत्र के बाहर करना पड़ता है, इसलिये समूह में द्वेष एवं* ईर्ष्या की भावना विकसित नहीं हो पाती।

(५) प्रशासन का कार्य

गोत्र कभी कभी प्रशासन का भी कार्य करता है। इनकी समिति होती है जो कि सारे कार्य निश्चय करती है और शेष सदस्य उसके अनुसार कार्य करते हैं।

(६) धार्मिक कार्य

गोत्र धार्मिक कार्यों को भी करता है। गोत्र का मुखिया मुख्य पुजारी भी होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि गोत्र अनेक कार्यों की पूर्ति करता है। इन कार्यों में जो काय प्रमुख हैं प्रथम पारस्परिक सुरक्षा का प्रदान करना और द्वितीय विवाहों को सुचारु रूप स चलाना एव नियन्त्रण करना।

गोत्र और अर्द्धांश समूह (Clan and Moiety)

परस्पर आदान प्रदान सामाजिक सम्बन्धों का आधार है। क्योंकि कोई भी सामाजिक सम्बन्ध बिना परस्पर सम्बन्धों के सम्भव नहीं है। आदान प्रदान का सिद्धान्त कुछ समाजों के नियमों में निहित रहता है और कुछ समाज उस स्पष्ट रूप म व्यक्त कर देते हैं। ट्रोब्रियण्ड एव मेलीनिशियन समाजों ने इस स्पष्ट सस्था का रूप दे दिया है। समाज को दो भागों में बाँट देते हैं। इन्हें अर्द्धांश समूह (Moiety) कहते हैं। प्रत्येक अर्द्धांश समूह बहिर्विवाह में विश्वास करता है। एक अर्द्धांश समूह दूसरे अर्द्धांश समूह को स्त्रियाँ विवाह के लिये देता है। अन्य आदान प्रदान भी होते रहते हैं।

फ्रेटरी (Phratries)

जब एक वन्य जाति में केवल दो गोत्र (Clans) होते हैं तो उन्हें अर्द्धांश समूह (Moiety) कहते हैं। फ्रेटरी (Phratry) जुड़े हुए एव सम्बन्धित गोत्रों के समूह को कहते हैं। फ्रेटरी व्यवस्था में गोत्र अपना अस्तित्व पृथक रखते हुये भी एक फ्रेटरी के अङ्ग होते हैं। एक फ्रेटरी के सारे गोत्र आपस में अधिक निकट सम्बन्धों का अनुभव करते हैं।

यह व्यवस्था अब बहुत कम पाई जाती है।

वन्य जाति (Tribe)

वन्य जाति एक प्रकार का समुदाय होता है। इसकी परिभाषा करते हुये। डा० मजूमदार (Dr. Mazumdar) ने लिखा है, "एक वन्य जाति परिवारों या परिवारों के समूह का सङ्कलन होता है जिनका एक सामान्य नाम होता है। इसके सदस्य एक निश्चित भू भाग पर रहते हैं, समान भाषा बोलते

हैं और विवाह, व्यवस्था या उद्योग के विषय में निश्चित निषेधात्मक नियमों का पालन करते हैं और एक निश्चित एवं मूल्यवान परस्पर आदान प्रदान की व्यवस्था का विकास करते हैं।"†

पेरी (Perry) ने वन्य जाति के दो आवश्यक तत्व बताये हैं। उसका कहना है कि कम से कम निम्न आवश्यक तत्व तो होने ही चाहिये :–

(१) समान भाषा।

(२) समान भू भाग।

वन्य जाति अन्तर्विवाह (Endogamy) के सिद्धान्त को मानती है। एक वन्य जाति कई गोत्रों में विभाजित होती है, जिसका विवरण हम पहिले कर चुके हैं।

एक वन्य जाति (Tribe) अपने सदस्यों के लिये सब कुछ होती है। वही उनकी समिति है, वही उनका समूह है और वही उनकी राजनैतिक संस्था है। प्रत्येक वन्य जाति (Tribe) एक राजनैतिक इकाई भी होती है।

वन्य जाति का सङ्गठन

वन्य जाति की एक वन्य जाति समिति (Tribal Council) होती है, इस समिति के सदस्य प्रमुख सरदार होते हैं। यह समिति वन्य जाति के विषय में निश्चय करती है और अन्य सदस्य उन निश्चयों के अनुसार कार्य करते हैं।

वन्य जाति की आवश्यकता इन कारणों से है:–प्रत्येक सदस्य अपनी रक्षा चाहता है और यह रक्षा उसे अपने समूह द्वारा ही मिलती है। एक वन्य जाति के सदस्य सामान्यतया रक्त सम्बन्धी होते हैं। इन रक्त सम्बन्धियों से निकट सम्पर्क रखने के कारण बन्धन दृढ़ हो जाता है। एक वन्य जाति के सदस्य एक सामान्य धर्म के मानने वाले होते हैं। ये लोग जादू टोने में भी विश्वास करते हैं और यह समझते हैं कि वन्य जाति के सदस्य आपस में रहने के लिये ही बनाये गये हैं।

साधारणतया वन्य जातियाँ पिछड़ी हुई हैं इन जातियों के लिये भारत सरकार

---

† "A tribe is a collection of families or groups of families bearing a common name, members of which occupy the same territory, speak the same language and observe certain taboos regarding marriage, profession or occupation and have deve loped a well assessed system of reviprocity and mutuality obligation" Dr D N Mazumdar, 'Races and Cultures in India,' Universal Publishers Ltd, Lucknow, p 93.

विशेष सहायता कर रही है। भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी सभ्य समाज इनकी ओर ध्यान दे रहे हैं। सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि इन लोगों को किस प्रकार से आधुनिक सभ्यता में लाया जाय। बहुत से मानवशास्त्रियों एवं समाज-शास्त्रियों का मत है कि इन पर आधुनिक सभ्यता नहीं लादनी चाहिए।

प्रश्न

१. आप निम्न से क्या समझते हैं ?
(अ) खानाबदोशी दल, (ब) खानाबदोशी झुण्ड, (स) गोत्र, (द) वन्य जाति।

(What do you understand by the following ?)

(a) Band, (b) Horde, (c) Clan, (d) Tribe
Agra, 1956

SELECTED READINGS

1 D. N. Mazumdar, 'Races and Cultures in India Chapter I,

2. Mazumdar and Madan, 'An Introduction to Social Anthropology' Chapter XV

3. Hoebel, 'Man in the Primitive World' Chapter XVIII

तृतीय खण्ड

सामाजिक समूह—२
Social Groups-2

अध्याय ८ : वर्ग तथा जाति
(Class and Caste)

,, ९ : प्रजाति : अर्थ तथा वर्गीकरण
(Race : Meaning and Classification)

,, १० : प्रजाति : भारत में प्रजातियाँ
(Race : Races in India)

,, ११ : प्रजाति : प्रजातिवाद
(Race : Racism)

,, १२ : राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता
(Nation and Nationality)

अध्याय ८

वर्ग तथा जाति
(Class and Caste)

ससार मे कोई भी समाज वर्गहीन नहीं है । वे सस्कृतियाँ जो कि दूर निर्जन बनो में पोषित एव पालित हैं या वे समूह जिन्हे सभ्यता ने अपनी झलक नहीं दिखाई है, उनमे भी वर्ग सुशोभित है । यद्यपि देखने में वे समूह वर्गहीन दिखाई पड़ते हैं परन्तु उनमे भी वर्गों का विभाजन सामाजिक सगठन, आयु लिंग (Sex) और रक्त-सम्बन्ध (Kinship) के कारण होता है । जैसे जैसे समाज का आकार एव सङ्गठन बढ़ता जाता है वैसे वैसे वर्गों का अन्तर भी स्पष्ट होता जाता है । सामाजिक स्तरण (Social Stratification) प्रत्येक समाज मे पाया जाता है परन्तु इसका स्वरूप प्रत्येक समाज में भिन्न होता है ।

हमारे सम्मुख दो प्रश्न हैं । पहला प्रश्न यह है कि सामाजिक स्तरण के सार्वभौमिक लक्षण (Universal Features) क्या होते हैं और दूसरा प्रश्न यह है कि इसके अस्थिर लक्षण (Variable Features) क्या हैं जो कि विभिन्न सस्कृतियों मे परिवर्तित होते रहते हैं ।

इन प्रश्नों का उत्तर देने के पूर्व स्थिति (Status) पर विचार करेंगे क्योकि इससे वर्ग को समझाने मे अत्यधिक सहायता मिलेगी ।

स्थिति (Status)

स्थिति शब्द का प्रयोग हम दैनिक भाषा मे बहुत करते हैं । हर बात में स्थिति का ध्यान लोग दिलवाते रहते हैं । आखिरकार स्थिति है क्या ?

स्थिति की अति सरल परिभाषा ऑगबर्न और निमकॉफ (Ogburn and Nimkoff) ने निम्न शब्दों में की है, "एक व्यक्ति की स्थिति, उसका समूह में स्थान एव दूसरों के सम्बन्ध मे उसका क्रम है ।"[1]

हम कह सकते हैं कि एक व्यक्ति की स्थिति (Status) ऊँची है या नीची वह नेता है या अनुयायी । स्थिति यह भी सकेत करती है कि किसी व्यक्ति का क्या कार्य है । उदाहरण स्वरूप हम किसी व्यक्ति की स्थिति को नेता के नाम से पुकारते हैं । नेता की स्थिति के साथ कार्य भी निहित है या

---

[1] "A person's status is his group standing or ranking in relations to others" Ogburn and Nimkoff 'A Handbook of Sociology' p 208

नहीं। इस कार्य को किये बिना वह नेता नहीं कहला सकता। नेता योजना बनाता है, आज्ञा देता है और यह देखता है कि आज्ञा का पालन किया जाता है। किसी महाविद्यालय के प्रधानाचार्य (Principal) की स्थिति में कोई व्यक्ति कार्य करता है तो उसे कुछ निश्चित कार्य भी करने पड़ते हैं। स्थिति एक प्रकार का अधिकार है जो कि समूह द्वारा व्यक्ति को प्रदान किया जाता है और वह व्यक्ति इस अधिकार से जुड़े हुए कार्यों को करता है। प्रधानाचार्य को ही लीजिए, वह अन्य अध्यापकों की भाँति किसी विषय को तो पढ़ाता ही है साथ ही साथ वह यह भी देखता है कि दूसरे अध्यापक अपने कार्य को सुचारु रूप से करते हैं या नहीं। वह महाविद्यालय का समस्त प्रबन्ध करता है, आज्ञायें देता है, उनका पालन करवाता है और सारे कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखता है। इसी प्रकार परिवार मे एक स्त्री की स्थिति माता के रूप में होती है। इस स्थिति के अधिकारस्वरूप वह गृहस्वामिनी होती है और परिवार में सब पर नियन्त्रण रखती है, परन्तु इस अधिकार के साथ साथ उसके कुछ विशिष्ट कर्तव्य भी होते हैं। वह भोजन बनाती है या बनवाने का प्रबन्ध करती है घर मे व्यवस्था रखती है एव बच्चों का पालन पोषण करती है। यही स्त्री जब अपने माँ बाप के घर होती है तो इसकी स्थिति पुत्री की होती है और इस स्थिति से जुड़े हुए कार्य उसे करने पड़ते है। वह स्वतन्त्र होती है, उसे घर की व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। जो कुछ भी माता पिता आज्ञा देते हैं उसे वह कर लेती है।

इस प्रकार प्रत्येक स्थिति के साथ निश्चित कार्य जुड़े रहते हैं। इन निश्चित कार्यों को समाजशास्त्र मे अभिनय या नियत कर्त्तव्य (Role) कहते हैं। यह निश्चित कर्त्तव्य ही मनुष्य की स्थिति के द्योतक होते हैं।

स्थिति एक व्यक्ति का अपने समूह में स्थान है और चूंकि मनुष्य का सम्बन्ध विभिन्न समितियो से होता है इसलिये प्रत्येक समिति में उसका एक स्थान होता है। यह स्थान उसकी स्थिति द्वारा निर्धारित होता है और उसी के अनुसार स्थिति के नियत कर्त्तव्यों (Roles) को उसे करना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप रामबाबू एक पुरुष है। पुरुष होने के कारण उसकी समाज में एक स्थिति है। उसे पति और पिता बनना पड़ता है और उससे सम्बन्धित कार्य करने पड़ते हैं। वह हिन्दू धर्म का मानने वाला है, इसलिये कभी कभी पूजा पाठ करना पड़ता है एव मन्दिरों में जाना पड़ता है। वह एक महाविद्यालय का प्रधानाचार्य है, इसके कारण उसे सम्पूर्ण महाविद्यालय का प्रबन्ध देखना पड़ता है। वह एक सामाजिक कार्यकर्ता है और सामाजिक कार्यकर्ता समिति के मन्त्री होने के नाते उसका राज्य में उच्च स्थान है। वह रूपनगर में एक सुन्दरवाटिका

भवन (Bungalow) में रहता है और मोहल्ला समिति का सदस्य भी है। वह अपने नगर के सर्वश्रेष्ठ मनोरंजन केन्द्र (Club) का भी सदस्य है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रामबाबू की स्थिति को निश्चित करने के लिये इन सब स्थितियों का योग करना होगा।

परन्तु इस प्रकार का योग किस प्रकार से रामबाबू की स्थिति को निश्चित कर सकता है। स्थितियों का इस प्रकार जोड़ करना असम्भव है। जब हम मनुष्य की सामाजिक स्थिति (Social Status) का प्रयोग करते हैं तो उसकी विभिन्न स्थितियों को जोड़ न करके केवल उसकी सामाजिक वर्ग स्थिति (Social Class Status) की ओर सकेत करते हैं। उदाहरणतया जब हम घनश्याम दास बिरला, राम कृष्ण डालमिया, पण्डित जवाहरलाल नेहरू की स्थिति पर विचार करते हैं तो यह नहीं विचार करते कि वे पुरुष हैं या स्त्री, नवयुवक हैं या वृद्ध, हिन्दू हैं या मुसलमान, रूपनगर में रहते हैं या चाँदनी चौक में, बल्कि यह देखा जाता है कि उनकी समाज में सामान्य रूप से किस वर्ग में गणना होती है। हर एक बिरला एव डालमिया को पूँजीवादी वर्ग का कहेगा। अतः हम देखते हैं कि वर्ग स्थिति अन्य स्थितियों से अधिक महत्वपूर्ण होती है।

सामाजिक वर्ग की परिभाषा

सामाजिक वर्ग की परिभाषा ऑगबर्न और निम्कॉफ ने निम्न शब्दों में की है, "एक सामाजिक वर्ग उन व्यक्तियों का योग है जिनकी कि आवश्यक रूप से एक निश्चित समाजों में समान सामाजिक स्थिति है।"[1] जिन्सबर्ग, वर्ग से व्यक्तियों के उस समूह को समझता है "जो कि सामान्य वशक्रम, समान व्यवसाय, धन एवं शिक्षा के कारण एकसा जीवन बिताते हैं और जो समान विचारों, भावनाओं एवं व्यवहारों का भण्डार रखते हों और जो इनमें से कुछ या सब के कारण एक दूसरे के समानता के आधार पर मिलते हों और अपने को एक समूह का सदस्य समझते हों, चाहे इस बात की चेतनता उनमें विभिन्न अंशों में पाई जाती हो।"[2] लेपियर सामाजिक वर्ग की परिभाषा इन शब्दों में करता है, "एक

[1] "A social class is the aggregate of persons having essentially the same social status in a given society" Ogburn and Nimkoff, 'A Handbook of Sociology', p 210

[2] A class is a group of individuals, ...who, through common descent, familiarity of occupation, wealth and education have come to have a similar mode of life, a similar stock of ideas, feelings, attitudes and forms of behaviour and who on any or all of these grounds, meet one another on equal terms and regard themselves, although with varying degrees of explicitness as belonging to one group.' Ginsberg, M, 'Class Consciousness' Encyclopaedia of the Social Sciences', Vol. III, p 536

सामाजिक वर्ग सुस्पष्ट सांस्कृतिक समूह है जिसे कि सम्पूर्ण जनसंख्या में एक विशिष्ट स्थान या स्थिति प्रदान की जाती है।"[1]

वर्ग समाज में एक महत्वपूर्ण वास्तविकता (Fact) है। यद्यपि आधुनिक राजनैतिक एवं सामाजिक विचारधाराय वर्ग की निन्दा करती हैं, परन्तु विश्व मे इससे अधिक सत्य वस्तु व्यक्तिगत एव सामाजिक अनुभव में दूसरी नहीं है।

सामाजिक वर्ग एक दूसरे को समान समझने वाले व्यक्तियों का समूह है। वे इस समूह के व्यक्तियों को अपना समझते हैं और दूसरे समूह के व्यक्तियों को पराया समझते हैं। वर्ग की कल्पना प्रत्यक्ष (Subjective) है।

वर्ग के आवश्यक तत्व

वर्ग की व्यवस्था या दावे के तीन प्रमुख तत्व होते हैं –

(i) स्थिति समूहों का उतार चढ़ाव (Hierachy of Status Groups)

समाज मे स्थिति समूहों का एक क्रम होता है। इस क्रम के ही कारण वर्ग का निर्माण होता है।

(ii) ऊंच नीच की भावना

समाज के विभिन्न स्थिति समूहों मे ऊंच नीच की भावना रहती है सब ही इस व्यवस्था को स्वीकार करते हैं।

(iii) वर्ग चेतनता (Class Consciousness)

सामाजिक वर्ग के सदस्यों में वर्ग चेतनता पाई जाती है। यही चेतनता मनुष्य के व्यवहार को निश्चित करती है।

सामाजिक वर्ग की कसौटी
(The Criteria of Social Class)

सामाजिक वर्ग विभिन्न कसौटियाँ है। इनमें से कोई भी महत्वपूर्ण हो सकती है। कौनसी कसौटी महत्वपूर्ण होगी इसका निश्चय संस्कृति के मूल्य करते हैं। बीसञ्ज और बीसञ्ज ने लिखा है "स्थिति की कसौटियाँ संस्कृति के मूल्य निश्चित करती हैं।"[2] विभिन्न संस्कृतियों मे विभिन्न कसौटियां महत्वपूर्ण

---

[1] "A Social class is a culturally defined group that is accorded a particular position or status within the population as a whole" Lapiere, 'Sociology', p 452

[2] "The criteria of status are determined by the values of the culture" Biesanz and Biesanz, "Modern Society", p 137

होती हैं। उदाहरणस्वरूप अमेरिका में धन, चीन में विद्वत्ता, भारतवर्ष में जाति या वश एव लड़ाकू वन्य जातियों में वीरता कसौटियाँ हैं। इस पर भी आधुनिक समाज में विभिन्न कसौटियों का उपयोग सामाजिक वर्ग के पहिचानने में किया जाता है। उनमें से प्रमुख धन, आय का साधन व्यवसाय की प्रकृति, निवास स्थान का प्रकार एव मोहल्ला इत्यादि हैं। यह वैषयिक (Objective) कसौटियाँ हैं।

सब से बड़ी कसौटी प्रत्यक्ष (Subjective) होती है। जो वर्ग एक व्यक्ति को अपना सदस्य स्वीकार करता है वही उसका वर्ग है।

सामाजिक वर्ग का प्रमुख निश्चयात्मक आर्थिक तत्व होता है। कार्ल मार्क्स (Karl Marx) और ऐञ्जिल्स (Engles) ने इस तत्व को बड़ी प्रधानता दी है। साम्यवादी घोषणा पत्र (Communist Manifesto) में इन्होंने समाज के सम्पूर्ण इतिहास को वर्ग के आधार पर आधारित सिद्ध किया है। आज के भौतिकवादी युग में कार्ल मार्क्स और उसके अनुयायियों का यह सिद्धान्त हमें उचित दिखाई पड़ता है।

वर्ग को पहिचानने के चिह्न (Earmarks of Class)

वर्ग को पहिचानने के लिये अनेक चिह्न हैं, उनमें से प्रमुख निम्न हैं —

(i) विभिन्न वर्गों की अपनी २ विशेष वेषभूषा होती है। वेषभूषा से यह पहिचाना जा सकता है कि यह व्यक्ति अमुक वर्ग का सदस्य है।

(ii) विशिष्ट भाषा का भी प्रयोग होता है।

(iii) प्रत्येक वर्ग के चिह्न एव प्रतीक होते हैं जैसे—राजाओं के राजमुकुट और राज दण्ड।

(iv) प्रत्येक वर्ग के रीति रिवाजों में अन्तर पाया जाता है। प्रत्येक वर्ग की एक विशिष्ट सस्कृति बन जाती है।

वर्ग के निर्माण में सहायक तत्व

(i) जन सख्या में ऐसे समूह का पाया जाना जिनमें स्पष्ट शारीरिक अन्तर पाये जाते हैं।

(ii) सन्देशवाहन के साधनों की कमी।

(iii) सामाजिक परिवर्तन की मन्द गति।

सामाजिक वर्ग के विरोधी तत्व

(i) सामाजिक परिवर्तन की तीव्र गति, वर्ग निर्माण नहीं करने देती

क्योंकि जब तक कुछ व्यक्ति अपने को एक समूह का समझने की चेष्टा करते हैं तब तक अनेक परिवर्तन हो जाते हैं।

(ii) प्रौद्योगिकी (Technology) भी वर्ग का विरोधी तत्व है। इसके कारण व्यक्ति साथ २ कार्य करते हैं और इसका प्रभाव यह होता है कि वर्ग की भावना निर्बल हो जाती है।

(iii) शिक्षा भी वर्ग की विरोधी है। शिक्षा के कारण मनुष्य ऊंच नीच की भावना को व्यर्थ समझने लगता है।

(iv) शारीरिक गतिशीलता (Physical Mobility) लोगों को विभिन्न वर्गों में रहने का अवसर प्रदान करती है, इसके कारण मनुष्य समूह का भेद भूल जाता है।

(v) राष्ट्रवादी आन्दोलन के कारण वर्ग की भावना समाप्त हो जाती है। सब एक दूसरे को भाई समझने लगते हैं और एक सम्पूर्ण राष्ट्र का वर्ग बन जाता है।

(vi) साम्यवाद वर्ग का घोर विरोधी है। वह वर्गहीन समाज का उद्देश्य रखता है।

जाति (Caste)

वर्ग जब जन्म से निश्चित होता है तो इसे जाति कहते हैं। जाति एक विशिष्ट प्रकार का वर्ग है जो केवल प्रमुख रूप से भारतवर्ष में ही पाया जाता है। यह मानव-मानव के बीच अनेक ऊंच-नीच की रेखाओं का सुन्दर प्रदर्शन है।

जाति का अर्थ

जाति की परिभाषा कूले ने निम्न शब्दों में की है, 'जब एक वर्ग पूर्णतया वंशानुसंक्रमण पर आधारित होता है तो हम उसे जाति कहते हैं।"[1] मजूमदार और मदान ने लिखा है, "एक जाति एक बन्द वर्ग है।"[2]

रिजले ने जाति को परिवारों का वह समूह बताया है जो कि एक ही पूर्वज, जो काल्पनिक मानव या देवता हो, से वंशपरम्परा चलाते हैं और एक ही व्यवसाय करते हों और उन लोगों द्वारा जो कि इसके योग्य हों एक सजाति समुदाय माना जाता हो।[3]

---

[1] "When a class is some what strictly hereditary we may call it a caste", Cooley, C H 'Social Organisation', p 11

[2] "A caste is a closed class" Mazumdar, D N and Madan, T N 'An Introduction to Social Anthropology,' Asia Publishing House, Bombay, 1956, p 221.

[3] See Risley, 'Peoples of India'

रिजले की यह परिभाषा उचित नहीं है क्योंकि वंशपरम्परा गोत्र द्वारा पहिचानी जाती है न कि जाति द्वारा।

केतकर (Ketkar) ने लिखा है कि "जाति एक सामाजिक समूह है जिस की दो विशेषतायें हैं—(१) सदस्यता केवल उन व्यक्तियों तक ही सीमित है जो कि सदस्यों से जन्म लेते हैं, और इस प्रकार से पैदा हुये व्यक्तियों को शामिल करती हैं, (२) सदस्य एक कठोर सामाजिक नियम द्वारा समूह के बाहर विवाह करने से रोक दिये जाते हैं।"[1]

यह परिभाषा सामान्य रूप से सत्य है। यद्यपि इस परिभाषा के विरोध में भी कहा जा सकता है। केतकर ने लिखा है कि सदस्य जन्म के अतिरिक्त बाहर से नहीं लिये जाते परन्तु यह अक्षरशः सत्य नहीं है। दक्षिणी भारत में ऐसे सदस्य भरती किये जाते हैं। उदाहरणतया मलाबार की अम्बलावसी जाति (Ambalavasi Caste) करन, चासा और उड़ीसा की शामीदपेसा जातियाँ।

दत्त[2] ने जाति की कोई परिभाषा नहीं की है परन्तु उसके प्रमुख लक्षणों का विवरण निम्न प्रकार किया है –

(१) एक जाति के सदस्य जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकते।

(२) दूसरी जातियों के सदस्यों के साथ खाने पीने पर भी प्रतिबन्ध है।

(३) कुछ जातियों के निश्चित पेशे हैं।

(४) जातियों की एक उतार चढ़ाव की प्रणाली है जिसमें ब्राह्मण जाति की स्थिति सर्वमान्य रूप से शिखर पर है।

(५) जाति का निर्णय जन्म से होता है और यह जीवन भर के लिये होता है, यदि वह व्यक्ति नियमों के तोड़ने पर जाति से निष्कासित न कर दिया जाय। एक जाति से दूसरी जाति से की सदस्यता ग्रहण करना संभव नहीं है।

(६) सम्पूर्ण प्रणाली ब्राह्मण की प्रतिष्ठा पर केन्द्रित एवं आधारित है।

दत्त ने जाति के प्रमुख लक्षणों को व्यक्त किया है। वे साधारणतया सत्य हैं परन्तु कुछ अपवाद पाये जाते हैं जैसे एक जाति से दूसरी जाति में प्रवेश किया जा सकता है जिसका उदाहरण हम उपर दे चुके हैं। मनु की विधिनुसार

---

[1] Caste is "a social group having two characteristics, (1) membership is confined to those who are born members and includes all persons so born, (2) the members are forbidden by an inexorible social law to marry outside the group" Ketkar, 'History of Caste in India,' p 15

[2] Dutt, N. K. 'Origin and Growth of Caste in India' p 3

भी उच्च जाति के पिता और निम्न जाति की माता से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह पिता जाति की जाति में मानी जाती है। कुछ देशी रियासतों के राजाओं को यह अधिकार था कि वे जाति का दान कर सकते थे। मनीपुर राज्य की लोही जाति को वहाँ के महाराज ने क्षत्री घोषित किया और उनको जनेउ धारण करने की आज्ञा प्रदान की। अब वे क्षत्री माने जाते हैं।

जाति की उत्पत्ति (Origin of Caste)

जाति प्रथा की उत्पत्ति के विषय में निश्चयपूर्वक कहना बड़ा कठिन है। प्रत्येक लेखक ने अपना एक सिद्धान्त इसकी उत्पत्ति के विषय में प्रतिपादित किया है। इसके फलस्वरूप जितने लेखक उतने ही सिद्धान्त बन गये। इसकी उत्पत्ति के सिद्धान्त सामान्यतया अनुमानिक सिद्धान्त (Conjectural Principles) ही हैं। प्रत्येक सिद्धान्त पर विचार करना तो अत्यन्त कठिन है। अतः उनमें से प्रमुख एवं मूल सिद्धान्तों पर हम प्रकाश डालेंगे। जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जितने प्रमुख सिद्धान्त हैं, उन्हें हम निम्नलिखित मुख्य वर्गों में विभाजित कर सकते हैं.—

(१) परम्परात्मक सिद्धान्त (Theory of Tradition)
(२) ब्राह्मणों की चतुर युक्ति (Clever Device of Brahamans)
(३) प्रजातिक सिद्धान्त (Racial Theory)
(४) व्यावसायिक सिद्धान्त (Occupational Theory)
(५) भौगोलिक सिद्धान्त (Grographical)
(६) टोटम का सिद्धान्त (Totemisitic Theory)
(७) उद्विकासीय सिद्धान्त (Evolution Theory)
(८) प्रजातीय एवं व्यावसायिक मिश्रित सिद्धान्त (Racial-Cum Occupational Theory)
(९) बहुकारक सिद्धान्त (Multiple Factor Theory)

परम्परात्मक सिद्धान्त (Theory of Tradition)

कुछ विद्वानों का मत है कि जाति प्रथा की उत्पत्ति हिन्दू परम्परा के अनुसार हुई है। हिन्दुओं के अनेक धर्म ग्रन्थों में इसके पोषक सिद्धान्त पाये

[1] ऋग्वेद म० १० सू. ९० मं० य० ३१ ११।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृत.।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

जाते हैं। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में वैदिक साहित्य में सबसे प्राचीन व्याख्या ऋग्वेद के पुरुष सूक्त[1] के एक मन्त्र में मिलती है। मनु ने भी उसी का अभिमत किया है। धर्मशास्त्रों, स्मृतियों तथा पुराणों में भी इसका वर्णन मिलता है। इसके अनुसार जब पुरुष ने अपने विभाग किये तो उसके मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जङ्घा से वैश्य तथा पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। मनु का कथन भी यह है। 'इसी प्रकार की एक और कथा प्रसिद्ध है, जिसके अनुसार कृष्ण ने अपने मुख से सौ ब्राह्मण उत्पन्न किये। अपनी भुजा से सौ क्षत्रिय, अपनी जङ्घा से सौ वैश्य तथा अपने पैरों से सौ शूद्र।'[2] कृष्ण ने भगवद्गीता में स्पष्ट लिखा है, 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'[3]

इन जातियों के कर्म भी निश्चित किये गये हैं। विशेषतया मनु ने इनके कार्यों की व्याख्या की है। ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन करना, अध्यापन करना, त्याग करना, दूसरों को त्याग में सहायता करना, शिक्षा देना और दान प्राप्त करना, जिससे वेदों की रक्षा हो सके। क्षत्रियों का कार्य शक्ति से सम्बन्धित है और उनका कर्त्तव्य अध्ययन करना, त्याग करना, शिक्षा देना, अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग करना, जीवन और धन की रक्षा करना जिससे कि समुचित राज्य व्यवस्था स्थापित हो सके। वैश्यों का कर्त्तव्य अध्ययन करना, त्याग करना, दान देना, कृषि करना, व्यापार करना, और पशुओं को पालना, जिससे कि श्रम उत्पादित हो सके। शूद्र का कार्य इन तीनों वर्णों की सेवा करना है।

हमें स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दू समाज में पहले वर्ण व्यवस्था थी। वर्ण व्यवस्था के अनुसार भी हिन्दू समाज को इसी नाम के चार वर्णों में विभाजित किया गया था। अतः यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये प्रसङ्ग वर्णों के लिये हैं या जातियों के लिये। फिर भी इस मत का महत्त्व है, क्योंकि निर्विवाद यह अधिकांश धर्म सूत्रों में पाया जाता है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि प्रारम्भ में जाति प्रथा नहीं थी पर यह प्रथा मध्य युग में निर्मित की गई।

(२) ब्राह्मणों की चतुर युक्ति (Clever Device of Brahmans)

कुछ विद्वानों का मत है कि जाति प्रथा ब्राह्मणों की एक चतुर युक्ति है।

---

[1] लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं। मुखबाहूरूपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रि वैश्यं शूद्रं च निवर्तयेत्॥ मनु. अ, १ श्लोक ३१।

[2] महाभारत शान्ति पर्व।

[3] 'मैंने चारों वर्णों का विभाग गुण तथा कर्म की दृष्टि से किया है।"
गीता अ ४।

ब्राह्मण अपनी सत्ता को चिरस्थायी बनाये रखना चाहते थे। इसके लिये जाति प्रथा से अधिक अच्छा कौन सा तरीका हो सकता था या है? उन्होंने ऐसी व्यवस्था का निर्माण किया कि न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। मनोविज्ञान के महत्वपूर्ण सिद्धान्त का ब्राह्मणों ने उपयोग किया। अब मानसिक दासता की बेड़ियों में कोई समुदाय जकड़ जाता है तो उसके स्वतन्त्र होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अबे डुबौयस (Abbe Dubois) ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। डा० घुर्ये भी इस सिद्धान्त को मानते हैं।

वह सिद्धान्त बहुत अंशों तक उचित दिखता है। ब्राह्मणों ने इस प्रथा को बनाते समय अपना पूरा पूरा ध्यान रक्खा है। यह अनेक बातों से स्पष्ट है। उदाहरणार्थ ब्राह्मण के अधिकारों को ही लीजिये। ब्राह्मण चार विवाह कर सकता है। ब्राह्मण सबसे शुद्ध है, क्योंकि उसका सृजन मुख से हुआ है। क्योंकि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है, सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ है तथा वह वेदों पर अधिकार रखता है, इसलिये वह अधिकाररूप में समस्त सृष्टि का प्रभु है। जो ब्राह्मण कह दे वह नियम है।[1] संसार में जो कुछ भी सम्पत्ति है वह ब्राह्मण की है। जिस प्रकार अग्नि प्रत्येक स्वरूप में दैविक है। उसी प्रकार ब्राह्मण चाहे विद्वान हो, चाहे मूर्ख देवताओं की श्रेणी में होता है। ब्राह्मण प्रत्येक वस्तु का अधिकारी होता है। ब्राह्मण को कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता। जिन अपराधों के लिये अन्य जातियों के लोगों को मृत्यु दण्ड दिया जाता है, उसके लिये ब्राह्मण की खोपड़ी घुटवा देना ही पर्याप्त है। "यद्यपि उसने (ब्राह्मण) प्रत्येक सम्भव अपराध किया हो फिर भी ब्राह्मण का वध नहीं करना चाहिये। उसे उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति उसी पर छोड़ देना चाहिये। तथा उसके शरीर को भी कोई क्षति नहीं होनी चाहिये।"[2] मनु ने लिखा है.—

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद् ब्रह्मणश्चैवधारणात्।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मण प्रभु॥

मनु० अ० १ श्लो० ६३

अर्थात् मुख तुल्य होने और ज्येष्ठता और वेद के धारण कराने से ब्राह्मण सम्पूर्ण जगत् का धर्म से प्रभु है। इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण इसके निर्माता रहे हैं। उन्होंने अपनी पूर्ण सुरक्षा की है। यह सिद्धान्त कहाँ तक सत्य है, यह

---

[1] ब्रह्म वाक्यं जनार्दनं।

[2] Let him never slay a Brahman, though he has committed all (Possible) crimes, Let him banish such an offender, leaving all his property (to him) and (his body) unhurt" W Jones (Ed) Sacred Book of the East', 380, VIII

कहना तो कठिन है, परन्तु यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि ब्राह्मणों ने इस प्रथा को उत्पत्ति में बड़ा योग दिया होगा तथा यह तो निःसन्देह सत्य है *कि जाति प्रथा आधुनिक युग मे ब्राह्मणों के सत्प्रयत्नों से ही जीवित है।*

(८) प्रजातिक सिद्धान्त (Racial Theory)

कई विद्वानों का मत है कि जाति की उत्पत्ति विभिन्न प्रजातियों के कारण हुई है। रिजले इसका बहुत ही महत्वपूर्ण समर्थक है। विले (Weale) का मत है कि भारत का सम्पूर्ण इतिहास रङ्गभेद की कहानी है। डा० घुरिये[1] (Dr. Ghurya), दत्त[2], राय[3] और हयावन्दना राव[4] भी इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं।

रिजले का मत है कि जातियों की उत्पत्ति प्रजाति मिश्रण तथा अनुलोम (Hypergamy) के कारण हुई। आर्यों ने प्रजातियों के व्यक्तियों को निम्न जातियों में परिवर्तित कर दिया। रिजले ने लिखा है कि प्रत्येक विजयी वर्ग नये देश में पहुँच कर विजित वर्ग से स्त्रियाँ लाते रहे हैं तथा अपनी स्त्रियाँ उन्हें नहीं देते रहे हैं। यही प्रक्रिया भारत में भी चली। इन्डोआर्य (Indo Aryan) प्रजाति भारत में आई तो उसने यहाँ के मूलनिवासियों की कन्याओं को स्वीकार किया किन्तु अपनी कन्याएँ उन्हें नहीं दीं। इस मिश्रण के फल स्वरूप अनेक जातियाँ उत्पन्न हुई।

डा० घुरये ने भी जाति प्रथा की उत्पत्ति प्रजातीय सिद्धान्त के आधार पर निर्धारित की है। उनके अनुसार इन्डो आर्य (Indo Aryan) प्रजाति जहाँ जहाँ विजयी हो कर गई वहाँ वहाँ अपने को मूलनिवासियों से ऊँचा सिद्ध करने का प्रयत्न किया। *जाति प्रथा के सब तत्व आर्यों के उन प्रयत्नों के फल हैं जिनके द्वारा वे भारत के मूल निवासियों और शूद्रों को ब्राह्मण सभ्यता के धर्म और सामाजिक वर्ग से अलग रखना चाहते थे।* गंगा के मैदान में रहने वाले आर्यों ने शारीरिक शुद्धता और साँस्कृतिक दृढ़ता को बनाये रखने की कोशिश सबसे पहले की, यद्यपि प्रारम्भ में इन्होंने अनुलोम विवाह की आज्ञा दे दी थी। इस प्रकार जाति प्रथा इन्डो आर्यन् संस्कृति के ब्राह्मणों का बच्चा है जिसे गंगा के मैदान में पाला गया है और वहाँ से देश के दूसरे भागों में ले जाया गया है।

---

[1] "Caste and Class in India", Popular Book Depot, Bombay, (1958)

[2] "Origin and growth of caste in India"

[3] "Indian Caste System"

[4] 'Brief view of the Caste System'

डा० मजूमदार के अनुसार जाति की उत्पत्ति प्रजाति सिद्धान्त के आधार पर है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा है "संस्कृति का संघर्ष तथा प्रजातियों के सम्पर्क ने ही भारत में सामाजिक समूहों को निर्मित किया।"[1] डा० मजूमदार का यह भी मत है कि साधारणतया लोग 'Caste' जो कि पुर्तगाली भाषा के कास्टास (Castas) शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है समाज का विभाजन वास्तव में यह उचित नहीं है। जाति की उत्पत्ति समझने के लिये संस्कृति की ओर झुकना चाहिये तथा इस शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान देना चाहिये। वर्ण शब्द का अर्थ होता है रङ्ग या वर्ग। प्रारम्भ में एक वर्ण दूसरे वर्ण से रङ्ग के आधार पर विभिन्न थे जो इण्डो आर्यन प्रजाति तथा भारत के मूल निवासी प्राग्द्रविड या भूमध्य सागरीयाम (Proto-Mediterranean) प्रजातियों के मिश्रण से बने हैं। प्रजातीय मिश्रण के अनेक कारण थे। जैसे आक्रमणकारी समूह में स्त्रियों की कमी अत्यधिक विकसित द्रविड संस्कृति तथा उसकी मातृसत्तात्मक व्यवस्था, देवियों की मन्दिर पूजा, रीति रिवाज पुरोहित व्यवस्था इत्यादि।

(३) व्यावसायिक सिद्धान्त (Occupational-Theory)

कुछ विद्वानों का मत है कि जाति प्रथा का निर्माण व्यवसायों के कारण हुआ है। नेसफील्ड (Nesfield) का मत है कि विभिन्न जातियों की उत्पत्ति का कारण विभिन्न उद्योग धन्धे हैं। विभिन्न उद्योग धन्धों की जाति एक प्राकृतिक फल है और धर्म का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। डालमेन (Dahlmann) ने इस विचार को अधिक विस्तार दिया है। उसने लिखा है कि प्रत्येक उद्योग का तान्त्रिक ज्ञान (Technical-Skill) पिता से पुत्र को मिलता रहा और बहुत समय तक एक ही उद्योग में काम करने के कारण व्यावसायिक सङ्घों (Occupational Guilds) का निर्माण हो गया जिसका आधार वंश परम्परा था। ये व्यावसायिक संघ ही जाति में परिवर्तित हो गये।

डाक्टर नर्मदेश्वर प्रसाद ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। उन्होंने लिखा है, "सम्पूर्ण वादविवाद इस तथ्य की ओर ले जाता है कि जातियाँ अधिक या न्यून मात्रा में व्यावसायिक समूह थे तथा जिस समूह का जितना निम्न व्यवसाय था उतनी ही निम्न उसकी सामाजिक स्थिति थी।"[2]

---

[1] "Clash of culture and contracts of races crystallized Social Groupings in India" D N Majumdar Races and culture of India (1958), p 291

[2] "The whole discussion leads to the point that castes were more or less occupational groupings and that the lower the profession of a groups, the lower was its, social status" N Prasad The Myth of the caste System (1957) p 55

व्यवसायिक सिद्धान्त तथा विशेषतया नेसफील्ड (Nesfield) के सिद्धांत की काफी आलोचना की गई है। नेसफील्ड का कहना है कि जाति की उत्पत्ति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार शारीरिक लक्षणों का भेद भी इसकी उत्पत्ति को नहीं सुलझा सकता। हटन ने इस सिद्धान्त की समालोचना करते हुए लिखा है कि यह सिद्धान्त खेती करने वाली विभिन्न जातियों की सामाजिक स्थिति को स्पष्ट नहीं कर पाता। खेती करने वाली जातियों का स्थान उत्तरी भारत में अपेक्षाकृत ऊँचा है परन्तु दक्षिणी भारत में इनकी सामाजिक स्थिति अति निम्न है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि केवल व्यवसाय के ही कारण जाति प्रथा की उत्पत्ति हुई नेसफील्ड का यह कहना कि एक जाति तथा दूसरी जाति के मध्य प्रजातिक अन्तर नहीं पाया जाता, उचित नहीं है। प्रजातिक मिश्रण के कारण ऐसा कठिन अवश्य हो गया है, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि कोई अन्तर थे ही नहीं।

(५) भौगोलिक सिद्धान्त (Geographical Theory)

गिलबर्ट (Gilbert) लिखता है कि जातियों का निर्माण विभिन्न भागों में बसने के कारण हुआ। इस विचार की पुष्टि करने के लिये उसने तमिल साहित्य का सहारा लिया है। तमिल साहित्य में विभिन्न लोगों के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में बसने के कारण विभिन्न नाम हैं।

(६) टोटम का सिद्धान्त (Totemistic Theory)

राइस (Rice) [1] ने जाति की उत्पत्ति टोटम के कारण बताई है। टोटम (Totem) वह चिह्न होता है, जिसके कारण एक समूह के व्यक्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित होता है। यह एक प्रकार से कल्पित पूर्वज होता है जैसे कुछ लोग साँप को, कुछ रीछ को, कुछ आम के पेड़ को अपना कल्पित पूर्वज मानते हैं। ये लोग अपने ही समूह अर्थात् एक टोटम में विश्वास करने वाले व्यक्तियों से खान पान का सम्बन्ध रखते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि भोजन हानिकारक गुणों का शीघ्र ही गमन करता है। यह सिद्धान्त जाति प्रथा का प्रमुख आधार है। इससे सिद्ध होता है कि जाति प्रथा की उत्पत्ति टोटम (Totem) और जादू टोने में विश्वास के कारण हुई है।

जाति प्रथा के अनेक लक्षण इस सिद्धान्त से निश्चित होते हैं। भारत की आदिम जातियों ने जाति प्रथा के निर्माण में पर्याप्त सहायता की है। दत्त ने लिखा है, "आर्यों के विजय प्राप्त करने के उपरान्त भी मौलिक निवासियों द्वारा

[1] "Hindu Customs

समाज के ये वन्य-जातीय तथा सांस्कृतिक विभाग हटाये नहीं जा सके, बल्कि वे और अधिक जाति विभाजन के रूप में कठोर हो गये। अत यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि दक्षिण के द्रविड़ों मे जाति के नियम उत्तरी भारत के आर्यनिवासियों के बीच से अपेक्षाकृत अधिक कठोर हैं। ये न केवल ब्राह्मणों तथा अब्राह्मणों के बीच अपितु अब्राह्मणों के विभिन्न विभागों के बीच तथा स्पृश्यों और अस्पृश्यों के बीच भी।"[1]

(६) उद्‌विकासीय सिद्धान्त (Evolutionary Theory)

उद्‌विकासीय सिद्धान्त के अनुसार जातियाँ सामाजिक जीवन के उद्‌विकासीय काल में उत्पन्न हुई हैं। प्राथमिक बिरादरी जीवन को छोड़कर निश्चित पेशों को अपनाने के समय कुछ समूह बन जाते हैं। एक समान पेशा करने वाले समूह एक दूसरे की सहायता करते हैं। वे समूह शनै. शनै जाति का रूप धारण कर लेते हैं।

(८) प्रजातीय एवं व्यवसाय का मिश्रित सिद्धान्त (Racial cum Occupational Theory)

कई विद्वानों का मत ऐसा है कि जाति की उत्पत्ति प्रजातीय और व्याव सायिक सङ्घों के कारण हुई है। ब्लन्ट (Blunt)[2] ने लिखा है कि प्रत्येक व्यावसायिक सङ्घ में विभिन्न जातियों के लोग पाये जाते होंगे, अत एक व्यावसायिक सङ्घ एक जाति में परिणित हो गया और उसके अन्दर पाई जाने वाली विभिन्न जातियाँ उपजातियाँ बन गई। इस सिद्धान्त की पुष्टि में उसने निम्न तथ्य प्रस्तुत किये हैं :—

(१) व्यावसायिक जातियों में उपजातियाँ पाई जाती हैं जो कि अन्तर्विवाह (Endogamy) के सिद्धान्त को मानती हैं, परन्तु जो जातियाँ उद्योग धन्धों में नहीं लगी हुई हैं, उनमें उपजातियाँ अन्तर्विवाह के सिद्धान्त को नहीं मानतीं।

---

[1] "These tribal and cultural division of society could not be shaken off by the natives even after their conquest by the Aryans and under the changed circumstances, they became hardened into caste divisions Hence the curious fact is that *the caste rules are more rigid among the Dravidians of the* South, not only between the Brahmans and non Brahmans, but between the various sections of the non Brahmans, between the touchables and the untouchables, than among the more Aryan peoples of North India" N K Dutt 'Origin and Growth of caste in India,' Vol pp 10–17

[2] Blunt, "Census of the United Provinces" p 383

वे उपजातियाँ आपस में विवाह सम्बन्ध करती हैं। उदाहरण के लिये व्यवसायिक जातियाँ जैसे ब्राह्मण, सुनार, लुहार, तेली इत्यादि आपस में विवाह नहीं करतीं, परन्तु क्षत्रिय, खत्री एवं जाट जो कि व्यवसायिक जातियाँ नहीं हैं, आपस में विवाह करती हैं।

(ii) व्यवसायिक जातियों की पञ्चायतें अव्यवसायिक जातियों की पचायतों की तुलना में अधिक नियन्त्रण रखती हैं।

(iii) अव्यवसायिक जातियाँ अपनी उत्पत्ति एक सामान्य पूर्वज से मानती हैं, परन्तु व्यवसायिक जातियां ऐसा नहीं मानतीं।

चाँदा (Chanda) भी इस सिद्धान्त का समर्थन करते हुए लिखता है, "वास्तविक या कल्पित रङ्ग या प्रजातीय भेद ने वंशपरम्परात्मक कार्य के साथ मिलकर जाति प्रथा को जन्म दिया।"[1]

स्लेटर (Slater) ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया है और लिखा है कि जाति प्रथा आर्यों के आक्रमण के पहले से ही पाई जाती थी। यह प्रथा वंशपरम्परा के आधार पर चलने वाले व्यवसायों के कारण बनी होगी, क्योंकि विवाह सम्बन्ध करते समय अपने व्यवसायिक रहस्यों (Trade secrets) को गुप्त रखने की इच्छा अपने ही व्यवसायिक समूह में विवाह करने को बाध्य करती है। जाति प्रथा दक्षिणी भारत में उत्तरी भारत से अधिक कठोर है। यह सिद्ध करता है कि जाति प्रथा आर्यों के पूर्व से पाई जाती है।

(६) बहुकारक सिद्धान्त (Muiltiple Factor Theory)

अनेक विद्वानों ने जाति की उत्पत्ति के विषय में भिन्न भिन्न कारण बताये परन्तु कोई भी एक सिद्धान्त इसकी उत्पत्ति को सिद्ध करने में सफल नहीं हुआ है। सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि जाति प्रथा भारत में ही क्यों पाई जाती है। जाति प्रथा की उत्पत्ति का एक कारण नहीं है, बल्कि अनेक कारणों के एक स्थान पर उपस्थित रहने के कारण इनकी उत्पत्ति हुई। हटन (Hutton) ने उचित ही लिखा है, "यह जोर देते हुए कहा जा सकता है कि भारतीय जाति प्रथा अनेक भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक कारकों के पारस्परिक सम्बन्धी कार्यों का प्राकृतिक फल है, ये कारण इस प्रकार संवधित अन्य कहीं नहीं पाये जाते हैं।"[2]

---

[1] "Colour or race difference, real and fancied, together with hereditary fenction gave birth to caste system" Chanda, 'Indo Aryrn Races' p 36

[2] It is urged emphatically that the Indian caste system is the natural result of the interaction of a number of

जाति प्रथा की उत्पत्ति के निम्न कारण हो सकते हैं फिर भी यह सूची पूर्ण नहीं कही जा सकती।

(i) भारतीय प्रायद्वीप की भौगोलिक पृथकता और उसके भी विभिन्न क्षेत्रों की पृथकता।
(ii) टोटम (Totem), माना (Mana) और आत्मा के सम्बन्ध में विचार।
(iii) यह विचार कि भोजन गुणों को एक दूसरे तक प्रेषण कर सकता है।
(iv) क्रिया पद्धति (Ritual) के लिये शुद्धता एव भ्रष्ट (Pollution) होने इत्यादि के विचार।
(v) पूर्वजों की पूजा।
(vi) कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास।
(vii) व्यवसाया, उद्योग धधों एव अन्य कार्यों मे जादू टोने का प्रयोग एव विश्वास।
(viii) वशपरम्परागत व्यवसाय और व्यवसायिक सघों का निर्माण।
(ix) तान्त्रिक एव व्यवसायिक रहस्यों को गुप्त रखने की इच्छा।
(x) मातृसत्ताक (Matriarchal) और पितृसत्ताक (Patriarchal) सस्कृतियों का सघर्ष।
(xi) प्रजातियों का सघर्ष।
(xii) विशिष्ट धार्मिक एव सामाजिक सुविधाओं पर आधारित वर्गों का अस्तित्व।
(xiii) विभिन्न वन्य जातियों (Tribes) का पृथक्कता में रहना और बिना समन्वय के भारतीय समाज का अग बनना।
(xiv) जानबूझ कर बनाई हुई धार्मिक, आर्थिक एव शासन सम्बन्धी नीति।
(xv) एक बुद्धिमान समूह द्वारा अन्य समूहों को शोषण करना और इसे एक ऐसे धार्मिक दर्शन पर आधारित करना कि सब उसे स्वीकार करें।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जाति प्रथा के विकसित होने के अनेक कारण हैं। यद्यपि इसकी उत्पत्ति तथा विकास में ब्राह्मणों का अत्यधिक भाग रहा है, फिर भी दूसरे कारण हम जाति प्रथा की उत्पत्ति किसी एक कारक के कारण नहीं

---

geographical, social, political, religious and economic factors not else where found in conjunction" Hutton, J H 'Caste in India' p 188

कह सकते। मैं हटन से सहमत हूँ कि जाति की उत्पत्ति अनेक कारकों के उपस्थित रहने के कारण हुई है।

जाति की विशेषतायें (Characteristics of Caste)

श्री एन के दत्त (N K. Dutta)[1] के अनुसार जाति प्रथा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं।

(i) वैवाहिक प्रतिबन्ध (Restriction on Marriage)

जाति की प्रमुख विशेषता यह है कि उसके सदस्य अपने समूह में ही विवाह कर सकते हैं। यह उपजाति अन्तर्विवाह (Sub Caste Endogamy) का कठोर नियम है। यदि कोई व्यक्ति जाति से बाहर विवाह करता है तो उसे कठोर दंड मिलता है। और अधिकांशत: जाति से निष्कासित कर दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी जाति से नीच जाति मे विवाह करता है तो उसकी सन्तानें पिता की जाति से निम्न और माता की जाति से उच्च एक नवीन जाति का निर्माण करती हैं। इस प्रकार के विवाह अनुलोम विवाह (Hypergamy) कहलाते हैं और इन्हें सहन कर लिया जाता है, परन्तु प्रतिलोम विवाह (Hypogamy) सहन नहीं किये जाते और बड़ी घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं

(ii) खान पान में प्रतिबन्ध (Restriction in Eating)

एक जाति के व्यक्ति दूसरी जाति के व्यक्ति के यहाँ भोजन नहीं कर सकते। कच्चा भोजन (चावल, दाल इत्यादि) भी एक जाति के सब सदस्य एक दूसरे के यहाँ नहीं खा सकते। 'आठ कनौजिये नौ चूल्हे' की कहावत बड़ी प्रसिद्ध है।

(iii) सदस्यता जन्म पर आधारित (Membership based on birth)

मनुष्य जन्म से ही किसी जाति विशेष का सदस्य बनता है। जिस जाति में उसका जन्म होता है, वह उसी जाति का सदस्य कहलाता है। अगर व्यक्ति चाहे कि मैं किसी अन्य जाति का सदस्य बन जाऊँ तो असम्भव है। वह आजन्म उसी जाति का सदस्य बना रहता है, यदि उसे किसी अपराध के कारण जाति से बहिष्कृत, नहीं किया गया हो।

(iv) निश्चित व्यवसाय (Definite Profession)

साधारणत: प्रत्येक जाति का व्यवसाय निश्चित होता है। उस जाति के सारे सदस्य वही कार्य करते हैं, जो उनके पूर्वज करते चले आये हैं, उदाहरण

[1] N. K. Dutta "Origin and Growth of Caste in India" (1931) P. 15.

के लिये लोहार लोहार का कार्य करता है तेली तेली का कार्य तेल निकालने का कार्य) करता है धोबी कपड़े धोने का काम करता है नाई बाल काटने का काम करता है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न जातियों के प्राय भिन्न भिन्न कार्य निश्चित ही होते हैं।

(१) ऊँच नीच की भा ना (Feeling of superiority inferio ity)

एक जाति के सदस्य दूसरी जाति के सदस्यों को हीनता की दृष्टि से देखते है। ब्राह्मण जाति सर्वोच्च मानी जाति है। क्षत्रिय वैश्य और शूद्र क्रमश निम्न, निम्नतर और निम्नतम होते है। एक शूद्र ब्राह्मण को छू नहीं सकता यदि छू लेता है तो ब्राह्मण अपवित्र हो जाता है। पुन शुद्धि के लिये स्नान करना पड़ ा है।

(११) जाति की व्यवस्था ब्राह्मणों पर निर्भर

ब्राह्मण सब जातियों से उच्च समझा जाता है। वह सम्पूर्ण जातियों को शिक्षा देता है तथा सारी जातियाँ उसकी आज्ञा का पालन करती है। व ब्राह्मण को देवता के तुल्य मानती हैं।

श्री दत्ता ने भारतीय जाति प्रथा की सामान्य विशेषताए बताई है और काफी सीमा तक ठीक भी है। इन विशेषताओं के कुछ अपवाद भी पाये जाते हैं। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति को धन प्रतिष्ठा अथवा परिचितता के आधार पर दूसरी जाति में प्रविष्ट किया जा सकता है। कुछ ऐसे उदाहरण मिलते है कि कभी कभी राजाओं ने कुछ व्यक्तियों को ऊँची जाति में रखा था। पर इस प्रकार के परिवर्तन सामान्यत नहीं होते हैं और श्री दत्त भी यही कहना चाहते हैं।

डा० घुरिये के अनुसार—डा० घुरिये (Dr Ghurye)[1] ने जाति के सरचनात्मक (Structural) और संस्थात्मक (Institutional) दोनों पक्षों को स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित विशेषताए बताई है —

(१) समाज का खण्डात्मक विभाजन
(Segmental Division of Society)

हिन्दू समाज जाति प्रथा के अनुसार विभिन्न खण्डों मे विभाजित किया गया है तथा प्रत्येक खण्ड के सदस्यों की स्थिति पद, स्थान और कार्य भी सुनिश्चित हैं। डा० घुरिये का इस प्रकार खण्ड विभाजन से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति समस्त समुदाय के प्रति अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति से अधिक अपनी

[1] G S Ghurye 'Caste and Class in India' Popular Book Depot Bombay, 1957, pp 2—27

जाति की ओर विशेष रूप से सजग रहता है। सामुदायिक भावना सीमित होती है। वे अपने नैतिक *नियमों अथवा कर्त्तव्य बोध के द्वारा अपने पद* और कार्य पर दृढ़ रहते हैं। यदि कोई इन नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे दण्ड दिया जाता है, कभी कभी तो जाति से भी निकाल दिया जाता है।

(ii) सस्तरण (Heirarchy)

इन विभिन्न खण्डों में ऊँच नीच का सस्तरण अथवा उतार चढ़ाव पाया जाता है। इसमें प्रत्येक जाति का स्थान जन्म पर आधारित होता है। इस सस्तरण अथवा उतार चढ़ाव में ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोपरि होती है। क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का स्थान क्रमशः निम्न होता गया है। जन्म पर आधारित होने के कारण यह सस्तरण बहुत कुछ स्थिर एवं दृढ़ है, और साधारणतः इसी कारणवश इस संस्तरण में उच्च स्तर पर पहुँचना कुछ कठिन है, पर पूर्णतः असम्भव नहीं। धन, प्रतिष्ठा एवं शक्ति के आधार पर निम्न स्तर के व्यक्ति उच्च स्तर में सम्मिलित हो सकते थे। ब्राह्मणों का जिनकी स्थिति सर्वोपरि है, ऊपर उठना और शूद्रों का, जिनकी स्थिति सब से नीचे है, और अधिक नीचे जाना सम्भव नहीं है। इन दोनों के बीच की जातियाँ अपने पास की जाति से अधिक श्रेष्ठ समझने लगती हैं। शहरों में, जहाँ लोग एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप से नहीं पहचानते, बीच की जातियों को उच्च जाति का बताने का अवसर प्राप्त हो जाता है। ऐसी दशा में इनका स्तर निश्चित करना बड़ा कठिन होता है।

(iii) भोजन और सामाजिक सहवास पर प्रतिबन्ध
(Restrictions on feeding and Social intercourse)

प्रत्येक जाति दूसरी जाति के द्वारा बनाये गये भोजन को खाना पसन्द नहीं करती केवल ब्राह्मणों के हाथ से बना भोजन अन्य सभी जातियाँ खा लेती हैं। अछूतों के द्वारा बने भोजन पर सबसे अधिक प्रतिबन्ध है। कच्चा भोजन कोई भी जाति दूसरी जाति के यहाँ खाना निषिद्ध समझती है। ब्राह्मण तो अपनी जाति वालों के द्वारा बना कच्चा भोजन भी नहीं खाते। इसीलिये एक कहावत प्रसिद्ध है, "आठ कनौजिये नौ चूल्हे"। इसी प्रकार पानी पीने के सम्बन्ध में भी अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध पाये जाते हैं।

(iv) विभिन्न जातियों की सामाजिक और धार्मिक निर्योग्यतायें तथा विशेषाधिकार (Civil and Religious disabilities privileges of the different castes)

विभिन्न जातियों को छुआछूत के आधार पर सामाजिक एवं धार्मिक

निर्योग्यताएँ तथा विशेषाधिकार प्रदान किये जाते हैं। दक्षिणी भारत म अछूतो के साथ बड़ा दुर्व्यवहार होता था। वे लोग उच्च जाति के लोगों को शक्ल भी नहीं दिखा सकते थे। ट्रावनकोर, पूना आदि स्थानों में अनेकों सड़कों पर अछूतों को चलने का अधिकार नहीं था। उनका मन्दिरो मे जाना निषिद्ध था। वे स्कूलो मे पढ़ने के लिये नही जा सकते थे। ग्राम कुओं तथा तालाबों पर पानी भरने पर प्रतिबन्ध था। गाँवो मे ये प्रतिबन्ध अत्यन्त कठोर थे और कुछ मात्रा मे अब भी है। इस प्रकार अछूतों को किसी भी प्रकार का धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार नहीं मिलता।

(१) पेशों के अप्रतिबन्धित चुनाव का अभाव
(Lack of unrestricted choice of occupation)

साधारणतया प्रत्येक जाति के कुछ न कुछ परम्परागत पेशे होते हैं तथा उनको छोड़ना अनुपयुक्त समझा जाता है। धोबी कपड़े धोने का कार्य, चमार जूते बनाने का कार्य, ब्राह्मण पुरोहित के कार्य तथा नाई बाल काटने का कार्य करना ही अधिक श्रेष्ठ समझता है। कुछ ऐसे पेशे भी हैं, जिन्हें कोई भी जाति इच्छानुसार चुन सकती है, जैसे खेती व्यापार, सेना आदि। एक जाति दूसरी जाति के व्यक्ति को अपना पेशा चुनने से रोकती है। यदि कोई दूसरी जाती का व्यक्ति नाई का कार्य करने लगता है तो नाई जाति के लोग उसे हर प्रकार से असफल बनाने का प्रयत्न करते है। मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् वे प्रतिबन्ध दिन-पर दिन क्षीण होते गये। बेन्स (Baines) का कथन है, 'जाति का पेशा परम्परागत होता है, परन्तु यह किसी भी अर्थ मे आवश्यक नही कि उसी के द्वारा सब या अधिकतर जातियाँ आज अपनी जीविका निर्वाह करते हैं।'[1]

(११) विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध (Restrictions on Marriage)

प्रत्येक जाति म वैवाहिक प्रतिबन्ध पाये जाते है। प्रत्येक जाति अनेक उप जातियो मे विभाजित होती है तथा प्रत्येक उपजाति अन्तर्विवाही (Endogamous) समूह है अर्थात् अपनी उपजाति के बाहर विवाह करना निषिद्ध है। श्री वेस्टरमार्क (Westermarck) जाति प्रथा की इस विशेषता से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। उन्होने अन्तर्विवाह को 'जाति प्रथा का सार तत्व' (The essence of the caste system) माना है। विभिन्न भाषा

[1] Quoted by G S Ghurye, "Caste and Class in India" Popular Book Depot, Bombay (1957) p 15

भाषी प्रदेशों में भी अन्तर्विवाह के नियमों का पालन होता है। एक बंगाली ब्राह्मण राजस्थान के ब्राह्मण के साथ वैवाहिक सम्बन्ध नहीं रखता। यद्यपि उनकी जाति एक ही होती है।

उपर्युक्त प्रतिबन्ध शिक्षा के विस्तार यातायात के साधनों की उन्नति, हरिजन आन्दोलन एवं सरकार के प्रयत्न के कारण क्षीण होते जा रहे हैं। सम्भव है एक समय ऐसा आवे कि इन प्रतिबन्धों में से एक भी शेष न रहे।

जाति के कार्य (Function of caste)

(१) अपने सदस्यों को मानसिक सुरक्षा प्रदान करती है —

जाति प्रथा जाति के सदस्यों को मानसिक सुरक्षा प्रदान करती है क्योंकि सदस्यों के लिये जन्म से ही स्थिर सामाजिक पर्यावरण प्रदान करती है। इस पर्यावरण से न तो दरिद्रता और न ही सम्पत्ति पृथक् कर सकती है। व्यक्ति को कोई भी मानसिक कष्ट नहीं उठाना पड़ता है, क्योंकि उसके लिये सब कुछ पूर्व निश्चित रहता है। उसे मार्ग निश्चित करने को मनोवैज्ञानिक संघर्ष के झंझट में नहीं पड़ना पड़ता, केवल निश्चित मार्ग पर चलते रहना ही परम धर्म है। उसके लिये सब कुछ निश्चित रहता है–उसे किस के साथ शादी करना है, क्या कार्य करना है, वह किन के हाथ का भोजन खा सकता है और किन के साथ रह सकता है इत्यादि।

(२) सामाजिक सुरक्षा —जाति प्रथा अपने सदस्यों के लिये सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती है। यदि कोई व्यक्ति किसी भी आपत्ति में फस जाय तो जाति उसकी सहायता के लिये सदैव तत्पर रहती है। जाति अपने सदस्यों की प्रत्येक विपदा में सहायता करती है यहाँ तक कि दाह क्रिया तक का प्रबन्ध कर देती है।

(३) जाति प्रथा तान्त्रिक एवं औद्योगिक रहस्य रखने में सहायता करती है।

(४) जाति एक श्रम संगठन के रूप में काम करती है। उदाहरणतया मेहतरों को लीजिये, यदि वे अपने पैसे बढ़ाना चाहते हैं तो अपनी जाति की पचायत में निश्चय कर लेते हैं और फिर उसकी माँग करते हैं। कोई भी मेहतर इस नियम को नहीं तोड़ता क्योंकि उसे डर है कि वह बिरादरी (जाति) से निष्कासित कर दिया जायेगा। यदि वे हड़ताल करते हैं तो पूर्ण सफल रहते हैं।

(५) एक जाति समुदाय अपनी संख्या के आधार पर राजनैतिक क्षेत्र में प्रभाव डाल सकता है और उनके द्वारा अपने समुदाय को लाभ पहुंचा सकता है। राजनैतिक क्षेत्र में जातीयता का आधार प्रयोग में लाया जाता है यद्यपि यह राष्ट्रीय हित में बड़ा हानिकारक है।

(६) जाति प्रथा एक समूह के व्यक्तियों में सहयोग की भावना का संचार करती है।

(७) विभिन्न समुदायों को एकता के सूत्र में बाँधती है —

जाति प्रथा विभिन्न समुदायों को एक ऐसी एकता में बाँधती है जिससे कि वे अपनी संस्कृतियों को सुरक्षित रखते हुए भी सम्पूर्ण समाज का एक अङ्ग बना देती है।

इतिहास इसका साक्षी है कि तमाम आक्रमणकारी शक, हूण इत्यादि हिन्दू समाज के अङ्ग बन गये। अनेक वन्य जातियाँ जैसे थारू ([illegible]) गोंड भील संथाल इत्यादि इसी प्रकार से हिन्दू समाज की अङ्ग बनती जा रही हैं। विभिन्न धर्मावलम्बी जैसे जैन सिक्ख राधास्वामी कबीर पंथी इत्यादि इस प्रकार से सम्बन्धित हैं कि व्यवहारिक रूप में वे हिन्दू समाज के अङ्ग प्रतीत होते हैं। अमेरिका जैसा प्रगतिशील देश भी अपनी नीग्रो समस्या को हल नहीं कर पाया परन्तु भारत में इस प्रकार की कोई समस्या नहीं है।

सामाजिक एकता स्थापित करने में जाति प्रथा ने बड़ा योग दिया है। हटन ने लिखा है, 'यह समझा जा सकेगा कि जाति का महत्वपूर्ण कार्य सम्भवतया *उसके कार्यों में सब से महत्वपूर्ण और जो कि सब से अधिक भारतवर्ष में जाति* प्रथा को एक अद्वितीय संस्था बना देता है वह यह है या रहा है कि भारतीय समाज को अखण्ड बनाना और विभिन्न प्रतिद्वंदी समूहों को, यदि हम उन्हें प्रतिकूल न भी समझें, एक समुदाय में जोड़ देना।

जाति प्रथा का यह कार्य अद्भुत सा रहा है यद्यपि उसमें अब अनेक दोष आ गये हैं।

(८) सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिरता को स्थापित करती है –

जाति प्रथा अपने कठोर प्रतिबन्धों के कारण सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन को सुरक्षित रखती है। ईसाइयों और मुसलमानों ने हिन्दू धर्म पर बाहर से आक्रमण किया और जैन, सिख कबीर पन्थी, राधास्वामी बौद्ध इत्यादि ने अन्दर रहते हुए आक्रमण किये परन्तु हिन्दू समाज की स्थिरता समाप्त न हो सकी। यदि जाति प्रथा न होती तो भारतवर्ष आज ईसाई–धर्मावलम्बी ब्रिटिश राज्य का एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण अङ्ग होता। विदेशियों ने जाति प्रथा के इस

[1] 'It will be understood that one important function of caste, perhaps the most important of all its functions and the one which above all others makes caste in India an unique institution, is or has been, to integrate Indian Society to weld *into one community the various competing, if not incompatible* groups composing it' Hutton, J H Caste in India' p 119

कार्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। गिलबर्ट (Gilbert)[1] लिखता है कि भारतवर्ष की जाति प्रथा यूरोप की राष्ट्रीयताओं (Nationalities) के समान है।

(६) जीवन के विभिन्न आवश्यक कार्यों की सम्पूर्ण व्यवस्था करती है —

हिन्दू समाज में प्रत्येक कार्य बटा हुआ है और एक निश्चित व्यवस्था है। शिक्षा से लेकर सफाई एवं विष्ठा उठाने तक के कार्य निश्चित हैं। मेहतर, बारी, नाई, कहार, डोम, लुहार, सुनार, बढ़ई इत्यादि सब जातियाँ अपने अपने कार्य को करने में गर्व समझती हैं। ये लोग कर्म के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं और इस कारण से हीन से हीन कार्य करने वाला व्यक्ति भी अपने कार्य को बिना किसी सङ्कोच एवं दुःख की भावना के अपना कार्य समझकर करता है। वह जानता है कि पिछले जन्म में उसने पाप किये थे तो इस जन्म में इस नीच जाति में जन्म मिला, यदि इस जन्म में कार्य करेगा तो प्रायश्चित् हो जायेगा और दूसरा जन्म उच्च कुल में मिलेगा।

(१०) सुप्रजनन विद्या की शुद्ध रेखा (Pure line of Genetics) को बनाये रखती है —

सजविक (Sedgwick) ने लिखा है कि भारतीय जाति प्रथा अन्तर्जाति विवाह प्रथा एवं बहिर्गोत्र विवाह (Gotra Exogamy) के साथ सुप्रजनन विद्या की शुद्ध रेखा को बनाये रखने की अति उत्तम पद्धति है। जातीय अन्त-र्विवाह (Caste Endogamy) समूह में बाहर के वंशानुसंक्रमणीय गुणों को नहीं आने देते, अर्थात् सन्तानों में समूह के सदस्यों का ही वंशानुसंक्रमण (Heredity) पाया जाता है। साथ साथ गोत्र बहिर्विवाह रक्त सम्बन्धी निकटता को पृथक् कर देता है। इस प्रकार जाति की सन्तानों में अपने पूर्वजों का शुद्ध रक्त पाया जाता है।

हिन्दू केवल अपनी जाति में विवाह करते हैं परन्तु अपने गोत्र में नहीं करते। इस व्यवस्था के द्वारा कहाँ तक अच्छी सन्तानों के होने में सहायता मिलती है निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस पर वैज्ञानिक परीक्षण नहीं हुए हैं।

(११) निशुल्क तान्त्रिक एवं औद्योगिक प्रशिक्षण का प्रबन्ध —

जाति प्रथा अपनी जाति के सदस्यों के लिये उस जाति के उद्योग के प्रशिक्षण का प्रबन्ध निशुल्क करती है। यदि कोई बढ़ई का लड़का है तो वह बढ़ईगिरी अपने घर में और यदि घर में नहीं तो किसी रिश्तेदार के यहाँ निशुल्क सीख लेगा।

---

[1] Gilbert 'Peoples of India' p 82

जाति प्रथा के दोष

(१) राष्ट्रीय एकता म बाधा

फूट और उपद्रव का कारण उतना धम या सम्प्रदाय नहा जितना कि जाति प्रथा है। ऊँच नीच मूलक जाति भद जब हिन्दुओं की विभिन्न जातियो और उपजातियो को मिलकर एक सुदृढ़ राष्ट्र नहीं बनन दता तो मुसलमाना इसाइयों यहूदियों और पारसियों को सामाजिक रूप स पचा कर एक राष्ट्र बनाना कैस सम्भव हो सकता है। न केवल जाति प्रथा राष्ट्रीय एकता म बाधा स्वरूप आज कल ही है बल्कि सदव स इसन राष्ट्रीय एकता को छिन्न भिन्न किया ह।

राष्ट्रीय एकता क लिय जिस हम की भावना की अत्यन्त आवश्यकता हे जाति प्रथा उस पनपन ही नहा दती। विभिन्न जातियो का आपस म घोर सङ्घर्ष चलता रहता ह और सब एक दूसर क शत्रु हो गय हैं। जागृति की भावना क साथ साथ इसको समाप्त करन की प्रबल इच्छा भारतीयो मे होती जा रही ह

(२) नये आविष्कारो में बाधा

जाति प्रथा क कारण लोग परम्परागत व्यवस्था का नहीं छोड़ना चाहत और इसक कारण उत्पादन क्रिया म भी अधिक परिवतन नहीं करना चाहत। जो लोग नयी पद्धतियों को आर बढ़ना चाहत ह उन्ह दण्ड मिलता ह। इस कारण स नये आविष्कार नहीं हो पात है।

(३) आर्थिक विकास म बाधा

श्रम का विभाजन मनुष्य को अधिक स्वतन्त्रता दता ह और उसक कारण व्यवसाय म उन्नति होती है परन्तु जाति प्रथा एक समुचित आर्थिक सङ्गठन क निर्माण को प्रोत्साहित नही करती।

(४) उच्च वर्ग का निष्क्रिय बनाती है

जाति प्रथा उच्च वग क लोगो को निष्क्रिय एव अकमण्य बनाती ह क्योकि श्रम करन वाला व्यक्ति नीच समझा जाता ह। बहुत स ब्राह्मण और क्षत्रिय स्वय हल नहा चला सकत और जो एसा करते हैं उनकी जाति गिर जाती है।

जितनी भी जातियाँ व्यवसाय एव उद्योग म लगी हुई हैं उनका सामाजिक स्तर जाति प्रथा की सीढ़ी म निम्न है। एसा दखा गया है कि बहुत सी जातियाँ अपन पैतृक व्यवसाय को छोड़ती जा रही है। सुनार अपन को सुनार जाति का कहन म शर्म अनुभव करता है। अधिकाश पढ़ लिख लड़क इन कार्यो को इसीलिये नहीं करना चाहत।

आधुनिक युग मे जब श्रम का महत्व बढ़ रहा है तो जाति प्रथा के प्रतिबन्ध उसमें बाधा पहुचाते हैं।

(५) सामाजिक असमानता का एक नग्न दृश्य

जाति प्रथा सामाजिक असमानता का वह दृश्य प्रस्तुत करती है जो अद्वितीय है। मनुष्य, मनुष्य को केवल छूने मात्र स भ्रष्ट हो जाता है, न केवल इतना ही बल्कि इसकी और भी पराकाष्ठा पाई जाती है। लोग समीप आने एव देखने से भी अपवित्र हो जाते है। भारतवर्ष मे न केवल अस्पृश्यता (Untouchability) पाई जाती है, बल्कि अप्रवेश्यता (Unapprotchability) और अदर्शनीयता (Unseeability) भी पाई जाती है।

(६) स्त्रियों की दुर्दशा

जाति प्रथा के कारण स्त्रियों की दशा बड़ी खराब हो गई। स्त्रियों को कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं थे। वे पुरुषों की दासिया के रूप मे रहती थीं। तुलसी दास जैसे उच्च कोटि के विद्वान ने तो यहाँ तक लिख डाला–' ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी ये सब ताड़न के अधिकारी।"

यदि कोई जाति सामाजिक स्तर में ऊपर उठना चाहती थी तो उस अनेक कार्यों के साथ साथ विधवा विवाह भी रोकने पड़ते थे। विधवा विवाह न होने के कारण स्त्रियों की बड़ी दुर्दशा रहती थी।

(७) प्रगति में बाधक

जाति प्रथा समाज की प्रगति म बड़ी बाधक रही है। लोग देश के बाहर, जाति स निष्कासित होने के भय स, नहीं जाते थे। अनेक प्रगतिवादी कार्य इस देश मे जाति प्रथा के कारण प्रारम्भ न हो सके।

जाति प्रथा का मूल्यांकन
(Evaluation of the Caste System)

जाति प्रथा के गुण और दोष दोनों पर हमने विचार किया। अब हमार सम्मुख यह प्रश्न है कि जाति प्रथा हमारे लिये हितकर है या अहितकर। दूसरा प्रश्न यह है कि इसे रहने देना चाहिये या नहीं।

अनेक समाजशास्त्रियों एव मानवशास्त्रिया मे मतभेद है कि जाति प्रथा हमारे लिये हितकर है या अहितकर। दूसरा प्रश्न यह है कि इस रहने देना चाहिये या नहीं।

अनेक समाजशास्त्रियों एव मानवशास्त्रियों का मत है कि जाति प्रथा अनेक बहुमूल्य कार्य करती है। अत इसे समाप्त नहीं करना चाहिये। उनका मत

कि जाति प्रथा के दोषों को दूर कर देना चाहिये और जाति प्रथा को रहने देना चाहिये। डाक्टर मजूमदार ने इस विचार को जोरदार शब्दों में प्रकट किया है। उनके शब्दों को अवतरित करना असङ्गत न होगा। "अस्पृश्यता, एक जाति का दूसरी जाति द्वारा शोषण और ऐसी ही अन्य इस प्रथा की हानिकारक सहयोगी प्रथाओं को समाप्त कर देना चाहिये, न कि सम्पूर्ण व्यवस्था को। टूटी हुई विषपूर्ण अगुली को काटना चाहिये न कि पूरे हाथ को।"[1]

जहाँ तक डा० मजूमदार और डा० हटन इत्यादि का यह कहना है कि जाति प्रथा कुछ लाभदायक कार्यों को पूरा करती है वहाँ तक मैं उनके साथ सहमत हूँ और इंडियन कॉन्फ्रेंस ऑफ सोशल वर्क (Indian Conference of Social Work) द्वारा आयोजित सेमिनार (Seminar), (जिसमें देश के प्रमुख समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक कार्यकर्त्ता एवं प्रशासकों ने भाग लिया था) ने भी निम्न शब्दों में इस विचार की पुष्टि की है। "जाति प्रथा चहुँ ओर व्याप्त है, वह अपने सदस्यों के लिये अनेक हितकर कार्य करती है।"[2]

परन्तु दूसरी बात से मैं सहमत नहीं हूँ कि जाति प्रथा को जीवित रखा जाय। जब विषपूर्ण अंगुली का जहर सम्पूर्ण हाथ में फैल गया हो तो अंगुली काटने से काम नहीं चलेगा। यह विष सम्पूर्ण समाज को समाप्त कर देगा, यदि जाति प्रथा समाप्त न हुई। जाति प्रथा का काला एवं रक्तपूर्ण दीर्घ इतिहास इसका साक्षी है। मेरा ऐसा विश्वास है कि जाति प्रथा को समाप्त ही कर देना चाहिये। साथ ही साथ जाति शब्द का प्रयोग कम से कम होना चाहिये और हो सके तो इसे शब्दकोष से हटा दिया जाय। अनेक विद्वानों ने जाति प्रथा की काली करतूतों का वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है।

जहाँ तक इसके हितकारी कार्यों का सम्बन्ध है वे दूसरी संस्थाओं द्वारा भी किये जा सकते हैं। भारतीय समाज को छोड़ कर अन्य समाजों का जीवन

---

[1] "Untouchability, exploitation of one caste by anoth er and such other harmful concomitants or the system should be done away with and not the whole system, the broken, poisoned finger should be amputated, not the whole hand Mazumdar, D. N and Madan, T N. 'Social Anthropology', p 238

[2] "That caste is all pervasive, that caste performs several useful functions for its members" Recommendations of the Seminar on 'Casteism and Removal of untouchability,' organised by Indian Conference of Social work, at Delhi in 1955. Quoted from Indian Journal of Social Work, Vol. XVI No. 4, March 1956, p 308.

भी तो बिना इस व्यवस्था के चलता ही है और वे हमसे कहीं अधिक प्रगतिशील हैं। जाति प्रथा चाहे जितनी भी हितकारी कार्य करती हो परन्तु उसके दोष उन सब पर पानी फेर देते हैं। जाति प्रथा उस दशा के समान है कि व्यक्ति शैय्या पर मृतक समान पड़ा हो और उसके अच्छे होने की कोई आशा न हो, परन्तु हो सकता है कि उसके पास लाखों रुपया हो, सारे सुखों की व्यवस्था हो और भरा पूरा घर हो।

डा० आशिर्वादम (Asirvatham) ने लिखा है—'भूतकाल में जाति के चाहे जो कुछ भी लाभ हों, आज वह प्रगति में बाधक है।'"[1]

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी लिखा है—

'भारतवर्ष में जातपाँत प्राचीनकाल में चाहे कितनी ही उपयोगी क्यों न रही हो, पर इस समय सब प्रकार की उन्नति के मार्ग में बड़ी भारी बाधा और रुकावट बन रही है। आज यह हमारी दया की पात्र नहीं और किसी भी भावना के अधीन होकर हमें इसके साथ मोह न करना चाहिये। हमें इसे जड़ से उखाड़ कर अपनी सामाजिक रचना दूसरे ही ढंग से करनी होगी।'[2]

जाति प्रथा को स्थायी रखने वाले तत्व
(Factors in the Stability of Caste)

(१) स्थिर समाज (Static Society)

जाति प्रथा उस समाज में रह सकती है जिसमें स्थिरता हो और सामाजिक परिवर्तन कम होते हों। भारत में जाति प्रथा उसी समय से जोर पकड़ गई जब से कि समाज की गतिशीलता कम हो गई।

(२) भौगोलिक पृथक्ता (Geographical Isolation)

जाति प्रथा उन स्थानों में पाई जाती है जो भौगोलिक दृष्टि से पृथक् हो जाते हैं। आवागमन के साधनों की कमी भी भौगोलिक पृथक्ता को बढ़ाती है।

(३) अज्ञानता (Ignorance)

जाति प्रथा को स्थायी रखने में सबसे अधिक सहायता अज्ञानता करती है। लोगों में यह अंधविश्वास है कि यदि वे जाति के नियमों का पालन नहीं करेंगे तो पाप के भागी होंगे। वे जाति प्रथा को धर्म मानते हैं और ऐसा

---

[1] "Whatever uses caste might have had in the past, it is a hindrance to progress to day" Asirvatham, E 'A New Social Order,' p 61

[2] 'सरिता' अंक १२८, (जून १९५३) पृष्ठ ८३.

विश्वास करते हैं कि जाति प्रथा ईश्वर द्वारा बनाई गई है और इसे किसी प्रकार भी समाप्त नहीं किया जा सकता। सरदार पनीकर ने लिखा है–'यह एक समाजशास्त्रीय काल्पनिक व्यवस्था है।'[1]

(४) विभिन्न प्रजातिक एवं शारीरिक लक्षण
(Different racial and physical traits)

यदि किसी समाज मे विभिन्न प्रजातियों के लोग पाये जाते हैं और उनके शारीरिक लक्षण भी विभिन्न होते हैं तो जाति प्रथा के निर्माण मे सहायता मिलती है। भारत में अनेक प्रजातियों के लोग पाये जाते हैं और उनके शारीरिक लक्षण भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

(५) ग्रामीण सामाजिक ढाँचा (Rural Social Structure)

जिन स्थानों पर ग्रामीण सामाजिक ढाँचा पाया जाता है वहाँ पर जाति प्रथा का विकास शीघ्र हो जाता है, क्योंकि उनका प्रकृति से अधिक सम्बन्ध रहता है और वे अन्ध विश्वासी होते हैं।

जाति प्रथा के विरोधी तत्त्व (Factors against caste)

(१) शिक्षा एवं बढ़ता हुआ ज्ञान
(Education and growing knowledge)

शिक्षा और बढ़ता हुआ ज्ञान जाति प्रथा के विरोधी तत्व हैं। इनके कारण अन्ध विश्वास एवं अज्ञानता समाप्त हो जायेगी। जाति प्रथा अज्ञानता एवं अन्ध-विश्वास पर आधारित है।

(२) आवागमन एवं सन्देशवाहन के साधनों में वृद्धि
(Increase in the means of Transport and Communication)

आवागमन एवं संदेशवाहन के साधनों की वृद्धि के कारण भौगोलिक पृथक्ता समाप्त होती जा रही है। अधिकाधिक एक जाति के सदस्य दूसरी जाति के सदस्यों के सम्पर्क में आते हैं और एक दूसरे को समझने की चेष्टा करते हैं। घर से दूर रहने के कारण जातीय प्रतिबन्ध व्यवहारिक रूप में नहीं माने जाते हैं।

(३) औद्योगिक समाज का प्रभाव
(Impact of Industrial Society)

जैसे जैसे उद्योग धन्धे बढ़ते जाते हैं और कल कारखाने खुलते जाते हैं वैसे

---

[1] 'It is a Sociological fiction" Panikkar, K M 'Hindu Society at Cross Roads,' p 10

वैसे लोगों का सम्पर्क कार्य के स्थान पर अधिक समय तक रहता है। कल कारखानों में साथ साथ कार्य करना पड़ता है। बहुत से लोगों को नगर में आकर बसना पड़ता है। इन कारणों से जाति प्रथा के प्रतिबन्ध ढीले पड़ते जा रहे हैं।

(४) विज्ञान का प्रभाव (Impact of Science)

विज्ञान का भी प्रभाव जाति प्रथा को शिथिल बनाने में योग देता है। जाति प्रथा जिन विश्वासों पर आधारित है वे विज्ञान द्वारा असत्य सिद्ध होते जा रहे हैं। उदाहरणतया शुद्ध रक्त का सिद्धान्त (Pure Blood Theory) वंशानुसंक्रमण एवं शाकाहारी और माँसाहारी भोजनों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक सूचनायें।

(५) भारतीय स्वतन्त्रता का प्रभाव (Effect of Indian Independence)

भारतीय स्वतन्त्रता का भी जाति प्रथा के समाप्त करने में बड़ा योग है। भारतीय विधान की धारा १५ (१) के अनुसार सारे नागरिक समान हैं। यह धारा जाति प्रथा की विरोधी है। ऊँच नीच की भावना समाप्त हो गई। कानून के सामने सब समान हैं, कोई भी व्यक्ति कोई भी व्यवसाय कर सकता है।

वयस्क मताधिकार के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को मत देने का अधिकार है। इसका प्रभाव यह हुआ है कि किसी भी जाति को रद्द नहीं किया जा सकता और मुट्ठी भर लोग अधिकाश जनता पर राज्य नहीं कर सकते। मद्रास विधान सभा में पदियाची (Padiyachis) जाति के लोग एक प्रमुख हाथ रखते हैं और उनका बड़ा प्रभाव है, यद्यपि वे पिछड़ी हुई जाति के हैं।

अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिये भारत सरकार ने कानून बना दिया है इसके कारण अब अस्पृश्यता को व्यवहार में लाने वालों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जा सकती है।

(६) देशी राज्यों का समाप्त होना (*Breaking down of Feudal States*)

देशी राज्यों के समाप्त होने के कारण भी जाति प्रथा टूटती जा रही है। ये देशी राज्य रूढ़िवादियों के गढ़ थे। राजा महाराजा भी ढपोलशंखी पण्डितों के प्रभाव में आकर जाति प्रथा के नियमों का पालन करवाते थे।

(७) विचारों एवं धार्मिक सुधारकों का प्रभाव (The Impact of thought and the religious reformers)

जाति प्रथा के टूटने में सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों का भी बड़ा प्रभाव पड़ा

है। स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, राजा राममोहनराय, स्वामी विवेकानन्द इत्यादि ने इस ओर महान् कार्य किये हैं। स्वामी विवेकानन्द ने ही सर्व-प्रथम यह घोषणा की थी कि जाति प्रथा का हिन्दू धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(८) धन का महत्व (Importance of Wealth)

धन का महत्व बढ़ता जा रहा है इसके कारण जाति का महत्व कम होता जा रहा है। जो भी योग्य व्यक्ति अपने जीवन स्तर को ऊपर उठाकर रहना चाहता है वह धन के कारण रह सकता है। पहले यह सम्भव नहीं था।

(९) महात्मा गाँधी और कॉंग्रेस के प्रयत्न

जाति प्रथा को मिटाने में महात्मा गाँधी और भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस ने बड़े प्रयत्न किये हैं। उनके प्रयत्नों पर प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे सर्वविदित हैं। कॉंग्रेस से सम्बन्धित हरिजन सेवक संघ ने बहुत कार्य किया है और कर रहा है।

(१०) साम्यवाद का प्रभाव (Effect of Communism)

साम्यवाद भी जाति प्रथा को मिटाने में भाग ले रहा है। श्री पनीकर (Panikhar) ने साम्यवाद की चर्चा करते हुए लिखा है कि साम्यवाद जाति प्रथा को हिन्दू धर्म मे रहते हुए मिटाने की चेष्टा कर रहा है।

जाति प्रथा भारतवर्ष में ही क्यों ?

जाति प्रथा का यह अनुपम स्वरूप भारतवर्ष में ही पाया जाता है। ग्रीन (Green) ने लिखा है-

"जाति का उच्चकोटि का और सबसे पुराना उदाहरण हिन्दू भारत की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था है।"[1]

भारतवर्ष में भी यह प्रथा विशेषतया हिन्दुओं मे पाई जाती है। किसी ने उचित लिखा है, "सब बातों के हितों के होते हुए भी बिना जाति के कोई भी हिन्दू नहीं है।"[2]

जाति प्रथा भारतवर्ष मे ही इसलिए पाई जाती है कि यह एक जटिल संस्था है जो अनेक कारकों पर आधारित है और वे कारक केवल भारतवर्ष मे ही पाये

[1] "The classic example of Caste, and also the oldest, is the ancient social system of Hindu India," Green, T H Sociology' p 287

[2] "Before everything else, without caste, there is no Hindu," Gerth

जाते हैं। इन कारकों पर हम पीछे प्रकाश डाल चुके हैं। भारतवर्ष में जाति प्रथा केवल हिन्दू धर्म के अनुयायियों में ही नहीं पाई जाती बल्कि ईसाइयों एवं मुसलमानों में भी पाई जाती है। सन् १९११ ई० की गणना के अनुसार चौरानवे (९४) मुस्लिम जातियाँ पाई गईं। उनमें भी ऊँच नीच की भावना पाई जाती है। किंग्सले डेविस (Kingsley Davis) ने लिखा है, "मुसलमानों में भी अनेक जातियाँ पायी जाती हैं यद्यपि सिद्धान्त. इनका धर्म जाति प्रथा को नहीं मानता।"[1]

वास्तव में जाति प्रथा भारतवर्ष की सभ्यता का एक अंग बन गया है और सारे ही भारतवासियों में पाई जाती है। आश्चर्य नहीं, यदि अँग्रेज और अधिक समय भारत में रहते तो उनमें भी जाती प्रथा प्रवेश कर जाती।

जाति प्रथा और प्रजातन्त्रवाद

(Caste System and Democracy)

प्रजातन्त्र और जातीयता एक दूसरे की विरोधी व्यवस्थायें हैं, क्योंकि प्रजातन्त्रवाद समानता (Equality), बन्धुत्व (Fraternity) और स्वतन्त्रता (Liberty) के सिद्धान्तों पर आधारित है और जातीयता असमानता, वर्ग भावना एवं शोषण के सिद्धान्त स्तम्भों पर अवलम्बित है। प्रजातन्त्रवाद उस देश में कभी नहीं पनप सकता जिसमें जाति प्रथा पायी जाती हो।

किसी देश में लोकतन्त्र शासन पद्धति को सफल बनाने के लिए पहिले वहाँ के अधिवासियों को लोकतन्त्री बनाना आवश्यक होता है। लोकतन्त्रीय समाज के लिये ही लोकतन्त्र राज्य उपयुक्त होता है। जाति भेद लोकतन्त्र का बिल्कुल विपरीत है। लोकतन्त्र जन्म से सबको समान मानता है पर जाति प्रथा जन्म से ही किसी को ऊँचा और किसी को नीचा समझती है। ऐसी दशा में लोकतन्त्र और जाति दोनों साथ नहीं रह सकते।

सन् १९५० ई० के विधान में सर्व प्रथम भारत के सब वयस्क व्यक्तियों को शासन में भाग लेने का अधिकार मिला है, पर इस अधिकार के उपयोग करने में जाति प्रथा बहुत अधिक बाधक सिद्ध हुई है। जहाँ एक ओर सब राजनैतिक दल, जाति धर्म और लिंग के आधार पर भेदभाव न रखने की घोषणा करते हैं वहाँ दूसरी ओर जाति धर्म के नाम पर चुनाव में नारे लगाये जाते हैं और मतदाताओं को अपनी जाति के उम्मीदवारों को मत देने

[1] "Even among Muslims, whose religion supposedly denies caste there are many castes" Davis Kingsley, 'Human Society', p 380

के लिये बाध्य किया जाता है। इस प्रकार जाति प्रथा प्रजातन्त्रवाद के विकास में अत्यधिक बाधक है।

जहाँ तक नागरिकों की समता का प्रश्न है इसमें भी अनेक बाधायें उपस्थित होती हैं। जाति प्रथा जन्म के आधार पर मनुष्यों को ऊचा और नीचा मानती है इसलिये जाति प्रथा के रहते हुये नागरिकों की समता के आदर्श को पाना कठिन है। इसके अतिरिक्त प्रजातन्त्रवाद की सफलता के लिये आर्थिक अवसरों की समता भी आवश्यक है। जाति प्रथा के आधार पर आजकल एक अत्यन्त कलुषित प्रक्रिया तीव्र गति से बढ़ रही है। इस प्रक्रिया को जातिभक्ति या जातिवाद के नामों से पुकारा जा सकता है। प्रत्येक जाति के व्यक्ति अपनी जाति के व्यक्तियों को ही आर्थिक अवसर देने का प्रयत्न करते हैं। क्या उद्योगों और व्यवसायों में, क्या विद्यालयों या विश्वविद्यालयों मे, क्या राजकीय या अराजकीय विभागों मे प्रत्येक स्थान पर उच्च अधिकारी अपनी जाति के व्यक्तियों को प्रधानता देते हैं। इस प्रकार व्यवहारिक जीवन मे जाति प्रथा प्रजातन्त्रवाद के मार्ग में पग पग पर कठिनाइयाँ प्रस्तुत करती है। बिना जाति प्रथा के समाप्त किये प्रजातन्त्रवाद, झूठा प्रजातन्त्रवाद रहेगा। सरदार पनीकर ने इस विचार की पुष्टि करते हुये निम्न शब्द लिखे हैं, "वास्तव में जब तक उपजाति और संयुक्त परिवार रहगे तब तक समाज का कोई भी सगठन समता के आधार पर सम्भव नहीं है।"[1]

अप्रतिबन्धित तथा प्रतिबन्धित वर्ग
(Open and Close edclasses)

अप्रतिबन्धित वर्ग (Open Class) वे समूह होते हैं जिनमे दूसरे व्यक्ति कुछ प्रयत्नों द्वारा प्रवेश पा सकते हो, उदाहरणतया पूँजीवादी वर्ग, किसान वर्ग इत्यादि।

प्रतिबन्धित वर्ग वे समूह हैं जिनमे अन्य व्यक्तियों के प्रवेश पर कठोर प्रतिबन्ध हो और बाहर के व्यक्ति सदस्यता ग्रहण न कर सके। उदाहरणतया हिन्दुओं की जाति प्रथा।

वर्ग और जाति (Class and Caste)

वर्ग और जाति सापेक्ष शब्द हैं। वे समाजशास्त्रीय धारणायें है। सामाजिक

---

[1]"In fact, no organisation of society on the basis of equality is possible so long as the sub caste and the joint family exist," Panikkar, K M 'Hindu Society at Cross Roads' p 22

परिस्थितियों के विवरण के लिये हम उनका प्रयोग करते हैं। दोनों ही शब्द स्थित समूहों के अर्थ में प्रयोग किये जाते हैं। वर्ग वे समूह होते हैं जिनमें सीमायें बनावटी, मनमानी एवं बाह्यवर्ती होती हैं। कोई भी व्यक्ति इन समूहों में प्रवेश पा सकता है। जाति की सीमायें वर्ग समूहों की तुलना में अधिक एवं रूढ़ियों पर आधारित होती हैं।

वर्ग और गोत्र (Class and Clan)

वर्ग कोई भी व्यक्ति परिवर्तन कर सकता है परन्तु गोत्र जन्म के आधार पर निश्चित होता है। गोत्र ऐच्छिक (Voluntary) समूह नहीं होता। उसकी सदस्यता हमें स्वीकार करनी ही पड़ती है।

वर्ग का आधार ढीला होता है परन्तु गोत्र के बन्धन कड़े होते हैं। गोत्र एक प्रकार से विस्तृत परिवार है।

जाति और गोत्र (Caste and Clan)

गोत्र एक असंगठित काल्पनिक समूह होता है। एक पूर्वज से उत्पत्ति का दावा करने वाले एक गोत्र के कहलाते हैं। साधारणतया गोत्र बहिर्विवाह (Exogamy) वाला समूह होता है। अर्थात् एक गोत्र के आपस में विवाह नहीं करते।

जाति एक संगठित एवं वास्तविक समूह होता है। यह अन्तर्विवाह (Endogamy) वाला समूह होता है। गोत्र साधारणतया समान स्थिति के होते हैं परन्तु जातियाँ सामाजिक स्थिति में ऊंची नीची होती हैं।

जाति और वन्य जाति (Caste and Tribe)

एक वन्य जाति का निश्चित भू भाग होता है परन्तु जाति का कोई निश्चित भू भाग नहीं होता। जाति व्यवसाय से सम्बन्धित रहती है। प्रत्येक जाति के लिये निश्चित व्यवसाय होता है यद्यपि आधुनिक युग में यह सम्बन्ध ढीला पड़ता जा रहा है। वन्य जाति और व्यवसाय का कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं है। एक वन्य जाति के लोग अपनी जीविकोपार्जन के लिये कोई भी व्यवसाय कर सकते हैं।

एक वन्य जाति में विभिन्न सामाजिक स्थिति के लोग पाये जाते हैं परन्तु एक जाति विभिन्न उपजातियों से मिल कर बनती है।

एक वन्य जाति एक राजनैतिक समिति होती है परन्तु जाति कभी भी एक राजनैतिक समिति नहीं होती। जाति में सदैव अन्तर्विवाह पाया जाता है परन्तु वन्य जाति कभी भी सम्पूर्ण रूप से अन्तर्विवाह वाला समूह नहीं होता।

जाति और व्यवसाय संघ (Caste and Guild)

व्यवसायिक संघ एक व्यवसाय करने वालों का समूह होता है। यह वशानुसक्रमण (Heredity) पर आधारित नहीं है। जाति एक वशानुसक्रमण पर आधारित समूह है। अधिकाश जातियों का कोई न कोई निश्चित व्यवसाय होता है पर एक जाति के सदस्य केवल व्यवसाय के कारण ही सम्बन्धित नहीं होते बल्कि दूसरे कारण अधिक शक्तिशाली होते हैं।

प्रश्न

१. आप स्थिति और कार्य से क्या समझते हैं ?
   (What do you understand by status and role ?)
२ जाति की उत्पत्ति बताइये।
   (Describe the origin of caste)
३ वर्ग की परिभाषा कीजिये। ये कहाँ तक केवल आर्थिक भेद पर ही आधारित है ? (लखनऊ १९५२)
   (Define class. How far is it based only on economic distinctions ?)
४ जाति और वर्ग में भेद बताइये। आधुनिक युग में भारत में जाति प्रथा का किस ओर झुकाव है ? क्या जाति का कोई भविष्य है ?
   (आगरा १९४६, राजपुताना १९५२)
   (Distinguish between class and caste Indicate the trends of caste in India in recent years Has caste any future ?)
५ "जाति राष्ट्रीयता के प्रतिकूल है।" व्याख्या कीजिये।
   (लखनऊ १९४६, १९५१)
   ('Caste is incompatible with nationalism.' Comment.)
६. भारत की जाति प्रथा में क्या परिवर्तन हो रहे हैं ? (लखनऊ १९५३)
   (What are the changes that are going on in India's caste system ?)
७. जाति प्रथा की गतिशीलता का विश्लेषण कीजिये। विशेष रूप से उपजातियों के परिवर्तनों का विवरण दीजिये। (आगरा १९५०)
   (Show the dynamics of the caste system. Refer specially to trends in sub-castes)

८ क्या जाति प्रथा और प्रजातन्त्र में विरोध है ? यदि ऐसा है तो उसे किस प्रकार सुलझाया जा सकता है ? (आगरा १९५३, राजपुताना १९५५)
(Is there a conflict between caste system and Democracy ? If so, how is it to be resolved ?)

९ जाति की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये। यह भी बताइये कि कौनसी सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ जाति को बनाये रखने में योग देती हैं और कौनसी इसे निर्बल बनाती हैं ?
(आगरा १९५५, पटना १९५८)
(Describe the main characteristics of caste. What cultural and economic conditions are favourable to the maintenance of caste, and what others tend of weaken it ?)

१०. जाति की परिभाषा कीजिये। वह किस प्रकार से वर्ग, गोत्र और वन्य जाति से भिन्न है ? (आगरा १९५५)
(Define caste How does it differ from class, clan and tribe ?)

११ यह बताइये कि कैसे जाति केवल एक सामाजिक ढाँचा ही नहीं है बल्कि अपरिवर्तनशील मानसिक व्यवहार की अभिव्यक्ति भी है ? (आगरा ५६)
(Show how caste is not merely a social stucture but an expression of inelastic mental behaviour ?)

१२. सामाजिक व्यवस्था में जाति के स्थान की विवेचना कीजिये। क्या जाति प्रथा से प्रजातन्त्र एव राष्ट्रीयता की विपरीत प्रकृति है ?
(Discuss the place of 'caste' in Indian Social System. Is 'caste' incompatible with democracy and nationalism ?) (Rajasthan, 1958)

१३ जाति प्रथा के परम्परात्मक सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवेचन कीजिये।
(पटना, १९५८)
(Critically examine the traditional theory of caste system)

१४. नगरीकरण और औद्योगीकरण के जाति सङ्गठन पर प्रभाव का वर्णन कीजिये। (पटना, १९५८)
(Trace the impacts of industrialization and urbanisation on caste organisation.)

SELECTED READINGS

1. K. M. Panikkar, 'Hindu Society at Cross-roads'. Chapters II and VII.
2. Hutton, 'Caste in India'. Chapters V, VIII, XI and XIII.
3. Ogburn and Nimkoff, 'A Handbook of Sociology' Chapter XI.
4. Biesanz and Biesanz, 'Modern Society'. Chapter X.

अध्याय ६

प्रजाति : अर्थ तथा वर्गीकरण
(Race : Meaning and Classification)

प्रजाति शब्द हम सबके ही द्वारा नित्य प्रति उपयोग में लाया जाता है। समाचार पत्र में कोई न कोई समाचार प्रजाति भेद से सम्बन्धित अवश्य होता है। दक्षिणी अफ्रीका की सरकार ने श्वेत और श्याम प्रजातियों के बीच बड़ी दीवार खड़ी कर दी है। श्वेत शासक किसी भी श्याम प्रजाति के नागरिकों को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते हैं। भारत ने संयुक्त राष्ट्र सङ्घ में अफ्रीका के विरुद्ध अभियोग चला रखा है। प्रजाति की चर्चा नयी नहीं है। यूरोप के राष्ट्रों में ये विभेद अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी में किये गये। नाजी जर्मनी मे प्रजाति विभेद की नीति के कारण लाखों यहूदियों के प्राण ले लिये गये और लाखों बे घरबार हो गये। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सबसे कठिन समस्या नीग्रो प्रजाति है। मानव व्यवहार पर प्रजाति का इतना प्रभाव है इसलिये हमें इस पर अवश्य विचार करना चाहिये।

प्रजाति शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग

प्रजाति शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों मे होता है। प्रत्येक व्यक्ति इससे भिन्न अर्थ समझता है। हक्सले (Huxley) के अनुसार प्रजाति शब्द का प्राणी-शास्त्रीय अर्थ (Biological meaning) से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि यह शब्द किसी विशेष लक्षण की ओर संकेत नहीं करता है। उदाहरणतया यह शब्द उस मानव समूह के लिये प्रयोग किया जाता है जो एक या एक से अधिक समान लक्षण के होते हैं। श्वेत प्रजाति मे कई प्रकार के वर्ण पाये जाते हैं।

इस शब्द का प्रयोग मनुष्यों के उस समूह के लिये भी किया जाता है जो कई पीढ़ियों से एक देश में निवास करते आये हैं, जैसे अंग्रेज प्रजाति, फ्रान्सिसी प्रजाति या चीनी प्रजाति इत्यादि। प्रजाति शब्द का प्रयोग हम सम्पूर्ण मानव जाति के लिये भी करते हैं, जैसे मानव प्रजाति। इस शब्द का प्रयोग समान भाषा भाषी मानव समूह के लिये भी करते हैं, जैसे आर्य प्रजाति लेटिन प्रजाति इत्यादि। कई बार इस शब्द का प्रयोग धार्मिक समूहों के लिये भी किया जाता है, जैसे हिन्दू प्रजाति, मुस्लिम प्रजाति यहूदी प्रजाति इत्यादि। सर आर्थर कीथ प्रजाति शब्द का प्रयोग राष्ट्रों के लिये भी करते हैं क्योंकि वे प्रजाति और राष्ट्र शब्दों को पर्यायवाची मानते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रजाति शब्द का कई अर्थों में प्रयोग किया जाता रहा है। साधारण व्यक्ति तो क्या, वैज्ञानिक भी इस शब्द को विभिन्न अर्थों में प्रयोग करते रहे हैं। यूनेस्को का यह अवलोकन सत्य है, "वैज्ञानिक लोग भी, जिनका कार्य सूक्ष्म होता है, विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार से प्रजाति शब्द का प्रयोग करने के लिये बाध्य होते हैं।"[1] इन विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होने के कारण प्रजाति शब्द का कोई विशिष्ट अर्थ नहीं रहा गया है।

प्रजाति का वैज्ञानिक अर्थ (Scientific Concept of Race)

यद्यपि प्रजाति शब्द का प्रयोग विद्वानों द्वारा विभिन्न अर्थों में किया गया है तथापि मानवशास्त्रियों (Anthropologists) और समाजशास्त्रियों ने इसकी परिभाषा वैज्ञानिक अर्थों में की है। सर्व प्रथम बात यह है कि प्रजाति का शुद्ध प्राणीशास्त्रीय अर्थों में प्रयोग किया जाना चाहिये। प्रसिद्ध मानवशास्त्री क्रोबर (Kroeber) ने स्पष्ट लिखा है, "प्रजाति एक सप्रमाणित प्राणीशास्त्रीय विचारधारा है। यह एक समूह है जो कि वंशानुसंक्रमण, वंश या पितृ गुण या उपजाति के द्वारा जुड़ा हुआ है।"[2] बीसेंज और बीसेंज लिखते हैं, "प्रजाति उन व्यक्तियों का एक बड़ा समूह होता है जो कि जन्म जात शारीरिक लक्षणों द्वारा पहचाने जाते हैं।"[3] इसी आधार पर एटेबरी एवं अन्य प्रजाति की परिभाषा निम्न शब्दों में करते हैं, "प्रजाति, अपने वास्तविक प्राणीशास्त्रीय अर्थ में व्यक्तियों का एक समूह है जो कि समान जन्मजात शारीरिक गुण रखते हैं, जो कि उन्हें व्यक्तियों के दूसरे समूहों से पृथक् पहिचानने में सहायता करते हैं।"[4] हल्डेन (Haldane) ने भी प्रजाति की परिभाषा इन शब्दों में की है, "(प्रजाति) एक समूह है जो कि निश्चित जन्म-जात शारीरिक लक्षणों को

[1] "Even scientists whose business it is to be precise, are obliged to use the word '*race*' *in different ways at different times*" p 5, 'What is race' ? UNESCO publication, 1952

[2] "A race is a valid biological concept It is a group united by heredity, a breed or genetic strain or sub species" Kroeber, A L 'Anthropology'

[3] "A race is a large group of people distinguished by inherited physical differences" Biesanz, J and Biesanz, M 'Modern Society', Prentice Hall Inc New York, 1954, p 159

[4] "A race, in the original biological sense of the word, is a group of people who possess a common set of hereditary physical characters which serve to distinguish them from other groups of people" Atteberry, G C Auble, J L, Hunt E F, 'Introduction to Social Science', The Macmillan Co, New York, p 193.

सामान्य रूप से रखता है और जिनकी भौगोलिक उत्पत्ति एक निश्चित क्षेत्र में होती है।"[1] हॉबेल (Hoebel) ने प्रजाति की परिभाषा करते हुए लिखा है, "प्रजाति एक स्वाभाविक प्राणीशास्त्रीय समूह है जो कि विशिष्ट शारीरिक लक्षणों का स्वामी होता है। ये लक्षण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में शुद्धरूप में मिलते रहते हैं।"[2] डुन (Dunn) ने प्रजाति और प्राणीशास्त्र का घनिष्ट सम्बन्ध बताया है। इसकी परिभाषा करते हुए उन्होंने लिखा है, "संक्षेप में, प्रजाति अन्तर्विवाह द्वारा सम्बन्धित एक समूह है। वह एक ऐसी जनसंख्या है जो कि दूसरी जनसंख्याओं से कुछ निश्चित जन्म जात लक्षणोंकी समानता में तुलनात्मक रूप में भिन्न है।"[3]

इस प्रकार प्रजाति मनुष्यों का वह समूह है जिनके समान शारीरिक जन्म-जात लक्षण होते हैं और इन लक्षणों के आधार पर उन्हें दूसरे मानव समूहों से पृथक् किया जा सकता है।

प्रजाति समूह व्यक्तियों का एक समूह है जो कि (i) समान पूर्वजों से उत्पन्न हुये हैं, (ii) जिनके शारीरिक लक्षण समान होते हैं, (iii) अन्तर्विवाह करते हैं और यह भावना रखते है कि हम एक हैं।

प्रजाति इन परिभाषाओं के अनुसार निम्न बातों पर आधारित हैः—

(१) समूह में उत्पन्न करना (In breeding)

समूह के अन्दर ही सन्तानें उत्पन्न करना इस बात पर आधारित है कि सहवास (Mating) समूह की स्त्रियों के साथ किया जाय। एक समूह के पुरुष तब ही उसी समूह की स्त्रियों के साथ सहवास करेंगे जब कि पृथकता (Isolation) और अति सीमित गतिशीलता की परिस्थितियाँ पायी जाती हों।

भौगोलिक परिस्थितियों और सामाजिक बन्धनों के कारण एक समूह में ही सहवास करना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप हम एस्कीमो को ले सकते हैं जब

[1] Race is "A group which shares in common a certain set of innate physical characters and a geographical origin within a certain area". J. B S Haldane. Quoted in UNESCO publication, 'What is Race ?' p 36

[2] "A race is a biologically inbred group possessing a distinctive combination of physical traits that tend to breed true from generation to generation" Hoebel, E A 'Man in the Primitive World', McGraw Hill Book Co Inc 1949, p 69.

[3] "A race, in short, is a group of related intermarrying, individuals, that is, a population, which differs from other populations in the relative commonness of certain hereditary traits". Dunn, L C, 'Race and Biology' UNESCO publication, Paris, 1953, p 13.

तक यूरोप के निवासी इनके देश नहीं गये तब तक एस्कीमो लोगों का यही भ्रम रहा कि पृथ्वी पर केवल वे ही निवास करते हैं। ध्रुवी एस्कीमो (Polar Eskimos) की सख्या कुछ सौ ही है। ये लोग आपस में ही सहवास करते हैं और इस कारण से वे शारीरिक लक्षणों में एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। एस्कीमो की ही भाँति प्राचीन वन्य जातियाँ भी इसी प्रकार अपने समूह में ही संकुचित रहती थीं।

भौगोलिक पृथक्ता (Geographical Isolation) जो कि प्रकृति द्वारा मनुष्य पर लादी जाती है भी मनुष्य समूहों को एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित नहीं करने देती। अन्तर्सहवास समूह के शारीरिक लक्षणों को सुरक्षित रखता है। किसी समूह के समान शारीरिक लक्षण उस समूह के सदस्यों को एक दूसरे के निकट ला देते हैं। अन्तर्सहवास से ये लक्षण स्पष्ट होते जाते हैं। हूटन (Hooton)[1] ने इस सिद्धान्त की पुष्टि की है। पशु जगत में हुये परीक्षण भी इसकी पुष्टि करते हैं परन्तु मानव जगत में यह सिद्धान्त कहाँ तक सत्य है इसकी पुष्टि के लिये कोई परीक्षण सम्भव नहीं हो सके हैं। क्योंकि ऐसे परीक्षणों को करने के लिये प्रजाति के लोगों की वशावली तैयार करनी पड़ेगी जो कि असम्भव कार्य है।

स्पष्ट शारीरिक लक्षण

किसी प्रजाति को दूसरी प्रजाति से किस प्रकार पृथक् किया जाय इसके लिये शारीरिक लक्षणों का सहारा मानवशास्त्रियों ने लिया है। यह एक कठिन कार्य है कि किन लक्षणों को हम कसौटी के रूप में स्वीकार करें और किन्हें छोड़ दें। नीग्रो प्रजाति के लोगों के होंठ एक विशिष्ट प्रकार के होते हैं, परन्तु दूसरी प्रजातियों में इस प्रकार की बात नहीं पायी जाती। अत एक लक्षण एक प्रजाति को अन्य प्रजातियों से पृथक् करता है परन्तु उस आधार पर हम किस प्रकार से प्रजातियों का वर्गीकरण कर सकते हैं। शारीरिक लक्षणों का एक पुञ्ज इसको निश्चित करता है ये सम्पूर्ण लक्षण जुड़ी हुई कड़ियों की जजीर के समान एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं और प्रजाति का निश्चय करते हैं।[2]

शुद्ध प्रजाति विश्व में है या नहीं, यह बड़े विवाद का प्रश्न है, प्रजाति के पोषकों के अनुसार प्रजातियों का मिश्रण नहीं होना चाहिये। वे शुद्ध और अमिश्रित प्रजातियों को ससार में सुरक्षित रखना चाहते हैं और यह केवल

[1] Hooton, E A, 'Up from the Ape', p 1.

[2] See Hoebel, 'Man in the Primitive World', p. 71 "The whole concatenation of traits marks the race"

प्रजातीय अन्तर्विवाह (Race Endogamy) के द्वारा ही सम्भव है। शुद्ध अमिश्रित प्रजातियों के विषय में यही चर्चा है, परन्तु उसका कोई स्पष्ट स्वरूप नहीं बताया गया है।

प्रजातियों की उत्पत्ति (The Origin of Races)

प्रजातियों की उत्पत्ति के विषय में बताना बड़ा कठिन है। *उत्पादक विज्ञान* के विद्वान (Geneticists) अभी तक कोई विशेष प्रगति अपने अध्ययनों में नहीं कर पाये हैं। उनके परीक्षण मटर के दानों और फलों की मक्खियों तक ही सीमित हैं। शारीरिक मानवशास्त्री (Physical Anthropologists) भी मानव भौतिक विज्ञान (Man's Somatology) की प्रमुख विशेषताओं के आगे नहीं बढ़ पाये हैं। मेंडल का सिद्धान्त (Mendel's Law),[1] शारीरिक लक्षण किस प्रकार निश्चित होते हैं, पर कुछ प्रकाश डालता है। प्रागैतिहासिक (Prehistoric) समय में किस प्रकार से प्रजातियों का निर्माण हुआ यह ठीक ठीक बताना अत्यन्त कठिन है, यद्यपि मानवशास्त्रियों ने इसके अध्ययन का प्रयत्न किया है। पृथ्वी से खोद कर निकाले हुए ढाँचों से मानवशास्त्रियों ने परिणाम निकाले हैं परन्तु ये सब अनुमान एवं कल्पना पर आधारित हैं। क्रोबर जैसे उच्च कोटि के मानवशास्त्री ने स्पष्ट रूप से लिखा है, "हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मनुष्य की प्रजातियाँ, जैसे वे आज समस्त पृथ्वी पर फैली हुई हैं, बनने में कम से कम लाखों वर्ष अवश्य लगे होंगे। किन कारकों ने उनमें अन्तर उत्पन्न किया, पृथ्वी के किस भाग पर प्रत्येक ने अपनी विशेषताओं को ग्रहण किया, वे और आगे कैसे विभाजित हुईं, उनको जोड़ने वाले कौनसे तत्व थे और विभिन्न प्रजातियाँ कैसे पुनर्मिश्रित हुईं—*इन सब विषयों पर अभी तक उत्तर अपूर्ण है।*"[2]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रजाति की उत्पत्ति के सिद्धान्त काल्पनिक हैं, फिर भी उनमें से दो प्रमुख सिद्धान्तों पर हम विचार करेंगे।

---

[1] विस्तार में रामबिहारीसिंह तोमर द्वारा लिखित पुस्तक 'समाजशास्त्र की रूप रेखा, भाग प्रथम' के 'वंशानुसंक्रमण' के अध्याय में पढ़िये।

[2] "We can conclude that the races of man as they are spread over the earth to-day must have been at least some tens of thousands of years in forming What caused them to differentiate, on which part of the earth's surface each took on is peculiarities, how they further subdivided, what were the connecting links between them and how the differentiating races may have reblended—on all these points, the answer is yet incomplete" Kroeber, A L 'Anthropology', Harcourt Brace & Co, Inc, New York 1948 p 125

(१) एकल उत्पत्ति सिद्धान्त (Monogenetic Theory)

इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य की उत्पत्ति एक ही पूर्वज द्वारा हुई। इस कथन की पुष्टि विभिन्न धार्मिक ग्रन्थ भी करते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार ब्रह्मा से मनुष्य की उत्पत्ति हुई। ईसाई धर्म के अनुसार आदम और हव्वा (Adam and Eve) समस्त मानव समूह के पूर्वज हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य का प्रारम्भ एक स्थान से हुआ। जैसे जैसे सख्या बढ़ती गई वैसे-वैसे भोजन की खोज में मनुष्य विभिन्न स्थानों पर पहुँच गये। धीरे धीरे वे दूर होते गये और एक समय ऐसा आया कि अपने श्रोत स्थान स मनुष्य समूहों का सम्बन्ध समाप्त हो गया और वे विभिन्न भौगोलिक पर्यावरणों में पृथक् रूप से रहने लगे। विभिन्न भौगोलिक पर्यावरणों में रहते हुए भी मनुष्यों के शारीरिक लक्षण समान थे। प्रजातियों की उत्पत्ति, उद्विकास की प्रक्रिया (Process of Evolution) में, परिवर्तन से हुई। ये परिवर्तन निम्न तत्वों के कारण हुए —

(i) उत्परिवर्तन (Mutation)
(ii) प्रवरण (Selection)
(iii) अनुकूलन (Adaptation)
(iv) स्थान परिवर्तन (Migration)
(v) पृथक्ता (Isolation)

(i) उत्परिवर्तन (Mutation)[1]

"वाहकाणु (Genes) के स्वरूप में अचानक परिवर्तन को उत्परिवर्तन कहते हैं।" जब वाहकाणु में परिवर्तन हो जाता है तो होने वाली सन्तानों के लक्षणों में भी परिवर्तन हो जाता है। विभिन्न समूहों में उ परिवर्तन (Mutation) होते रहे और इसके कारण शारीरिक लक्षण भी परिवर्तित होते रहे।

(ii) प्रवरण (Selection)[2]

प्रवरण वह क्रिया है जो निर्बल व्यक्तियों को समाप्त करती रहती है और अधिक अनुकूल व्यक्तियों को जीने का प्रोत्साहन देती है। प्रवरण दो प्रकार का होता है। प्रथम प्राकृतिक प्रवरण (Natural Selection) और द्वितीय सामाजिक प्रवरण (Social Selection)।

नीग्रो का रङ्ग काला होता है। अधिकांश व्यक्ति इसका कारण धधकते

---

[1] भाग प्रथम का अध्याय 'वंशानुसंक्रमण' पढ़िये।

[2] विस्तार में समझने के लिये भाग प्रथम का अध्याय 'प्राणीशास्त्रीय कारक' पढ़िये।

हुए सूर्य की रश्मियों का प्रभाव समझते हैं। परन्तु यह कल्पना सत्य नहीं है। उत्परिवर्तन (*Mutation*) के कारण रङ्ग में परिवर्तन हुआ होगा। यह परिवर्तन प्राकृतिक पर्यावरण के अनुकूल था। अत हल्के रङ्ग के लोग शीघ्र मरते गये और काले रङ्ग के लोगों की सख्या बढ़ती गई। धीरे धीरे काले लोगों की संख्या बहुत अधिक हो गई।

(iii) अनुकूलन (Adaptation)[1]

प्राणी को अपने पर्यावरण के अनुसार अनुकूलन करना पड़ता है और इसका प्रभाव उसके शारीरिक एव मानसिक लक्षणों पर पड़ता है। अनुकूलन तीन प्रकार का होता है। भौतिक अनुकूलन (Physical Adaptation) प्राणि-शास्त्रीय अनुकूलन (Biological Adaptation) और सामाजिक अनुकूलन (Social Adaptation)।

(iv) स्थान परिवर्तन (Migration)

एक स्थान पर मनुष्य जाति का जन्म हुआ और सख्या वृद्धि के कारण वे खाद्य सामग्री की खोज में चहुँ दिशाओं मे बढ़ते चले गये और धीरे धीरे समस्त पृथ्वी पर छा गये। इस प्रक्रिया के कारण लोग एक दूसरे स दूर हो गये और इतनी दूर हो गये कि आज वे प्राय भूल से गये हैं कि वे कभी एक थे।

(v) पृथकता (Isolation)

मानव समूह भौगोलिक एव सामाजिक प्रथकता के कारण अपने ही समूह में रहने के लिये बाध्य हो गया। आश्चर्य है कि मानव आज इस पृथकता पर गर्व करता है जो कि उसकी बेबसी का द्योतक है। पृथवी में अनक परिवर्तन होते रहते हैं। प्रारम्भ में सम्पूर्ण पृथ्वी जुड़ी हुई थी परन्तु बाद को परिवर्तनों के कारण कहीं कहीं पर पानी भर गया और उसने कई जुड़े हुए भागों को पृथक् कर दिया। कहीं कहीं पर समुद्र के स्थान पर विशाल पर्वत मार्ग रोक कर खड़े हो गये। भूगोल-शास्त्रियों के अनुसार ग्रीनलैण्ड (Greenland) कभी स्कैण्डीनेविया (Scandinavia) से जुड़ा हुआ था, परन्तु आज वह स्कैण्डी नेविया से काफी दूरी पर स्थित है। भूगोलवेत्ताओं के अनुसार ग्रीनलैण्ड ३० मील प्रति वर्ष की गति स उत्तरी अमेरिका की ओर निरन्तर बढ़ रहा है। वैगनर (Wagner) के अनुसार समस्त महाद्वीप अफ्रीका से टूट टूट कर पृथक् हुए हैं। इसके प्रमाण में उसने सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं।

---

[1] विस्तार में समझने के लिये भाग प्रथम का अध्याय 'भौगोलिक पर्यावरण का अर्थ' पढ़िये।

पृथकता के कारण प्रजातियों का निर्माण अति शीघ्र होता है। डून (Dunn) ने लिखा है, 'एक बार यदि दूसरे तत्व उपस्थित होते है तो पृथकता, महान प्रजाति निर्मात्री होती है।'[1]

(३) बहु उत्पत्ति सिद्धान्त (Multiple Origin Theory)

इसके अनुसार मनुष्य की उत्पत्ति एक ही सूत्र स नहीं हुई है और इनका यह भी कहना है कि मनुष्य की तीन प्रमुख प्रजातियों, विभिन्न पूर्वजों (Out-Rang, Chimpanzee and Apes) स पृथक् पृथक् हुई है इस सिद्धान्त का घोर विरोध हुआ है और इसके पक्ष में वैज्ञानिक प्रमाण भी नहीं मिलते है।

कुछ विद्वानों का मत है कि मनुष्यों की प्रजातियाँ विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों मे पृथक् पृथक् पूर्वजों स उत्पन्न एव विकसित हुई हैं।

यह सिद्धान्त आधुनिक युग के परीक्षणों के विरुद्ध है। इसको प्राणिशास्त्री, मानवशास्त्री एव समाजशास्त्री कोई भी स्वीकार करने को तैयार नहीं होते। चू कि इस सिद्धान्त का बड़ी निन्दा हुई ह और इसके पीछे कोई भी वैज्ञानिक परीक्षणों का आधार नहीं है। अत हमारे लिये यह सिद्धान्त मान्य है।

प्रजाति लक्षण (Racial Traits)

प्रजातियों की प्रमुख भिन्नता शारीरिक लक्षणों में है। इसलिये इन लक्षणों को प्रजाति वर्गीकरण का आधार बनाया जाता है। मानवशास्त्री एव समाजशास्त्री पच्चीस से भी अधिक शारीरिक लक्षणों को वर्गीकरण का आधार मानते हैं, उनमें से कुछ पर हम विचार करेंगे।

इन शारीरिक लक्षणों को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम निश्चित शारीरिक लक्षण (Definite Physical Traits) और द्वितीय अनिश्चित शारीरिक लक्षण (Indefinite Physical Traits)। *निश्चित शारीरिक लक्षण वे लक्षण होते है, जिन्हें नापा जा सकता है* और अनिश्चित शारीरिक लक्षण वे होते है जिन्हें नापा नहीं जा सकता, केवल विवरण दिया जा सकता है।

निश्चित शारीरिक लक्षण (*Definite Physical Traits*)

निश्चित शारीरिक लक्षणों मे प्रमुख निम्न है —

---

[1] "Once the other factors are present, isolation is the great race maker" Dunn L N, 'Race and Biology' UNESCO publication, p. 24.

(१) शीर्ष देशना (Cephalic Index)

शीर्ष देशना सिर की लम्बाई और चौड़ाई को नाप कर निम्न विधि द्वारा निकालते हैं —

$$\text{शीर्ष देशना} = \frac{\text{खोपड़ी की चौड़ाई} \times १००}{\text{खोपड़ी की लम्बाई}}$$

सिर तीन प्रकार के होते हैं —

(i) लम्बे सिर (Dolico—Cephalic)
(ii) मध्य के सिर (Meso—Cephalic)
(iii) चौड़े सिर (Brochy—Cephalic)

इस लक्षण का प्रयोग प्रजाति वर्गीकरण में अत्यधिक किया जाता है। इस लक्षण की अनेक सुविधाएं हैं उनमें से प्रमुख निम्न हैं—

(अ) इनको नापा जा सकता है।
(ब) नाप सरलता से की जा सकती है।
(स) स्त्री, पुरुषों बच्चों, युवकों एवं वृद्धों की शीर्ष देशना प्राय एक ही होती है। विभिन्न अवस्थाओं में विशेष अन्तर नहीं होता है इसलिये तुलना में सुगमता रहती है।
(द) जीवित और मृत व्यक्तियों की शीर्ष देशना में कोई अन्तर नहीं पड़ता।
(य) अस्थिपञ्जरों (Fossils) के पाये जाने पर उनकी शीर्ष देशना निकाली जा सकती है।
(र) खोपड़ी अधिक समय तक सुरक्षित रखी जा सकती है।
(ज) प्राय पर्यावरण का प्रभाव सिर के विकास में बिलकुल नहीं पड़ता।
(ह) खोपड़ियों की हड्डियों की रचना इस प्रकार होती है कि उन्हें सरलतापूर्वक पहिचाना जा सकता है।

(२) खोपड़ी का घनत्व (Capacity of the Skull)

सरसों या बाजरा भर कर खोड़ी का घनत्व नापा जाता है। सबसे अधिक घनत्व काकेशियन प्रजाति का और सबसे कम नीग्रो प्रजाति का होता है। घनत्व से सम्बन्धित एक बड़ी लोकप्रिय कहावत भी भारतवर्ष में प्रसिद्ध है कि— सिर बड़ा सरदार का ।"

इस लक्षण के निम्न दोष हैं.—

(अ) जीवित व्यक्तियों की खोपड़ी का घनत्व नहीं नापा जा सकता।

(ब) मृत व्यक्तियों की खोपड़ी का घनत्व नापने में भी बड़ी कठिनाई होती है।

(३) नासिका देशना (Nasal Index)

नासिका देशना (Nasal Index) नासिका की लम्बाई और चौड़ाई नाप कर निम्न विधि से निकाली जाती है —

$$\text{नासिका देशना} = \frac{\text{नासिका की चौड़ाई} \times १००}{\text{नासिका की लम्बाई}}$$

नासिकायें प्रमुख रूप से निम्न तीन प्रकार की होती हैं —

(अ) चौड़ी नासिका (Platyrrhine)

(ब) चपटी नासिका (Mesorrhine)

(स) लम्बी नासिका (Leptorrhine)

इस लक्षण के निम्न दोष हैं —

(अ) आयु के अनुसार नासिका की लम्बाई और चौड़ाई में परिवर्तन होता रहता है।

(ब) जीवित और मृत व्यक्तियों की नासिकाओं में अन्तर रहता है।

(४) रक्त समूह (Blood Groups)

रक्त समूह चार प्रकार के होते हैं 'अ' (A), 'ब' (B), 'अ ब' (AB) और 'उ' (O)।

यद्यपि हर प्रजाति मे चारों समूहों का रक्त रखने वाले व्यक्ति पाये जाते हैं तथापि प्रत्येक प्रजाति में किसी विशेष रक्त समूह के तुलनात्मक दृष्टि से, अधिक व्यक्ति पाये जाते हैं। इस आधार पर भी प्रजाति वर्गीकरण किया जाता है। इस लक्षण का सबसे बड़ा गुण यह है कि पर्यावरण का इस पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता है। इस गुण के कारण हम निश्चित दिशा में निर्णय करने म सफल हो सकते थे परन्तु एक प्रजाति में कई रक्त समूहों का पाया जाना इस गुण स कोई लाभ नहीं होने देता। यह निम्न सारणी (Table) से ज्ञात हो सकता है।

प्रजाति समूह	रक्त समूह (Blood Groups)			
	O 'उ'	A 'अ'	B 'ब'	A,B 'अब'
१. श्वेत (अमेरिका) (U. S. A. Whites)	४५	४१	१०	४
२. नीग्रो (अमेरिका) (U. S. A. Negroes)	४४.२	३०.३	२१.८	३.७
३. दक्षिणी अमेरिकन इन्डियन्स (South American Indians)	१००	०	०	०
४. रूसी (Russians-Moscow Region)	३१.६	३४.४	२४.६	८.८
५. चीनी (Chinese-Yellow River)	३४.२	३०.८	२७.७	७.७

टिप्पणीः—यह विभिन्न मनुष्य समूहों का विभिन्न रक्त समूहों में जो प्रतिसत पाया गया, वह है।[1]

(५) कद (Stature)

कद भी सरलता से नापा जा सकता है। विभिन्न समूहों के कदों का औसत प्रजाति वर्गीकरण में कुछ सहायता पहुँचाता है। संसार में पैंटागोनियन (Pantagonians) का औसत कद ६ फीट ४ इंच होता है। सब से छोटा कद अफ्रीकन बुषमेन (African Bushmen) का होता है। इन की औसत लम्बाई ४ फीट ६ इंच होती है।

(६) हाथ और पैर की लम्बाई

हाथ और पैर की लम्बाई भी नापी जाती है। पैर से घुटने तक और घुटनों से कमर तक की दूरी नापी जाती है। इस लक्षण से कोई विशेष लाभ नहीं होता है।

(७) वक्षस्थल की परिधि (Circumference of the Chest)

वक्षस्थल की परिधि भी नापी जाती है। इसका औसत भी प्रजाति वर्गीकरण में उपयोगी सिद्ध हुआ है।

[1] Taken from UNESCO publication 'What is Race,' 1952, p 53.

अनिश्चित शारीरिक लक्षण
(Indefinite Physical Traits)

(१) वर्ण या रंग
(Colour of the skin or complexion or pigmentation)

प्रजाति और वर्ण का घनिष्ठ सम्बन्ध है, यहाँ तक कि वर्ण और प्रजाति पर्यायवाची शब्द समझे जाने लगे हैं। संस्कृत भाषा में वर्ण शब्द का प्रयोग किया गया है वर्ण की महत्ता प्रजाति वर्गीकरण में बहुत है। इसको डार्विन ने भी निम्न शब्दों में प्रकट किया है 'मनुष्यों की प्रजातियों में समस्त अन्तरों में त्वचा रङ्ग अति स्पष्ट है और जो कि एक प्रमुख चिह्न है।'[1]

त्वचा रङ्ग के आधार पर प्रजातियों का तीन प्रमुख भागों में वर्गीकरण किया गया है —

(i) श्वेत प्रजाति (White Race)
(ii) पीत प्रजाति (Yellow Race)
(iii) श्याम प्रजाति (Black Race)

(२) आँखों का रङ्ग (Colour of the Eyes)

विभिन्न प्रजातियों की आँखों का रङ्ग भी भिन्न भिन्न होता है। आँख के तार (Pupil) का रङ्ग भी भिन्न होता है।

(३) बालों का रङ्ग (Shade of the Hairs)

बालों का रङ्ग भी विभिन्न प्रजातियों का विभिन्न होता है।

(४) बाल (Hairiness)

बालों के प्रकार भी विभिन्न होते हैं और ये भी वंशानुसंक्रमण पर आधारित रहते हैं। किन्हीं के बाल घुंघराले, किन्हीं के सीधे और किन्हीं के ऊनकी तरह (Woolly) होते हैं। कुछ बाल कड़े होते हैं और कुछ मुलायम। बालों का सिर एवं शरीर पर घना या छितरा होना भी प्रजाति वर्गीकरण में सहायता पहुँचाता है।

(५) पलकें (Eye lid skin-folds)

आँखों की पलकें भी कुछ प्रजातियों की विचित्र होती हैं उदाहरणस्वरूप मङ्गोल प्रजाति की पलकें आँखों को अध खुली (slant eyes) बना देती हैं, इन

---

[1] 'Of all the differences between the races of man, the colour of the skin is the most conspicuous and one of the best marked' Darwin, Charles, 'The Descent of Man,' Watts and Co, London, 1946, p 220

विशिष्ट प्रकार की पलकों को मानवशास्त्री आन्तरिक त्वचा तह (Internal epicanthic fold) कहते हैं।

(६) होंठ (Lips)

होंठ भी किन्हीं के मोटे और बाहर निकले हुए होते हैं। और किन्हीं के पतले एवं अन्दर की ओर झुके हुए।

(७) ठुड्डी (Chin)

विभिन्न प्रजातियों की ठुड्डी भी विभिन्न प्रकार की होती है।

(८) जबड़ों का ढाँचा (Structure of jaws)

जबड़ों की बनावट के अनुसार मुख की आकृति होती है। ये मुख के आधार हैं। इनके विवरण के द्वारा प्रजातियों के वर्गीकरण में बड़ी सहायता मिलती है।

इस प्रकार हमने कुछ प्रमुख शारीरिक लक्षणों पर प्रकाश डाला। अब हम इन लक्षणों के आधार पर प्रजातियों के जो वर्गीकरण किये गये हैं और उनमें जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं, उन पर प्रकाश डालेंगे।

लक्षणों के आधार पर वर्गीकरण में कठिनता

शारीरिक लक्षणों को प्रजाति वर्गीकरण का आधार बनाने के लिये बाध्य होना पड़ता है, परन्तु शारीरिक लक्षणों के कुछ अन्तरों से यह समझ लेना चाहिये कि वर्गीकरण करना सरल हो गया है। कुछ मानवशास्त्रियों ने इसे गणित एवं सांख्यिकीशास्त्र (statistics) का स्वरूप देने का प्रयत्न किया है यह प्रयत्न सम्पूर्णतया विफल रहा है।

सब से बड़ी कठिनाई यह है कि प्रत्येक लक्षण एक से अधिक प्रजातियों में पाया जाता है। यदि हम रङ्ग को ही ले तो श्वेत रङ्ग में कई प्रकार के हल्के और गहरे रङ्ग मिलते हैं, जिन्हें न हम श्याम रङ्ग कह सकते हैं और न श्वेत। काकेशॉयड (Caucasoid) प्रजाति की हिन्दू उपप्रजाति है, एन्डू प्रजाति से अधिक काली है, परन्तु दूसरे लक्षण काकेशॉयड से मिलते जुलते हैं। रक्त समूह के लक्षण के विषय में हम विचार कर ही चुके हैं कि चारों रक्त समूह प्रत्येक प्रजाति में पाये जाते हैं केवल संख्या का अन्तर है। इसी प्रकार दूसरे लक्षण भी निश्चित वर्गीकरण करने में कोई योग प्रदान नहीं करते।

प्रजाति के पक्षपातियों को तो वर्गीकरण करना ही है इसलिये वे मनमानी अन्तर की रेखायें खींच कर वर्गीकरण कर डालते हैं। यही कारण है कि

जितने विद्वानों ने प्रजाति पर लिखा है उतने ही वर्गीकरण भी हैं। इससे स्पष्ट है कि प्रजातियों का कोई निश्चित वर्गीकरण वैज्ञानिक आधार पर नहीं है।

अन्तिम परन्तु सबसे महत्वपूर्ण कठिनाई यह है कि प्रजाति वंशानुसंक्रमण पर आधारित है और वंशानुसंक्रमण का जो प्रभाव मानव के विकास पर होता है उसका निश्चित रूप से अध्ययन नहीं किया जा सकता। वंशानुसंक्रमण और पर्यावरण दोनों का मनुष्य के विकास में महत्वपूर्ण भाग रहता है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों में कौन महत्वपूर्ण है। इसके विषय में प्रथम भाग में हम विस्तारपूर्वक विचार कर चुके हैं। यहाँ पर केवल इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि वंशानुसंक्रमण के वाहकाणु (Genes) होते हैं जो कि वर्ण सूत्र (Chromosomes) में छोटी छोटी गुरियों के समान चिपके रहते हैं जिन्हें सरलता से देखा भी नहीं जा सकता अध्ययन करना तो बहुत दूर की बात है।

इन सारी कठिनाइयों के होते हुए भी प्रजातियों का वर्गीकरण किया गया है। वैसे तो अनेक वर्गीकरण हैं परन्तु दो पर हम विचार करेंगे।

प्रजातियों का वर्गीकरण

(१) रङ्ग के आधार पर

साधारण मानव समूह को तीन प्रमुख प्रजातियों में बाँटा गया है। वे निम्न हैं —

(i) काकेश्वॉयड (Caucasoid) या श्वेत प्रजाति।

(ii) मङ्गोलॉयड (Mongoloid) या पीत प्रजाति।

(iii) नीग्रोवॉयड (Negroid) या श्याम प्रजाति।

आधुनिक युग के पूर्व मानव समूह की प्रमुख प्रजातियाँ भिन्न भिन्न निश्चित क्षेत्रों में सीमित थीं। नीग्रो अफ्रीका और दक्षिण पश्चिम प्रशान्त-महासागर के द्वीपों में केन्द्रित थे, मङ्गोल एशिया और उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका में छाये हुए थे और काकेशियन यूरोप, पश्चिम एशिया, एशियामाइनर और उत्तरी अफ्रीका में सीमित थे।

पन्द्रहवीं शताब्दी के उपरान्त काकेशियन प्रजाति के जत्थे के जत्थे समस्त भूमण्डल पर छा गये—उत्तरी अमेरिका, न्यूजीलैण्ड और आस्ट्रेलिया में इन्होंने वहाँ के आदिम निवासियों को प्राय समाप्त ही कर दिया है।

आवागमन एवं सन्देशवाहन के साधन बढ़ जाने के कारण प्रत्येक प्रजाति के लोग संसार के हर भाग में पाये जाते हैं और इनका प्रभाव उनके शारीरिक

लक्षणों पर भी पड़ता है। फिर भी सामान्य रूप से इन प्रजातियों के निम्न प्रमुख लक्षण हैं –

(अ) काकेशियन प्रजाति

इसे श्वेत प्रजाति (White Race) भी कहते हैं। इनका रङ्ग वास्तव में पूर्णतया श्वेत नहीं है बल्कि दूसरी प्रजातियों से इस प्रजाति का रङ्ग हल्का है। आँख का रङ्ग हल्के नीले से लेकर भूरे रंग तक पाया जाता है। बाल का रंग गहरे कबूतरी रंग (Ash blond) से लेकर काले रंग तक का होता है। बाल सीधे लहरदार या लच्छेदार होते हैं, परन्तु ऊन के समान कभी नहीं होते। पुरुषों के वक्षस्थल, भुजा, पैर और चेहरे पर बाल अधिक होते हैं। नाक छोटी और ऊँची होती है। होठ पतले, ठुड्डी सुन्दर होती है। कद मध्यम से लम्बे तक होता है।

(ब) मङ्गोलियन प्रजाति

संसार में मङ्गोल प्रजाति की आजकल सबसे अधिक संख्या है। इनका सबसे प्रमुख शारीरिक लक्षण अधखुली आँखें (slant eyes) जिन्हें मानवशास्त्री आन्तरिक त्वचा तह (Internal epicanthic fold) कहते हैं। मङ्गोलियन बच्चों के भी रीढ़ की हड्डी के आधार पर एक त्रिकोण त्वचा का भाग नारङ्गी रङ्ग का होता है। भूरा या चमकता हुआ पीला (Yellowish Tan) आँखें गहरी भूरी या केवल भूरी होती हैं। बाल काले और सीधे होते हैं। नासिका चपटी होती है। साधारणतया कद छोटा होता है।

(स) नीग्रोवॉयड

इनका रङ्ग गहरा भूरा या काला होता है इसी कारण से इन्हें श्याम प्रजाति भी कहते हैं। इनके बाल काले और ऊन के समान होते हैं। इनकी नासिका चौड़ी होती है। इनके सिर पर बाल यद्यपि घने होते हैं तथापि लम्बाई में छोटे होते हैं। पुरुषों के दाढ़ी छितरी हुई होती है और शरीर पर बाल कम होते हैं। कद मध्यम लम्बा होता है। इनके पैर असाधारण होते हैं और इस कारण जूतों की एड़ी इनको ठीक नहीं बैठती।

(२) क्रोबर का वर्गीकरण

क्रोबर (Kroeber) के निम्न वर्गीकरण किया है —

(१) काकेशॉयड (Caucasoid)	(२) मङ्गोलॉयड (Mongoloid)	(३) नीग्रोयॉयड (Negroid)
(अ) नॉर्डिक (Nordic)	(अ) मङ्गोलियन (Mongolian)	(अ) नीग्रो (Negro)
(ब) अल्पाइन (Alpine)	(ब) मलेशियन (Malaysian)	(ब) मलेनीशियन (Melanesian)
(स) भूमध्यसागरीय (Mediterranean)	(स) अमेरिकन इण्डियन (American Indian)	(स) पिग्मी ब्लेक (Pygmy Black)
(द) हिन्दू (Hindu)		(द) बुशमेन (Bushman)

सन्देहास्पद प्रजातियाँ (*Doubtful Races*)

(१) ऐनू (Ainu)

(२) पोलिनीशियन (Polynesian)

(३) वेदवॉयड (Veddoid)

इन प्रजातियों के विषय में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे किस समूह में आती हैं। क्रोबर ने एक चित्र द्वारा इन सन्देहास्पद प्रजातियों का सम्बन्ध प्रमुख प्रजातियों से दिखाने की चेष्टा की है।

प्रजाति वर्गीकरण की आलोचना
(Criticism of the classification of Races)

मानव समूह का प्रजातियों में वर्गीकरण किसी भी वैज्ञानिक आधार पर आधारित नहीं है। प्रत्येक ने अपनी इच्छा से जितने भाग उचित समझे, मानव समूह को उतने में विभाजित कर दिया। यह एक मनमानी ढङ्ग हुआ। लार्ड रेगलन (Lord Raglan) ने स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार लिखा है "यह सम्पूर्णतया स्पष्ट कर देना चाहिये कि मानव समूह का प्रजातियों में विभाजन सर्वथा मनमानी है।"[1]

प्रजातियों के विभिन्न समूहों को लोगों ने वास्तविक रूप में सत्य मान लिया है और इसके परिणाम अति भयङ्कर हुए हैं। उन पर हम आगे विचार

[1] "The division of mankind into races, must be made perfectly clear, is purely arbitrary" Lord Raglan, in his article 'Race and Modern Society' in the book 'Human Affairs' edited by R B Cattel and others

करेंगे। यहाँ पर क्रोयर के मत को व्यक्त करना अनुपयुक्त न होगा। वह लिखता है, "वे (प्रजातियाँ) सूक्ष्म सुविधाजनक लेप पत्र के समान प्रयोग में लाई जाती हैं और उनका कोई भी वास्तविक निर्देशक मूल्य नहीं है।"[1]

अनेक विद्वानों ने इसकी घोर निन्दा की है क्योंकि इसका कोई वास्तविक अस्तित्व तो है नहीं परन्तु इसके विषय में अत्यधिक चर्चा रहती है। मनुष्य, मनुष्य से इसके आधार पर घृणा करता है परन्तु उसका कोई आधार नहीं है। मेरट (Marett) लिखता है, "प्रजाति हमें अभी तक पूर्णतया भ्रम में डालती है।"[2]

प्रश्न

१, प्रजाति क्या है ? यह कैसे निश्चित की जाती है ?
(What is Race? How is it determined ?)
Agra 1951, 1953, 55, Rajputana 1955.

२. प्रजातियों का आप किस प्रकार वर्गीकरण करेंगे ?
(How would you classify races ?)

३. जाति और प्रजाति का सम्बन्ध बताइये।
(Discuss the relation of Caste and Race), Agra 1954.

SELECTED READINGS

1. Hoebel, 'Man in the Primitive World.' chapter VI
2 Dawson and Gettys, 'An Introduction to Sociology.' chapters XV, XVI.
3. Marett, 'Anthropology.' chapters II to IV.
4, Kroeber, 'Anthropology.' chapters III to V.

---

[1] "They are employed merely as brief convenient labels and that they have no real descriptive values" Kroeber, A. L 'Anthropology.' p 131.

[2] "Race still baffles us almost completely" Marett, 'Anthropology' H. U. L

अध्याय १०

प्रजाति : भारत में प्रजातियाँ
(Race . Races in India)

भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है, उस अधिकाश लोग उपमहाद्वीप (Sub-Continent) भी कहते हैं। देश भी उपजाऊ एव धन धान्य स भरा हुआ है, इसके कारण अनेक विदेशी समूह इस देश में आक्रमणकारियों के रूप में आये, कुछ लौट गये अधिकाश यहीं बस गये। इन सब के कारण यहाँ पर अनेक प्रजातियों के लोग पाये जाते हैं।

हेडन (Haddon)[1] ने निम्न प्रजातियों को भारत में पाया —

(१) प्री द्रवेडियन (Pre-Dravadians)
(२) द्रवेडियन (Dravadians)
(३) इन्डो आर्यन (Indo Aryans)
(४) इन्डो अलपाइन (Indo Alpine)
(५) मङ्गोलियन (Mongolians)

गुहा (Guha)[2] ने भारत में निम्न प्रजातीय तत्व बताये हैं —

(१) नीगरिटो (Negrito)
(२) प्रोटो आस्ट्रोलॉयड (Proto-Australoid)
(३) मगोलॉयड (Mongoloid)
   (i) पेली मगोलॉयड (Palae Mongoloid)
      (अ) लम्बे सिर वाले (Long headed)
      (ब) चौड़े सिर वाले (Broad headed)
   (ii) तिब्बतो मगोलॉयड (Tibeto Mongoloid)
(४) मेडीटरेनियन (The Mediterranean)
   (i) पेली मेडीटरेनियन (Palae Mediterranean)
   (ii) मेडीटरेनियन (Mediterranean)
   (iii) ओरियन्टल प्रकार के कहे जाने वाले (The so called Oriental type)

---

[1] Haddon, A C 'Races of Man' and 'The Wanderings of Peoples'

[2] Guha, B S 'Racial Elements in the Population' and also Census Report of 1931

(५) पश्चिमी चौड़े सिर वाले (The Western Brachycephals)

(i) एल्पाइनॉयड (Alpinoid)
(ii) डिनोरिक (Dinaric)
(iii) अरमीनॉयड (Armenoid)

(६) नॉर्डिक

रिजले (Risley)[1] ने प्रजातियों का भारत में निम्न वर्गीकरण किया है:—

(१) द्रवेडियन (Dravadian)
(२) मंगोलॉयड (Mongoloid)
(३) मंगोलो-द्रवेडियन (Mongolo-Dravadian)
(४) आर्यो द्रवेडियन (Aryo-Dravadian)
(५) स्काइथो-द्रवेडियन (Scytho-Dravadian)
(६) इन्डो-आर्यन (Indo-Aryan)
(७) टर्की इरानियन (Turko-Iranian)

(१) द्रवेडियन (Dravadian)

द्रवेडियन प्रजाति के लोग लङ्का से गंगा की घाटी तक के भाग में पाये जाते हैं। ये समस्त दक्षिणी पूर्वी भारत में छाये हुए हैं। वे मद्रास, हैदराबाद, मध्यप्रदेश के दक्षिणी भाग एवं छोटे नागपुर में बसे हैं। इनके शुद्ध प्रतिनिधि मलाबार एवं छोटे नागपुर में पाये जाते हैं। इनका कद छोटा और रंग अत्यधिक काला होता है। इनके बाल अधिक होते हैं और प्रायः लहरदार होते हैं। सिर लम्बा और नाक चौड़ी होती है। आँखें गहरी काली होती हैं। नाक बहुत चौड़ी होती है।

(२) मंगोलॉयड (Mongoloid)

ये हिमालय पर्वत के किनारे किनारे पाये जाते हैं जैसे आसाम, नैपाल और बर्मा। इनका सिर चौड़ा और रंग गहरा होता है परन्तु कुछ पीलापन लिये हुए रहता है। मुख पर बाल कम होते हैं। कद छोटा होता है। चेहरा चौरस (Flat) होता है। आँख की पलकें झुकी हुई होती हैं।

---

[1] Risley H H, 'The People of India'

(३) मंगोलो द्रवेडियन (Mongolo-Dravadian)

यह बंगाल और उड़ीसा में पाये जाते हैं। रिजले का मत है कि यह मंगोलो और द्रवेडियनो के मिलने से बनी है। इनका रग काला होता है। इनके सिर गोल होते हैं। नाक मध्यम प्रकार की होती है परन्तु कभी चपटी होती है। कद मध्यम होता है। चेहरे पर बाल घने होते हैं।

(४) आर्यो-द्रवेडियन (Aryo-Dravadian)

ये उत्तरप्रदेश और राजपूताना एव बिहार के कुछ भागों में पाये जाते हैं, सिर लम्बा होता है। रंग प्रत्येक स्थान पर विभिन्न पाया जाता है परन्तु सामान्यतया हल्के भूरे से काले रग तक पाया जाता है। नासिका लम्बी और मध्यम प्रकार की होती है।

(५) स्काइथो द्रवेडियन (Scytho Dravadian)

ये मध्यप्रदेश, सौराष्ट्र, कुर्ग के पहाड़ी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इनकी नाक लम्बी एवं ऊँची सुन्दर सी होती है। इनके सिर चौड़े होते हैं, इनका रङ्ग उज्ज्वल होता है। इनके शरीर पर बाल अधिक होते हैं। इनका कद मध्यम होता है।

(६) इंडो आर्यन (Indo-Aryan)

ये लोग पंजाब, राजपूताना और काश्मीर में पाये जाते हैं। इस प्रजाति में राजपूत, खत्री और जाट जाति के लोग अधिक पाये जाते हैं। ये यूरोपियन प्रजातियों से मिलते जुलते हैं। इनका कद लम्बा और रङ्ग साफ होता है। आँखें काली होती हैं। चेहरे पर बाल घने होते हैं। सिर लम्बा होता है। नासिका सुन्दर व पतली होती है परन्तु बहुत लम्बी नहीं होती।

(७) टर्को-इरानियन (Turko-Iranian)

ये बिलोचिस्तान और उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में पाये जाते हैं। ये मुस्लिम धर्म के अनुयायी हैं। इनकी नाक लम्बी यहूदियों सरीखी होती है। बाल अधिक होते हैं। इनके सिर चौड़े होते हैं। इनका कद औसत से अधिक लम्बा होता है। इनका रङ्ग काफी उज्ज्वल होता है।

ये हिस्से आजकल पाकिस्तान में हैं इसलिये हम कह सकते हैं कि भारत में *यह प्रजाति अब नहीं पाई जाती।*

भारत में अनेक प्रजातियों का मिश्रण पाया जाता है। कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि भारतवर्ष प्रजातियों के मिश्रण करने का पात्र है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि भारतवर्ष प्रजातियों का अजायबघर (Zoo) है। वास्तव में ये सब कथन सत्य हैं क्योंकि यहाँ पर ससार की सब प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

प्रश्न

१. भारत मे कौन से प्रजातिक तत्व पाये जाते हैं ?
(What racial elements are found in India ?)
२. "भारतवर्ष प्रजातियों का अजायबघर है।" विवेचना कीजिये।
('India is a zoo of Races.' Comment.)

SELECTED READINGS

1 Risley, 'The People of India'.
2. Guha, B S 'The aboriginals', (pamphlet).
3 Mazumdar, 'Races and Cultures of India,' chapters I to III.

भारत में प्रजातियों के विषय में अधिक विस्तार में प्रोफेसर रामबिहारी सिंह तोमर द्वारा लिखित पुस्तक 'भारतीय समाज का विश्लेषण' पढ़िये।

अध्याय ११

प्रजाति : प्रजातिवाद
(Race : Racism)

हमने अभी तक प्रजातियों पर विचार किया। अब हम उस विचारधारा पर विचार करेंगे जो कि प्रजाति के सिद्धान्त पर आधारित है और जिसे प्रजातिवाद के नाम से पुकारते हैं।

प्रजातिवाद का अर्थ (Concept of Racism)

प्रजातिवाद वह विचारधारा है जो एक प्रजाति को दूसरी प्रजाति से ऊँच या नीच बनाती है और इस असमानता के आधार पर एक दूसरे का व्यवहार होता है। प्रजातिवाद की व्याख्या करते हुए बेनेडिक्ट (Benedict) ने लिखा है, 'एक समूह मे उच्चता की भावना होती है और दूसरे में नीचता की।"[1]

यह उच्चता और नीचता की भावना इस मात्रा में विकसित हो जाती है कि एक समूह दूसरे समूह से घृणा करने लगता है और यथासम्भव शोषण करता है। साधारणतया निम्न प्रकार से शोषण किये जाते हैं :—

(१) प्राणीशास्त्री विभेद (Biological Discrimination)

दो प्रजातियाँ आपस में कभी विवाह नहीं करतीं और न ही अन्य कोई यौन सम्बन्ध स्थापित हो सकते हैं।

(२) आर्थिक विभेद (Economic Discrimination)

आर्थिक क्षेत्र में भी प्रजाति के आधार पर विभेद किया जाता है। जिस प्रजाति को निम्न समझा जाता है उसे अधिक आर्थिक लाभ वाले कार्यों से पृथक् रखा जाता है, उन पर कोई भी विश्वास नहीं करता है और उन्हे घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

(३) नागरिक विभेद (Civic Discrimination)

जिस प्रजाति को निम्न समझते हैं उसके नागरिक अधिकारों को भी छीन लिया जाता है। उनको मत देने का भी अधिकार नहीं रहता।

---

[1] "One group has the stigmata of superiority and the other has those of inferiority". Benedict, R F 'Race, Science and Politics', p. 5.

उनको न्याय भी उचित प्रकार से नहीं मिलता। अपराध कोई करे और दण्ड इस प्रजाति के सदस्य सहे। प्रजाति घृणा के कारण न्यायाधीश अधिक दण्ड देते हैं।

(४) सामाजिक विभेद (Social Discrimination)

प्रजातिवाद के कारण भिन्न प्रजाति का सम्पूर्ण जीवन ही नरक बन जाता है। उन्हें पृथक् बस्तियों में रहना पड़ता है और अच्छे मकान नहीं बनाने दिये जाते। प्रथम तो उनकी आय ही बहुत कम होने दी जाती है और यदि किसी ने आय कर भी ली तो वह सुख से नहीं रह सकता। यदि कभी वे यात्रा पर गये तो होटलों में स्थान नहीं पाते।

शिक्षा के क्षेत्र में विभेद चलता है। दोनों प्रजातियों के लोग साथ साथ पढ़ भी नहीं सकते। अस्पताल भी अलग अलग होते हैं। मनोविनोद के केन्द्रों में भी उनके लिये ताला बन्द रहता है। रेलगाड़ी एवं बसों में उन्हें अलग बैठने के लिये बाध्य होना पड़ता है। इस प्रकार उनके लिये अनेक विभेद खड़े कर दिये जाते हैं। यह एक प्रकार का दासत्व है।

प्रजातिवाद का यह कुचक्र यहीं पर समाप्त नहीं होता। इसने राजनैतिक क्षेत्र में उस अद्वितीय सामूहिक कटुता का निर्माण किया है कि अनेक राष्ट्र एक दूसरे से युद्ध करने के लिये तत्पर हैं। इसके लिये जर्मनी व अमेरिका का इतिहास देखना उचित होगा। खुल्लमखुल्ला प्रजातिवाद का नग्न दृश्य दक्षिणी अफ्रीका में देखा जा सकता है।

प्रजातिवाद की समस्या

जिस विचारधारा के कारण इतने अत्याचार एवं संघर्ष होते हैं वह कहाँ तक सत्य है, इसके सम्बन्ध में हमारे सम्मुख दो प्रमुख प्रश्न उपस्थित होते हैं- प्रथम, क्या मानव समूह का प्रजातियों में वर्गीकरण उचित है? और यदि वर्गीकरण किसी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए कर भी लिया जाय तो, क्या प्रजाति समूह एक दूसरे से मौलिक रूप में भिन्न हैं? दूसरा प्रश्न यह है कि प्रजातियाँ एक दूसरे से भिन्न होने के कारण उच्च हैं या क्षुद्र?

इन प्रश्नों का उत्तर देने से ही प्रजातिवाद की समस्या का विश्लेषण स्वयं ही हो जायगा।

(अ) क्या वर्गीकरण उचित है?

सर्व प्रथम हम इस बात पर विचार करेंगे कि क्या प्रजाति वर्गीकरण सिद्धान्त उचित है। इस प्रश्न को समझने के लिये एक ही आधार हमें लेना

पड़ता है, और यदि उस आधार पर वर्गीकरण हुआ है तो वह उचित है, वरना अनुचित। इसकी कसौटी यही है कि प्रजाति वर्गीकरण का कोई वैज्ञानिक आधार है या नहीं। निश्चित शारीरिक असमानतायें मानव समूहों मे नहीं पायी जातीं। हमने देखा कि वर्गीकरण का प्रमुख आधार रङ्ग है और प्रारम्भ से ही वर्ण के अनुसार वर्गीकरण किये गये हैं। ये लक्षण वर्गीकरण करने में अधिक सहायता नहीं पहुंचाते। वर्गीकरण करने वालों को मनमानी रेखायें खींचनी पड़ती है। *प्रजाति का वर्गीकरण वैज्ञानिक आधार पर आधारित नहीं है*, अत: उसे उचित नहीं कहा जा सकता। हॉबल (Hoebel) ने उचित ही लिखा है, "*यह सत्य है कि प्रजाति के प्रति जागरूक मनुष्य अपने मस्तिष्क मे प्रजातीय स्वरूपों के चित्र रखते है।*"[1]

इस समस्या का दूसरा अङ्ग भी है। प्रजाति वर्गीकरण शारीरिक लक्षणों की असमानताओं पर आधारित है, परन्तु आश्चर्य है कि इन अस्पष्ट एवं आधारहीन असमानताओं पर इतना ध्यान दिया जाता है और मौलिक समानताओं पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते। प्राय: मानव स्वभाव प्रत्येक प्रजाति मे समान होता है। नीग्रो स्त्री श्वेत पुरुष के साथ सहवास कर सकती है। इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता और सन्तान बनने की सम्पूर्ण प्राणीशास्त्रीय प्रक्रिया अपने ढग से चलती रहती है, आन्तरिक एवं मौलिक ढाँचे मे पूर्ण समानता पाई जाती है। शरीर का सम्पूर्ण ढाँचा आँख, कान, नाक, पेट सब कुछ एक से हैं। एक नीग्रो प्रजाति का व्यक्ति अपने रक्त से श्वेत प्रजाति के व्यक्ति को जीवन दान दे सकता है, इतनी समानतायें होते हुए भी इतना कठोर वर्गीकरण क्यों?

एक बात और है कि जितनी असमानतायें एक प्रजाति और दूसरी प्रजाति में पाई *जाती है, उससे कहीं अधिक असमानतायें एक प्रजाति के सदस्यों में* पाई जाती हैं। अत: ऊपरी शारीरिक लक्षणों की असमानता, जो सदैव परिवर्तित होती रहती है, किसी भी वैज्ञानिक वर्गीकरण मे योग नहीं दे सकती। अत: मानव समूह का प्रजातियों में विभाजन उचित नहीं है।

अब हमारे सामने यह प्रश्न है कि ससार में शुद्ध व अमिश्रित प्रजातियाँ पाई जाती हैं या नहीं।

शुद्ध व अमिश्रित प्रजातियाँ (The Pure Races)

ससार में शुद्ध प्रजातियों का अस्तित्व है या नहीं, यह एक बड़ा मनोरंजक प्रश्न है। प्रजातियों का वर्गीकरण और नामकरण दोनों ही हो गए हैं और

[1] "It is a fact that race conscious persons hold an image of racial types in their heads" Hoebel, E A 'Man in the Primitive World'. p. 71.

प्रजातिवाद एक प्रजाति को दूसरी प्रजाति से मिलने नहीं देना चाहता। शुद्ध प्रजाति की इतनी चर्चा होते हुए भी किसी ने यह स्पष्ट नहीं किया कि शुद्ध प्रजाति क्या है ?

आज के युग में यातायात एवं आवागमन के साधन इतने सुलभ हो गए हैं कि एक स्थान की जन-संख्या दूसरे स्थान की जन-संख्या से बहुत सम्बन्धित हो गई है। इसके कारण शुद्ध प्रजातियों का प्रश्न खड़ा ही नहीं होता। हॉबल ने स्पष्ट रूप से लिखा है, "भूमण्डल पर आज शुद्ध प्रजाति नाम की कोई वस्तु नहीं है। प्रागैतिहासिक समय में शुद्ध प्रजातियाँ थीं या नहीं, हम नहीं जानते। भविष्य में कभी भी शुद्ध प्रजाति नहीं होगी, यह निश्चित है।"[1]

इससे यह स्पष्ट है कि शुद्ध प्रजातियाँ संसार में नहीं पाई जातीं। जब शुद्ध प्रजातियाँ ही नहीं पाई जाती हैं तो प्रजातिवाद का झगड़ा ही क्यों खड़ा होता है।

क्या कोई प्रजाति उच्च है ? (Is there a superior Race ?)

प्रजातिवाद का प्रमुख आधार यह है कि एक प्रजाति दूसरी प्रजाति से ऊँची या नीची है। यह ऊँच नीच तीन क्षेत्रों में पाई जाती है—

(१) रक्त की उच्चता (Superiority of blood)
(२) मानसिक उच्चता (Mental Superiority)
(३) सांस्कृतिक उच्चता (Cultural Superiority)

अब हम इन पर एक एक करके विचार करेंगे और देखेंगे कि क्या इस प्रकार की कोई उच्चता पाई जाती है।

(१) रक्त की उच्चता

रक्त की उच्चता का विचार बड़ा पुराना है और इसी कारण प्रजातिवादी दो प्रजातियों में विवाह सम्बन्ध स्थापित करने का विरोध करते हैं, क्योंकि विवाह सम्बन्ध से रक्त मिश्रित सन्तानें उत्पन्न होंगी।

आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार रक्त और वंशानुसंक्रमण का कोई सम्बन्ध नहीं है। रक्त चार समूहों में विभाजित होता है और ये समूह प्रत्येक प्रजाति में पाए जाते हैं। प्रजातियों के रक्त में किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं है। अमेरिका में रेड क्रास समिति के सम्मुख पिछले महायुद्ध के समय एक प्रजातिवाद की जटिल समस्या खड़ी हो गई थी। जनता के आग्रह पर उन्होंने नीग्रो रक्त को रक्त बैंक में पृथक् रखा, परन्तु जब रक्त से जीवन दान का प्रश्न

[1] "There is no such thing as a pure race on the face of the globe to day Whether there were pure races in the prehistoric past, we do not know That there never will be a pure race in the future, is a certainty." Ibid, p 73.

आया तो सेना के अधिकारियों ने किसी प्रकार का विभेद नहीं किया। नीग्रो रक्त उतना ही जीवनदायक था जितना किसी श्वेत या मंगोलियन का।

इससे सिद्ध होता है कि रक्त की उच्चता का विचार मिथ्या एवं भ्रमपूर्ण है।

(२) मानसिक उच्चता (Mental Superiority)

कुछ विद्वानों का मत है कि कुछ प्रजातियाँ वंशानुसंक्रमण के उच्च होने के कारण मानसिक दृष्टि से उच्च होती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि किसी प्रजाति का वंशानुसक्रमण उच्च होता है और किसी का निम्न। हम प्रथम भाग में 'वंशानुसंक्रमण और पर्यावरण' का अध्याय पढ़ चुके हैं, उससे स्पष्ट है कि वंशानुसक्रमण हमको शक्ति देता है और उसका विकास पूर्णतया पर्यावरण पर आधारित रहता है। अत आधुनिक युग में यदि कोई प्रजाति विश्व में आगे बढ़ रही है और मानसिक रूप से उच्च दिखाई पड़ती है तो यह केवल प्रजाति का प्रभाव नहीं है बल्कि इसके और भी महत्वपूर्ण कारण हैं, उनमें से पर्यावरण प्रमुख है।

न्यूयार्क में हुए एक परीक्षण का भी यही निष्कर्ष है। वहाँ के शिक्षा अधिकारियों ने एक विशेष विद्यालय होनहार विद्यार्थियों के लिए प्रारम्भ करने का निश्चय किया। इस विद्यालय के लिए उन्होंने ५०० होनहार बालक बुद्धि परीक्षण द्वारा पूरे नगर के प्रारम्भिक विद्यालयों से चुने। बाद में जब इन ५०० बालकों को प्रजातीय, धार्मिक और राष्ट्रीय वर्गों में बाँटा गया तो यह परिणाम जानकर आश्चर्य हुआ कि जिस प्रजाति की जितने प्रतिशत जनसंख्या थी उतना ही अनुपात इन बच्चों मे भी था। न्यूयार्क नगर में १०% नीग्रो थे और इन ५०० बालकों में से भी ५० बच्चे नीग्रो थे।[1]

प्रत्येक प्रजाति में योग्य व्यक्ति पाये जाते हैं। एक नीग्रो लड़की का बुद्धिफल (I Q.) २०० था जो कि सामान्य श्वेत बालक से दुगना है।

प्रजातिवादियों का कहना है कि नीग्रो की खोपड़ी छोटी है इसलिये वे कम बुद्धिमान होते हैं। यदि यही तर्क लिया जाय तो एस्कीमो और नीग्रो काफिर श्वेत प्रजाति से अधिक बुद्धिमान होने चाहिये थे, क्योंकि उनकी खोपड़ी अधिक बड़ी है, परन्तु इस प्रकार की बात सत्य नहीं है। क्लाइनबर्ग (Klineberg) ने लिखा है, "साधारणतया सिर के आकार और बुद्धि में बहुत कम सम्बन्ध है यद्यपि यह धनात्मक है।"[2]

---

[1] UNESCO publication 'What is Race ?' P 57

[2] "In general there appears to be an exceedingly small though positive correlation between head size and intelligence" Klineberg, O H 'Race differences', UNESCO publication, p 80.

वैज्ञानिकों द्वारा अनेक परीक्षण किये गये हैं और वे इस तथ्य पर पहुँचे हैं कि बुद्धि और प्रजाति का कोई सम्बन्ध नहीं है, अत प्रजाति के आधार पर मानसिक उच्चता का प्रश्न निर्मूल है।

(३) साँस्कृतिक उच्चता (Cultural Superiority)

मानसिक उच्चता और प्रजाति के सम्बन्ध पर हम प्रकाश डाल ही चुके हैं। उसी आधार पर प्रजातिवादियों का यह भी मत है कि उच्च प्रजातियों की उच्च संस्कृति होती है। आज की पाश्चात्य सभ्यता से चकाचौंध होकर यूरोप के निवासियों का यह विचार हो गया है कि उनकी प्रजाति ही सभ्य है और शेष सब असभ्य हैं।

उनकी यह भी धारणा है कि संसार को सभ्य बनाने का शुभ कार्य ईश्वर ने उनकी प्रजाति को ही सौंपा है परन्तु उन्हें पता नहीं या मतवाले होकर भूल गये हैं कि छः शताब्दी पूर्व जब कि कुछ ही यूरोप के रहने वाले पढ़ सकते थे, चीन के निवासियों ने कागज का अन्वेषण कर लिया था और यूरोप से चार शताब्दी पूर्व छपाई का अन्वेषण भी कर चुके थे। जब यूरोप के लोग नंगे जंगलों में घूमा करते थे तब भारतीय सभ्यता सर्वोच्च शिखर पर थी।

नीग्रो अफ्रीका समस्त संसार से भौगोलिक कारणों से अलग था, साथ ही जिधर से मिला हुआ भी था उधर से मार्ग बहुत दूर थे। रेगिस्तान और घने जंगलों ने उन्हें एशिया और यूरोप के साँस्कृतिक केन्द्रों से दूर रखा और एशिया और यूरोप के निवासी यह न जान सके कि अफ्रीका की सभ्यताओं ने मध्य युग में किस प्रकार विकास किया। पश्चिमी अफ्रीका के घाना साम्राज्य (Ghana Kingdom) की प्रत्येक अरबी यात्री ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इसी पृथकता के कारण हम यह नहीं जानते कि उनका साँस्कृतिक जीवन क्या रहा होगा। संस्कृतियाँ उत्कर्ष और अपकर्ष की प्रक्रिया में सदैव चलती रहती हैं। आज यदि कोई संस्कृति फल फूल रही है तो हो सकता है कि कल वह समाप्त हो जाय।

संस्कृति या सभ्यता के विकास का कारण प्रजाति कैसे हो सकती है? पर्यावरण एक महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। मौलिक स्वभावों में कोई अन्तर दिखाई नहीं पड़ता। जो कुछ एक श्वेत बालक सीखता है, वही एक नीग्रो या श्याम प्रजाति का बालक भी सीख सकता है यदि उसे भी वही सुविधायें प्राप्त हों।

इससे स्पष्ट है कि प्रजातिवाद का नारा थोथा एवं शोषण करने के हेतु एक बहाना मात्र है। प्रजाति के आधार पर न कोई उच्चता होती है न निम्नता।

प्रजाति के विषय में आधुनिकतम निष्कर्ष
(Latest conclusions about Race)

यूनेस्को ने १६४६ मे विभिन्न राष्ट्रों के समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों एव मनोवैज्ञानिकों की एक बैठक १२ से १४ दिसम्बर तक पेरिस मे की। इस का उद्देश्य यही प्रश्न हल करना था कि प्रजाति का क्या अर्थ है और इसको सरल शब्दों मे किस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है। इन विद्वानों ने जो निर्णय दिये वे १८ जुलाई १६५० को प्रकाशित किये गये। इस रिपोर्ट पर काफी टीका टिप्पणी हुई और इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया गया कि प्राणीशास्त्र सम्बन्धी जानकारी रखने वाले विद्वानों की बैठक बुलाई जाय। यूनेस्को ने बारह वैज्ञानिकों को बुलाया जो शारीरिक मानवशास्त्र (Physical Anthropology) और मानव उत्पादक विज्ञान (Human Genetics) के विद्वान थे। इन वैज्ञानिकों ने प्रजाति के विषय मे निम्न निश्चय किये —[1]

(१) सब मनुष्य एक ही श्रोत से प्रारम्भ हुये हैं और एक ही जाति के हैं।

(२) शारीरिक लक्षणों में अन्तर वशानुसक्रमण (Heredity) और पर्यावरण (Environment) दोनों के ही प्रभाव से होता है।

(३) वशानुक्रमण मे अन्तर दो प्रक्रियाओ के कारण हुआ है —
(i) उत्परिवर्तन (Mutation) और (ii) अन्तर्विवाह (Cross Marriages)

(४) राष्ट्रीय, धार्मिक भौगोलिक, साँस्कृतिक, और भाषा समूह प्रजाति के द्योतक नहीं हैं।

(५) मानव प्रजातियो का वर्गीकरण किया गया है और किया जा सकता है परन्तु उसमें उच्चता और निम्नता का कोई प्रश्न नहीं उठता।

(६) प्रत्येक प्रजाति मे बुद्धिमान व्यक्ति पाये जा सकते हैं।

(७) प्रजातीय भिन्नतायें साँस्कृतिक भिन्नताओं का कारण नहीं हैं।

(८) तथाकथित शुद्ध प्रजातियाँ नहीं पाई जाती हैं। प्रजाति मिश्रण अतीत काल से चला आ रहा है और ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता जिसके कारण अन्तर्प्रजाति विवाहों को रोका जावे।

(९) मनुष्य मनुष्य समान हैं और प्रत्येक को समान अवसर प्रदान किया जाना चाहिए तथा विधि (Law) के आगे सब समान हैं।

(१०) व्यक्तिगत एवं सामूहिक अन्तर वैज्ञानिक आधार पर निम्न हैं:—
(i) प्रजाति का वर्गीकरण केवल शारीरिक लक्षणों पर आधारित है।
(ii) बुद्धि एव भावना के विकास की आन्तरिक शक्ति प्रत्येक प्रजाति को समान है।

---
[1] 'Race Concept' UNESCO publication, Paris, 1952

(iii) कुछ प्राणीशास्त्रीय अन्तर एक प्रजाति के व्यक्तियों में अत्यधिक हो सकते हैं जब कि वही अन्तर एक प्रजाति और दूसरी प्रजाति में उतनी मात्रा में नहीं पाये जाते।

(iv) महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन होते रहते हैं जिनका प्रजातीय स्वरूप के परिवर्तन से कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय अध्ययन इस विचार की पुष्टि करते हैं कि वंशानु सक्रमण का कोई विशेष महत्व यह निश्चय करने में नहीं रहता कि विभिन्न मानव समूहों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवस्था भिन्न है।

(v) इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि प्रजाति मिश्रण प्राणीशास्त्रीय दृष्टिकोण से हानिकारक है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि प्रजाति विभेद जो मानव समूहों के बीच संघर्ष उत्पन्न किये हुए था, निराधार है। प्रजाति शब्द बड़ा खतरनाक है।

प्रजाति शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द
(Another word in place of Race)

प्रजाति शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है और शताब्दियों का काला इतिहास इसका प्रमाण है। इस शब्द के कारण विभिन्न समूहों में सदैव संघर्ष होता रहा है। जिस शब्द का वास्तविक रूप में कोई अर्थ नहीं है उसके प्रयोग से क्या लाभ। अधिकांश समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों का मत है कि प्रजाति (Race) शब्द का प्रयोग ही न किया जाय। जूलियन हक्सले (Julian Huxley) ने लिखा है, "यह अति सुविधाजनक होगा यदि हम प्रश्नसूचक शब्द 'प्रजाति' का प्रयोग मानव समस्याओं की वार्ता से निकाल दें और उसके स्थान पर 'जाति समूह' (Ethnic Group) शब्द का प्रयोग करें।"[1]

'Ethnic Group' शब्द का प्रयोग लेपियर (Lapiere) ने अपनी पुस्तक 'सोशियोलोजी' में किया है। डॉसन और गेटीज (Dawson and Gettys) ने भी अपनी पुस्तक 'An Introduction to Sociology' में इस शब्द का प्रयोग किया है। यूनेस्को ने भी अपने प्रजाति सम्बन्धी वक्तव्य में, जो १८ जुलाई १९५० को प्रकाशित किया था, इस शब्द के प्रयोग करने पर बल दिया है और प्रजाति शब्द को न प्रयोग किया जाय, यह राय दी है।

---

[1] "It would be highly desirable if we could banish the question begging term 'race' from all discussions of human affairs and substitute the non committal phrase 'ethnic group,'" Huxley, Julian. 'The Concept of Race' Harper's Magazine Vol. 170. 1955, pp. 697-698

ओडम[1] ने लिखा है प्रजाति शब्द के स्थान पर 'Folk' शब्द का प्रयोग करना चाहिये।

प्रश्न

१ आप प्रजातिवाद से क्या समझते हैं ? (राजस्थान, १६५८)
(What do you understand by Racism ? Discuss)

२. प्रजाति और संस्कृति, बौद्धिक क्षमता एवं रक्त किस प्रकार सम्बन्धित हैं ?
(How are Race and Culture, Race and Intelligence and Race and Blood related ?)

३. प्रजाति के विषय में आधुनिकतम विचार क्या हैं, दूसरा क्या शब्द अच्छा है और क्यों ? (आगरा, १६५२)
(What are the latest conclusions regarding race ? What other term is preferable and why ?)

SELECTED READINGS

1. 'Race Concept' UNESCO Publication.
2. 'What is Race' UNESCO Publication.
3. Hoeble, 'Man in the Primitive World,' chapter VII.

---

[1] Odum, H W 'Understanding Society' p 137 The Macmillan Co Inc, New York, 1947

अध्याय १२

राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता

(Nation and Nationality)

राष्ट्र और राष्ट्रीयता आपस में अत्यधिक सम्बन्धित हैं। मानव समूहों में इनका प्रमुख स्थान है। आधुनिक युग में इनका महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। परिवार और राष्ट्र दो ऐसे मानव समूह हैं जिनकी सदस्यता मनुष्य को अनिवार्य रूप से स्वीकार करनी पड़ती है। पहिले हम राष्ट्रीयता (Nationality) पर विचार करेंगे।

राष्ट्रीयता (Nationality)

राष्ट्रीयता की विद्वानों ने अनेक परिभाषायें की हैं। लार्ड ब्राइस (Lord Bryce) ने लिखा है, "राष्ट्रीयता एक जनसमूह है जो कि कुछ निश्चित बन्धनों द्वारा बंधा हुआ होता है, उदाहरण के लिये भाषा और साहित्य, विचार-धाराओं, रीति रिवाजों और परम्पराओं द्वारा एक अटूट एकता का इस प्रकार अनुभव करते हैं कि दूसरे जनसमूहों से अपने को पृथक् समझते हैं।" [1]

डासन और गेटिस (Dawson and Gettys) ने लिखा है, "एक आन्तरिक एकता, समूह के सदस्यों में अपनेपन की भावना और सामान्य संस्कृति एवं सामान्य जीवन में भागीदार होने की भावना राष्ट्रीयताओं के प्रमुख लक्षण हैं।" [2]

करपू ने लिखा है, "राष्ट्रीयता सामान्य आध्यात्मिक या मनोवैज्ञानिक भावना को उन लोगों में द्योतित करती है जिनमें कुछ सामान्य समतायें एवं

---

[1] 'A nationality is a population held together by certain ties, as for example, language and literature, ideas, custums and traditions, in such a way as to feel itself a coherent unity distinct from other populations held together by like ties of their own" Lord Bryce, 'South America' p. 24

[2] "Nationalities are characterized by an internal cohesiveness, a sense of belonging together on the part of the members of the group and a feeling of being sharers in a common culture and a common way of life" Dawson, Carl A and Gettys, Warner E. 'An Introduction to Sociology', Third edition, p 313

लगाव होता है।"[1] हेज (Hayes) ने लिखा है राष्ट्रीयता "उन मनुष्यों का समूह है जो कि या तो समान भाषा बोलते हैं या अति सम्बन्धित प्राकृत भाषायें, जो कि सामान्य ऐतिहासिक परम्पराओं को प्रिय मानते हैं और इस प्रकार एक स्पष्ट सांस्कृतिक समाज का निर्माण करते हैं या ऐसा विश्वास करते हैं।"[2]

राष्ट्रीयता की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि यह मनुष्यों का वह समूह है जिसके सदस्य अनेक बन्धनों के कारण एक दूसरे से बन्धे हुए रहते हैं और अपने समूह को अन्य समूहों से पृथक् मानते हैं। इसमें मनोवैज्ञानिक एकता पर शक्ति बल रहता है। समूह के सदस्यों में 'हम' की भावना का आधिक्य रहता है।

राष्ट्रीयता एक मनोवैज्ञानिक एकता है। यह एक प्रमुख एव महत्वपूर्ण अन्त समूह है। हमने अन्त समूह का विवरण देते हुए अध्याय २ में लिखा है कि मनोवैज्ञानिक एकता के निर्माण के लिये कुछ तत्व आवश्यक होते हैं। अब हम देखेंगे कि राष्ट्रीयता के निर्माण में कौन से तत्व आवश्यक हैं।

राष्ट्रीयता के आवश्यक तत्व
(Essential elements of Nationality)

एक बात का सदैव हमें ध्यान रखना पड़ेगा कि ये तत्व राष्ट्रीयता की भावना को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। राष्ट्रीयता के आवश्यक तत्व निम्न है —

(१) प्रजाति की एकता (Unity of Race)

राष्ट्रीयता के आवश्यक तत्वों मे प्रजाति की एकता एक महत्वपूर्ण तत्व है। राष्ट्रीयता (Nationality) शब्द 'नेटस' (Natus) से बना है जो कि उत्पत्ति या प्रजाति का द्योतक है। इस आधार पर अनेक विद्वानों ने राष्ट्रीयता को प्रजातिक समूह माना है। सर आर्थर कीथ (Arthur Keith) ने तो राष्ट्र और प्रजाति में कोई भी भेद नहीं माना है। जिमर्न (Zimmern) ने भी प्रजाति एकता को बड़ा महत्व दिया है।

---

[1] "Nationality ... indicates a common spiritual or psychological sentiment among people having some common affinities" Kapur, A C 'Principles of Political Science,' Premier Publishing Co, Delhi, (1655), p 42

[2] A Nationality is "A group of pepole who speak either the same language or closely related dialects, who cherish common historical traditions and thus constitute or think they constitute, a distinct cultural society" Hayes, 'Essays on Nationalism' (1926), p 5

निस्सन्देह ही प्रजाति राष्ट्रीयता के निर्माण में एक आवश्यक तत्व है। एक प्रजाति के सदस्यों में शारीरिक लक्षण समान होने के कारण राष्ट्रीयता की भावना शीघ्र जागृत होती है।

प्रजाति का महत्व दिन प्रति दिन घटता जा रहा है। कुछ लोगों का कहना है कि प्रजाति राष्ट्रीयता के निर्माण में एक आवश्यक तत्व नहीं है। वे इसका विरोध सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनों दृष्टिकोणों से करते हैं। सैद्धांतिक दृष्टिकोण से उनका कहना है कि संसार में कोई भी शुद्ध, अमिश्रित प्रजाति नहीं पाई जाती है। इस पर हम पिछले अध्याय में काफी प्रकाश डाल चुके हैं। गिलक्राइस्ट (Gilchrist) ने लिखा है, "प्रजातियों का विज्ञान मानव-जातिशास्त्र भी निर्विवादयुक्त प्रजातियों का सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं करता है।"[1]

प्रजातियों का मिश्रण एक दूसरे से सदैव होता रहता है। लम्बे अतीत में कभी शुद्ध अमिश्रित प्रजातियाँ होती होंगी, हम कह नहीं सकते। वर्तमान समय में कोई भी शुद्ध प्रजाति नहीं है और यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि भविष्य में प्रजाति नाम की वस्तु का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। व्यवहारिक दृष्टि से यदि हम अवलोकन करें तो प्रत्येक राष्ट्रीयता में कई प्रजातियाँ मिलेंगी। इङ्गलैण्ड को लीजिये, यहाँ पर केल्ट (Celt), ब्रिटेन (Britain), एंगल (Angel), नॉर्मन (Norman) आदि विभिन्न प्रजातियों का मिश्रण पाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.) इसका ज्वलंत एवं अद्वितीय उदाहरण है। अमेरिका में यूरोप से विभिन्न प्रजातियाँ जा कर बसीं। इस प्रकार भारत में आर्य, द्रविड़, शक, हूण इत्यादि प्रजातियों के लोग निवास करते हैं और उनकी राष्ट्रीयता एक है।

गार्नर ने इस विचार की पुष्टि करते हुए लिखा है, "प्रजाति एक शारीरिक अनुलक्षण है, जब कि राष्ट्र एक जटिल अनुलक्षण है जिसमें आध्यात्मिक तत्व भी प्रविष्ट होते हैं।"[2]

कुछ व्यक्ति प्रजाति की एकता से दूसरा अर्थ लगाते हैं। उनका कहना है कि प्रजाति की एकता से हमारा तात्पर्य सामान्य उत्पत्ति में विश्वास है, वह चाहे सत्य हो या कल्पित। ऐसी लोक कथाएं प्रचलित हो जाती हैं जो कि

[1] "Even the science of races, Ethnology, gives no undisputed theory of races Gilchrist, R N. 'Principles of Political Science,' p 28

[2] "Race is a physical phenomenon where as nationality is a complex phenomenon into which spiritual elements enter." Garner, 'Political Science and Government,' p. 117.

संयुक्त राज्य अमेरिका दोनों में ही बोली जाती है, परन्तु वे दो विभिन्न राष्ट्रीयताओं के पुजारी हैं। स्विट्जरलैण्ड में फ्रेंच जर्मन और इटालियन भाषायें बोली जाती हैं, परन्तु उनकी राष्ट्रीयता एक है। इसी प्रकार की दशा रूस और भारतवर्ष में भी पाई जाती है, इन देशों में अनेक भाषायें बोली जाती हैं परन्तु वे एक राष्ट्रीयता के सूत्र में बंधे हुये हैं। इन अपवादों के होते हुए भी भाषा के महत्व को कम नहीं किया जा सकता। भाषा राष्ट्रीयता के निर्माण में एक आवश्यक तत्व होती है।

(३) भौगोलिक एकता (*Geographic Unity*)

भौगोलिक एकता राष्ट्रीयता के निर्माण और स्थायित्व के लिये एक आवश्यक तत्व है। अधिकांश राष्ट्रीयता के नाम प्रदेश के अनुसार होते हैं जैसे अमेरिका के अमेरिकन भारत के भारतीय, पुर्तगाल के पुर्तगाली, स्काटलैण्ड के स्काट रूस के रूसी इत्यादि।

राष्ट्रीयता के लिये भौगोलिक एकता का एक आवश्यक तत्व होना निम्न लिखित कारणों पर आधारित है:—

(अ) भौगोलिक दशा व जलवायु का प्रभाव

भौगोलिक एकता होने के कारण समूह एक ही भौगोलिक पर्यावरण में रहता है। मानव समूह पर भौगोलिक पर्यावरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, इसके कारण समूह में मानसिक एवं शारीरिक समतायें उत्पन्न होती हैं जो कि राष्ट्रीयता के निर्माण में सहायता पहुँचाती हैं।

(आ) मनुष्य की सीमित सहानुभूतिमूलक वृत्तियाँ

मनुष्य की सहानुभूतिमूलक वृत्तियाँ सीमित होने के कारण ज्यों ज्यों समूह बढ़ता जाता है त्यों त्यों ये वृत्तियाँ उदासीन होती जाती हैं। प्राचीन काल में यह सहानुभूति केवल गाँव या अपने कबीले तक ही सीमित थी। मध्ययुग में यह भावना और बड़े समूहों तक फैली यहाँ तक कि १८ वीं शताब्दी में राष्ट्रीय भावना के विकास के कारण यह भावना राष्ट्र के घेर तक पहुँच गई।

(इ) जन्मभूमि एवं कर्मभूमि से प्रेम

अन्य पशुओं के समान मनुष्य भी अपने रहने की जगह से प्रेम करता है। कुछ पशुओं में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि वे अपने रहने के स्थान से हटाये जाने के कारण प्राण दे देते हैं। मनुष्य में भी इस प्रवृत्ति का विकास हुआ है। वह भी अपनी जन्मभूमि के लिये अपने प्राणों को बलिवेदी पर चढ़ा

देते हैं। डा० आशीर्वादम् ने उचित लिखा है, "प्रत्येक मनुष्य के हृदय में अपनी जन्मभूमि के प्रति एक स्वाभाविक प्रेम होता है।"[1]

प्रोफेसर हेज (Hayes) ने भौगोलिक एकता के महत्व का विरोध किया है। इन्होंने इस धारणा की आलोचना करते हुए लिखा है कि राष्ट्रीयता का निर्माण भूगोल द्वारा नहीं होता। मानव समुदायों के बीच प्राकृतिक सीमाओं की धारणा एक कोरी कल्पना है। यहूदी यद्यपि सम्पूर्ण विश्व में फैले हुये थे तथापि उनकी राष्ट्रीयता नष्ट न हो पाई।

प्रो० हेज का मत तर्क सगत नहीं है। भौगोलिक एकता राष्ट्रीयता के निर्माण में महत्वपूर्ण योग प्रदान करती है।

(४) धर्म की एकता (Unity of Religion)

मनुष्यों को एक दूसरे के समीप लाने के लिये धर्म बड़ा महत्व रखता है। जिससे मनुष्यों का अभ्युदय हो और वे इहलोक तथा परलोक में सुख प्राप्त करें, उसे धर्म कहते हैं। यद्यपि धर्मों के मूलभूत तत्व एक है पर उनका वाह्य कलेवर भिन्न भिन्न है। ईसाई, इस्लाम, बौद्ध, जैन, हिन्दू इत्यादि धर्मों व सम्प्रदायों के नैतिक सिद्धान्तों एव सदाचार के नियमों में विशेष भेद नहीं है पर उनके पूजा पाठ की विधि, विधान एव विश्वासों में बड़ा अन्तर है।

पुराने युग में धर्म राष्ट्रीयता के लिये सब से अधिक महत्वपूर्ण तत्व था। जो लोग दो भिन्न धर्मों का अनुसरण करते हैं उनके लिये यह सम्भव नहीं था कि वे एक प्रदेश में एक साथ निवास कर सकें। योरोप में धर्म के आधार पर अनेक सघर्ष हुए। कैथोलिक (Catholic) और प्रोटेस्टेंट (Protestant) सम्प्रदाय के अनुयायियों में घोर युद्ध हुए। भारत में इस्लाम धर्म के प्रचार में हिन्दुओं पर बर्बर अत्याचार किये गये।

ईसवी सन् १८३१ तक बेलजियम और हॉलैण्ड एक राज्य थे परन्तु धर्म के आधार पर ये दोनों राज्य पृथक् हो गये। बेलजियम के निवासी रोमन कैथोलिक धर्म के अनुयायी थे और हॉलैण्ड के निवासी प्रोटेस्टेन्ट धर्म के। आयरलैण्ड में अलस्टर प्रदेश के निवासी प्रोटस्टेन्ट धर्म के मानने वाले थे, इसलिये वे आयरलैण्ड की स्वतन्त्रता के उपरान्त आयरलैण्ड में नहीं रहना चाहते थे क्योंकि शेष आयरलैण्ड के निवासी रोमन धर्म के मानने वाले थे। धर्म के आधार पर भारत और पाकिस्तान दो राष्ट्रों का निर्माण हुआ।

---

[1] "There is an instinctive attachment on the part of every human being to the land of his birth" Eddy Asirvatham, 'A New Social Order,' p 170

आधुनिक युग में धर्म का महत्व कम होता जा रहा है। अब ऐसी परिस्थिति नहीं है कि दो धर्म के लोग एक साथ नहीं रह सकें। इतना होते हुए भी धर्म का महत्व कम नहीं हुआ है।

(५) संस्कृति और ऐतिहासिक परम्परा की एकता
(Community of culture and Historical traditions)

जिन जन समुदायों की संस्कृति, रीति रिवाज एवं ऐतिहासिक परम्परा समान होती है, वे भी राष्ट्रीय एकता का अनुभव करते हैं। नवीन युग में इन तत्वों का महत्व राष्ट्रीयता के निर्माण के कार्य में बढ़ गया है। काव्य कला, साहित्य, सङ्गीत, भाषा एवं धर्म ये सब संस्कृति के विकास में सहायक होते हैं। प्रत्येक देश की संस्कृति भिन्न होती है। मनुष्य मनुष्य में भिन्नता का कारण प्रमुखतया संस्कृति है। जिस जनसमूह की संस्कृति एक होती है उसके सदस्य अपने को समान समझते हैं और सरलता से एकता के सूत्र में बंध जाते हैं। राष्ट्रीयता के लिये एक सूत्र में बंधना बड़ा आवश्यक है।

ऐतिहासिक परम्परा की एकता राष्ट्रीयता के लिये अटूट बन्धन होती है। भारतवर्ष के रहने वाले राम और कृष्ण की पूजा करते हैं और सम्पूर्ण इतिहास को अपना इतिहास मानते हैं। भारत में मुसलमान इस भावना से प्रेरित न हो सके और उन्होंने पाकिस्तान का निर्माण किया। तामिल, तेलगू, गुजराती, बंगाली, हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले तथा अनेक नस्लों के भारतीय जो एक राष्ट्र के रूप में संगठित हैं, उनमें जहाँ संस्कृति की एकता है वहाँ ऐतिहासिक परम्परा की एकता भी उसका एक महत्वपूर्ण तत्व है।

(६) सामान्य कष्ट (Common Suffering)

सामान्य कष्ट भी राष्ट्रीयता के निर्माण में एक आवश्यक तत्व है। सामान्य आपदाओं ने राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने में बड़ा योग दिया है। इतिहास इस तत्व के पक्ष में अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता है। श्री जिमर्न का मत है कि यूरोप में राजनैतिक अत्याचारों के कारण राष्ट्रीय भावना सजग हो उठी। एशिया और अफ्रीका में विदेशी अत्याचारों के कारण राष्ट्रीय भावना जागृत होती जा रही है। भारतवर्ष में जितनी राष्ट्रीयता की भावना आजकल सजग हो गई है उतनी कभी नहीं हुई थी। इसका प्रमुख कारण भारतीय-स्वतन्त्रता संग्राम एवं अंग्रेजों का दमन चक्र था।

(७) सार्वजनिक इच्छा (Popular will)

सहयोग की इच्छा और एक राष्ट्र बनने की इच्छा भी आवश्यक तत्व है।

डा० अम्बेडकर ने इस तत्व पर बड़ा बल दिया है। टवाइनवी (Toynbee) एक राष्ट्र बनने की सार्वजनिक इच्छा को राष्ट्रीयता का प्रधान तत्व मानता है। मेजिनी (Mazzini) भी सार्वजनिक इच्छा को राष्ट्रीयता का आधार मानते हैं।

(८) राजनैतिक आकांक्षाओं की एकता (Common Political Aspiration)

राजनैतिक आकांक्षाओं का होना राष्ट्रीयता के लिये एक आवश्यक तत्व है। जो लोग आपस में एकता की भावना का अनुभव करते हैं वे उसे मूर्त रूप में देखना चाहते हैं और एकता की भावना का मूर्त रूप राज्य होता है। गिलक्राइस्ट ने इस तत्व पर बल देते हुए लिखा है, 'भूतकालीन या भविष्य-कालीन राजनैतिक एकता राष्ट्रीयता का सबसे प्रमुख लक्षण है। यह वास्तव में इतना प्रमुख लक्षण है कि विभिन्न एकताओं में केवल इसे ही महत्वपूर्ण एवं आवश्यक कहा जा सकता है।"[1]

पोल लोग प्रथम महायुद्ध के पूर्व जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस राज्यों के अधीन थे। तीन विभिन्न शासनो के अधीन रहते हुए भी उनमें यह राजनैतिक आकांक्षा विद्यमान थी कि वे विदेशी शासनों से मुक्त होकर अपना पृथक् व स्वतन्त्र राज्य बनायेंगे। बाद में उनकी यह आकांक्षा पूर्ण हुई। राजनैतिक आकांक्षाओं की एकता की महत्ता अन्य दृष्टिकोणों से भी है। एक राज्य में बहुत समय तक साथ रहने के कारण भिन्नतायें समाप्त हो जाती हैं और समानतायें उत्पन्न हो जाती हैं।

(९) सामुदायिक भावना (Community Sentiment)

मैकाइवर (MacIver) ने राष्ट्रीयता को एक प्रकार की सामुदायिक भावना माना है। उनका मत है कि इस भावना के ही कारण राष्ट्रीयता का निर्माण होता है। यह भावना स्वार्थ रहित एवं भेद रहित होती है। भाषा, संस्कृति, प्रजाति, आर्थिक स्वार्थ या धर्म के भेद, राष्ट्रीयता के विकास में महत्वपूर्ण तत्व नहीं हैं। सामुदायिक भावना, जिसके कारण हम राष्ट्रीयता का अनुभव करते हैं, एक परम आवश्यक तत्व है। हांस कोन (Hans Kohn) ने भी लिखा है, "आधुनिक युग में, यह एक भावना की शक्ति रही है, जिसने आधुनिक

[1] "Political union, either past or future, is one of the most marked features of nationality so marked indeed that of the various unities it may almost be said to be the only es-ential". Gilchrist, 'Principels of Political Science,' p 31.

राष्ट्रीयताओं का निर्माण किया है, न कि रक्त की पुकार ने।"[1]

वास्तव में इस कथन में बड़ी सत्यता है। विश्वास बहुत बड़ी वस्तु होती है। यदि विश्वास किया जाय तो एक समूह के सदस्यों में समानता दिखलाई पड़ेगी और यदि वैसा विश्वास न हो तो अनेक भिन्नतायें एव असमानतायें सामने खड़ी हो जायेंगी।

राष्ट्रीय समानता (National likeness) राष्ट्रीयता के लिये बड़ी आवश्यक है। राष्ट्र के जीवन के प्रत्येक कार्य में इस समानता के चिन्हों को अंकित करना पड़ता है। राष्ट्रीयता की भावना को बनाये रखने के लिये कुछ मूर्त चिन्हों का निर्माण करना पड़ता है, जिन्हें राष्ट्रीय चिन्ह कहते हैं। राष्ट्रीय ध्वज एक इसी प्रकार का चिन्ह होता है। साधारणतया राष्ट्रीय ध्वज और साधारण कपड़े में कोई अन्तर नहीं होता, परन्तु राष्ट्रीय ध्वज के पीछे राष्ट्रीयता की भावना होती है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने पटना में भाषण करते हुए कहा था कि वे राष्ट्रीय ध्वज का अपमान नहीं सह सकते, आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रीय ध्वज की रक्षा के लिये समस्त राष्ट्र को बलिदान किया जा सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि समुदाय में एकता स्थापित रखने के लिये राष्ट्रीय चिन्हों का होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रीयता के आवश्यक तत्वों पर हमने विचार किया। ये सब ही तत्व समानता की भावना उत्पन्न करने के लिये आवश्यक हैं। राष्ट्रीयता की भावना वास्तव में एक भावना ही है और समान होने की भावना ही राष्ट्रीयता का केवल एक आवश्यक तत्व है। इस विश्वास एवं भावना के बिना किसी भी राष्ट्रीयता का निर्माण नहीं हो सकता।

राष्ट्रीयता के स्वरूप (Forms of Nationality)

राष्ट्रीयता की भावना के चार प्रमुख स्वरूप पाये जाते हैं, उनमें से दो स्वस्थ स्वरूप हैं एवं दो अस्वस्थ।

(१) राष्ट्रीयता के स्वस्थ स्वरूप (Healthy forms of Nationality)

राष्ट्रीयता के स्वस्थ स्वरूप निम्न हैं.—

(अ) देश भक्ति (Patriotism)

देश भक्ति राष्ट्र के प्रति अगाध प्रेम की द्योतक होती है। यह सामान्य रूप से मातृभूमि से सम्बन्धित होती है। देश भक्ति समूह के घटकों में निस्वार्थ

[1] "In modern times, it has been the power of an idea, not the call of blood, that has constituted the modern nationalities" Hans Kohn, 'World Order in Historical Perspective', P. 93.

भावना को जन्म देती है। कई बार लोग देशभक्ति की भावना के कारण अपने प्राण भी न्यौछावर कर देते हैं।

(आ) राष्ट्रवाद (Nationalism)

राष्ट्रवाद वह भावना है जो एक राष्ट्रीयता में एकता का निर्माण करते हुए स्वशासित राज्य के निर्माण की ओर अग्रसर करती है और स्वतन्त्र शासन स्थापित होने के पश्चात् उसकी रक्षा करने की प्रेरणा देती है। राष्ट्रवाद का प्रमुख सिद्धान्त एक राष्ट्र, एक राज्य का सिद्धान्त है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक राष्ट्रीयता को अपने राजनैतिक भाग्य के निर्णय का अधिकार है और प्रत्येक राष्ट्रीयता अपना स्वतन्त्र शासन कर सकती है।

राष्ट्रवाद का उदय १६ वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। अपने आरम्भिक चरणों में उसने अत्यन्त उपयोगी कार्य किये। यह राष्ट्रवाद का ही प्रभाव है जिसके कारण सामन्तवाद छिन्न भिन्न हो गया और रोमन केथोलिक चर्च की जड़ें हिल गईं। १९ वीं शताब्दी में जब कि राष्ट्रवाद अपनी उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया था उसने टर्की, आस्ट्रिया और हंगरी जैसे विशाल साम्राज्यों पर प्रबल पदाघात किया। *यह राष्ट्रवाद की ही प्रेरणा थी जिससे* प्रभावित होकर भारतीयों ने विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त करने के लिये कठिन संघर्ष किया था। राष्ट्रवाद जनता को स्वतन्त्रता का सन्देश देता है। राष्ट्रवाद नवीन युग का निर्माता है।

(२) राष्ट्रीयता के अस्वस्थ स्वरूप (Unhealthy forms of Nationality)

राष्ट्रीयता के अस्वस्थ स्वरूप निम्न हैं:—

(अ) उग्र राष्ट्रीयतावाद (Chauvinism)

उग्र राष्ट्रीयतावाद वह भावना है जो अपने राष्ट्र से प्रेम करती है और दूसरे राष्ट्रों से घृणा। इस भावना के कारण एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से संघर्ष होता है, क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वार्थों को ही देखता है।

(आ) साम्राज्यवाद (Imperialism)

साम्राज्यवाद वह भावना है जो दूसरे राष्ट्रों के हितों का ध्यान न रखते हुए अपने से निर्बल राज्यों की राजनैतिक स्वतन्त्रता को हड़प कर शोषण *करती है। साम्राज्यवाद भी राष्ट्रीयता का विकृत स्वरूप है। प्रो० हॉकिंग* ने साम्राज्यवाद को निष्ठुरता का आचारशास्त्र (Ethics of Severity) के नाम से सम्बोधित किया है।

साम्राज्यवाद का उद्भव १६ वीं शताब्दी से हुआ जब कि कोलम्बस और वास्कोडिगामा आदि साहसी यात्रियों ने दूर दूर के देशों का पता लगाया और

बङ्गाली, मराठी आदि उपराष्ट्र (Nationalities) हैं।"[1] यह कथन कहाँ तक सत्य है, इस पर विचार करना होगा। मेरे विचार से इन लोगों को हम एक भाषा के समूह कह सकते हैं। राष्ट्रीयता के आवश्यक तत्वों में भाषा को छोड़ कर इन सबके शेष तत्व समान ही हैं। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि कुछ द्रविड़ भाषाओं को छोड़कर शेष सारी भाषाओं में एकता है, क्योंकि सबकी जड़ संस्कृत भाषा से है और अनेक द्रविड़ भाषायें भी संस्कृत से मिलती जुलती हैं। हमने राष्ट्रीयता के तत्वों का विश्लेषण करते हुए देखा था कि भाषा राष्ट्रीयता के निर्माण के लिये एक प्रमुख तत्व है परन्तु निश्चायक नहीं। भारत के विभिन्न प्रदेशों में बसने वाले व्यक्तियों में एक आश्चर्यजनक एकता की भावना विराजमान है। मैकाइवर और पेज (MacIver and Page) ने स्पष्ट रूप से राष्ट्रीयता के मनोवैज्ञानिक पहलू पर बल दिया है। सबसे प्रमुख तत्व राष्ट्रीयता के निर्माण में सामुदायिक भावना होती है, जो कि अविभाज्य होती है, वही भावना भारत के निवासियों में भी है। इसको विभिन्न प्रदेशों के लिये संकुचित नहीं किया जा सकता और जो ऐसा करने का प्रयत्न करते हैं वे भारतीय राष्ट्रीयता की आत्मा का गला घोंटने की चेष्टा करते हैं।

भारत के विभिन्न प्रदेशों में कोई ऐसा प्रदेश नहीं है जिसमें प्रजाति की एकता पाई जाती हो। सारी ही प्रजातियों का मिश्रण सम्पूर्ण देश में पाया जाता है धर्म की एकता भी प्रादेशिक बन्धन में बँधी हुई नहीं है। भौगोलिक एकता प्राकृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण भारत में समान है। राजनैतिक दृष्टि से इन प्रदेशों को समय-समय पर परिवर्तित किया जाता रहा है। सम्पूर्ण देश में सामान्य राजनैतिक आकांक्षाएँ पाई जाती हैं। परम्परा, इतिहास, संस्कृति, साहित्य, लोक कथाओं एवं गाथाओं में एक इस प्रकार की सामान्य एकता व्याप्त है कि कन्याकुमारी से लेकर गङ्गा यमुना के उपवनों एवं हिमालय की घाटी तक एक ही धारा का प्रवाह है। राज्य पुनर्गठन आयोग (States Reorganisation Commission) ने भी इन प्रदेशों को राष्ट्रीयता नहीं माना है। देश में शासन की सरलता के दृष्टिकोण से बड़े बड़े राज्यों के निर्माण की ओर अखिल भारतीय कांग्रेस का संकेत है, अतः हम यह विश्वास के साथ कह सकते हैं कि मराठी, गुजराती, बङ्गाली, पंजाबी इत्यादि सम भाषी समूह हैं, परन्तु उन्हें राष्ट्रीयता या उपराष्ट्र नहीं कहा जा सकता। जो ऐसा कहते हैं वे भयंकर भूल करते हैं।

---

[1] "राज्य विज्ञान के मूल सिद्धान्त," पृष्ठ ६७।

राष्ट्रीयता तथा अन्तराष्ट्रीयता
(Nationalism and Internationalism)

राष्ट्रीयता की भावना अठारहवीं शताब्दी में अपने स्वस्थ रूप में सीमित रही परन्तु १६ वीं शताब्दी के आरम्भ होते ही उसके विकृत रूप उग्र राष्ट्रीयतावाद (Chauvinism) और साम्राज्यवाद (Imperialism), का बोलबाला प्रारम्भ हो गया। शक्तिशाली राष्ट्र निर्बल राष्ट्रों को हड़पने की बाजी लगाने लगे। इतिहास रक्त से लिखा जाने लगा। संसार में युद्धों का बोलबाला हो गया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते ही प्रथम महायुद्ध विकराल रूप धारण करके उपस्थित हुआ। इसके क्रूर रूप को देख कर लोगों ने इस बात का अनुभव किया कि किसी प्रकार भी राष्ट्रों के बीच शान्ति स्थापित होनी चाहिये। इसी दृष्टिकोण से युद्ध के उपरान्त लीग ऑफ नेशन्स (League of Nations) की स्थापना हुई, परन्तु इसका अस्तित्व अधिक समय तक नहीं रह सका। दूसरा महायुद्ध हुआ और रक्त की नदियाँ बह निकलीं। बड़े बड़े राष्ट्र सभी एक बार कराह उठे और उन्होंने अनुभव किया कि वे अपना विकास कभी नहीं कर सकते, यदि संसार में शान्ति नहीं रही। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सब ने मिलकर संयुक्त राष्ट्र सङ्घ (United Nations Organisation) की स्थापना की।

संयुक्त राष्ट्र संघ भी अधिक समय तक नहीं चल सकता यदि हम इसे केवल राज्यों का एक संघ मात्र बनाये रखेंगे। संयुक्त राष्ट्र संघ की सबसे बड़ी निर्बलता निषेधाधिकार (Veto Power) है, जो कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, राष्ट्रवादी चीन और सोवियत रूस को प्राप्त है। अन्तर्राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सद्भावना का प्रतिपादन करती है। उसका अन्तिम और चरम लक्ष्य संसार के सभी देशों का एक विश्व सङ्घ के रूप में संगठन करना है। मेरे विचार से इस आदर्श को परिवर्तित करना पड़ेगा। अन्तर्राष्ट्रीयता का चरम लक्ष्य विश्व सङ्घ न होकर विश्व राष्ट्र का निर्माण होना चाहिये। जहाँ तक यह प्रश्न है कि राष्ट्र ही मनुष्य की प्राकृतिक सीमा है तो यह भ्रान्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। विसेन्ज और बिसेन्ज ने उचित ही लिखा है, 'संसार के संगठन को राष्ट्रों के आधार पर इतनी मान्यता दी गई है कि बहुत से व्यक्ति राष्ट्र को एक प्राकृतिक इकाई मानते हैं। परिवार को छोड़कर कोई भी सामाजिक संगठन प्राकृतिक नहीं है। लोग वन्य जातियों में, धार्मिक सार्वभौमिक राज्य में और राष्ट्रीय राज्यों में रहे हैं और एक दिन विश्व राज्य में रह

सकते हैं ।'[1]

विश्व राष्ट्र के निर्माण के लिये विश्व समुदाय का निर्माण करना होगा। समुदाय के दो प्रमुख तत्व हैं—(अ) भू भाग (Locality) और (ब) सामुदायिक भावना (Community Sentiment) । विश्व समुदाय के पास एक भू भाग तो है ही । अब केवल सामुदायिक भावना उत्पन्न करने की आवश्यकता है । यद्यपि यह कार्य कठिन है तथापि कोई दूसरा मार्ग भी नहीं है । प्रसन्नता का विषय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस ओर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया है ।

राष्ट्र और देश में अन्तर
(Difference between Nation and Country)

राष्ट्र और देश में निम्न अन्तर हैं —

(१) देश पृथ्वी के उस भू भाग का बोध कराता है जिसे एक राष्ट्रीयता के घटक अपनी जन्मभूमि मानते हैं और इस कारण उस भूमि से प्रेम करते हैं । राष्ट्र वह राष्ट्रीयता है जो स्वशासित है या स्वशासित होने की आकांक्षा रखती है ।

(२) देश मूर्तरूप है और राष्ट्र एक भावना एवं अमूर्त । कई बार राष्ट्र राष्ट्रीयता समूह का ही बोध कराता है ।

(३) राष्ट्र का एक आवश्यक तत्व देश होता है । जिस राष्ट्र का देश छिन जाता है वह राष्ट्र ही समाप्त हो जाता है ।

प्रजाति और राष्ट्र (Race and Nation)

राष्ट्र और प्रजाति शब्दों का प्रयोग भी पर्यायवाची अर्थों में किया जाता रहा है, न केवल साधारण व्यक्तियों द्वारा परन्तु बड़े बड़े विद्वानों द्वारा भी यह भूल होती रहती है । सर आर्थर कीथ जैसे विद्वान् व्यक्ति का भी मत है कि प्रजाति और राष्ट्र में कोई भी भेद नहीं है । इसका कारण अंग्रेजी भाषा में 'नेशन' (Nation) शब्द का अर्थ है । जर्मन लेखकों ने नेशन (Nation) शब्द का प्रयोग उस प्रजातीय समूह के लिये किया है जो एक ही भू भाग पर

---

[1] "The organisation of the world into nations is taken so much for granted that many people think of the nations as a natural unit Yet no social organisation, with the exception of the family, is 'natural' People have lived in tribes, in a theocratic universal, in national states and one day may live in a world state" Biesanz and Biesanz, 'Modern Society, p 633

समान संस्कृति एवं समान भाषा का प्रयोग करता हो। इसके लिये अंग्रेजी में 'नेशनेलिटी' (Nationality) शब्द का प्रयोग किया जाता है। जिस अर्थ में 'नेशन' (Nation) अंग्रेजी में प्रयोग होता है और जिसने राजनैतिक अर्थ भी प्राप्त कर लिया है, उसका जर्मन पर्यायवाची शब्द 'वोल्क' (Volk) है, 'वोल्क' (Volk) को अंग्रेजी में 'पीपुल' (People) कहते हैं।

प्रजाति और राष्ट्र में इन शाब्दिक अर्थों की भिन्नता के अतिरिक्त भी बहुत सी भिन्नता पाई जाती हैं, उनमें से प्रमुख निम्न हैं —

प्रजाति (Race)	राष्ट्र (Nation)
(१) प्रजाति का प्राणीशास्त्रीय अर्थ में प्रयोग होता है।	(१) राष्ट्र का राजनैतिक एवं मनोवैज्ञानिक अर्थों में प्रयोग होता है।
(२) प्रजाति के घटक अपनी सदस्यता को परिवर्तित नहीं कर सकते।	(२) राष्ट्र के घटक यदि चाहे तो कुछ दशाओं में दूसरे राष्ट्र की सदस्यता स्वीकार कर सकते हैं।
(३) प्रजाति के घटक कहीं भी रहते हुए भी उसी प्रजाति के कहलायेंगे।	(३) राष्ट्र के घटक, अधिक समय तक राष्ट्र के बाहर, केवल राष्ट्र की अनुमति से ही रह सकते हैं।
(४) प्रजाति का एक निश्चित भू-भाग से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता।	(४) राष्ट्र का एक आवश्यक तत्व एक निश्चित भू-भाग होता है जिसे उसके घटक जन्मभूमि, मातृ-भूमि या पितृ भूमि कह कर पुकारते हैं और उसकी पूजा करते है।
(५) प्रजाति के बन्धन में घटकों को बाँधने के लिये सामुदायिक भावना की आवश्यकता नहीं होती।	(५) राष्ट्र में गूँथने के लिये घटकों के बीच सामुदायिक भावना होना अत्यन्त आवश्यक है।
(६) प्रजाति की उत्पत्ति के लिये किसी भी भावना की आवश्यकता नहीं होती। एक प्रजाति के घटकों में चाहे दक्षता व एकता की भावना लेशमात्र भी न हो और चाहे वे उस प्रजाति के सदस्य होने के तथ्य को बिल्कुल भी स्वीकार न करें, फिर भी वे उसी प्रजाति के कहलायेंगे।	(६) राष्ट्र की उत्पत्ति के लिये एक भावना का होना अत्यन्त आवश्यक है। राष्ट्र के सदस्यों में अपने राष्ट्र के प्रति अपनत्व की भावना पाई जाती है।

(७) प्रजाति का जन्म प्राकृतिक और प्राणीशास्त्रीय क्रियाओं पर आधारित है । इसमें वाहकाणु (Genes) पर ही सब कुछ अवलम्बित है ।	(७) एक राष्ट्र का जन्म सामाजिक प्रक्रियाओं पर आधारित है । राष्ट्र के लिये सामान्य भाषा, राजनैतिक स्वतन्त्रता, इतिहास, धर्म, रीति रिवाज एवं अन्य सामान्य लक्षणों का होना आवश्यक है ।
(८) प्रजाति का जन्म मनुष्य की शक्ति के बाहर है ।	(८) राष्ट्र का जन्म मनुष्यों द्वारा होता है और उन पर सम्पूर्णतया आधारित है ।
(९) यह आवश्यक नहीं है कि एक प्रजाति की दूसरी प्रजाति से मानसिक भिन्नता अवश्य ही हो ।	(९) एक राष्ट्र की मानसिक स्थिति दूसरे राष्ट्र से कुछ कुछ भिन्न होती है ।
(१०) प्रजाति विशुद्ध रूप में नहीं पाई जाती ।	(१०) राष्ट्र विशुद्ध रूप में पाया जाता है ।
(११) एक प्रजाति अनेक राष्ट्रों में पाई जाती है ।	(११) एक राष्ट्र में विभिन्न प्रजातियाँ पाई जाती हैं ।
(१२) प्रजाति की एक भावना है और मनोवैज्ञानिक अन्तरों पर आधारित हैं ।	(१२) राष्ट्र एक सत्य है ।
(१३) प्रजाति एक भौतिक प्रक्रिया का परिणाम है ।	(१३) राष्ट्र एक मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक प्रक्रिया का परिणाम है ।
(१४) एक प्रजाति की उत्पत्ति एक ही पूर्वज से हुई या हो सकती है ।	(१४) यह आवश्यक नहीं कि एक राष्ट्र के घटकों की उत्पत्ति एक ही पूर्वज से हुई हो ।

प्रश्न

१. राष्ट्र को कौन से तत्व बनाते हैं ? क्या राष्ट्रीय चरित्र होता है ?
(What makes up a Nation ? Is there a National Character ?) Agra 1953.

२. राष्ट्र की परिभाषा कीजिये ? क्या राष्ट्रीयता की भावना अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिये अभिशाप है ?
(Define 'Nation'. Is sentiment of nationality a curse to International Peace ?) Agra, 1952.

३. निम्न में अन्तर बताइये:—

(१) राष्ट्र और देश (२) राष्ट्र और प्रजाति।

Show the difference between the following:—

(1) Country and Nation. (Agra, 1954)

(2) *Race and Nation*

SELECTED READINGS

1 Dawson and Gettys, 'An Introduction to Sociology', chapter XIV.
2 Hayes, 'Essays on Nationalism', chapter I.
3 Gilchrist, 'Principles of Political Science', chaptres I to III.
4. Garner, 'Political Science, and Government' chapters II & III.
5. Asirvatham, 'A New Social Order', chapter IX.
6. Biesanz and Biesanz, 'Modern Society', chapter XXXII.

चतुर्थ खण्ड

बृहत् समितियाँ एवं संस्थाएँ
(Greater Associations & Institutions)

अध्याय १३ : आर्थिक संस्थायें तथा समितियाँ
(Economic Institutions & Associations)

,, १४ : राजनैतिक संस्थायें तथा समितियाँ
(Political Institutions & Associations)

,, १५ : सांस्कृतिक संस्थायें तथा समितियाँ
(Cultural Institutions & Associations)

अध्याय १३

आर्थिक संस्थायें तथा समितियाँ

(Economic Institutions and Associations)

हमने राजनैतिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं एवं समितियों पर पिछले अध्यायों में प्रकाश डाला। अब इस अध्याय में आर्थिक समिति पर विचार करेंगे, क्योंकि यह हमारी संस्कृति की प्रमुख आधार है। हमारा सम्पूर्ण जीवन आर्थिक समितियों द्वारा घिरा रहता है। ये इतनी महत्वपूर्ण एवं जटिल है कि इनके अध्ययन के लिये एक विशिष्ट विज्ञान, अर्थशास्त्र, विकसित हो गया है। आर्थिक समितियों का प्रभाव सभ्यता के विकास के साथ-साथ बढ़ता जा रहा है।

आर्थिक संस्थाओं का अर्थ

(Meaning of Economic Institutions)

आर्थिक संस्थायें वे संस्थायें होती हैं जो आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विकसित होती हैं। ऑगबर्न और निम्कॉफ (Ogburn and Nimkoff) ने इसकी परिभाषा इन शब्दों में की है—"भोजन और सम्पत्ति से सम्बन्धित मानवीय चेष्टायें आर्थिक संस्थाओं का निर्माण करती हैं।" [1]

आर्थिक समितियाँ बाजार (Market) पर आधारित होती हैं। ये विनिमय (Exchange), उत्पादन (Production), वितरण (Distribution) इत्यादि के कार्य में रत रहती हैं। इनका उद्देश्य धनोपार्जन होता है। इन समितियों को हम और भी स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे, यदि हम इनकी कार्य प्रणाली पर विचार करें।

आर्थिक और राजनैतिक समिति में अन्तर

आर्थिक और राजनैतिक समितियों में इतना विशेष अन्तर कार्य के क्षेत्र का नहीं है जितना कि कार्य करने की पद्धतियों में है। आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति करना केवल आर्थिक समितियों का ही कार्य नहीं है, वरन् प्रत्येक समिति का कुछ न कुछ आर्थिक उद्देश्य होता ही है। राज्य भी अनेक आर्थिक कार्य करता है। राज्य और आर्थिक व्यवस्था एक दूसरे से अत्यधिक निकट है।

---

1 'The activities of man in relation to food and property constitute the economic institutions". Ogburn and Nimkoff, 'A Handbook of Sociology,' p. 375.

आर्थिक समितियाँ धनोपार्जन का कार्य करती हैं। धनोपार्जन करना ही इनका प्रमुख उद्देश्य होता है। आर्थिक पद्धति द्वारा मनुष्य एक दूसरे के साथ कार्य करते हुए धनोपार्जन करते हैं, परन्तु इसमें व्यक्तिगत स्वार्थ की महत्ता रहती है। राजनैतिक पद्धति धन का समाजीकरण कर देती है। राज्य के पास जो धन होता है, वह सबका धन होता है, परन्तु आर्थिक समितियों के धन पर व्यक्तिगत छाप होती है। राजनैतिक पद्धति द्वारा सामाजिक कल्याण होता है, परन्तु आर्थिक पद्धति द्वारा व्यक्तिगत कल्याण होता है।

आर्थिक पद्धति प्रतिद्वन्द्विता (Competition) के सिद्धान्त पर आधारित है, परन्तु राजनैतिक पद्धति में सम्पूर्ण एकाधिकार रहता है।

आर्थिक संस्थाओं तथा समितियों की उत्पत्ति

किसी भी सामाजिक संस्था की उत्पत्ति बताना बड़ा कठिन है, क्योंकि प्राचीन व्यवस्था में कोई चिन्ह नहीं मिलते हैं। मनुष्य की पहली आवश्यकता भोजन रही होगी। कुछ ठण्डी जलवायु वाले स्थानों में वस्त्रों की आवश्यकता होती होगी। इन्हीं दो आवश्यकताओं पर आर्थिक समितियों की उत्पत्ति आधारित है, परन्तु निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। आदिम निवासियों एवं वन्य जातियों की आर्थिक समितियाँ भी कोई विशेष प्रकाश आर्थिक संस्थाओं की उत्पत्ति पर नहीं डालती हैं।

आर्थिक संस्थाओं का विकास

(Development of Economic Institutions)

आर्थिक संस्थाओं के विकास के विषय में कुछ सूचनायें हमें वन्य जातियों से अवश्य मिलती हैं। वह विकास निम्न क्रम से हुआ है.—

भोजन एकत्रित करने वाले एवं शिकारी

(Food gatheres and Hunters)

मनुष्य की शारीरिक बनावट से पता लगता है कि वह कभी वृक्षों पर निवास करता होगा। वह अपनी क्षुधा तृप्ति के लिये कन्द मूल—फल इत्यादि एकत्रित करता होगा। धीरे धीरे उसने पशुओं का शिकार भी प्रारम्भ किया होगा।

सर्वप्रथम श्रम-विभाजन का आधार लिंग पर आधारित था। पुरुष शिकार करते थे और कठिन कार्यों को करते थे। स्त्रियाँ भोजन बनाती थीं एवं अन्य हल्के कार्य करती थीं।

कृषि तथा पशुओं का पालना
(Agriculture and Domestication of animals)

कृषि और पशु पालन दो ऐसी उत्पादन की क्रियाएं हैं, जिनके कारण मनुष्य का जीवन ही बदल गया। ऐसा कहा जाता है कि कृषि का विकास स्त्रियों द्वारा किया गया है। आर्थिक सगठन भौतिक सभ्यता के आविष्कारों पर आधारित रहता है।

कृषि की प्रारम्भिक अवस्था में 'हो (Hoe) जो कि एक प्रकार की खोदने की लकड़ी होती है का प्रयोग प्रमुख यन्त्र के रूप में होता रहा होगा। धीरे धीरे हल का आविष्कार हुआ। कृषि के कारण भोजन की अधिक सुरक्षा हो जाने से अधिक लोग एक स्थान पर रहने लगे और छोटे-छोटे गाँवों का निर्माण हुआ। शनै शनै वस्त्र, मिट्टी के बर्तन इत्यादि भी मनुष्य बनाने लगा। इन वस्तुओं के कारण सम्पत्ति एकत्रित होने लगी।

पशु पालन के कारण मनुष्य और भी निश्चिन्त हो गया। पशु भी मनुष्य की सम्पत्ति बन गई।

हस्तकला (Handicrafts)

मनुष्य को जब भोजन की समस्याओं से अवकाश मिला तो उसके मस्तिष्क ने कार्य करना प्रारम्भ किया। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उसने नये नये आविष्कार किये। हस्तकला के कारण सम्पत्ति का विकास हुआ और मनुष्य के लिये अनेक क्षेत्र खुल गये। ताँबा, टीन, सोना, गिलट, लोहा और चाँदी इत्यादि धातुओं का पता लगाने के उपरान्त हस्तकला का और भी विकास हुआ। वस्तुओं का विनिमय प्रारम्भ होने के कारण व्यापार का प्रचलन हुआ तथा आवागमन के साधनों की भी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। कुछ समय बाद सड़कों का भी विकास हुआ।

व्यावसायिक एवं औद्योगिक केन्द्र

हस्तकला एवं आवागमन के साधनों की प्रगति के कारण व्यापार बढ़ता गया। बढ़ते हुए व्यापार के फलस्वरूप नगरों की उत्पत्ति हुई, जो कि व्यवसाय और उद्योग के केन्द्र बन गये। नगरों में रहने वाले अन्न का उत्पादन नहीं करते थे, परन्तु अनेक वस्तुओं का निर्माण करते थे।

आधुनिक अर्थ व्यवस्था (The Modern Economic System)

आधुनिक अर्थ व्यवस्था पूँजीवाद के नाम से पुकारी जाती है। अब हम पूँजीवादी व्यवस्था पर प्रकाश डालेंगे।

पूँजीवाद (Capitalism)

नवीन आर्थिक अन्वेषणों के कारण आर्थिक वस्तुओं का अधिक उत्पादन होने लगा। जैसे जैसे इनका विकास होता गया, वैसे वैसे उपभोग एवं उत्पादन की वस्तुओं में अन्तर बढ़ता गया। उत्पादन के क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई। उत्पादन करने की वस्तुएँ जटिल एवं मँहगी होती गई। उत्पादन के लिये बहुत अधिक धन की आवश्यकता पड़ने लगी। पूँजीवाद के अन्तर्गत अनेक व्यवस्थाओं का विकास हुआ।

पूँजीवाद की अनेक आर्थिक संस्थायें हैं। उन पर संक्षेप में हम प्रकाश डालगे।

(१) वृहद् स्तर उत्पादन (Large Scale Production)

पूँजीवाद के अन्तर्गत प्रमुख आर्थिक संस्था वृहद स्तर उत्पादन या फैक्टरी व्यवस्था है। पहिले लोग उत्पादन परिवार में या छोटे छोटे घरों में करते थे। *पूँजीवादी व्यवस्था के कारण बड़े बड़े कारखानों का निर्माण हुआ, विशाल भवन* बने और सैकड़ों यन्त्र उनमें लगाये गये। एक कारखाने में हजारों मजदूर काम करने लगे। मिल मालिकों और मजदूरों के सम्बन्ध वैयक्तिक से अवैयक्तिक हो गये। मजदूर से अधिक से अधिक कार्य लिया जाने लगा।

(२) ऋण व्यवस्था (Credit System)

ऋण व्यवस्था पूँजीवादी व्यवस्था का प्रमुख अङ्ग है। उत्पादन के केन्द्र खोलने के लिये अत्यधिक धन की आवश्यकता पड़ती है। यह सारा धन किसी एक व्यक्ति के पास नहीं मिल सकता है। इस कमी को पूरा करने के लिये ऋण व्यवस्था का जन्म हुआ। बड़े-बड़े बैङ्क और बीमा कम्पनियाँ इसी पर चलती हैं। *धनी से धनी उद्योगपति भी सदैव ऋण में रहता है।*

(३) वैयक्तिक सम्पत्ति (Private Property)

वैयक्तिक सम्पति को इस व्यवस्था में बड़ा महत्त्व दिया जाता है। पूँजीवादी देशों के विधानों में वैयक्तिक सम्पत्ति की रक्षा के लिये विशेषाधिकारों की व्यवस्था की गई है। इनको बड़ा पवित्र समझा जाता है।

(४) वृहद् आर्थिक समितियाँ या कॉरपोरेशन (Large Economic Associations or Corporations)

बड़े बड़े कल कारखानों को चलाने के लिये जितनी पूँजी की आवश्यकता होती है, उसे कुछ व्यक्ति एकत्रित नहीं कर सकते। पूँजी एकत्रित करने के लिये कॉरपोरेशन का निर्माण हुआ।

कॉरपोरेशन दो प्रकार के होते हैं—एक प्राइवेट (Private) और दूसरा पब्लिक (Public)। प्राइवेट (Private) कॉरपोरेशन मे साझेदारों की सख्या ५० से अधिक नहीं हो सकती और न ही वे जनता से साझेदार बनने के लिये प्रार्थना ही कर सकते हैं। साझेदारों का उत्तरदायित्व दोनों मे ही सीमित रहता है। पब्लिक (Public) कॉरपोरेशन में साझेदारों की सख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता और कोई भी व्यक्ति हिस्से (Shares) खरीद सकता है।

कॉरपोरेशन को सरकार द्वारा रजिस्टर करना पड़ता है। इसका रजिस्ट्रेशन इण्डियन कम्पनीज एक्ट १६१३ (Indian Companies Act, 1913) के अन्तर्गत होता है।

पूँजीवाद के अनेक भयकर सामाजिक परिणाम हुए हैं। उनमें प्रमुख निम्न हैं —

(अ) मालिक और मजदूर के बीच तनाव
(Tension between Capital and Labour)

मजदूर और उसके स्वामी या स्वामियों, जो कि पूँजीवादी होते हैं के बीच तनाव बढ़ता जा रहा है। स्वामी श्रमिकों से अधिक स अधिक कार्य लेना चाहते हैं और उसके बदले उन्हें उनके परिश्रम का मूल्य नहीं देना चाहते।

(ब) दरिद्र और अधिक दरिद्र होते जा रहे हैं और धनी, और अधिक धनी।

'सुधीन्द्र' ने अपनी कविता "क्रान्ति का आमन्त्रण" में पूँजीवाद के इस अङ्ग का सुन्दर वर्णन निम्न प्रकार से किया है। ×

"एक ओर समृद्धि थिरकती, पास सिसकती है कङ्गाली,
एक देह पर एक न चिथड़ा, एक स्वर्ण के गहनो वाली।
उधर खड़े हैं रम्य महल, वे आसमान को छूने वाले,
और बगल मे बनी झोंपड़ी, जिसके छप्पर चूने वाले।"

(स) अमानुषिक जीवन का विकास हुआ है, जैसे गन्दी बस्तियाँ घनी आबादियाँ, नागरीकरण के दोष इत्यादि।

(द) वेश्यावृत्ति।

(य) एकाधिकार (Monopoly)

(र) बेकारी।

प्रश्न

१ पूँजीवाद की आर्थिक सस्थायें क्या हैं ? उनके सामाजिक परिणामों की व्याख्या भारतवर्ष का विशेष प्रसङ्ग देते हुए कीजिये।

× 'सुधीन्द्र' की पुस्तक 'प्रलय वीणा' पढ़िये।

(What are the economic institutions of Capitalism? Analyze their social results, with special reference to India.) Agra, 1956.

२ सामन्तवाद या पूँजीवाद की शक्ति के कारण बताइये और उनके द्वारा उत्पन्न समस्याओं की समालोचना कीजिये।

(Account for the strength of either feudalism or capitalism and comment on the problems created by it.) Rajputana, 1953

३. पूँजीवाद के आधुनिक समाज और संस्कृति पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या कीजिये।

(Discuss the influence of capitalism on present day society and culture.) Lucknow, 1949.

४. समाजवाद और साम्यवाद में अन्तर बताइये। क्या इस देश में साम्यवाद सम्भव है?

(Distinguish between Socialism and Communism. Is Communism possible in this country?) Lucknow, 1947.

SELECTED READINGS

1. 'Ogburn and Nimkoff,' 'A hand book of Sociology,' chapters XIX.
2. Davis, 'Human Society', chapter XVII.

अध्याय १४

राजनैतिक संस्थायें तथा समितियाँ

(Political Institutions and Associations)

संस्थाओं तथा समितियों पर हम पहली पुस्तक में विचार व्यक्त कर चुके हैं। समिति वह संगठित समूह है, जिसका एक या एक से अधिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये निर्माण किया जाता है। संस्थायें (Institution) कार्य प्रणालियों के वे ढाँचे होते हैं, जो एक स्वार्थ की पूर्ति बन जाती हैं। इसके अन्तर्गत नियम व कार्य-प्रणाली इत्यादि आते हैं।

राजनैतिक समितियों पर समाजशास्त्रीय दृष्टि

(Sociological view on Political Associations)

राजनैतिक समितियों का अध्ययन राजनीतिशास्त्र का विषय होते पर भी समाजशास्त्र में हम इसका अध्ययन क्यों करते हैं? इसका उत्तर अति सरल है। समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है। समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है और सम्पूर्ण समाज समाजशास्त्र के अध्ययन का विषय है। राजनैतिक सम्बन्ध, सामाजिक सम्बन्धों के अङ्ग हैं और ये अन्य सामाजिक सम्बन्धों से सम्बन्धित हैं और उनसे प्रभावित होते और उन पर प्रभाव डालते हैं। राजनैतिक समितियाँ शून्य (Vacuum) में कार्य नहीं करती हैं, बल्कि अन्य समितियों के वायुमण्डल से घिरी हुई होती हैं समाजशास्त्र सामान्य विज्ञान (General Science) के रूप में राजनैतिक समितियों का अध्ययन करता है। राजनीतिशास्त्र (Political Science) एक विशेष विज्ञान (Special Science) के रूप में राजनैतिक समितियों एवं संस्थाओं का अध्ययन करता है। हम राज्य के स्वरूप, विभिन्न देशों के विधान, दण्ड विधान आदि विशेष भागों पर विचार नहीं करेंगे। इन पर विचार करना राजस्व (Public Finance), अपराध-शास्त्र (Criminology), दण्डविज्ञान (Penology) इत्यादि विशेष विज्ञानों का कार्य है, परन्तु समाज में राजनैतिक समितियों का अन्य समितियों से इतना सम्बन्ध है कि समाजशास्त्र में उसके प्रमुख लक्षणों का हम अध्ययन करते हैं। समाजशास्त्र समाज का सांगोपांग (In totality) अध्ययन करता है और विशेष विज्ञान समाज के विशिष्ट अङ्गों का।

व्यक्ति और राज्य (Individual and State)

व्यक्ति और राज्य का घनिष्ट सम्बन्ध है। व्यक्ति जन्म लेते ही राज्य के नियमों से बध जाता है। सर्व प्रथम जन्म की सूचना राज्य को देनी पड़ती है। राज्य हमारे लिये बाल्यकाल से लेकर मृत्यु तक अनेक सुविधायें प्रदान करता है। राज्य हमारी शिक्षा, चिकित्सा, गृह, मनोरंजन एवं क्रीड़ा जल एवं विद्युत आदि की व्यवस्था करता है तथा समाज में आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा का प्रबन्ध करता है और बाह्य शत्रुओं से रक्षा करता है। इस प्रकार राज्य हमारे सम्पूर्ण जीवन पर छाया हुआ है।

इन सब के बदले में राज्य व्यक्ति पर शासन करता है और उस पर अधिकार रखता है। व्यक्ति को राज्य की अनिवार्य रूप से सदस्यता स्वीकार करनी पड़ती है।

राज्य की उत्पत्ति में सहायक तत्व

राज्य की उत्पत्ति के अनेक सिद्धान्त विद्वानों द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं, परन्तु हम उन पर यहाँ विचार नहीं करेंगे। हम केवल उन तत्वों पर प्रकाश डालेंगे, जो राज्य की उत्पत्ति में सहायक हुए हैं।

वन्य जातियों में राज्य का अस्तित्व नहीं पाया जाता है और यदि पाया भी जाता है तो अति न्यून मात्रा में। इसका मुख्य कारण यह है कि उनकी सभ्यता का विकास नहीं हुआ है। इन लोगों को राज्य की कोई विशेष आवश्यकता ही नहीं पड़ती। जब कभी इन्हें सामूहिक कार्यवाही करनी होती है तो ये एक अस्थायी नेता चुन लेते हैं और जैसे ही कार्य समाप्त हो जाता है, उसका नेतृत्व भी समाप्त हो जाता है।

निम्न स्तर की सभ्यताओं मे राज्य एवं सरकार की आवश्यकता बहुत कम रहती है, क्योंकि वहाँ ऐसे तत्व पाये जाते हैं, जो अव्यवस्था नहीं होने देते। ऐसा सबसे प्रमुख तत्व यह है कि समूह के सदस्यों की सख्या आधुनिक समुदायों की तुलना में बहुत कम होती है। खानाबदोशों और शिकारियों की संख्या अनेक कारणों से कम होती रहती है। उनका जीवन ही इतना दुष्कर होता है कि वे अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाते। ये छोटे समूह एक प्रकार से अन्त समूह के समान होते हैं। सब एक दूसरे को भली भाँति जानते हैं। सार्वजनिक विचार (Public Opinion) और अन्य प्राथमिक नियन्त्रण सदस्यों के व्यवहार को नियन्त्रित रखते हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण कारण अपरिवर्तनशील संस्कृति है। इन समाजों में गतिशीलता बहुत कम पाई जाती है, इसके कारण अधिक समय तक सामाजिक

दशायें ऐसी बनी रहती है। सामाजिक दशायें अधिक समय तक एकसी रहने के कारण मनुष्य अपना व्यवहार उनके अनुसार ही करता है। मान्य व्यवहार करने के कारण कोई अव्यवस्था उत्पन्न ही नहीं होती।

आधुनिक युग म अधिकाश अपराध सम्पत्ति (Property) के सम्बन्ध में होते हैं। साधारण सभ्यता वाले समाजा म व्यक्तिगत सम्पत्ति बहुत कम पाई जाती है तथा छोटा समूह होन क कारक सारी सम्पत्ति का एक दूसर को पता रहता है। व्यापार के अविकसित होने के कारण कोई चुराई हुई सम्पत्ति का करगा भी क्या ?

इसस हमारा अभिप्राय यह नहीं ह कि इन समूहों म अमान्य व्यवहार या अपराध होते ही नहीं हैं। उनम लिंग सम्बन्धों की अव्यवस्था बहुत पाई जाती है। दुर्व्यवहार (Mis conduct) पर नियन्त्रण केवल राज्य ही नहीं रखता बल्कि विद्यालय परिवार और धार्मिक समितियाँ भी इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करती हैं। आदि निवासियों म प्रमुखतया परिवार राज्य के स्थान पर कार्य करता ह। परिवार के अतिरिक्त गोत्र (Clan) सगठन भी इस कार्य को करता है। गोत्र के कार्यों का वर्णन हम अगले अध्यायों में करेंग। व्यवस्था, अन्य समितियां जैस आयु समूहों, लिंग समूहों और गुप्त समूहों द्वारा भी स्थापित रखी जाती है।

इस प्रकार हमने देखा कि व्यवस्था को स्थापित रखने के कार्य के लिये राज्य की आवश्यकता प्रतीत होती है। इन साधारण सभ्यता वाले समूहों में व्यवस्था अन्य समितियों द्वारा स्थापित करदी जाती ह इसलिये राज्य की कोई आवश्यक्ता प्रतीत नहीं होती। यद्यपि आज राज्य क अनेक कार्य है, तथापि उनम स सबस प्रमुख कार्य है—व्यवस्था को स्थापित रखना। अत राज्य की उत्पत्ति म सर्व प्रमुख तत्व व्यवस्था की आवश्यकता है।

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने इसका सुन्दर चित्रण निम्न शब्दों में किया है —

"नर समाज को एक खड्गधर
नृपति चाहिये भारी
डरा करें जिसस मनुष्य
अत्याचारी, अविचारी।
नृप चाहिये, नहीं तो आपस में
वे खूब लड़ेगे,
एक दूसर के शोणित म
लड़कर डूब मरगे।'

जैसे जैसे आवागमन के साधन बढ़ते गये, छोटे छोटे समूह एक दूसरे के सम्पर्क में आते गये। आपस में द्वेष और झगड़े प्रारम्भ हुए। धीरे-धीरे इन्हीं झगड़ों ने युद्ध (War) का रूप ले लिया होगा। युद्धों के प्रारम्भ होने के उपरान्त समूहों में अनुशासन एवं संगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। ऐसे समय में नेता की भी आवश्यकता हो जाती है। युद्ध का नेता भी राज्य की उत्पत्ति में एक आवश्यक तत्व रहा होगा। इस नेता ने समूह को सगठित किया होगा और समूह के लिये अनेक कार्य किये होंगे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि युद्ध भी राज्य की उत्पत्ति में बड़ा सहायक रहा होगा।

राज्य का उद्‌भव (Evolution of the State)

राज्य का उद्‌भव रेखांकित उद्‌भव (Linear Evolution) नहीं हुआ है। राज्य का विकास विभिन्न स्थानों पर विभिन्न क्रम से हुआ है। सामाजिक संस्थाओं का विकास कभी भी एक निश्चित् क्रम से नहीं होता। राज्य की उत्पत्ति में सहायक तत्वों जैसे नेतागण, शिकारी गुट, सम्पत्ति, युद्ध, दास प्रथा, रक्षा के कार्य एवं अन्य ऐसे कार्य जो सरकार को करने पड़ते हैं, पर राज्य का स्वरूप निर्भर रहता है।

सर्व प्रथम छोटे छोटे समूह राज्य बना लिया करते थे। जैसे जैसे सम्पत्ति एक किसान के पास बढ़ती गई, वह अपना प्रभुत्व जमाता गया। इसके कारण सामन्तवादी राज्यों का निर्माण हुआ। ये धनी व्यक्ति छोटे छोटे राजा बन गये धीरे धीरे इनमें आपस में झगड़े प्रारम्भ हुये और एक शक्तिशाली सरदार अपने से निर्बल सरदारों को हरा कर उन्हें अपने अधीन बनाने लगे। इन्हीं विजयी सरदारों ने राजा का स्वरूप धारण किया।

दूसरी ओर नगरों का विकास प्रारम्भ हुआ और व्यवसाय पर आधारित नगर-राज्यों (City States) का निर्माण हुआ। एथेन्स (Athens) और रोम (Rome) प्राचीन युग में ऐसे ही नगर-राज्य थे। जब इन राज्यों की सीमायें बहुत बढ़ गई तो इन्हें साम्राज्य कहा जाने लगा। इन राज्यों में व्यापारियों का महत्व अधिक था, इस कारण वे राज्य में हस्तक्षेप करना चाहते थे। इसी समय से राजा और व्यापारियों में संघर्ष प्रारम्भ हुआ, जो बाद में जनता और राजा के संघर्ष में परिवर्तित हो गया।

राजाओं के प्रति असन्तोष बढ़ता गया और जनता की शक्ति भी प्रबल होती गई। प्रजातन्त्रवाद का आरम्भ हुआ। पहिले मताधिकार सीमित रहा, परन्तु धीरे धीरे प्रत्येक वयस्क को यह अधिकार मिल गया। अनेक स्थानों पर राजाओं को बिल्कुल समाप्त कर गणतन्त्र राज्यों की स्थापना कर दी गई है।

राज्य और सरकार (State and Government)

राज्य और सरकार शब्दों में साधारण व्यक्ति कोई अन्तर नहीं समझते हैं, परन्तु इन दोनो मे महान् अन्तर है। राज्य एक सस्था के समान है। राज्य से हमारा अभिप्राय उन नियमों के ढाँचे से है, जिसके द्वारा व्यवस्था और रक्षा होती है, जैसे विधान, अलिखित परम्परायें इत्यादि। सरकार एक समिति के रूप में है। इससे अभिप्राय उन व्यक्तियों के समूह से है, जो राज्य को चलाते हैं। उदाहरण के लिये आजकल काँग्रेस सरकार है, काँग्रेस राज्य नहीं।

राज्य और सरकार, एक ही वस्तु के दो पहलू है। जब राज्य को हम सस्था के रूप देखना चाहते हैं, तो हमारा अभिप्राय राज्य से होता है और जब हम राज्य को समिति के रूप मे देखना चाहते हैं तो हमारा अभिप्राय सरकार (Government) से होता है।

राज्य और राष्ट्र (State and Nation)

राज्य और राष्ट्र मे भी अन्तर है। राष्ट्र की परिभाषा हम अध्याय १२ में कर चुके है। राष्ट्र मनुष्यों का एक समूह होता है, जो सामुदायिक भावना द्वारा अपने सदस्यों को बाँधे हुए रहता है और जो एक राज्य द्वारा अपने सदस्यों की रक्षा एवं व्यवस्था करता है। राज्य नियमों का ढाँचा है।

राज्य और समुदाय (State and Community)

राज्य एक समिति है, जिसका कुछ विशिष्ट स्वार्थों की पूर्ति के हेतु निर्माण किया जाता है। राज्य मनुष्य की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता है, इसलिए वह समुदाय नहीं हो सकता। इस पर भी राज्य और समुदाय में कई विचारक कोई अन्तर नहीं करते है। यह भ्रम इसलिए और भी बढ़ गया है कि दोनों को एक ही शब्द द्वारा सम्बोधित किया जाता है। भारतवर्ष, चीन या संयुक्त राष्ट्र अमेरिका शब्दों से हमारा अभिप्राय उन देशों के राज्यों से भी हो सकता है और उन देशों मे बसने वाले समुदायों से भी। हम कहते है कि भारतवर्ष चीन से सधि करता है, यहाँ पर हमारा अभिप्राय भारतवर्ष के राज्य एव सरकार से है, परन्तु जब हम कहते है कि भारतवर्ष का जीवन स्तर निम्न है, तो यहाँ भारतवर्ष से हमारा अभिप्राय भारतवर्ष मे रहने वाले मनुष्यों एवं उसके समुदायों से है।

निस्सन्देह राज्य की शक्ति और महत्व बहुत है, परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि राज्य एक समिति नहीं है और समुदायों से भी सर्वोपरि है। राज्य के अतिरिक्त अनेक ऐसी समितियाँ हैं, जिनके हम सदस्य हैं और उनके कार्यों में भाग

लेते हैं। ये समितियाँ किसी भी प्रकार राज्य जैसी महासमिति का अङ्ग नहीं हैं। सामाजिक प्राणी होने के कारण हम केवल राज्य के नागरिक मात्र ही नहीं हैं, बल्कि हम समुदाय के सदस्य हैं और हमारे अनेक सामाजिक सम्बन्ध हैं। हम पति और पत्नी के रूप में परिवार के सदस्य हैं, मित्र होने के नाते मित्र गोष्ठी के सदस्य हैं, खिलाड़ी होने के नाते टीम के सदस्य हैं इत्यादि।

राज्य की सर्वोपरि शक्ति, पर नियन्त्रण प्रारम्भ हो गया है। जो अधिकार दे सकता है, वह ले भी सकता है। राज्य का निर्माण समुदाय द्वारा हुआ है। आधुनिक सविधानों में ऐसी सीमायें निर्धारित की गई हैं, जिनके बाहर राज्य कार्य नहीं कर सकता है। नागरिकों को कुछ अधिकार एवं स्वतन्त्रता दी गई है।

राज्य समुदाय का अङ्ग है (State is a part of Community)

राज्य भी अन्य समितियों के समान एक समिति है और समुदाय का एक अग है। राज्य अन्य समितियों के कार्य को नहीं कर सकता। यद्यपि आधुनिक युग में राज्य अनेक समितियों के कार्यों को करने की चेष्टा कर रहा है, परन्तु पूर्ण रूप से सफल नहीं हुआ है। साम्यवादी राज्यों (Communistic States) में आर्थिक कार्य सम्पूर्ण रूप से सरकार ने अपने हाथ में ले लिये हैं। सर्वाधिकारवादी राज्यों (Totalitarian States) में नागरिकों के प्रत्येक स्वार्थ पर नियन्त्रण रखा जाता है और उन्हें पूर्ण करने की चेष्टा की जाती है, परन्तु यह चेष्टा पूर्ण रूप से सफल नहीं हुई है। नाजी जर्मनी (Nazi Germany) इसका एक उदाहरण है। राज्य केवल जीवन के बाह्य पहलुओं पर ही प्रभावपूर्ण नियन्त्रण रख सकता है। साँस्कृतिक क्षेत्रों में राज्य का नियन्त्रण प्रभावपूर्ण नहीं हो सकता।

राज्य की प्रकृति (Nature of State)

राज्य की प्रकृति अन्य समितियों से भिन्न है। राज्य एक इस प्रकार का संगठन है, जिसके पास विशेष शक्तियाँ एवं अधिकार हैं। राज्य के नियम अन्य सामाजिक नियमों से भिन्न हैं। राज्य किसी भी व्यक्ति को अपने नियम मानने के लिये बाध्य कर सकता है। यदि कोई उसके नियमों को न माने तो राज्य उसे हर प्रकार का दण्ड दे सकता है। राज्य शक्ति का भी प्रयोग करता है। यदि राज्य किसी व्यक्ति को एक निश्चित स्थान पर बुलावे और वह उपस्थित नहीं हो, तो राज्य अपने कर्मचारियों द्वारा जबरदस्ती पकड़वा कर बुलवा सकता है। अन्य समितियों के नियम ऐसे नहीं है। दूसरा अन्तर यह है कि राज्य के नियम अनिवार्य रूप से बिना अपवाद के एक निश्चित भू भाग में रहने वाले समस्त

व्यक्तियो पर समान रूप से लागू होते हैं। कोई भी यह नहीं कह सकता कि मैं राज्य के नियमो से स्वतन्त्र हूँ। मनुष्य भय के कारण राज्य के नियमों का पालन करता है।

राज्य के कार्य (Functions of State)

राज्य के कार्य क्या होने चाहिए, यह एक बड़ा विवादपूर्ण विषय है। हमने देखा कि कुछ कार्य राज्य भली प्रकार कर सकता है और कुछ उतनी अच्छी प्रकार नही, जितनी कि अन्य समितियाँ कर सकती है और कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें वह कर ही नहीं सकता। इन विभिन्न श्रेणियों में कौन से कार्य गिने जायेंगे, यह विभिन्न राज्यों की परिस्थितियो पर निभर रहता है। विभिन्न समय मे राज्य के विभिन्न कार्य रहे हैं।

प्रमुखतया राज्य के निम्न कार्य हो सकते है और उन्हें निम्न समूहो में वर्गीकृत किया जा सकता है —

(१) वे कार्य जो राज्य के लिये ही हैं

राज्य के लिये समाज में कुछ ऐसे कार्य होते हैं जिन्हे केवल राज्य ही कर सकता है। एक जटिल समाज मे व्यवस्था स्थापित करना राज्य का ही कार्य है। राज्य ही इसे स्थापित कर सकता है, क्योकि राज्य के पास विशेष प्रकार की शक्ति है। पहली बात यह है कि राज्य के नियम एक भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होते हैं और दूसरी बात यह है कि राज्य इस दृष्टिकोण से सर्वोपरि है। राज्य ही सार्वभौमिक नियमों का प्रतिपादन कर सकता है। वह ही ऐसी सुरक्षा प्रदान कर सकता है जो सबके लिये समान हो।

आधुनिक जटिल समाज मे सुव्यवस्था रखना एक आवश्यक कार्य है। क्रान्ति एव अन्य अव्यवस्था के काल मे समाज मे कोई कार्य नहीं किया जा सकता। आधुनिक जटिल समाज मे विविध उद्देश्यों पर आधारित अनेक समूह होते हैं। इनके बीच सामन्जस्य रखना नितान्त आवश्यक है। राज्य विभिन्न समूहों पर नियन्त्रण रखता है। व्यक्ति व्यक्ति का और समूह समूह का शोषण न कर सके, यह देखना भी राज्य का कर्त्तव्य है। आधुनिक समाज मे व्यवस्था रखना अत्यन्त आवश्यक हे और यह व्यवस्था राज्य द्वारा ही रखी जा सकती है।

राज्य न्याय की भी व्यवस्था करता हे। राज्य बाह्य शत्रुओ से भी समुदाय की रक्षा करता है।

(२) वे कार्य जिनके लिये राज्य सुयोग्य है

ऊपर वर्णित आवश्यक कार्यों के अतिरिक्त कुछ ऐसे कार्य हैं जिन्हे राज्य

भली प्रकार से कर सकता है। राज्य के पास अनेक साधन होते हैं। प्राकृतिक साधनों की रक्षा करना इन कार्यों में से एक कार्य है। प्रतिद्वन्द्वी स्वार्थ रखने वाले केवल वे कार्य ही कर सकते हैं, जिनमें तुरन्त लाभ हो। राज्य उन कार्यों को भी करता है जिनमें तुरन्त लाभ न भी हो, फिर भी भविष्य में दीर्घकाल तक समुदाय को लाभ होता रहे। वनों की रक्षा करने, मछलियों की नस्लों को कायम रखने, जंगली जानवरों की रक्षा करने और खनिज पदार्थों को समाप्त न होने देने का उत्तरदायित्व राज्य पर ही है। राज्य व्यक्तिगत एकाधिकार को भी रोकता है।

राज्य व्यक्ति के विकास के लिये भी साधन जुटाता है। इसमें शिक्षा का प्रबन्ध प्रमुख है। शिक्षा का कार्य व्यक्तिगत समितियों पर नहीं छोड़ा जा सकता। राज्य समुदाय के लिये वे सारे कार्य करता है जो व्यक्तित्व के विकास के लिये आवश्यक हैं, परन्तु जितना धन उन पर व्यय होता है वह तुरन्त धन के रूप में पुनः प्राप्त नहीं होता। राज्य सार्वजनिक सेवाओं का प्रबन्ध करता है, जैसे उद्यान, कौतुकागार (Museum) इत्यादि।

राज्य और कल्याणकारी सेवायें

राज्य कल्याणकारी सेवा समिति के रूप में भी कार्य करता है। अन्य समितियों के समान राज्य भी मनुष्य की आवश्यकता के समय सहायता करता है। राज्य के कल्याणकारी कार्य आधुनिक युग में दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप जीवन के खतरे बढ़ते जा रहे हैं, इसलिये राज्य को कल्याणकारी कार्य करने पड़ रहे हैं। यह विभाग अपने देश में भी खोल दिया गया है। हमारा उद्देश्य एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना है।

राज्य और आर्थिक कार्य

राज्य आर्थिक कार्य भी करता है। अनेक राजनीतिज्ञों का मत है कि सम्पूर्ण आर्थिक कार्य राज्य के हाथ में होने चाहिये। वे पूर्ण राष्ट्रीयकरण के पक्ष में हैं। पूर्ण राष्ट्रीयकरण होना चाहिये या नहीं, यह बड़ा विवादपूर्ण विषय है, परन्तु क्रमश. राज्य आर्थिक सत्ता को अपने अधीन करता जा रहा है।

(३) वे कार्य जिन्हें राज्य भली प्रकार से नहीं कर सकता

कुछ कार्य ऐसे हैं, जिन्हें राज्य उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकता, जितनी अच्छी तरह अन्य समितियाँ कर सकती हैं। राज्य व्यक्तिगत स्वार्थों से सम्बन्धित एवं सांस्कृतिक कार्यों को भली प्रकार से नहीं कर सकता है।

(२) जो कार्य निश्चित करने में राज्य असमर्थ है

कुछ ऐसे कार्य हैं जिन्हें राज्य बिल्कुल नहीं कर सकता। राज्य जनमत का नियन्त्रण नहीं कर सकता है क्योंकि राज्य के पास शक्ति होता है और इस भय के कारण जनमत की सच्ची व्यक्त नहीं होती।

राज्य सदाचार सम्बन्धी एवं नैतिक कार्यों को भी नहीं कर सकता। राज्य धर्म पर नियन्त्रण नहीं रख सकता।

प्रश्न

१ राज्य को समुदाय के साधन के रूप में मानने के कारण दीजिये।

(Give rea ons for c nceiving the State as an agency of the Community) Agra 1955

२ 'भूल जाओ कि तुम किसान श्रमिक व्यापारी वैज्ञानिक पत्नी या माता हो और केवल याद रखो कि तुम एक नागरिक हो अपने ऊपर अन्य सभी के अधिकार भूल जाओ क्योंकि मेरी तुलना में कोई भी महत्वपूर्ण नहीं है (राज्य की)।'

आपके विचार में क्या यह राज्य की शक्ति और कार्य की उचित प्रतिछाया है?

('Forget that you are peasants workers, busi nessmen scientists wives or n other and remember only that you are citizens Forge all other claims upon you for none of the 1 c mp re with mine (State's)"

Do you think it is a true reflection of the powers and functions of the s ate ?) Agra 1956

SELECTED READINGS

1 Bie anz and Bie anz M dern Society, chapter XXI
2 MacIver and Page Society chapter XVIII

अध्याय १५

साँस्कृतिक संस्थायें तथा समितियाँ
(Cultural Institutions and Associations)

साँस्कृतिक संगठन की प्रमुख विशेषतायें

साँस्कृतिक समितियाँ उपयोगितावादी एवं स्वार्थवादी (Utilitarian associations) समितियों से कई दृष्टिकोणों में भिन्न होती हैं। उपयोगितावादी एवं स्वार्थवादी समितियाँ केवल स्वार्थ के हेतु संगठित की जाती हैं, उदाहरण के लिये राजनैतिक समितियाँ, आर्थिक समितियाँ इत्यादि। साधारण रूप में प्रत्येक समिति किसी न किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिए ही संगठित की जाती है। जब कोई समिति साधन के रूप में कार्य करती है, तो उपयोगितावादी और जब साध्य के रूप में कार्य करती है, तो साँस्कृतिक होती है। इस प्रकार राज्य भी साँस्कृतिक समिति होता है, क्योंकि वह भी यदि विस्तार में कहा जाय तो समाज की भलाई के लिए होता है।

वास्तव में इन दोनों का भेद मौलिक उद्देश्यों पर आधारित है। जो समितियाँ साध्य के रूप कार्य करती हैं और प्रत्यक्ष रूप से मनुष्यों की व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति करती हैं, वे साँस्कृतिक समितियाँ होती हैं। इस वर्ग में हम धार्मिक समितियों, सामाजिक क्लब, अध्ययन समिति, वाचनालय, गायन समिति, नृत्य मण्डल इत्यादि को रखते हैं। कई बार समिति के मौलिक उद्देश्य का पता लगाना कठिन हो जाता है। इतना ही नहीं, बल्कि कई बार एक समिति दोनों वर्गों में समान रूप से आती है। ऐसी दशाओं में यह किस प्रकार निश्चित किया जाय कि उक्त समिति स्वार्थवादी एवं उपयोगितावादी है या साँस्कृतिक। ऐसे समय में निम्न कसौटियों का प्रयोग करना चाहिए:—

(१) भाग लेने की विधि (The mode of participation)

भाग लेने की विधि पर भी बहुत कुछ आधारित रहता है। एक साँस्कृतिक समिति या तो स्वयं एक प्राथमिक समूह (Primary Group) होती है या प्राथमिक समूहों का एक संघ, जो कि एक केन्द्रीय संगठन द्वारा संगठित होता है। एक साँस्कृतिक समिति के उद्देश्य की पूर्ति तब तक नहीं हो सकती, जब तक उसके सदस्य आमने सामने उपस्थित न हों। साँस्कृतिक संगठन सदैव प्राथमिक समूह के रूप में कार्य करता है। मान लीजिए एक धार्मिक समिति

ऐसी है, जिसका केन्द्रीय संगठन बड़ा सुसंगठित है, परन्तु उसके सदस्य कहीं भी पूजा करने के लिये एकत्रित नहीं होते है। ऐसी धार्मिक समिति को हम मृतप्रायः समझो। एक क्लब, क्रीड़ा समूह, नृत्य मण्डल, गायन समिति, वाद-विवाद समिति या साहित्य गोष्ठी कभी भी अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकती, जब तक कि उनके सदस्य एक स्थान पर एकत्रित न हो और प्राथमिक समूह के रूप में कार्य न करें।

ये दशायें स्वार्थवादी एवं उपयोगितावादी समितियो (Utilitarian associations) के लिये आवश्यक नहीं है। एक आर्थिक समिति का सदस्य बिना व्यक्तिगत सम्बन्ध में आये हुये भी अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। यदि वह एक व्यावसायिक संघ का भागीदार है, तो उसका स्वार्थ केवल लाभांश (Dividends) तक ही सीमिति है। वह बिना किसी सम्बन्ध के प्रतिवर्ष अपने भागों (Shares) पर लाभांश प्राप्त कर लेता है। एक व्यक्ति राज्य के सारे लाभ, बिना किसी सम्बन्ध मे आये, उठा सकता है। सांस्कृतिक समिति में उद्देश्य की पूर्ति मिलने की प्रक्रिया मे ही पूर्ण हो जाती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सांस्कृतिक समितियों में व्यक्तिगत सम्बन्ध (Personal Relations) पाये जाते हैं और स्वार्थवादी एवं उपयोगितावादी समितियो में अव्यक्तिगत सम्बन्धों (Impersonal Relations) की बाहुल्यता पायी जाती है।

(२) विकल्प की स्वतन्त्रता (The Liberty of alternatives)

साँस्कृतिक समितियो का दूसरा विशेष गुण यह होता है कि उनमें विकल्प की स्वतन्त्रता रहती है। यद्यपि इस तथ्य को समझना कठिन है तथापि हम धार्मिक समिति और राज्य की तुलना करते हुये इसे समझने की चेष्टा करेंगे। एक क्षेत्र में केवल एक ही राज्य हो सकता है, परन्तु एक क्षेत्र मे कई धार्मिक समितियाँ हो सकती हैं। उदाहरण के लिये भारतवर्ष की भूमि के लिये एक भारतीय गणतन्त्र राज्य है, परन्तु इसी क्षेत्र मे अनेक धार्मिक समितियाँ हैं, जैसे हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सिक्ख धर्म, ईसाई धर्म इत्यादि। ये सारी धार्मिक समितियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। एक समुदाय में दो राजनैतिक समितियाँ नहीं हो सकती, परन्तु अनेक धार्मिक समितियाँ हो सकती हैं। ये तथ्य सभी साँस्कृतिक समितियों के लिए सत्य है। राज्य की सदस्यता अनिवार्य होती है, परन्तु धार्मिक समितियों की सदस्यता वैकल्पिक (Optional) होती है। साँस्कृतिक समितियाँ प्रकृति से ही बाहुल्यवादी (Pluralistic) होती है। मनुष्य इन अनेक समितिया मे से अपनी इच्छा के अनुसार चुन सकता है।

(३) स्वतन्त्रता एवं रचनात्मकता (Freeness and Creativeness)

सांस्कृतिक समितियाँ प्रकृति से ही स्वतन्त्र एवं रचनात्मक होती हैं। सांस्कृतिक समितियाँ पराधीनता में अपने उद्देश्य की पूर्ति भली प्रकार नहीं कर पाती हैं और इस कारण से इनका केन्द्रीकरण सदैव हानिकारक रहता है। जब जब सांस्कृतिक समितियों पर नियन्त्रण करने का प्रयत्न किया गया, तब तब परिणाम अच्छे नहीं निकले।

इन लक्षणों द्वारा सांस्कृतिक समितियों को उपयोगितावादी एवं स्वार्थवादी समितियों से पृथक् कर सकते हैं। अब हम सांस्कृतिक समितियों में प्रमुख धार्मिक समिति पर विचार करेंगे।

धर्म (Religon)

धर्म प्रत्येक समुदाय में किसी न किसी रूप में अवश्य पाया जाता है। धर्म की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, यह एक जटिल प्रश्न है। अनेक विद्वानों ने प्रत्येक काल में धर्म की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला है। प्रारम्भिक मानवशास्त्रियों (Larly Anthropologists) ने इस पर विशेष परिश्रम किया है।

धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त

धर्म की उत्पत्ति के अनेक सिद्धान्त हैं, परन्तु हम उनमे स प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डालेंगेः—

(१) आत्मवाद (Animism)
(२) प्रकृतिवाद (Naturism)
(३) पूर्णरूपेण सिद्धान्त (Functional theory)

(१) आत्मवाद (Animism)

टाइलर (Tylor) और स्पेन्सर का मत है कि धर्म में आत्मा का विचार केन्द्रीय है। आत्मा के विषय में प्राचीन मनुष्य एक भूल के कारण जानने लगे। मनुष्य सो रहा है और स्वप्न में उसकी आत्मा शरीर से निकलती है, अनेक स्थानों पर भ्रमण करती है, अनेक व्यक्तियों से बात करती है और फिर शरीर में लौट आती है। प्राचीन मनुष्य ने इससे यह अभिप्राय निकाला कि उसके दो स्वरूप हैं—एक वह स्वयं और दूसरी उसकी आत्मा। जब एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तो वह स्वच्छन्द विचरती है। जितने लोग मरते गये, उतनी ही आत्मायें स्वच्छन्द घूमने लगीं। ये प्रेतात्मायें, प्राचीन मनुष्यों के अनुसार, शरीर में प्रवेश कर सकती हैं और लाभ या हानि पहुँचा सकती हैं। वे प्रत्येक प्रकार के शरीरिक दोष उत्पन्न कर सकती हैं और मनुष्य की शक्ति को बढ़ा भी सकती हैं।

प्राचीन लोगों ने यह स्वभाव बना लिया कि स्वाभाविक कार्यों के अतिरिक्त जो कुछ भी होता है, वह प्रेतात्माओं के कारण। जो भी ऐसी बात होती थी, जिसकी व्याख्या न की जा सकती हो उसका एक उत्तर यह था कि प्रेतात्माओं ने किया है। जब कोई व्यक्ति बीमार हो जाता था तो यह विश्वास किया जाता था कि प्रेतात्मा क्रुद्ध है और यदि वह फलता फूलता था तो प्रेतात्मा प्रसन्न है।

इस प्रकार दो रूप से प्रेतात्मा का विश्वास बन गया। धीरे धीरे यही देवी देवता माने जाने लगे। चूँकि मृत्यु के कारण आत्मा पृथक होकर घूमती थी, इसलिये पूर्वजों की पूजा प्रारम्भ हुई। इन विद्वानों के अनुसार संसार में सबसे पहला धर्म पूर्वजों की पूजा (Ancestor Worship) था।

प्राचीन व्यक्ति जानदार और बेजानदार वस्तुओं में कोई भी अन्तर नहीं कर पाते थे। मनुष्यों की प्रेतात्मायें मनुष्यों के संसार पर राज्य करती थीं और अन्य वस्तुओं की प्रेतात्मायें बाह्य संसार जैसे नदियों का बहना, तारों की गति पेड़ पौधों का पैदा होना इत्यादि पर राज्य करती थीं। इन विश्वासों के कारण प्रकृति पूजा प्रारम्भ हो गई।

स्पेन्सर (Spencer), टाइलर की इस व्याख्या से सहमत नहीं है। उसका मत है कि प्राचीन मनुष्य महा मूर्ख होते थे। ये लोगों के नाम बेजानदार या पशुओं के नामों पर रखते थे। धीरे धीरे इनकी सन्तानें यह समझने लगीं कि हमारे पूर्वज ये वस्तुयें ही हैं और यह भूल गये कि उनके पूर्वजों का यह नाम मात्र था। मान लीजिये किसी के पूर्वज का नाम चीता था, तो उसकी सतानें यह समझने लगीं कि चीता नामक पशु उनका पूर्वज था।

(२) प्रकृतिवाद (*Naturism*)

मेक्समूलर (Max Muller) और दूसरे संस्कृत भाषा के विद्यार्थी टाइलर के आत्मा की उत्पत्ति के सिद्धान्त को मानते हैं, परन्तु वे स्वप्नों से अधिक मृत्यु पर उस सिद्धान्त की उत्पत्ति बताते हैं। इन विद्वानों का मत है कि धर्म का श्रोत बाह्य प्रकृति का मनुष्य पर प्रभाव है। प्राचीन मनुष्य ने प्रकृति की विशालता को देखा। मेक्समूलर ने लिखा है, "यह असीम प्रकृति की उत्तेजना एवं अनुभूति है, जिससे धर्मों की उत्पत्ति हुई है।"[1] ये प्राकृतिक

[1] "It is from this sensation of infinite that religions are derived" Max Muller, Quoted by Durkheim, E 'The Elementary Forms of Religious Life' Translated by J W Swain Allen & Unwin, London, p 74

वस्तुएं देवी और देवता मान ली गईं और इस प्रकार से प्रकृति पूजा प्रारम्भ हो गई।

आलोचना

ये दोनों विकासवादी सिद्धान्त आधुनिक युग में स्वीकार नहीं किये जाते हैं। इनके विरुद्ध कई प्रश्न खड़े किये गये हैं। उनमें से प्रमुख निम्न हैं —

(अ) ये सिद्धान्त इस बात पर आधारित हैं कि प्राचीन मनुष्य जागरूक स्वप्नावस्था में कोई भी अन्तर नहीं समझते थे। दूसरे वे सजीव और निर्जीव वस्तुओं में भी कोई अन्तर नहीं कर पाते थे। ये दोनों तथ्य कल्पना पर आधारित हैं। वास्तविकता इसके विपरीत है। आदिम निवासी इनको भली प्रकार से जानते हैं।

(आ) आत्मावाद सार्वभौमिक नहीं है। मलेनेशिया में इस प्रकार का कोई विश्वास नहीं पाया जाता।

(इ) प्रकृतिवाद (Naturism) हमारी संस्कृति की प्रतिछाया अधिक प्रतीत होती है। ये सिद्धान्त अनुमान और कल्पना पर अधिक आधारित हैं, प्रत्यक्ष प्रमाण कुछ भी नहीं है।

(ई) ये सिद्धान्त वैज्ञानिक समाजशास्त्र के अनुरूप नहीं हैं।

(उ) विकासवादी समाजशास्त्री आधुनिक संस्थाओं को (जिनके विषय में सामग्री एकत्रित की जा सकती है) प्राचीन प्रारम्भिक संस्थाओं (जिनके विषय में कोई भी सामग्री एकत्रित नहीं की जा सकती) के आधार पर समझना चाहते हैं।

(ऊ) धर्म संस्कृति का एक विशेष अंग है। उसकी उत्पत्ति को व्यक्तिगत आधार पर नहीं समझा जा सकता।

(२) धर्म का पूर्णरूपेण सिद्धान्त
(The functional theory of Religion)

यह सिद्धान्त विलियम राबर्टसन स्मिथ (William Robertson Smith), दुर्खेम (Durkheim), रडक्लिफ ब्राउन (Radcliffe Brown), मेलिनोवास्की (Malinowski) इत्यादि ने प्रतिपादित किया है। इन विद्वानों का मत है कि समाज का अध्ययन पूर्ण रूप में ही हो सकता है, क्योंकि समाज निज अंगों से मिलकर बना है, उनका केवल जोड़ मात्र नहीं है। इसी प्रकार समाज के अंग भी पृथक् करके नहीं समझे जा सकते। उन्हें समझने के लिये सम्पूर्ण समाज का आधार लेना होगा। मान लीजिये हम धार्मिक संस्थाओं का अध्ययन करना चाहते हैं, तो इसका अध्ययन अन्य सामाजिक

सम्बन्धों से पृथक् करके नहीं किया जा सकता। इसका उचित अध्ययन तभी हो सकता है, जब कि धार्मिक समिति का अध्ययन सम्पूर्ण समाज के सदर्भ (Reference) से करें।

भावना की एकता एक अत्यन्त आवश्यक सामाजिक आवश्यकता है। कोई भी समाज बिना इस भावना के जीवित नहीं रह सकता। लोग चाहे इस प्रक्रिया को समझे या न समझें परन्तु उनमें भावना की एकता अवश्य होनी चाहिये। धर्म का एक प्रमुख कार्य यह है कि वह उन तत्वों को प्रोत्साहित एवं प्रमाणित करता है जो समाज को सगठित करते हैं।

धर्म समाज का एक अग है। यह समूह के सदस्यों के लिये सामान्य होता है और समूह के सदस्य सामान्य विश्वास रखते हैं पूजा एक सार्वजनिक विषय है और समुदाय द्वारा अनुमति प्राप्त है। एक धर्म के अनुयायी अनेक प्रकार के बन्धनों में बधे हुये होते हैं। इस प्रकार धर्म एक सामाजिक आवश्यकता है और इन्हीं आवश्यकताओं के कारण धर्म की उत्पत्ति हुई।

धर्म और विज्ञान (Religion and Science)

धर्म और विज्ञान में कोई सघर्ष है या नहीं यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है इसके विषय में दो मत हैं—(१) इनमें कोई भी सघर्ष नहीं है और (२) इन दोनों में घोर सघर्ष है।

जो लोग यह विश्वास करते हैं कि धर्म और विज्ञान में कोई सघर्ष नहीं है, उनका कहना है कि धर्म उन विश्वासों एव ससार के विषय में बतलाता है जो ज्ञानेन्द्रियों से परे है, इसलिये यदि वे वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्रमाणित नहीं किये जा सकते तो अप्रमाणित भी नहीं किये जा सकते। एक वैज्ञानिक ईश्वरवादी होते हुए भी एक कुशल प्राणीशास्त्री हो सकता है।

जो लोग यह विश्वास करते हैं कि धर्म और विज्ञान में घोर सघर्ष है उनका कहना है कि यह तो ठीक है कि दोनों का क्षेत्र पृथक् है परन्तु अज्ञात और ज्ञात ससार की सीमायें सदैव परिवर्तित होती रहती हैं। जो कुछ हमें कल अज्ञात था वह आज हमें ज्ञात है। कुछ ही समय पूर्व मनुष्य की उत्पत्ति हमें अज्ञात थी। धर्म अपने अनुसार इस उत्पत्ति को बताता था और सब लोग इसलिये विश्वास करते थे कि यह रहस्य ईश्वर द्वारा बताया गया है। जब विज्ञान ने इस उत्पत्ति का रहस्योद्घाटन किया तो धार्मिक विश्वास और वैज्ञानिक सत्य के बीच सघर्ष उठ खड़ा हुआ। कोई व्यक्ति विज्ञान के प्रति सच्चा रहता हुआ मनुष्य की उत्पत्ति के धार्मिक विश्वास में कैसे विश्वास रख सकता है। साधारण लोग अपना विश्वास छोड़कर वैज्ञानिक सत्य को शीघ्र

मानने के लिये तैयार नहीं होते और इस प्रकार धार्मिक विश्वास वैज्ञानिक और साधारण जनता में संघर्ष खड़ा कर देते हैं। जब तक विज्ञान प्रगति करता जायगा तब तक धर्म और विज्ञान में संघर्ष रहेगा। दूसरा संघर्ष का कारण यह है कि विज्ञान एक विशिष्ट प्रकार की पद्धति लोगों को सिखाता है जिसके कारण लोग सरलता से विश्वास नहीं करते।

धर्म और जादू (Religion and Magic)

धर्म और जादू में घनिष्ट सम्बन्ध है। जादू दो प्रकार का होता है। प्रथम जादू वह होता है जो कि समाज द्वारा मान्य और उसके हित के लिये होता है। द्वितीय काला जादू (Black Magic) व्यक्तिगत स्वार्थों से प्रेरित होकर दूसरों को हानि पहुँचाने के लिये किया जाता है।

धर्म और जादू में अनेक अन्तर हैं। जादू एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया जाता है और उसका फल तुरन्त पाने की इच्छा रहती है। धर्म का कोई विशेष निश्चित् उद्देश्य नहीं होता। धर्म साधना के रूप में प्रयोग नहीं होता बल्कि स्वयं साध्य होता है।

धर्म में आदर, स्फुर्ति, उच्चता की भावना का अनुभव पवित्र वस्तु के प्रति किया जाता है। जादू में व्यवहार साधारण रहता है जिस प्रकार कि मनुष्य अन्य यन्त्रों के साथ काम करता है। काला जादू धर्म से बहुत दूर है। काला जादू गुप्त स्थान में किया जाता है, परन्तु धार्मिक स्थान सार्वजनिक होते हैं।

कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है कि जादू एक प्रकार का प्राचीन विज्ञान (Primitive Science) है, क्योंकि वह व्यवहारिक उद्देश्यों को पूरा करने की चेष्टा करता है। वास्तविकता इसके विपरीत है। जादू विज्ञान का विरोधी है। जादू में यह विश्वास किया जाता है कि कोई रहस्यमयी शक्ति परिणाम पर पहुँचाती है परन्तु विज्ञान में इस प्रकार का कोई विश्वास नहीं होता।

जादू का प्रमुख कार्य विश्वास का प्रतिपादन है। कभी कभी यह बड़ा लाभदायक सिद्ध होता है।

धर्म और व्यक्तित्व (Religion and Personality)

धर्म, व्यक्तित्व को पूर्ण एवं सगठित करता है। मानव मस्तिष्क सामाजिक प्रक्रियाओं का फल है। धर्म मनुष्य में वह भावना भर देता है जिसके कारण वह आशावादी बन जाता है। जीवन के उद्देश्य धर्म द्वारा निश्चित् होते हैं और मनुष्य उनसे चालित होता है। जब मनुष्य इस लोक में विफल होता है तो उसको एक सन्तोष रहता है कि परलोक में सम्भव है सफलता मिले।

धम व्यक्तित्व क विकास म बाधा रूप म खड़ा हो सकता है। इसके कारण अनक व्यक्ति इस लोक क प्रति सदैव उदासीन रहते हैं और अपन कत्तयो का भी पालन नही करत हैं।

धर्म और समुदाय
(Religion and Community)

धम सम्प्रदाय समुदाय का एक अग होता ह। धर्म समुदाय म एकता की भावना को दृढ करता है। धम समदाय क सदस्यों म भाइचार के व्यवहार को प्रोत्साहन दता है। यदि समुदाय म एक ही धर्म पाया जाता ह तो समुदाय और भी शक्तिशाली हो जाता है।

धम कई बार हानिकारक भी होता है धम की जड़े समुदाय की रूढियों म पाइ जाती हैं। धम सामाजिक नियन्त्रण का प्रमुख तत्व है इसक द्वारा मनुष्यो क व्यवहार म सरलता स नियन्त्रण रखा जा सकता है। हिन्दू समाज इसका अद्वितीय उदाहरण है। जो काय समाज क लिये आवश्यक हैं उन्ह धम का आधार द दीजिये वे काय मनुष्यो द्वारा तीव्र निष्ठा क साथ किये जान लगग।

धम एक समुदाय को समय समय पर मिला दता है। यह जीवन का सॉस्कृतिक क द्र है। अनक समुदायों म धर्म सामाजिक राजनैतिक शक्षणिक व मनोरञ्जन क कार्य भी करता है। •

धर्म और विश्व-बन्धुता
(Religion and International Brotherhood)

धर्म विश्वबन्धुता की भावना को भी जन्म देता है प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति ईश्वर म विश्वास करता है। एक ही दिव्य शक्ति क उपासक होन क नात परस्पर भ्रातृत्व की भावना प्रबल हो जाती ह। सबका निर्माणकर्त्ता भी ईश्वर ही है। ये भावनाय विश्व ब धुत्व की ओर बढ़ती ह।

धर्म विश्व मे सदैव महत्वपूण रहा ह। धर्म न समय समय पर मनुष्य की अनक सकटो म रक्षा की है। आज भी ससार म धर्म का मह व कम नही हुआ ह यद्यपि बहुत स लोग धर्म की उपक्षा करत हैं साम्यवादी देशों म विशषरूप स धर्म पर विश्वास नहीं करत। रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के महा म त्री खुश्चेव न इण्डोनेशिया क प्रतिनिधि मण्डल (जो कि मास्को म १४ मई १६२६ को मिला) स कहा यद्यपि हम स्वयं ईश्वर म आस्था नही रखते

तथापि हम हर धार्मिक समूह का समादर करते हैं।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि आदर्शवाद के नाते वे प्रत्यक्ष में धर्म पर विश्वास नहीं करते तथापि धर्म के प्रति आस्था के अंकुर उनके मस्तिष्क से भी समूल नष्ट नहीं हुए हैं।

प्रश्न

१. धर्म के सामाजिक महत्व की व्याख्या कीजिये।
(Bring out the social significance of Religion)
Lucknow, 1953.

२ धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त लिखिये।
(Discuss the theories of the Origin of Religion)

SELECTED READINGS

1. Mazumdar and Madan, 'An Introduction to Social Anthropology,' chapter X.
2. MacIver and Page, 'Society,' chapter XX.
3. Green, 'Sociology,' chapter XXI.

---

[1] "We respect any group which adheres to any religion, though we ourselves do not believe in God" Daily Hindusthan Times, (New Delhi) Dak Edition, dated May 26, 1956

पंचम खण्ड

सामाजिक नियन्त्रण
(Social Control)

अध्याय १६ : सामाजिक नियन्त्रण
(Social Control)
,, १७ : सामाजिक संहितायें
(Social Codes)
,, १८ : व्यक्ति और समाज
(Individual and Society)

अध्याय १६ KOTA

सामाजिक नियन्त्रण

(Social Control)

समाज में यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार हर एक कार्य करने लगे और वह दूसरो का तनिक भी ध्यान न करे, तो इसका परिणाम क्या होगा? आप सभी उत्तर देंगे कि समाज मे अव्यवस्था का राज्य होगा। समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल हे, जिसकी प्रत्येक कड़ी अन्य कड़ियों से एक निश्चित सम्बन्ध रखती है। यह सम्बन्ध समाज के साथ-साथ विकसित होता रहा है। यह सम्बन्ध सदैव परिवर्तित होता रहता है परन्तु एक निश्चित् व्यवस्था अवश्य रहती है। जिस पद्धति या संगठन द्वारा ये सम्बन्ध नियन्त्रित होते हैं उसे ही हम सामाजिक नियन्त्रण (Social Control) कहते है।

सामाजिक नियन्त्रण को और भी सरल शब्दों में समझाया जा सकता है। प्रत्येक समाज में कुछ निश्चित् व्यवहारों की आशा उसके सदस्यों से की जाती है और सदस्य वैसा व्यवहार करते भी हैं, परन्तु प्रश्न यह उठता है कि वे वैसा ही व्यवहार क्यो करते हैं? यहाँ पर इस प्रश्न का उत्तर देते हुए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि कुछ ऐसे तत्व होते हैं जिनके कारण किसी समाज के सदस्य समाज द्वारा इच्छित व्यवहार करते हैं। ये ही तत्व सामाजिक नियन्त्रण के आधार हैं। इस प्रश्न का उत्तर विस्तार मे आगे दिया जायगा।

स्मिथ ने सामाजिक नियन्त्रण की परिभाषा इन शब्दों में की है, (सामाजिक नियन्त्रण) "उन उद्देश्यों की प्राप्ति है, जो कि उन उद्देश्यों के साधनों के प्रति जागरूक सामूहिक अनुकूलन द्वारा होती है।"[1] स्मिथ ने इस परिभाषा द्वारा निम्न बातों पर प्रकाश डाला है। सामाजिक नियन्त्रण का उद्देश्य उन उद्देश्यो की प्राप्ति है जो कि समाज द्वारा पूर्व निश्चित् होते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जिन साधनों का प्रयोग किया जाता है, वे जानबूझकर समाज द्वारा सामूहिक रूप में प्रयोग किए जाते हैं। इन साधनों के पीछे समाज की शक्ति होती है, इन साधनों को सामाजिक नियन्त्रण के साधन कहते हैं।

[1]Social control as "the attainment of ends through collectively conscious adaptation of means to those ends". Smith, R G 'Fugitive Papers', p 37.

ऑगबर्न और निमकॉफ लिखते हैं, "दबाव का वह प्रतिमान जो व्यवस्था एवं स्थापित नियमों को बनाए रखने का प्रयत्न करता है, सामाजिक नियन्त्रण की व्यवस्था कहा जाता है।"[1] पार्क और बरगस ने सामाजिक नियन्त्रण की बड़ी सरल परिभाषा की है। वे लिखते हैं, 'सामाजिक नियन्त्रण से हम *साधारणतया सामाजिक प्रक्रिया में किसी व्यक्ति-अधिकारी, कृतकारी या नेता*-का मनमाना हस्तक्षेप समझते हैं।"[2]

सामाजिक नियन्त्रण को समझने के लिए हमें तीन प्रश्नों पर विचार करना होगा। प्रथम कौन नियन्त्रण करता है या करने की चेष्टा करता है? द्वितीय कौन से साधन प्रयोग मे लाये जाते हैं और तृतीय किन उद्देश्यों को प्राप्त करने की इच्छा की जाती है?

नियन्त्रणकर्त्ता (Controllers)

कौन नियन्त्रण करता है या नियन्त्रण करने की चेष्टा करता है? इसका उत्तर यह है कि सब नियन्त्रण करते हैं। हमारे जटिल समाज मे प्रत्येक किसी न किसी को नियन्त्रित करता है। प्रत्येक सम्बन्ध में कोई न कोई नियन्त्रण अवश्य होता है। समाज में रहते हुए नियन्त्रण से बचना असम्भव है। समाज किसी न किसी सदस्य द्वारा अन्य सदस्यों पर नियन्त्रण अवश्य रखता है।

सामाजिक नियन्त्रण के साधन (Methods of Social Control)

सामाजिक नियन्त्रण के अनेक साधन हैं। नियन्त्रणों के अभाव में किसी भी प्रकार का सामाजिक नियन्त्रण स्थापित नहीं किया जा सकता। अब हम सामाजिक नियन्त्रण के प्रमुख साधनों पर प्रकाश डालेंगे —

(१) शारीरिक शक्ति (Physical Force)

शारीरिक शक्ति के बल पर मनुष्यों का नियन्त्रण आदि काल से होता आया है। शारीरिक शक्ति का प्रयोग सामाजिक नियन्त्रण का एक प्रमुख साधन रहा है। आधुनिक युग में भी इस साधन का प्रयोग किया जाता है। परिवार की समिति से लेकर राज्य तक की समिति शक्ति बल का प्रयोग करते हैं। यद्यपि

---

[1] "The pattern of pressure which a society exerts to maintain order and established rules is known as its system of social control." Ogburn, W F and Nimkoff, M F, 'A Handbook of Sociology' p 182

[2] "What we ordinary mean by social control is the arbitrary intervention of some individual- official, functionary or leader— in the social process' Park, R E, and Burgess, E W 'Introduction to the Science of Sociology' p 789

शारीरिक शक्ति का प्रयोग मानव व्यवहार को नियन्त्रित करता है, तथापि यह साधन अधिक उपयुक्त नहीं है । मानव व्यवहार का वास्तविक नियन्त्रण इस साधन के द्वारा नहीं किया जा सकता। इस साधन के प्रयोग से विपरीत प्रतिक्रिया होती है। मनुष्य भय के कारण प्रत्यक्ष रूप से अपना व्यवहार ठीक कर ले, परन्तु उसमें वास्तविक सुधार नहीं होता। मनोवैज्ञानिकों की यह राय है कि इस साधन का कम से कम प्रयोग किया जाना चाहिये, क्योंकि सामाजिक नियन्त्रण का यह एक निर्बल साधन है तथा इसका प्रभाव स्वस्थ न होकर विपरीत होता है।

(२) मानव चिन्ह (Human Symbols)

मानव चिन्ह भी शारीरिक शक्ति के अतिरिक्त सामाजिक नियन्त्रण के दूसरे साधन हैं। इन चिह्नों को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है — साँकेतिक चिह्न, ध्वनि चिन्ह लिखित चिह्न एवं कोई मूर्तिमान वस्तु। सामाजिक नियन्त्रण के लिए निम्न साधन भी प्रयोग में लाए जाते हैं।

(अ) शिक्षा एवं निर्देश (Education and Instruction)

शिक्षा और निर्देश द्वारा समाज के नियमों से सदस्यों को परिचित कराया जाता है। इनको जानने के उपरान्त मनुष्य उन्हें पालन करने की चेष्टा करता है।

(ब) पारितोषिक (Reward)

पारितोषिक पाने की लालसा से मनुष्य सामाजिक नियमों का पालन उत्साह के साथ करता है।

(स) अनुनय (Persuasion)

अनुनय भी एक सुन्दर साधन है। यदि कोई व्यक्ति किसी कारण से कोई नियम पालन न करना चाहता तो अनुनय के द्वारा उसे मानने के लिए बाध्य किया जा सकता है। अनुनय वह दबाव है जो तथ्यों पर आधारित होता है और तर्क द्वारा समर्थ होता है। यह वैज्ञानिक पद्धति है।

(द) दण्ड (Punishment)

जब ये तीनों साधन विफल हो जाते हैं तो दण्ड का सहारा लेना पड़ता है। दण्ड या दुःख, जिसके द्वारा मनुष्यों पर सामाजिक नियन्त्रण रखा जाता है, अगणित प्रकार के होते हैं। हँसी उड़ाना (Laughter) और व्यङ्ग कसना (Satire) भी दण्ड के दो साधारण स्वरूप हैं। कुछ वन्य जातियों में ये दोनों सामाजिक नियन्त्रण के महत्वपूर्ण साधन हैं।

ये साधन सामाजिक व्यवस्था की उसी प्रकार रक्षा करते हैं जिस प्रकार खाइयाँ, झाड़ और कँटीदार तार मार्गों की रक्षा करते हैं।

सामाजिक नियन्त्रण के उद्देश्य
(Objectives of Social Control)

सामाजिक नियन्त्रण के निम्न उद्देश्य होते हैं:—

(अ) प्राचीन व्यवस्था को पुनर्स्थापित करना
(*To Re-establish the old order*)

सामाजिक नियन्त्रण का प्रथम कार्य प्राचीन व्यवस्था को स्थायी रखना है। बूढ़े लोग जिन दशाओं में रहे हैं, उन्हीं को वे अपने बच्चों पर लादना चाहते हैं।

(ब) सामूहिक निर्णयों का पालन करवाना
(To get obeyed social decisions)

सामाजिक नियन्त्रण सामूहिक निर्णयों का समाज के सदस्यों से पालन करवाता है। जो नवीन निर्णय समाज करता है उनके पालन करवाने के लिए सामाजिक नियन्त्रण भी निश्चित् कर दिए जाते हैं।

(स) व्यक्तिगत व्यवहार को नियमित करता है
(Regulates individual behaviour)

सामाजिक नियन्त्रण व्यक्तिगत व्यवहार को नियमित करता है। व्यक्ति के लिए समाज ने व्यवहार निश्चित् कर दिए हैं और यह आशा की जाती है कि व्यक्ति इन्हीं व्यवहारों को करेंगे।

(द) सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखता है
(Maintains Social Order)

सामाजिक नियन्त्रण सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखता है। इसके कारण समूह में दृढ़ता उत्पन्न होती है और समूह चिरकाल तक बना रहता है।

(य) समाज में एकरूपता को उत्पन्न करता है
(Breeds confermity in Society)

सामाजिक नियन्त्रण समाज के सदस्यों को एक सा व्यवहार करने के लिए प्रेरित एवं विवश करता है। इसके कारण समाज में एकरूपता उत्पन्न होती है।

(र) व्यक्तियों को व्यवहार चुनने में सहायता पहुँचाता है
(Helps, individuals to choose behavior)

समाज में एक व्यक्ति के सामने यह परेशानी रहती है कि वह एक निश्चित् परिस्थिति में कौन सा व्यवहार करे। सामाजिक नियन्त्रण व्यवहार चुनने में उसकी सहायता करता है। समाज में विभिन्न परिस्थितियों के लिए निश्चित्

व्यवहार होते हैं। मनुष्यों को उन्हीं व्यवहारों को करना पड़ता है और जो नहीं करना चाहते, उन्हें सामाजिक नियन्त्रण वैसा करने के लिये बाध्य करता है। आधुनिक जटिल समाज में सामाजिक नियन्त्रण मनुष्यों की बड़ी सहायता करता है क्योंकि यह उन्हें जटिल परिस्थितियों में मार्ग प्रदर्शन करता है।

सामाजिक नियन्त्रण के प्रकार (Forms of Social Control)

सामाजिक नियन्त्रण के अन्तर्गत अनेक समाजशास्त्रियों के मतानुसार केवल मनुष्यों द्वारा निर्मित उन नियमों को लेना चाहिए जिन्हें वे जागरूक अवस्था में बनाते हैं। इस धारणा से हम सहमत नहीं हैं। सामाजिक नियन्त्रण अधिकांश रूप में अजागरूक अवस्था में विकसित हुआ है और यह विकसित सामाजिक नियन्त्रण जितना प्रभावशाली है उतना निर्मित सामाजिक नियन्त्रण नहीं। इस आधार पर सामाजिक नियन्त्रण के साधनों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम औपचारिक (Formal) और द्वितीय अनौपचारिक (Informal)।

(१) औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण (Formal Social Control)

औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण के साधनों के अन्तर्गत वे नियन्त्रण आते हैं जिनका मनुष्य जागरूक अवस्था में निर्माण करता है। इसके उदाहरण वैधानिक संहितायें (Legal codes), समितीय संहितायें (Associational code), आर्थिक संहितायें (Economic codes) इत्यादि हैं।

औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण के साधन अधिक प्रभावपूर्ण नहीं होते। प्राथमिक समूहों में इनका महत्व बहुत ही कम होता है परन्तु द्वैतीयिक समूहों में इनका महत्व बढ़ जाता है। समाज जैसे-जैसे जटिल होता जा रहा है वैसे-वैसे इनका महत्व बढ़ता जा रहा है। अवैयक्तिक सम्बन्धों (Impersonal relations) को नियन्त्रित करने के लिए ये ही साधन प्रयोग में लाये जाते हैं।

(२) अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रण (Informal Social Control)

अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रण के साधन वे हैं जो कि स्वतः समाज की आवश्यकताओं के अनुसार विकसित होते रहते हैं। ये साधन अपने आप नियन्त्रण का कार्य करते रहते हैं। जनरीतियाँ (Folkways), रीतिरिवाज (Customs) रूढ़ियाँ (Mores) और सामाजिक आदर्श (Social ideals) इनके उदाहरण हैं। जनमत और उपहास उड़ाना इत्यादि ऐसे साधन हैं जो मनुष्यों पर नियन्त्रण रखते हैं। रोस (Ross) ने लिखा है "सहानुभूति, सामाजिकता न्याय की भावना और क्रोध अनुकूल परिस्थितियों में अपने आप एक वास्तविक

प्राकृतिक व्यवस्था, या वह व्यवस्था जिसका कोई ढाँचा या योजना नहीं होती, बना लेते हैं।"[1] प्राथमिक समूहों और आदिवासियों में इसी प्रकार सामाजिक नियन्त्रण किया जाता है।

आधुनिक युग में भी इनका महत्व कम नहीं हुआ। मनुष्य के अधिकांश व्यवहारों पर ये साधन ही नियन्त्रण रखते हैं। ग्रामों में समुदाय एक प्रकार का प्राथमिक समूह होता है वहाँ पर औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण की अपेक्षा अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रण अधिक प्रभावशाली होता है। प्रथाओं (Customs) का गाँव वालों पर अधिकांश आधिपत्य रहता है।

समूह स्वयं एक नियन्त्रण का साधन है। एक समूह अपने सदस्यों पर अधिक नियन्त्रण रख सकता है। इसके सम्बन्ध में अनेक परीक्षण हुए हैं। यदि लड़कों पर नियन्त्रण रखने के लिए यह कार्य उनके समूह पर ही छोड़ दें तो हम देखेंगे कि सदस्य पूर्ण नियन्त्रित रहते हैं, ऐसा प्राथमिक समूहों में ही सम्भव है।

अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रण के साधन कई मनोवैज्ञानिक आधारों पर आधारित है। सबसे प्रमुख बात यह है कि मनुष्य इस नियन्त्रण को किसी बाह्य शक्ति द्वारा थोपा हुआ नहीं समझता है। आगे चल कर हम विचार करेंगे कि शक्ति कहाँ तक सामाजिक नियन्त्रण करने में सहायक होती है। साधारणतया यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह बाह्य शक्ति का प्रतिकार करता है। जिस कार्य को वह स्वेच्छा से करता है वह अन्य कार्यों से अच्छा होता है। अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रण निम्न युक्तियों एवं प्रतिक्रियाओं द्वारा प्रभावपूर्ण बनता है —

(१) सामाजिक विचार प्रतिपादन (Social Indoctrination)

बच्चों को प्रारम्भ से ही ऐसी शिक्षा दी जाती है, जिससे सामाजिक नियमों को उचित एवं प्राकृतिक मानने लगते हैं। ये विचार उनकी भावना के अङ्ग बन जाते हैं और वह सोचने लगता है कि ये मेरे विचार हैं मैं ऐसा करना चाहता हूँ, समाज मेरे अनुसार चल रहा है।

कोई भी सामाजिक नियम जब तक इस आधार पर आधारित नहीं किया जायगा, तब तक वह अधिक दिनों तक नहीं चल सकता। कोई भी नई व्यवस्था शिक्षा और प्रचार द्वारा सदस्यों के विचारों को अपने अनुसार बनाती है।

---

[1] "Sympathy, sociability, the sense of justice, and resentment are competent, under favourable circumstances to work out by themselves a true, natural order, that is to say, an order without design or art." Ross, E. A. 'Social Control', p. 41

(२) अभ्यस्तता (Habituation)

विचार प्रतिपादन से सम्बन्धित दूसरी किया अभ्यस्तता है। अभ्यस्तता वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा किसी समाज के सदस्य अजागरूक अवस्था में किसी कार्य को स्वीकार कर लेते हैं। बचपन से जो कार्य हम करते आये हैं, वह हमे स्वाभाविक लगता है। जो आदतें पड़ जाती हैं उनका छूटना बड़ा कठिन होता है। समाज के नियमों से हम अभ्यस्त हो जाते हैं और उन्हे स्वाभाविक एवं प्राकृतिक समझ बैठते हैं। इसके विपरित जो कुछ भी होता है, उसे हम अच्छा नहीं समझते।

(३) नेतृत्व (Leadership)

नेता भी सामाजिक नियन्त्रण रखने मे बड़ी सहायता करता है। नेतृत्व से हमारा अभिप्राय वह योग्यता है, जो व्यक्तिगत गुणों के आधार पर दूसरो को एक विशिष्ट कार्य करने के लिये प्रेरित करती है।

(४) संस्कार (Ritual)

संस्कार वह औपचारिक विधि है जिसके द्वारा एक कार्य को बार बार उसी प्रकार किया जाता है। इसको परिवर्तित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इनके साथ यह विचार जुड़ा हुआ है कि वे सत्य एवं अपरिवर्तनीय हैं। इसका मुख्य स्वरूप धार्मिक क्षेत्रों मे देखने को मिलता है।

(५) उत्सव (Ceremony)

उत्सव किसी अवसर को महत्वपूर्ण बनाने के लिये समाज द्वारा निश्चित् प्रक्रिया है, जो कि औपचारिक और प्रतिष्ठित प्रकृति की होती है। इन उत्सवों के द्वारा सामाजिक नियमो के प्रति आदर उत्पन्न किया जाता है। उत्सव वह बन्धन है, जो समाज के सदस्यों को बाँधे हुए है।

(६) सामाजिक चिह्न (Social Symbols)

सामाजिक चिह्न एक समाज के सदस्यों में समान भावना को उत्तेजित करते हैं। इनके कारण समाज के सदस्यों में सामाजिक व्यवस्था के प्रति आदर उत्पन्न होता है और इस भावना से प्रेरित होकर न केवल वे सामाजिक नियमों का ही पालन करते हैं, वरन् इनकी रक्षार्थ वे अपने प्राण तक भी न्यौछावर करने के लिये तत्पर रहते है।

बल और सामाजिक व्यवस्था (Coercion and Social order)

सामाजिक व्यवस्था को स्थापित रखने के लिये अनेक प्रकार के बल प्रयोग मे लाये जाते हैं। बल से हमारा अभिप्राय वे सारी पद्धतियाँ है, जो मनुष्यो को उनके विश्वासों के विरुद्ध कार्य करने के लिये बाध्य करती है।

बल कई प्रकार के हो सकते हैं। समाजशास्त्रियों ने इनको बड़ा महत्व दिया है। सबसे क्रूर बल शारीरिक बल का प्रयोग है। इसे नग्न बल कहा गया है। आधुनिक युग में इसका प्रयोग केवल राज्य द्वारा ही हो सकता है।

समाजीकृत बल के कार्य एवं सीमायें
(The functions and limitations of socialized force)

समाज में बल का प्रयोग विभिन्न प्रकार से होता है। आदिम समाजों मे इसका महत्व अधिक है। जैसे जैसे समाज प्रगति करता जाता है, वैसे वैसे बल का प्रयोग कम होता जाता है। राज्य बल का प्रयोग संकट के समय में अधिक करता है।

सामाजिक व्यवस्था से बल का प्रयोग पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सकता। प्रत्येक सम्भव प्रयत्न करने पर भी कुछ ऐसे लोग रह जाते हैं, जो बल प्रयोग करने के लिये बाध्य करते हैं। *बल की सच्ची एवं वास्तविक सेवा सामाजिक व्यवस्था की रक्षा करना है। केवल बल सामाजिक व्यवस्था की रक्षा नहीं कर* सकता यह सत्य है, परन्तु अन्य सुरक्षा के साधन भी बिना बल के व्यवस्था को सुरक्षित नहीं रख सकते। *कानून बिना बल के कुछ भी महत्व नहीं रखता।* बल की महत्ता को कम नहीं किया जा सकता, यद्यपि सबसे बड़ा बल, बल का प्रयोग नहीं करना है। बल के द्वारा दूसरों को भयभीत रखना चाहिये, परन्तु उसका प्रयोग *कम से कम करना* चाहिये।

सामाजिक नियन्त्रण में भी बल का प्रयोग एक सीमित युक्ति है। सहयोग सामाजिक नियन्त्रण के लिये अत्यन्त आवश्यक है। मेकाइवर और पेज ने उचित ही लिखा है, *"यदि सब लोगों मे आज्ञा पालन की इच्छा को दबा दिया जाय,* तो कोई भी दबाव अधिक समय तक सफल नहीं हो सकता, जैसा कि अनेक क्रान्तियों ने प्रदर्शित किया है।"[1]

प्रश्न

१. सामाजिक नियन्त्रण पर टिप्पणी लिखिए।
   (Write short note on social control) Agra, 1955.
२. आप सामाजिक नियन्त्रण से क्या समझते हैं? सामाजिक नियन्त्रण के साधनों के प्रकार बताइए।

---
[1] "If the will to obey is undermined in the people as a whole, no enforcement as many a revolution has shown, can prevail" MacIver, R M and Page C H 'Society', p 158.

(What do you understand by social control? Discuss the forms of the means of social control.)।

३. विभिन्न प्रकार के सामाजिक नियन्त्रणों को बताइए।

(Explain the various forms of social controls) Lucknow 1948

४. सामाजिक ढाँचे को बनाये रखने में प्रथाओं और रूढ़ियों का महत्त्व बताइए।

(Explain the importance of customs and mores in maintaining social structure) Rajputana 1954.

SELECTED READINGS

1. Lumley, 'Principles of Sociology,' chapter XXIV
2. Ross, 'Principles of Sociology, chapter XII,

अध्याय १७

सामाजिक संहितायें
(Social Codes)

पिछले अध्याय मे हमने सामाजिक नियन्त्रण पर प्रकाश डाला था और सामाजिक संहिताओं को उसके साधन के रूप में बताया था। सामाजिक संहितायें सामाजिक नियन्त्रण को प्रभावशाली बनाती हैं।

इसके पूर्व कि हम सामाजिक संहिताओं का वर्णन प्रारम्भ करें, हमें उनका अर्थ समझ लेना चाहिये। मनुष्यों के व्यवहारों को नियन्त्रित करने के लिये अनेक सामाजिक नियम होते हैं। ये सामाजिक नियम एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। यदि हम सामाजिक नियमों को अनेक क्षेत्रों में संग्रहित करें तो हमें ज्ञात होगा कि एक विशिष्ट क्षेत्र के नियम एक दूसरे से अत्यधिक सम्बन्धित हैं। सम्बन्धित नियमों के संग्रह को संहिता (Codes) कहते हैं। संहिता को मनुस्मृति के उदाहरण के द्वारा सरलता से समझा जा सकता है। मनु स्मृति नियमों का वह संग्रह है, जिसे मनु ने संग्रहित किया था। इसमें वे समस्त नियम, प्रथायें, रूढ़ियाँ इत्यादि एकत्रित की गई हैं, जो एक दूसरे से सम्बन्धित थीं। हिन्दू संहिता (Hindu Code) का भी नाम हम सब ने सुना है। हिन्दू संहिता में वे सब नियम एकत्रित किये गये हैं, जो एक दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा जो हिन्दुओं पर लागू होंगे।

संहिता और अभिमति का सम्बन्ध
(The Relation of Code and Sanction)

संहिता और अभिमति में घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रत्येक संहिता की अवज्ञा हो सकती है, इस अवज्ञा को रोकने के लिये अभिमति का सविधान किया गया है। अभिमति किसी नियम के लिये स्वीकृति होती है। अभिमति के द्वारा उस दण्ड को समझा जाता है, जो कि सामाजिक संहिताओं का पालन नहीं करने पर किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को भोगना पड़ता है। अभिमति कई प्रकार की होती हैं। अनेक अवसरों पर व्यक्ति से उसके किसी अधिकार को छीन लिया जाता है, कभी कभी जुर्माना देना पड़ता है, कभी जेल में रहना पड़ता है और कभी जीवन से हाथ धोना पड़ता है। प्रत्येक संहिता की अपनी अपनी अभिमति होती है।

विभिन्न समाजों में विभिन्न सहितायें होती हैं। सामाजिक नियमों की सख्या इतनी अधिक है कि उनका वर्गीकरण करना सरल नहीं है। प्रत्येक समाज मे उस समाज की सस्कृति के अनुरूप ही उसके नियम होते हैं। समाजशास्त्रियों को इनका अध्ययन करते समय सावधान रहना चाहिए।

सामाजिक संहिताओं के प्रमुख प्रकार
(Major types of Social Codes)

साधारणतया आदिम समाजों मे सामूहिक जीवन की एक साधारण एव सरल सहिता होती है। यद्यपि इन समाजों मे जीवन के विभिन्न अङ्गो के लिये विभिन्न नियम होते हैं तथापि इनकी सहितायें आधुनिक समाज के समान जटिल नहीं होतीं। आधुनिक समाज मे अनेक सहितायें पाई जाती है।

आधुनिक जटिल समाज में प्रत्येक सामाजिक सगठन अपनी एक सहिता रखता है। न केवल राज्य जैसी बडी समिति वरन् छोटे छोटे स्थानीय क्लब गुट और क्रीड़ा मण्डल भी अपनी सहितायें रखते हैं। कुछ सहितायें समितियों द्वारा मान्य होती हैं और कुछ सम्पूर्ण समुदायों द्वारा। आचार सहिता स्वय व्यक्ति द्वारा मान्य होती है।

महत्वपूर्ण सामाजिक सहिताओं को निम्न प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है —

(१) धार्मिक सहिता (Religious code)
(२) आचार सहिता (Moral code)
(३) वैधानिक या कानूनी सहिता (Legal code)
(४) प्रथा सहिता (Code of custom)
(५) प्रचलित ढंग या फैशन सहिता (Code of fashion)

इनके अतिरिक्त सहिता के अनेक उपप्रकार होते है। प्रमुख सामाजिक सहितायें एक दूसरे से अत्यधिक सम्बन्धित होती हैं। अब हम उन पर विचार करेंगे।

धर्म और आचार (Religion and Moral)

धर्म और आचार एक दूसरे से अत्यधिक सम्बन्धित हैं। इन दोनों मे यदि अन्तर किया जाय तो केवल इनके पीछे की शक्ति और अभिमति (Sanction) विभिन्न होती है। इन दोनो ही सहिताओं के नियम लगभग समान होते हैं। साधारण व्यक्ति तो इनमें कोई अन्तर समझता ही नहीं है परन्तु समाजशास्त्र के विद्यार्थी होने के नाते हमें इन दोनों का अन्तर समझ लेना चाहिए। इसके पूर्व कि हम इनके अन्तर पर विचार करें, इन पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

धार्मिक सहिता (Religious Code)

धर्म में हम न केवल मनुष्य का सम्बन्ध ही समझते है, बल्कि मनुष्य

का किसी ऊँची शक्ति से सम्बन्ध भी मानते हैं। धर्म के कारण मनुष्य ईश्वर से डरता है। धर्म के पीछे अभिमति (Sanction) समाज से किसी ऊ ची वस्तु की होती है। यह चाहे ईश्वर हो, देवी देवता हो, नरक या स्वर्ग की भावना हो। इस समाज से ऊ ची शक्ति को समाजोपरि (Suprasocial) कहते हैं।

धर्म केवल मनुष्य और ईश्वर के सम्बन्धों के लिये ही नियम नहीं बनाता है। इन सारे नियमों का पालन मनुष्य उच्च शक्ति के भय से करता है। जब वह इन सारे नियमों का पालन नहीं करता तो वह पाप करता है और ऐसा विश्वास किया जाता है कि वह उच्च शक्ति उसे स्वयं दण्ड देती है। इन नियमों का पालन न करने पर कोई थाने में रिपोर्ट करता है और न ही कोई पुलिस वाला पूछताछ करता है। लोगों का यह विश्वास है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वगुण सम्पन्न है। इस विश्वास के कारण व्यक्ति सदैव समाजोपरि (Suprasocial) शक्ति स डरता है।

ईश्वरीय इच्छाओं की पूर्ति के लिये एव धार्मिक संहिताओं का पालन करवाने के लिये प्रत्येक धर्म में कोई न कोई संस्था बनती रहती है।

आचार संहिता (Morl Code)

आचार सहिता के पीछे समाजोपरि (Suprasocial) शक्ति की अभिमति नहीं होती। आचार सहिता के पीछे एक ही शक्ति कार्य करती है और वह यह भावना है कि ऐसा करने स समाज में बुराई फैलेगी। इसकी अभिमति सामाजिक दुष्परिण का भय होता है। आचारशास्त्र के नियमों का पालन न करने पर 'अनुचित' (Wrong) विचार रहता है और धार्मिक नियमों का पालन न करने में 'पाप' (Sin) का विचार रहता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि आचार सहिता एक प्रकार की रूढ़ियाँ होती हैं। इनका कहना है कि आचार सहिता वे प्रथायें हैं जिन्हे समूह निश्चित रूप स उचित समझता है और उनकी अवज्ञा 'अनुचित' (Wrong) समझता है। आचार सहिता शुद्ध रूप में रूढ़ियाँ नहीं है वरिक नियमों का वह समूह है जो कि व्यक्ति के अन्त करण (Concience) क द्वारा उचित समझा जाता है। इसके पीछे वैयक्तिक अभिमति (Personal sanction) रहती है।

ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब समूह की आचार सहिता और व्यक्ति की आचार संहिता म विरोध खड़ा हो जाता है। अधिकाश रूप में रूढ़ियाँ और आचार पर्यायवाची हैं यदि ऐसा न होता तो मनुष्य समूह के नियमों का पालन कठिनता स करता।

धार्मिक संहिता और आचार-विचार संहिता का सम्बन्ध
(Relation between Religious code and Moral code)

बजामिन किड (Benjamin Kidd) और लुइस (Lewis) का मत है कि आचार संहिता धर्म की सहायता के बिना सफल नहीं हो सकती।[1] हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) और हक्सले (Huxley) इत्यादि का मत है कि आचार संहिता कभी भी शुद्ध नहीं हो सकती और परिवर्तनीय समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती जब तक कि धर्म की विशेष अभिमतियों (Sanctions) से इसे पृथक नहीं किया जायगा।[2]

ये दोनों ही विचार अपने दृष्टिकोण में उचित हैं परन्तु यह कहना अनुचित होगा कि आचार संहिताओं का अस्तित्व केवल धार्मिक आधार पर टिका हुआ है। आधुनिक युग में धर्म से अधिकांश लोगों का विश्वास हटता जा रहा है परन्तु समाज की भलाई के लिये वे सब कुछ करने को तत्पर रहते हैं। वे सामाजिक नियमों का पालन इसलिये करते हैं ताकि समाज को हानि न पहुँचे।

धर्म संहिता और आचार संहिता में अन्तर
(Distinction between Religious code and Moral code)

धर्म संहिता और आचार संहिता के तत्वों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इसी कारण साधारण व्यक्ति धर्म संहिता और आचार संहिता में कोई अन्तर नहीं समझते हैं। इस पर भी इन दोनों में कुछ अन्तर अवश्य है। इन अन्तरों को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं:—

धर्म संहिता (Religious Code)	आचार संहिता (Moral Code)
१. धार्मिक संहिता अप्रत्यक्ष (Indirect) रूप से सामाजिक परिस्थिति को सम्बोधित करती है।	१ आचार संहिता प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक सम्बन्धों को नियन्त्रित करती है और समाज की सेवा करती है।
२. धार्मिक संहिता के पीछे समाजोपरि (Supra-social) शक्ति की अभिमति (Sanction) होती है और मनुष्य इन नियमों का पालन उस	२ आचार संहिता के पीछे अन्तःकरण एवं सामाजिक शक्तियों की अभिमति (Sanction) होती है। मनुष्य इन नियमों का पालन समान

[1] For details See B. Kidd 'Social Evolution' C. S. Lewis 'The case for Christianity' J. Wach 'Sociology of Religion'

[2] Spencer H. 'Principles of Sociology', Huxely T. 'Evolution and Ethics', Batt, L. A., 'Types of Religious Philosophy'

समाजोपरि शक्ति के डर के कारण करता है। | के हित को दृष्टि में रखकर करता है।

३. धर्म संहिता सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार नहीं बनती, बल्कि परलोक एवं मृत्यु के उपरान्त सुख भोगने की लालसा से बनती है।

३. आचार संहिता इहलोक की आवश्यकताओं के अनुसार होती है।

४. धर्म संहिता तर्कहीन (Irrational) होती है क्योंकि ये नियम ईश्वर द्वारा प्रतिपादित हैं और उन्हें परिवर्तित नहीं किया जा सकता। ईश्वर की इच्छा का पालन करना ही मनुष्य का कर्तव्य है। उसके द्वारा प्रतिपादित नियमों का विश्लेषण करना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। वह उसे नहीं समझ सकता। उसका हित बिना प्रश्न किये उनका पालन करने में है।

४. आचार संहिता तर्क-पूर्ण (Rational) होती है। आचार संहिता तर्क पूर्ण इसलिये है, क्योंकि इन नियमों पर तर्क वितर्क द्वारा विचार किया जा सकता है और जो नियम सामाजिक सम्बन्धों को क्षति पहुंचाते हैं उन्हें परिवर्तित भी किया जा सकता है।

५. धर्म संहिता के पालन न करने पर मनुष्य 'पाप' (Sin) का भागी होता है और समाजोपरि शक्ति उसे अवश्य दण्ड देगी, ऐसा विश्वास रहता है।

५. आचार संहिता का पालन न करना 'अनुचित' (Wrong) होता है, क्योंकि मनुष्य अपने अन्तःकरण (Conscience) और सामाजिक नियमों के विरुद्ध कार्य करता है, जिससे समाज को हानि पहुंचती है।

६ धर्म संहिता सामाजिक सम्बन्धों पर अप्रत्यक्ष प्रभाव डालती है और इस अप्रत्यक्ष पद्धति द्वारा सामाजिक नियन्त्रण करती है।

६ आचार संहिता प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक नियन्त्रण करती है।

७. धर्म संहिता रूढ़िवादिता का चिह्न है और समाज की प्रगति में बाधक सिद्ध होती है।

७. आचार संहिता प्रगतिवाद की द्योतक है, क्योंकि यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर बल देती है।

धर्म संहिता और आचार संहिता में संघर्ष

(Conflict between Religious code and Moral code)

धार्मिक संहिता आचार संहिता की तुलना में अधिक रूढ़िवादी है। धार्मिक संहिता सामाजिक प्रगति में सदैव बाधक रही है। सम्पूर्ण इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा हुआ है। विज्ञान की उन्नति ने अनेक दिशाओं में प्रकाश डाला है और इसके कारण आचार संहिता में अनेक परिवर्तन हुए हैं। मानव उत्पत्ति सन्तान निरोध सम्बन्धी आन्दोलन, विवाह विच्छेद इत्यादि के विषय में धार्मिक संहिता ने बड़े रोड़े अटकाये। ऐसी परिस्थितियों में धार्मिक संहिता और आचार संहिता में संघर्ष उठ खड़े हुए। ये संघर्ष बहुत कुछ इस कारण कम हो गये कि आचार संहिता के अनुसार नये-नये धर्म उत्पन्न हो गये। भारतवर्ष में जब पौराणिक हिन्दू धर्म नवीन आचार संहिता के अनुसार न रहा तो बौद्ध धर्म और जैन धर्म का उदय हुआ। इसी प्रकार सिक्ख धर्म प्रारम्भ हुआ।

साधारणतया धर्म स्थापित आचार संहिता को अनुमोदित एवं स्वीकार करता है और नवीन आचार संहिता धर्म को रूपान्तरित करती है। आचार संहिता धर्म की अभिकर्त्री (M difier) है।

आधुनिक युग में धर्म और आचार संहिताएँ एक दूसरे से अत्यधिक सम्बन्धित होती जा रही हैं। मानवतावाद (Humanism) का विकास हो रहा है। ईश्वर की कल्पना मनुष्य द्वारा निर्मित होती है। बर्ट (Burtt) ने लिखा है, 'मानवतावादियों का मत है कि मनुष्य के प्रमुख धार्मिक विचार प्रत्येक स्थान पर उन व्यक्तियों की प्रमुख आवश्यकताओं एवं मूल्यों के फलस्वरूप होते हैं जो कि उस धर्म के मानने वाले हैं। यह दूर की बात है कि ईश्वर मनुष्य का सृजनकर्ता है, जब कि ईश्वर का सदैव मनुष्य द्वारा सृजन होता है।'[1]

धर्म और आचार में निकटता आती जा रही है। यद्यपि पश्चिमी देशों में उत्पन्न धर्म [ईसाई आतिशपरस्त (अग्नि के पुजारी) और इस्लाम] आचार संहिताओं से संघर्ष करते हैं, परन्तु वैदिक धर्म आचार संहिता का समर्थन करता है। पाश्चात्य देशों को धर्म के सम्बन्ध में भारतवर्ष से अभी बहुत कुछ सीखना है।

---

[1] "Men's major religious ideas, humanists held, are everywhere functions of the dominant needs and values of the people holding them. God far from being the creator of man, is always himself created by man." Burtt, E. A., 'Types of Religious Philosophy,' p. 375

दोनों के बीच प्राथमिकता और स्वतन्त्रता का प्रश्न
(The question of priority and independence between the two)

कुछ लेखकों ने इस प्रश्न का विवेचन किया है कि इन दोनों संहिताओं में कौनसी मौलिक है और पहिले किसकी उत्पत्ति हुई? कॉम्टे (Comte) इत्यादि का मत है कि धर्म आचार संहिता का स्रोत है। दुर्खिम (Durkheim) इत्यादि का मत है कि धर्म संहिता, आचार संहिता के नियमों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है। टॉनीज (Tonnies) ने लिखा है कि समूह की रूढ़ियाँ कुछ समय के बाद धार्मिक नियमों में परिवर्तित हो जाती हैं और समाजोपरि (Suprasocial) शक्ति की अभिमति प्राप्त कर लेती हैं।

धर्म और आचार में भेद सामाजिक विकास के काल में हुआ। इन दोनों में पहिले किसका उदय हुआ, यह निश्चित् रूप से नहीं कहा जा सकता। धर्म, समाज और आचारशास्त्र के नियमों पर आधारित है और आचार संहिता धार्मिक विचारों से अत्यधिक प्रभावित है। इन दोनों की प्राथमिकता सिद्ध करने के प्रयत्न विफल हुए हैं।

प्रथा और विधि (Custom and Law)

प्रथा और विधि का एक दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध है। इन दोनों में यद्यपि अन्तर है, तथापि इनको सरलता से भिन्न नहीं किया जा सकता। पहिले हम इन दोनों पर पृथक् २ विचार करेंगे और फिर इन दोनों के सम्बन्ध पर प्रकाश डालेंगे।

वैधानिक संहिता (Legal Code)

वैधानिक संहिता उन नियमों का एक समूह है, जो राज्य द्वारा मान्य होते हैं और राज्य या राज्य के अधीन समितियों द्वारा पालन कराये जाते हैं। वैधानिक संहिता के पीछे राज्य की शक्ति होती है। राज्य इन नियमों की अभिमति (Sanction) देता है। वैधानिक संहिता के नियमों का स्रोत कुछ भी हो सकता है परन्तु वे नियम या विधियाँ (Laws) तभी बनती हैं, जबकि राज्य ऐसी घोषणा करता है। न्यायालय इन नियमों का पालन नागरिकों से करवाता है और जो नागरिक इन नियमों का पालन नहीं करते, उन्हें न्यायालय दण्ड देता है।

वैधानिक संहिता की कई विद्वानों ने अपूर्ण परिभाषायें की हैं और इसके कारण इस विषय में बड़ा भ्रम उत्पन्न हो गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि वैधानिक संहिता वे नियम हैं, जो समाज द्वारा व्यक्तियों को नियन्त्रित करने के लिये लागू किये जाते हैं। प्राचीनकाल में कुछ ऐसी सामाजिक नियमों की संहितायें थीं, जो वही कार्य करती थीं, जो आज वैधानिक संहिता करती है।

इसके कारण ये सारे विद्वान इन सामाजिक नियमों को भी वैधानिक संहिता में सम्मिलित करना चाहते हैं। इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्राचीन काल म वैधानिक सहिता सामाजिक नियमो की सहिता एव प्रथा सहिता स पृथक नहीं की जाती थी। आधुनिक युग म इनम अन्तर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। वधानिक सहिता की प्रमुख प्रकृति यह ह कि वह बल पर आधारित ह और कोई भी उसस बच नहीं सकता। इसक अतिरिक्त राज्य की समिति इसका पालन करवाती ह। अत यह स्पष्ट ह कि वधानिक सहिता राज्य के नियमो को कहते हैं। जा कोई भो वस्तु राज्य द्वारा विधि घोषित कर दी जाती ह व‍ही वधानिक सहिता के अन्तर्गत आ जाती है। यह इसका प्रमुख लक्षण है।

वधानिक सहिता शारीरिक बल पर आधारित होती ह। एक क्षेत्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर यह लागू हाती है। इसक सामने सब समान हैं। इसको प्रभावपूर्ण बनान क लिये पुलिस विभाग एव गुप्तचर विभाग का निर्माण आधुनिक राज्यो म किया गया ह इसके पालन न करन वाल अपराधी समझे जाते हैं और न्यायालय यह देखता ह कि प्रत्येक व्यक्ति जा इनका पालन नहीं करता, दण्डित होता ह या नहीं।

प्रथा सहिता (Code of Customs)

प्रथा सहिता किसी विशेष शक्ति द्वारा निर्मित नही की जाती है। समाज की आवश्यकताओं के अनुसार इसका विकास होता है। प्रथा सहिता के पीछे समूह की अभिमति (Sanction) होती ह। समूह जिन नियमों को सामान्य रूप स स्वीकार कर लेता है वे ही प्रथाय बन जाती हैं। प्रथाय स्वत उत्पन्न एवं विकसित होती हें परन्तु बड़ी प्रभावशाली होती हैं। प्रथाय हमार जीवन की अभिन्न अङ्ग हें। प्रथाय सदव हमार ऊपर राज्य करती रहती हैं परन्तु हम घनिष्ट परिचय के कारण उन्ह पहिचान नहीं पात। प्रथाय जिस प्रकार चुपके स उत्पन्न होती ई उसी प्रकार लुप्त भी हो जाती हें।

प्रथा व वैधानिक संहिताओं का सम्बन्ध
(Relation of Custom and Legal Codes)

हम पहिले ही लिख चुके हैं कि वैधानिक और प्रथा सहितायें अत्यधिक सम्बन्धित हैं। अब हम इनके सम्बन्ध पर प्रकाश डालेंगे।

प्रथा संहिता की आधुनिक युग में अपूर्णता
(The insufficiency of custom in modern society)

आधुनिक युग में प्रथा सहिता उतनी प्रभावपूर्ण नहीं हैं जितनी कि वह

प्राचीन युग में थी। प्रथायें प्राथमिक समूहों में अधिक प्रभावशाली होती हैं, क्योंकि उनका व्यवहार हंसी उड़ाने, व्यंग करने एवं समूह के द्वारा बहिष्कृत किये जाने से नियन्त्रित हो सकता है। प्रथाओं के ये ही ऐसे साधन हैं, जिनके द्वारा नियन्त्रण किया जाता है। आधुनिक जटिल समाज में ये साधन व्यक्तियों के व्यवहार को नियन्त्रित नहीं कर पाते, क्योंकि उनकी संख्या अत्यधिक बढ़ती जा रही है और द्वैतीयक समूह (Secondary Groups) भी बढ़ते जा रहे हैं। द्वैतीयक समूहों में कोई किसी को व्यक्तिगत रूप से जानने की चेष्टा नहीं करता है और उनके सम्बन्ध अवैयक्तिक रहते हैं। इसी कारण यदि एक समूह में हंसी उड़ाई गई, तो दूसरे के सदस्य बन जायेंगे और यदि एक समूह से बहिष्कृत किये गये, तो दूसरे में चले जायेंगे। अतः आधुनिक समाज में प्रथायें उतनी प्रभावपूर्ण नहीं रह गई हैं।

वैधानिक संहिताओं को प्रथाओं का पूरक होना चाहिये। वैधानिक संहिता की सहायता के बिना प्रथायें आधुनिक युग में नियन्त्रण का कार्य कुशलता से नहीं कर सकतीं। वैधानिक संहिता को निम्न कारणों से प्रथाओं का पूरक (Supplement) होना चाहिये.—

(अ) एक विशेष एजेन्सी की आवश्यकता

प्रथाओं को पालन करवाने के लिये कोई भी एजेन्सी नहीं होती है। एक प्रथा का पालन न करने पर जिस व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को हानि पहुँचती है, वह व्यक्ति या समूह बदला लेता है। इस प्रकार शान्ति भग होती रहती है। आधुनिक समाज में इस प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती। शान्ति बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि प्रथाओं का पालन न करने वालों का प्रबन्ध एक विशेष एजेन्सी को करना चाहिये। वैधानिक संहिता यह कार्य पुलिस विभाग एवं न्यायालय द्वारा करवाती है।

(ब) बदलती हुई दशाओं में अनुकूलन की तुरन्त आवश्यकता

प्रथायें शीघ्र परिवर्तित नहीं होतीं। आधुनिक युग में परिवर्तन की गति तीव्र है। आज कुछ तो कल कुछ। ऐसी दशा में ऐसे नियमों की आवश्यकता है, जो बदलती हुई परिस्थितियों से कदम मिला सकें। वैधानिक संहिता इस कमी को पूरा करती है।

(स) एक परिग्राही (Inclusive) एजेन्सी की आवश्यकता

आधुनिक जटिल समाज में अनेक असमान समूह होते हैं। उनके लिये ऐसी एजेन्सी की आवश्यकता है, जो सबको अपनाये। राज्य एक ऐसी ही समिति है।

(द) आधुनिक युग में निर्णायक की आवश्यकता

आधुनिक युग में सगठित शक्तियाँ होती हैं और ये सगठन प्रथाओं की चिन्ता न करते हुए अपने नियम बना लेती हैं। इन सगठित समूह के विवादों को प्रथायें नहीं निपटा सकतीं। इसके लिये शक्तिशाली निर्णायक की आवश्यकता रहती है। वैधानिक सहिता एक ऐसी शक्ति है जो इन सबको उचित मार्ग पर चलाती रहती है।

इस प्रकार आधुनिक युग में प्रथा सहिता की सदैव वैधानिक सहिता सहायता करती रहती है। यह प्रक्रिया केवल एक ही ओर से नहीं चलती। प्रथा सहिता भी वैधानिक सहिता की सहायता करती है। अब हम इस पर प्रकाश डालेंगे कि किस प्रकार प्रथा सहिता वैधानिक सहिता की सहायता करती है।

वैधानिक संहिता की कमियाँ

वैधानिक सहिता मे अनेक कमियाँ है। वैधानिक सहिता केवल बाह्य (External) रूप से आज्ञा पालन करवा सकती है, परन्तु किसी के मन एव मस्तिष्क पर राज्य करने मे अयोग्य है। इन पर केवल प्रथाये और आचार सहिता ही नियन्त्रण कर सकती है। इन क्षेत्रों में वैधानिक सहिता को प्रथा सहिता शक्तिशाली बनाती है।

दोनों एक दूसरे की पूरक हैं

प्रथा और वैधानिक सहिता एक दूसरे की पूरक है और एक दूसरे पर आधारित हैं। ऐतिहासिक प्रक्रिया में प्रथा और विधि का विकास पृथक् पृथक् हुआ है, परन्तु अब अधिकांश विषयों मे वे अन्योन्याश्रित (Interdependent) हैं। प्रथाये स्वय विकसित होती है और विधियाँ पारित की जाती है। अधिकाश विधियाँ शक्तिशाली प्रथायें होती हैं। जब तक विधियों के चारों ओर प्रथाये रक्षा के लिये प्रहरियों के समान तत्पर न रहे तो विधियाँ प्रभावशाली नहीं हो सकतीं। इसको सिद्ध करने के लिये उदाहरणों की कमी नहीं है। बाल विवाह को रोकने के लिये पारित शारदा एक्ट को ही लीजिये। यह एक्ट कोई भी प्रभावपूर्ण कार्य नहीं कर सका। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका का मद्य निषेध कानून का विरोध अभी तक सफल है। विधियों को कार्यरूप में परिणित करते समय कुछ प्रथायें बन जाती हैं और बाद मे वे स्वय ही विधियाँ बन जाती हैं। वैधानिक कानून (Constitutional Law) प्रथाओं से और भी अधिक सम्बन्धित हैं। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे पहले यह प्रथा थी कि राष्ट्रपति तीन सत्र (Term) से अधिक चुनाव नहीं लड़ेगा। बाद मे इसे कानून का रूप दे दिया

गया। इङ्गलैण्ड में अलिखित विधान (Unwritten Constitution) तो सम्पूर्ण रूप से प्रथाओं पर आधारित है।

वैधानिक और प्रथा संहिताओं में संघर्ष
(Conflict between Legal and Custom codes)

जब कोई विधि किसी समुदाय की प्रति प्रचलित प्रथा पर आक्रमण करती है, तो उसके बल की अभिमति (Sanction of force) लेनी पड़ती है। प्रथा, ऐसा लगता है, हमारी आन्तरिक इच्छा है, इसलिये हम उसका पालन हर मूल्य पर करना चाहते हैं। यदि विधि को सामाजिक दशाओं की सहायता न मिले तो वह कभी भी सफल नहीं हो सकती। इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। १९५५ का अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम प्रचलित प्रथाओं के विरुद्ध है। यह विधि कभी भी विजयी नहीं हो सकती थी, यदि महात्मा गाँधी एवं अन्य सामाजिक सुधारकों ने अनुकूल पर्यावरण न बनाया होता।[1]

फैशन और प्रथा
(Fashion and Custom)

फैशन और प्रथा एक दूसरे से सम्बन्धित भी हैं और पृथक् भी। फैशन भी सामाजिक नियन्त्रण का एक प्रमुख तत्व है। इसके द्वारा समाज में समानता एवं एकरूपता का निर्माण होता है।

फैशन से हमारा अभिप्राय समाज द्वारा मान्य उन परिवर्तनों से है, जो प्रथा के अन्तर्गत होते रहते हैं, परन्तु मूलभूत व्यवस्था को कोई हानि नहीं पहुँचाते। फैशन कई क्षेत्रों में प्रयोग में लाया जाता है। इसके प्रमुख विषय जनमत, विश्वास, मनोरञ्जन, वस्त्र एवं पहनावा, शृङ्गार, सङ्गीत, कला, साहित्य इत्यादि हैं। *इन क्षेत्रों में फैशन प्रथाओं के विरुद्ध कार्य नहीं करता है, बल्कि उनका पूरक है।*

फैशन हमारे बाह्य एवं अनावश्यक व्यवहार को नियन्त्रित करता है। फैशन हमारी दो प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। एक तो हमारे अन्दर समाज के अनुरूप (Conformity) होने की इच्छा रहती है। इस इच्छा को फैशन पूरा करता है। कोई भी नवीन व्यवहार प्रारम्भ हुआ कि धीरे धीरे उसे सब लोग करने लगते हैं। कोई भी व्यक्ति फैशन के विरुद्ध जाने की हिम्मत नहीं करता है। यदि कोई करता है, तो समूह पिछड़ा हुआ समझकर, उसका, उपहास करता है। इससे सब लोग

[1]विस्तार से लेखक की पुस्तक 'सामाजिक मनोविज्ञान भाग २' में पढ़िये।

फैशन को स्वीकार करते हैं और समान व्यवहार करते हैं । इसके अतिरिक्त फैशन नवीनता (Novelty) की इच्छा को पूर्ति करता है । निश्चित प्रथाओं की सीमा म मनुष्य भी परिवर्तन कर सकता है । जब कमीज पहिनते पहिनत मन ऊब गया तो बुशर्ट का फेशन प्रारम्भ हो गया । इसी प्रकार कुछ लोग टीशर्ट ढीला कुर्ता चुस्त कुर्ता इत्यादि पहिनते रहते हैं। फैशन बिजली की कौंध के समान होता है । उसका स्वभाव ही अस्थिर ह । कुछ स्थानों पर फैशन प्रात काल कुछ और सायकाल कुछ और होता है।

प्रश्न

१ सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ समझाइये तथा उसके साधनों में परिवार और शिक्षा व्यवस्था का महत्व स्पष्ट कीजिये ।

(Discuss the meaning of Social Control What is significance of family and educational system as the means of Social Control) Lucknow 1950

२ विभिन्न प्रकार के सामाजिक नियन्त्रणों को बताइये ।

(Specify the various types of Social Control)
Lucknow 1948.

३ सामानिक ढाँचे को बनाये रखने म प्रथाओं और रूढियों का महत्व बताइये ।

(Explain the significance of customs and mores in maintaining social structure) Rajputana 1954

४ प्रथाय क्या होती है ? सामानिक नियन्त्रण के दूसर स्वरूप कौन-कौन स हैं ?

(What are Customs' ? What are the other forms of Social Control ?) Agra, 1955

५ सामानिक नियन्त्रण की एजन्सियों के नाते धर्म और आचार की तुलना कीजिये ।

(Compare and Contrast religion and morals as agencies of Social Control Discuss their priority and conflict) Agra 1956

SELECTED READINGS

1 MacIver and Page, 'Society,' chapter VIII

अध्याय १८

व्यक्ति और समाज
(Individual and Society)

व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध का विश्लेषण करना बड़ा कठिन है। प्रारम्भ में बच्चा पैदा होता है और वह समाज का सदस्य बन जाता है। शनैः शनैः वह प्राणीशास्त्रीय व्यक्ति से सामाजिक प्राणी या मानव में परिवर्तित हो जाता है। मानव शब्द कई गुणों का द्योतक है। जब हाड़ माँस वाला पशु (जिसे हमने प्राणीशास्त्रीय व्यक्ति कह कर सम्बोधित किया है) इन गुणों को प्राप्त कर लेता है तब वह मानव या सामाजिक व्यक्ति बन जाता है। जब बच्चा पैदा होता है तब न तो वह बोल सकता है, न कपड़े पहिन सकता है, न उचित रीति से भोजन कर सकता है, और न अन्य कार्य ही कर सकता है। समाज उसे प्रत्येक बात सिखाता है। तनिक अपने बचपन का ध्यान कीजिये या अपने घर में कोई शिशु हो तो उसके व्यवहार का अवलोकन कीजिये। छोटी छोटी सी बातें, जो आज आपका स्वभाव बन गई हैं, वे सब आपको किसी ने सिखाई हैं। अँगुली पकड़कर चलना, चम्मच का पकड़ना, नमस्ते करना, यह सब हमें सिखाया गया है। पग पग पर समाज ने हमारी शिक्षा की व्यवस्था की है। इस व्यवस्था को समाजीकरण (Socialization) कहते हैं। समाज समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा बच्चों को या अपने नये सदस्यों को अपने अनुरूप बना लेता है। यह प्रक्रिया इस प्रकार कार्य करती है कि हम भूल जाते हैं कि कोई हमें कुछ सिखा रहा है, बल्कि ऐसा जान पड़ता है कि हमारे अन्तर से कोई निर्देश कर रहा है, जो स्वयं (self) के अतिरिक्त और कोई नहीं है। इस स्वयं (self) का विकास ही हमें पशु से मनुष्य बनाता है। इन दोनों पर इसी अध्याय में आगे चलकर हम विचार करेंगे। यहाँ पर केवल इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि व्यक्ति और समाज का घनिष्ट सम्बन्ध है।

एकाङ्गी दृष्टिकोण

समाज और व्यक्ति के सम्बन्ध के विषय में कई सिद्धान्त विद्वानों के प्रति पादित किये हैं और कई शताब्दियों तक उन्हें स्वीकार किया जाता रहा है।

इन सिद्धान्तों की सबसे बड़ी कमी यह है कि वे एक अङ्ग पर ही प्रकाश डालते हैं। उनमें से निम्न दो सिद्धान्तों पर हम विचार करेंगे.—

(१) समाज का सम्विदा सिद्धान्त
(The contract theory of Society)

अनेक विद्वानों ने यह मत प्रकट किया है कि समाज का निर्माण संविदा के आधार पर हुआ है। व्यक्ति समान और स्वतन्त्र उत्पन्न हुए थे उनका समाज से कोई सम्बन्ध नहीं था। इन व्यक्तियों ने सविदा करके समाज का निर्माण किया और कुछ अधिकार एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह या समाज को प्रदान किये। इसके कारण समाज और व्यक्ति का सम्बन्ध इस सविदा तक ही सीमित है।

इस विश्वास के कारण लोगों का यह विचार बन गया है कि समाज एक मनुष्य द्वारा निर्मित वस्तु है। इसके कारण वे सदैव समाज और व्यक्ति मे अन्तर करते हैं। इसका प्रभाव सामाजिक सम्बन्धों पर अच्छा नहीं पड़ता।

इस सिद्धान्त को कई कारणों से स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह सिद्धान्त इस मिथ्या विश्वास पर आधारित है कि मानव समाज के बाहर मानव बने हैं या बन सकते हैं। उनका अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास समाज मे प्रवेश किये बिना भी कर सकते हे और वे समाज का निर्माण केवल अपनी रक्षा के लिये करते हैं। आधुनिक परीक्षण इस विश्वास का अनुमोदन नहीं करते। आगे हम देखेंगे कि बिना समाज के मनुष्य मानव बन ही नहीं सकता। इन विद्वानों ने दूसरी भूल यह की है कि राज्य और समाज में कोई अन्तर नहीं माना है। यह हो सकता है कि यह सिद्धान्त राज्य की उत्पत्ति पर कुछ प्रकाश डालता हो, परन्तु समाज के विषय में यह असत्य एव भ्रमपूर्ण है। समाज और व्यक्ति का अस्तित्व पृथक् पृथक् नहीं हो सकता।

(२) समाज का सावयव सिद्धान्त
(The organic theory of Society)

इस सिद्धान्त के अनुसार समाज एक प्राणीशास्त्रीय व्यवस्था है। इसे उन्होंने एक बृहद् प्राणी माना है, जो कि ढाँचे और कार्यों में वैयक्तिक प्राणी के समान है और जिसका विकास भी उन्हीं नियमों के अनुसार होता है। जिस प्रकार मनुष्य मरता है, उसी प्रकार समाज भी मरता है। समाज के कोष (Cells) मनुष्य हैं और उसकी धमनियाँ इत्यादि समितियाँ और संस्थायें इत्यादि हैं। इस सिद्धान्त के मानने वाले कुछ विद्वानों का मत है कि समाज भी प्राणी-

शास्त्रीय प्रक्रियाओं जैसे जन्म बचपन, युवावस्था, वृद्धावस्था से होकर गुजरता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति कुछ नहीं है, वह केवल समाज का एक अङ्ग मात्र है। समाज का मनुष्य पर पूरा २ अधिकार है और समाज कुछ भी कर सकता है। समाज को एक वास्तविक वृहद् प्राणी कहना बहुत बड़ी भूल है। समाज की तुलना प्राणी से की जा सकती है, परन्तु उसे प्राणी समझ बैठना उचित नहीं।

ये दोनों सिद्धान्त एक दूसरे के विरोधी हैं। संविदा सिद्धान्त (Contract Theory) के *अनुसार समाज और मनुष्य का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है और* सावयव सिद्धान्त (Organic Theory) के अनुसार व्यक्ति और समाज में कोई भी अन्तर नहीं है। व्यक्ति समाज का एक भाग है, जिसका स्वतन्त्र कोई अस्तित्व ही नहीं है। वास्तविकता इस प्रकार की नहीं है। समाज और व्यक्ति का घनिष्ट सम्बन्ध है, परन्तु दोनों का पृथक् अस्तित्व है और दोनों एक-दूसरे पर आधारित हैं। मैकाइवर और पेज ने लिखा है, "कोई भी वास्तव में न पूर्ण व्यक्तिवादी हो सकता है और न पूर्ण समाजवादी ही, क्योंकि समाज और व्यक्ति एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और एक दूसरे पर आधारित हैं।"[1]

मनुष्य की साधना-सामग्री (Epuipment of man)

मनुष्य और समाज का सम्बन्ध समझने के लिये पहले हमें यह समझ लेना आवश्यक है कि मनुष्य क्या है ? मनुष्य के पास समाज में आने के पूर्व क्या क्या साधन सामग्री रहती है।

मनुष्य का जन्म माता और पिता के रज और वीर्य के मिलने से होता है। इसी रज और वीर्य में वाह काणु (Genes) और वर्णसूत्र (Chromosomes) होते हैं, जिन्हें हम वंशानुसंक्रमण कहते हैं। इनके ही कारण मनुष्य में कुछ ऐसी शक्तियाँ होती हैं, जिन पर मनुष्य का जीवन आधारित रहता है। इन शक्तियों का विकास पर्यावरण पर आधारित रहता है, परन्तु इसके पूर्व कि सामाजिक पर्यावरण अपना प्रत्यक्ष प्रभाव डाले, प्राणी के पास ये जन्मजात शक्तियाँ होती हैं। सामाजिक पर्यावरण मनुष्य के जन्म के पूर्व से ही मनुष्य पर अप्रत्यक्ष प्रभाव डालने लगता है। बच्चे के माता पिता सामाजिक प्राणी-

[1] "No one can really be an absolute individualist, any more than anyone can be an absolute socialist For the individual and society interact on one another and depend on one another" MacIver, R M and Page C H 'Society' p 55.

होते हैं और वे बच्चा उत्पन्न करने का कार्य सामाजिक प्रथाओं के अनुसार करते हैं और इसका प्रभाव बच्चे पर गर्भ में पड़ता है। इन सब के होते हुए भी अब हम असमाजीकृत प्राणी (Unsocialised Organism) पर विचार करेंगे।

असमाजीकृत प्राणी (Unsocialised Organism)

असमाजीकृत प्राणी के पास जो साधन-सामग्री होती है उन्हें हम निम्न भागों में बाँट सकते हैं —

(१) प्रतिक्षेप (Reflexes)

प्राणी कुछ ऐसी प्रतिक्रियाय करता है, जो अपने आप ही होती है। इनमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। आँख का तारा अधिक प्रकाश में सिकुड़ जाता है और कम प्रकाश में फैल जाता है मूत्राशय (Bladder) के फूल जाने पर मूत्र करना पड़ता है, एक अगुली आँख की ओर आने पर आँख स्वतः बन्द हो जाती है इत्यादि। प्रतिक्षेप की सम्पूर्ण सूची बनाना असम्भव है। सम्पूर्ण वात नाड़ी मण्डल (Nervous System) प्रतिक्षेप की प्रकृति का है। साँस लेना, हृदय धड़कना, भूख लगना इत्यादि सब इसी के अन्तर्गत आते हैं। प्राणी बिना अपने प्रतिक्षेपों के जीवित नहीं रह सकता।[1]

(२) मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts)

मनुष्य के अन्दर कुछ जन्मजात गुण होते हैं और उसका जीवन इन्हीं पर आधारित होता है। ये मूल प्रवृत्तियाँ प्राणी के व्यवहार की चालक शक्तियाँ होती हैं।[2]

(३) चालक (Drives)

प्राणी की कुछ आवश्यकताय ऐसी होती हैं, जिनकी पूर्ति अवश्य होनी चाहिये। जब प्राणी को ये आवश्यकताय अनुभव होती हैं तो उसके अन्दर तनाव उत्पन्न हो जाता है और वह व्याकुल हो उठता है। यह व्याकुलता तभी समाप्त होती है, जब इनको किसी न किसी प्रकार संतुष्ट किया जाता है। ये चालक अधिकतर प्राणीशास्त्रीय आवश्यकताओं से सम्बन्धित होते हैं उदाहरण के लिये निद्रा, क्षुधा, प्यास शौच, यौन सम्बन्ध इत्यादि।

प्रकृति प्राणी के अन्दर इस प्रकार का तनाव उत्पन्न करती है और जब तक इस तनाव को ढीला नहीं किया जायगा, मनुष्य की व्याकुलता समाप्त न होगी। यह व्याकुलता कार्य करने के लिये बाध्य करती है। मान लीजिये

---

[1] प्रतिक्षेप के विषय में विशेष विवरण के लिये अध्याय २५ पढ़िये।

[2] विशेष विवरण के लिये अध्याय २६ पढ़िये।

किसी को भूख लगी है। भूख की तृप्ति करने के लिये भोजन करना आवश्यक है, परन्तु भोजन के रूप में क्या वस्तु खाई जायगी और किस समय, किस स्थान पर एवं किस रीति से खाई जायगी, इसका निश्चित करना सामाजिक पर्यावरण या समाज का कार्य है। चालक कार्य करने के लिये प्रेरित करता है, परन्तु क्या कार्य होगा, यह समाज पर निर्भर है। यह बात महत्वपूर्ण है, इसी पर व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध आधारित है। इस पर हम आगे प्रकाश डालेंगे।

(४) उद्वेग (Emotions)

प्राणी में केवल चालक शक्ति ही नहीं होती, बल्कि उसमें कुछ भावनाओं के अनुभव करने की क्षमता भी पाई जाती है। इन भावनाओं को हम उद्वेग कहते हैं। वाट्सन (Watson) के अनुसार छोटे बच्चों में तीन प्रकार के निश्चित उद्वेग पाये जाते हैं—भय (Fear), क्रोध, (Rage) और स्नेह (Affection), परन्तु आधुनिक परीक्षणों से ज्ञात होता है कि बच्चों में कोई निश्चित उद्वेग नहीं होते।

उद्वेग संस्कृति पर आधारित होते हैं। यह व्यक्ति पर समाज का प्रभाव होता है। अण्डमन द्वीप समूह के रहने वाले और न्यूज़ीलैंड के रहने वाले मौरी (Maori) आँसू बहाते हैं, जब कि दो मित्र कुछ समय के बाद मिलते हैं या दो विरोधी गुट शान्ति का प्रस्ताव रखते हैं। इसी प्रकार अन्य उद्वेगों पर भी समाज की छाप रहती है।

(५) आन्तरिक स्वभाव (Temperament)

आन्तरिक स्वभाव के विषय में अभी तक अति न्यून ज्ञान प्राप्त किया जा सका है। साधारणतया आन्तरिक स्वभाव का तात्पर्य चित्तवृत्ति (Mood) समझा जाता है। प्राणी के उद्वेगों से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है।

आन्तरिक स्वभाव का वर्गीकरण सामान्यता निम्न चार भागों में किया जाता है—

(१) कामुक (Choleric or excitable)
(२) मन्द (Phlegmatic or dull)
(३) उत्साह (Sanguine or happy)
(४) हतोत्साहित (Melancholic or sad)

(६) क्षमता (Capacity)

क्षमता मनुष्य की वह जन्मजात शक्ति है, जो उसे किसी विशिष्ट कार्य को करने के लिये अधिक प्रेरित करती है। जैसे किसी में गाने की क्षमता है,

तो उसे गायन विद्या सरलता से आ जायगी। बुद्धि की क्षमता इन क्षमताओं में सबसे प्रमुख है। सर्वसाधारण का ऐसा विश्वास है कि कुछ लोगों में बुद्धि की क्षमता अधिक होती है और कुछ मे कम। जिनमें अधिक बुद्धि होती है, वे सरलता से किसी बात को समझ लेते हैं या कार्यों को शीघ्र सीख लेते है। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य में कुछ ऐसे अन्तर दिखलाई पड़ते है, परन्तु यह निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता कि सीखने की क्षमता आन्तरिक क्षमता पर, या सीखने की क्रियाओं पर जो कि समाज की व्यवस्था पर आधारित रहती है, ही आधारित है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह आन्तरिक क्षमता सुजनन कार्यक्रम (Eugenic programme) के द्वारा विकसित की जा सकती है। यह कार्यक्रम समाज का प्रभाव होगा।

मनुष्य की क्षमतायें मनुष्य द्वारा सामाजिक प्रभाव के कारण विकसित होती है। ये क्षमतायें कितनी मात्रा में विकसित होंगी यह समाज पर आधारित है।

अभी तक हमने मनुष्य की जन्मजात शक्तियों पर विचार किया है। मनुष्य के पास समाज में प्रवेश होने के पूर्व ये ही साधन रहते हैं। यह देखने के पूर्व कि समाज द्वारा व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है, हम समाजहीन मनुष्यों पर प्रकाश डालेंगे। समाजहीन मनुष्यों से हमारा अभिप्राय उन मनुष्यों से है, जो मानव समाज से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। यद्यपि ऐसे मनुष्य मिलना असम्भव या दुर्लभ है, जो कि मानव समाज में न रहते हों और न कभी रहे हों, तथापि दो चार ऐसे उदाहरण मिले हैं, जिन्होंने इस समस्या पर बड़ा महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। इन पर विचार करने पर हमें ज्ञात होगा कि मनुष्य और समाज में कितना घनिष्ट सम्बन्ध है।

समाज से असम्बन्धित मनुष्य
(Human beings unrelated to Society)

समाज से असम्बन्धित मनुष्यों के कुछ उदाहरण मिले है, उनमें से कुछ निम्न हैं:—

(१) दो बच्चे १९२० ई० में एक भेड़िये की माँद में पाये गये। एक बच्चे की आयु दो वर्ष से कम थी और दूसरे की लगभग आठ वर्ष। पहिला बच्चा मिलने के कुछ मास उपरान्त मर गया, परन्तु बड़ा बच्चा १९२९ ई० तक जीवित रहा। इसका नाम कमला रखा गया। कमला में कोई भी मानव व्यवहार के चिह्न नहीं पाये जाते थे। वह चौपायों की तरह चलती थी, भेड़ियों के समान गुर्राती थी, कोई भी भाषा नहीं बोल पाती थी और मनुष्यों को

देखकर इस प्रकार घबराती थी, जिस तरह जंगली जानवर घबराते हैं। शनैः शनैः उसे कुछ बोलना सिखाया गया, वस्त्र पहिनने और भोजन करने की भी शिक्षा दी गई। अपने मरने के समय तक वह कुछ कुछ मानव व्यवहार सीख सकी। मानव समाज का सम्पर्क न होने के कारण वह इस अवस्था में रही, फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व का विकास न हो सका।[1]

(२) अन्ना (Anna) नाम की एक अवैधज बालिका (Illegitimate Child) अमेरिका में थी। यह लड़की ऊपर की मंजिल के एक कमरे में बन्द रखी जाती थी। केवल जीवित रहने के लिये खाने को मिलता था। इसके अतिरिक्त उसकी कोई चिन्ता नहीं करता था। छः वर्ष की आयु के निकट उसे पाया गया और तब कमरे से बाहर निकाला गया। इस समय अन्ना न तो बात कर सकती थी, न चल ही सकती। कहने का अभिप्राय यह है कि वह ऐसा कोई भी कार्य नहीं कर सकती थी, जिसमें बुद्धि की आवश्यकता पड़ती हो। ऐसा सोचा गया कि वह बहरी और अन्धी है। इससे स्पष्ट है कि एक मानव प्राणी, जिसका समाज से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता।

पाये जाने के साढ़े चार वर्ष उपरान्त उसकी मृत्यु हो गई। इन साढ़े चार वर्षों में उसने काफी प्रगति की। वह कुछ शब्द बोल सकती थी और प्रयत्न करके बातचीत कर सकती थी। अपने हाथ धोती और दांत साफ करती थी। वह ठीक प्रकार से चलती और थोड़ी बहुत दौड़ भी लेती थी। इस प्रकार समाज के सम्पर्क में आने के कारण उसका विकास प्रारम्भ हो गया था।[2]

(३) अन्ना के ही समान इजाबेलो (Isabelle) नाम की लड़की पाई गई। उसकी माँ गूँगी थी। ये दोनों एक अन्धेरे कमरे में रहते थे। इजाबेलो का समाज से कोई सम्बन्ध नहीं था। वह गूँगी थी और चल फिर नहीं सकती थी। उसके पाये जाने पर उसे सिखाने का प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। धीरे धीरे वह बोलने लगी, यद्यपि प्रारम्भ में सिखाने वालों को बड़ा कष्ट हुआ और उन्हें कोई आशा नहीं थी कि वह बोल सकेगी। कुछ वर्षों के बाद वह साधारण बच्चों के समान प्रतीत होने लगी और उसको स्कूल में प्रवेश करा दिया गया।

---

1 For details see Gesell, A. 'Wolf Children and Human Child,' (New York, 1939) and Singh, J. A. L. and Zingg R. M. 'Wolf Children and Feral Man,' (New York, 1942)

2 See Davis, K. 'Human Society,' pp. 204-205, and also his articles in American Journal of Sociology, Vol. 45 (Jan 1940) pp. 554-564 and Vol. 50 (March 1947) pp 432-437.

इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति बिना समाज के अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता और बिना समाज के वह केवल हाड़ माँस का पशु मात्र ही रहता है।

व्यक्ति का समाजीकरण (Socialization of the individual)

जन्म के उपरान्त प्राणीशास्त्रीय व्यक्ति (Biological individual) को सामाजिक प्राणी या मानव (Social being or human being) में परिवर्तित करने का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। इसी प्रक्रिया को समाजशास्त्र में समाजीकरण (Socialization) कहते हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता है। प्रथम समूह का प्रभाव और द्वितीय संस्कृति (Culture) का प्रभाव। समूह (Group) के प्रभाव से हमारा अभिप्राय यह है कि मनुष्य आपस में एक दूसरे पर जो प्रभाव डालते हैं यह प्रभाव, जहाँ कहीं भी मनुष्य पाये जाते हैं पाया जाता है। संस्कृति का प्रभाव भिन्न भिन्न संस्कृतियों में भिन्न भिन्न होता है। संस्कृति व्यक्तित्व में विशेषता उत्पन्न करती है।

समाज में विभिन्न सामाजिक प्रक्रियायें पाई जाती हैं और व्यक्ति इन प्रक्रियाओं का फल है। इनमें से प्रमुख प्रक्रियाएँ निम्न है।[1]

(१) प्रशंसा और आरोप (Praise and blame)
(२) सहयोग और संघर्ष (Co-operation and conflict)
(३) सहिष्णुता (Submission)
(४) प्रभुत्व (Ascendancy)

इन प्रक्रियाओं के कारण मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। बचपन से बच्चा जिन सामाजिक प्रक्रियाओं का सामना करता है उसी प्रकार का उसका व्यक्तित्व हो जाता है।

व्यक्तित्व के विकास के अनेक साधन होते हैं। अनेक साधनों के द्वारा मनुष्य एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। इसके प्रमुख साधन निम्न हैं :—[2]

(१) अनुकरण (Imitation)
(२) सुझाव (Suggestion)
(३) सहानुभूति (Sympathy)

इनके अतिरिक्त अनेक संस्थाएं एवं समितियाँ भी समाजीकरण का कार्य करती हैं। इनमें सबसे प्रमुख परिवार है। परिवार में बच्चा जन्म लेता है और

[1] इनके विषय में भाग प्रथम में 'सामाजिक प्रक्रियायें, नामक उपविभाग पढ़िये।

[2] विवरण के लिये अध्याय २७ और २८ पढ़िये।

उसका समाजीकरण यहीं से प्रारम्भ होता है। टरमन (Terman)[1] ने लिखा है कि वे बच्चे ही विवाह को सुखपूर्ण बना सकते हैं, जिनके माता पिता सुखी थे। सुखी विवाह का सबसे महत्वपूर्ण तत्व सुखी परिवारों से सम्बन्धित होना है। हेली और ब्रोनर (Healy and Bronner)[2] का मत है कि बाल अपराधी अधिकांश उन्हीं परिवारों में मिलते हैं, जिनमें सामाजिक सम्बन्धों की पूर्ति में कभी न कभी अवश्य बाधा पड़ी होती है।

शिक्षा समाजीकरण का प्रत्यक्ष उदाहरण है। बच्चे का मूल्य एक बचत खाते (Savings Account) के समान होता है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास होता है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य समाजोपयोगी बनता है।

आत्म या अहं का विकास
(The Development of the self or ego)

समाजीकरण का प्रमुख उद्देश्य आत्म विकास (Development of the self or ego) है। 'अहं' (Self) के रूप में ही व्यक्तित्व रूप धारण करता है और मस्तिष्क कार्य करता है।

अहं दैहिक प्राणी से भिन्न होता है। यह एक भौतिक वस्तु (Physical entity) नहीं है, बल्कि एक मन' सम्बन्धी अस्तित्व (Psychical entity) है। मीड (Mead)[3] ने लिखा है कि अहं की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह प्रतिबिम्बित होने की शक्ति रखता है। इससे उनका अभिप्राय यह है कि अहं अपने लिये कर्ता (Subject) और कर्म (Object) दोनों ही हो सकता है। वह अपने पर विचार कर सकता है या आत्मज्ञानी हो सकता है। कभी कभी वह अपने विषय में दूसरों की दृष्टि से देखता है। वह दूसरों का कार्य अपने हाथ में लेता है। इस प्रकार की कल्पना करना सीख जाता है कि वह स्वयं दूसरों को कैसा प्रतीत होता है।

अहम् दूसरों को प्रसन्न करने में अपनी सन्तुष्टि समझता है। छोटे छोटे बच्चे भी इसका महत्व समझने लगते हैं और अपने जीवन में इसका प्रयोग करते हैं। अहम् एक सामाजिक ढाँचा है। मीड ने लिखा है, 'अहं, जो कि अपने आप का ही कर्म बन सकता है, आवश्यक रूप से एक सामाजिक ढाँचा है और यह

---

[1] Terman, Lewis, 'Psychological Factors in Marital Happiness', (New York, 1938)

[2] Healy and Bronner, 'New Light on Delinquency and its Treatment,' (New Haven)

[3] Read 'Mend, Self and Society' (University of Chicago Press 1934) by Mead, George H.

सामाजिक ढाँचा सामाजिक अनुभव पर खड़ा है।"[1] इस अह का विकास सामाजिक अनुभव के बाहर नहीं हो सकता। यह सामाजिक सम्बन्धों की देन है। व्यक्ति स्वय स वार्तालाप कर सकता है। वह प्रश्न भी करता है और उत्तर भी देता है। इसके कारण यदि एक बार व्यक्ति का समाजीकरण (Socialization) हो जाय तो वह एकान्त म रहत हुये भी स्वय को सामाजिक प्राणी अनुभव कर सकता है। कुछ लोग ईश्वर की प्राप्ति के लिये निजन वनो म या पहाड़ों की चोटियों पर रहते है, परन्तु व भी सामाजिक अनुभव का लाभ उठाते रहते हैं, क्योंकि उनका अह (Self) विकसित हो चुका होता हे।

अह में कर्त्ता (Subject) 'मैं' (I) होता है, और 'मुझे' (Me) कर्म कारक होता है। 'मैं' वह स्वय होता है और 'मुझे' वे दूसरों के व्यवहार होते हैं, जिन्हे वह ग्रहण करता ह या कल्पना करता है।

अह के विकास के कारण ही व्यक्ति अपने अस्तित्व का अनुभव करता है। जिस व्यक्ति में अह (Self) का विकास नहीं हो पाता, वह मनुष्य बहुत निम्न श्रेणी का होता है। यदि उस पशु कहा जाय तो अनुचित न होगा। शिक्षा के द्वारा इस अह का विकास किया जाता ह।

सस्कृति और व्यक्ति (Culture and individual)

समूह व्यक्तित्व (Personality) को जन्म देता है और सस्कृति उसके स्वरूप को निश्चित् करता है। सस्कृति एक कलाकार के समान व्यक्तित्व को अपनी कल्पनाओं के अनुसार चित्रित करती है। समूह सामान्य सामाजिक लक्षणों का निर्माण करता है, परन्तु सस्कृति इन सामान्य लक्षणों को एक निश्चित् रूप देती है। क्षुधा की पूर्ति के लिये कुछ न कुछ खाना एक प्राणी शास्त्रीय आवश्यकता है। सस्कृति इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये निश्चित मार्ग निर्धारित करती है। प्रात काल ये वस्तुये खानी होंगी और साय काल वे वस्तुय। भोजन नगे शरीर, शुद्ध होकर चौके म बैठकर करना पड़ेगा या मेज कुर्सी पर बैठ कर। इसी प्रकार प्रत्येक सस्कृति में निश्चित माग होते हैं और उस सस्कृति में रहने वाले मनुष्यो को उन मार्गों का अनुसरण करना पड़ता है। अब हम सस्कृति का व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव होता है, इस पर प्रकाश डालेंगे।

सस्कृति दो प्रकार की होती है—भौतिक संस्कृति (Material Culture) और अभौतिक (Non material Culture)। अभौतिक सस्कृति और

[1] "The Self as that which can be object to itself, is essentially a social structure, and it arises in social experience" Mead op cit pp 140

भौतिक संस्कृति के बीच अनेक विद्वानों ने अन्तर बताया है। दोनों का ही प्रभाव व्यक्ति व पर पड़ता है।

भौतिक संस्कृति में मान लीजिये घड़ी का आविष्कार हुआ। जिस संस्कृति में घड़ी को महत्व दिया जायगा, उसमें समय का महत्व अपने आप बढ़ जायगा। समय का पालन (Punctuality) होने लगेगा। यूरोप (Europe) और अमेरिका इत्यादि में समय का अत्यधिक पालन होता है, परन्तु भारतवर्ष में उतनी मात्रा में नहीं होता, यह संस्कृति का प्रभाव है। भारतवर्ष में अभी समय का महत्व नहीं बढ़ा है। धीरे धीरे इसका महत्व बढ़ता जा रहा है। कार्यालय, विद्यालय एवं अन्य संस्थान समय से खुलते हैं और बन्द होते हैं। रेडियो, रेल्वे इत्यादि सब ही घड़ी की गति के साथ चलते हैं। वन्य जातियों में लोग समय की तनिक भी चिन्ता नहीं करते। वे लोग घड़ी को मुफ्त में भी न खरीदेंगे, क्योंकि उनकी संस्कृति में इसका कोई महत्व नहीं है।

इसी प्रकार मनुष्य के अन्य व्यवहार भी भौतिक संस्कृति से प्रभावित होते हैं। कहीं धन को पूजा होती है और कहीं पर धन से घृणा की जाती है।

अभौतिक संस्कृति भी व्यक्तित्व पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। भाषा के बिना व्यक्ति कुछ भी न होता। प्रत्येक संस्कृति में एक पृथक भाषा पाई जाती है। मनुष्य और पशु का एक प्रमुख अन्तर यह है कि मनुष्य बोल सकता है। बोलना उन्हीं लोगों से सीखा जा सकता है, जो बोलने की शक्ति रखते हों। सामाजिक सम्बन्धों से दूर रह कर कोई भी व्यक्ति बोलना नहीं सीख सकता।

व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध

इस अध्याय में हमने व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध में प्रकाश डालने की चेष्टा की है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। बिना समाज के व्यक्ति का अस्तित्व अर्थहीन होता है, जैसा कि हमने प्रारम्भ में ही समाज से दूर रहने वाले मनुष्यों के उदाहरण से देखा। मनुष्य का व्यक्तित्व समाज की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया समाजीकरण, द्वारा विकसित होता है। इस व्यक्तित्व पर संस्कृति अपनी छाप अङ्कित करती है। व्यक्ति उस सिक्के के समान है, जो विभिन्न प्रक्रियाओं से निकल कर पूर्ण सिक्का हो चुका है। समाज व्यक्ति को इसी रूप में उपस्थित करता है।

प्रश्न

१. एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने के लिये उसके जीवन की परिस्थितियों को समझना क्यों आवश्यक है?

(Why is an understanding of a person's life situations necessary to an understanding of his personality ?) Agra 1951

२ व्यक्ति और समाज का क्या सम्बन्ध है ?

(What is the relation between individual and society ?)

३ समाजीकरण से आप क्या समझते हैं ? इस प्रक्रिया का पूर्ण विवरण दीजिये।

(What do you understand by Socialization ? Give full details of this process)

SELECTED READINGS

1 Davis, 'Human Society,' chapter VIII

षष्ठम खण्ड

सामाजिक विघटन
(Social Disorganisation)

अध्याय १९ : सामाजिक विघटन
(Social Disorganisation)

,, २० : दरिद्रता
(Poverty)

,, २१ : बेकारी
(Unemployment)

,, २२ : अपराध
(Crime)

,, २३ : बाल अपराध
(Juvenile Delinquency)

अध्याय १६

सामाजिक विघटन

(Social Disorganisation)

सामाजिक विघटन पर विचार करने के पूर्व हमें सामाजिक संगठन (Social Organisation) पर भली प्रकार विचार करना पड़ेगा, क्योंकि ये दोनों शब्द सापेक्ष (Relative) हैं। जिस प्रकार एक सिक्के (coin) के दो पहलू होते हैं उसी प्रकार किसी भी समाज के दो पहलू—सामाजिक संगठन और सामाजिक विघटन-होते हैं। इन दोनों का घनिष्ट सम्बन्ध है।

सामाजिक विघटन का अर्थ

(Meaning of Social Disorganisation)

सामाजिक विघटन उस समय उत्पन्न होता है, जब कि परिवर्तन के कारण शक्तियों का सन्तुलन समाप्त हो जाता है। इसके फलस्वरूप सामाजिक ढाँचा (Social structure) धराशायी हो जाता है और मान्यता प्राप्त सामाजिक नियन्त्रणों (Social controls) का कोई प्रभाव नहीं रहता। सामाजिक संगठन के अर्थ पर हमने प्रथम अध्याय मे विचार किया था, इसलिये यहाँ हम उस पर विस्तार में प्रकाश नहीं डालेंगे।[1] सामाजिक संगठन उस दशा या स्थिति को कहते है, जिसमें एक समाज की विभिन्न संस्थायें मान्यता प्राप्त उद्देश्यों की पूर्ति एक दूसरे के सहयोग से करती हैं। सामाजिक विघटन सामाजिक संगठन का विलोम (opposite) शब्द है। सामाजिक संगठन के विपरीत सामाजिक विघटन वह दशा या स्थिति है, जिसमें समाज की विभिन्न संस्थायें मान्यता प्राप्त उद्देश्यों की पूर्ति करने मे योग्य सिद्ध होती हैं और एक दूसरे के साथ सहयोग के स्थान पर संघर्ष करती हैं। इलियट और मेरिल (Elliott and Merrill) ने सामाजिक विघटन की परिभाषा इन शब्दों मे

---

[1]इस अध्याय को पढ़ने के पूर्व अध्याय प्रथम (सामाजिक संगठन) को अवश्य पढ़ें।

की है, "सामाजिक विघटन वह प्रक्रिया है, जिसके कारण एक समूह के सदस्यों के बीच स्थापित सम्बन्ध टूट जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं।"[1]

विभिन्न भागों में सन्तुलन की स्थिति को संगठन कहते हैं। इसे मानव शरीर के उदाहरण द्वारा सुन्दरता से समझाया जा सकता है। शरीर में अनेक अङ्ग होते हैं, कोई भोजन को चबाता है, कोई हवा को अन्दर खींचता है और कोई मलमूत्र बाहर फेंकता है। कोई सुनने का काम करता है तो कोई देखने एवं सूँघने का। वातनाड़ी मण्डल (Nervous system) सबको प्रेरणा देता है और सबका नियन्त्रण करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण सन्तुलन (Total Equilibrium) बना रहता है। जब तक प्रत्येक अङ्ग ठीक प्रकार से अपने निश्चित कार्यों की पूर्ति करता रहता है, सन्तुलन बना रहता है और शरीर प्राणी को सुख एवं आनन्द का अनुभव कराता रहता है। किसी कारण से जिव्हा (Tongue) अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाय तो सन्तुलन बिगड़ जाता है। इसी प्रकार समाज में भी सन्तुलन रहता है। समाज की अङ्ग संस्थायें होती हैं। इन संस्थाओं में जब तक सन्तुलन रहता है, उस समय तक हम समाज को संगठित कहते हैं और जैसे ही वह सन्तुलन डगमगाने लगता है, वैसे ही सामाजिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है। अतः सामाजिक असन्तुलन (Social disequilibrium) ही सामाजिक विघटन कहलाता है।

सामाजिक विघटन कार्यों के उचित रूप से पूर्ण न होने को कहते हैं। फेरिस ने लिखा है, 'सामाजिक संगठन मनुष्य के बीच कार्य सम्बन्धी सम्बन्धों के उस सीमा तक टूट जाने को कहते हैं, जिसके कारण समूह के मान्य कार्यों के करने में बाधा पड़ती है।"[2] इस प्रकार सामाजिक विघटन उस प्रक्रिया को कहते हैं, जो स्थापित एवं मान्य व्यवस्था में बाधा उत्पन्न करती है।

जब किसी समाज में संगठन रहता है तो उसकी संस्थायें उचित रूप से निश्चित कार्य करती रहती हैं और मनुष्य इन संस्थाओं के नियमों का पालन करता

[1] "Social disorganisation is the process by which the relationships between members of a group are broken or dissolved" Elliott, Mabel, A and Merrill Francis, E 'Social Disorganisation' Harper and Brother, New York, p 20 (Third Edition, 1950)

[2] "Social disorganisation is the disruption of the functional relations among persons to a degree that interferes with the performance of the accepted tasks of the group" Faris Robert E L 'Social Disorganisation' The Ronald Press Company, New York (1948), p. 19

रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के व्यवहार पर नियन्त्रण रहता है और समाज का कार्य मान्य रीतियों से चलता रहता है। जब ये नियन्त्रण ढीले पड़ जाते हैं और मनुष्य के व्यवहार को नियन्त्रित नहीं कर पाते तो सामाजिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है। थॉमस (Thomas) और जेनिकी (Znaniecki) ने इस बात पर बड़ा जोर दिया है और सामाजिक विघटन की परिभाषा भी इसी पर आधारित की है। सामाजिक विघटन की परिभाषा करते हुए उन्होंने लिखा है कि सामाजिक विघटन "समूह के व्यक्तिगत सदस्यों पर वर्तमान व्यवहार के सामाजिक नियमों के प्रभाव का कम होना है।'[1]

जब समाज में सगठन रहता है तो सामाजिक सम्बन्ध व्यवस्था के अनुसार होते हैं और इसके कारण जीवन सुख एव आनन्द से पूर्ण होता है। इसके विपरीत जब सामाजिक सगठन का अभाव होता है तो सम्बन्ध व्यवस्था के अनुसार नहीं होते और इसका परिणाम क्लेश, दु ख इत्यादि होता है। क्वीन (Queen), बोडनहाफर (Bodenhafer) और हार्पर (Harper) ने सामाजिक विघटन को सरल शब्दों मे समझाने का प्रयत्न किया है। वे लिखते हैं "यदि सामाजिक, सगठन का तात्पय सम्बन्धों का इस प्रकार विकास समझा जाता है, जिन्हें मनुष्य और समूह परस्पर सन्तोषजनक पाते हैं, तो विघटन का तात्पर्य उन सम्बन्धों का ऐसे सम्बन्धों द्वारा पूर्ति होना है, जो कि निराशा उदासीनता, कु झलाहट और दु ख लाते हैं।"[2]

सामाजिक सगठन और सामाजिक विघटन को हम क्रमश स्वास्थ्य और रोग के उदाहरण द्वारा भली प्रकार से समझा सकते हैं। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर होता है, उसी प्रकार समाज के भी शरीर होता है जिसे हम सामाजिक ढाँचा (Social structure) कहते हैं। शरीर के ही समान सामाजिक

---

[1] "Social disorganisation as 'a decrease of the influence of existing social rules of behaviour upon individual members of the group" Thomas William I and Znaniecki, Florian, 'The Polish Peasant in Europe and America", Richard G Badger, Boston (1918), Vol 4, p 2

[2] "If Social organisation means the development of relationships which persons and groups find mutually satisfactory, then disorganization means their replacement by relationships which bring disappointment thwarted wishes, irritation and unhappiness Queen Stuart, A Bodenhafer Walter B and Harper, Ernest B Social Organisation and Social Disorganization,' Thomas Y Crowell Company, New York (1935), p 53

ढाँचे के भी विभिन्न अङ्ग होते हैं। जब ये सारे अङ्ग मान्य व्यवस्था के अनुसार कार्य करते रहते हैं तो संगठन की दशा रहती है। शरीर के सब अङ्ग जब तक अपना अपना कार्य करते रहते हैं, तब तक हम उस शरीर को स्वस्थ समझते हैं। स्वास्थ्य वह दशा है, जिसमें विभिन्न अङ्ग सामान्य रूप से कार्य करते रहते हैं। इस कार्य में जरा भी विघ्न उत्पन्न होते ही रोग प्रारम्भ हो जाता है। इसी प्रकार सामाजिक विघटन भी रोग के समान सामाजिक व्यवस्था में विघ्न उत्पन्न होने का द्योतक है। अतः सामाजिक संगठन समाज का स्वास्थ्य (Health) है और सामाजिक विघटन रोग (Disease) है।

किसी भी समूह या समाज के संगठन को बनाये रखने वाली शक्ति मतैक्य (Consensus) होती है। समाज के महत्वपूर्ण विषयों पर अधिकांश सदस्यों *की विचारधारा एक सी होनी चाहिये। यह विचारों की एकता मतैक्य बनाये* रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस मतैक्य पर ही सामाजिक ढाँचा खड़ा रहता है। मतैक्य समाप्त होते ही ढाँचा टूटने लगता है और सामाजिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है। मतैक्य का अभाव सामाजिक विघटन को जन्म देता है।

सामाजिक ढाँचा (Social structure), सामाजिक स्थिति (Social status) और इससे सम्बन्धित कार्यों (Roles) का समूह है। समाज प्रत्येक व्यक्ति के लिये एक निश्चित स्थिति निर्धारित करता है और प्रत्येक स्थिति से सम्बन्धित निश्चित कार्य रहते हैं, जो कि उस स्थिति वाले मनुष्यों को करने पड़ते हैं। किसी भी समाज में जब तक सामाजिक स्थिति स्पष्ट रूप से परिभाषित रहती है और लोग इसके अनुसार कार्य करते रहते हैं, *तब तक यह समाज संगठित कहलाता है।* ज्योंही इसके विपरीत *स्थिति* होती है अर्थात् सामाजिक स्थिति और कार्य अनिश्चित एवं अस्पष्ट होते हैं, त्योंही सामाजिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार सामाजिक स्थिति और कार्यों के अनिश्चित एवं अस्पष्ट होने को सामाजिक विघटन कह सकते हैं।

सामाजिक विघटन एक प्रक्रिया है
(*Social Disorganisation is a process*)

जो कार्य निरन्तर होता रहता है और जिसका अन्त नहीं होता, उसे प्रक्रिया कहते हैं। सामाजिक विघटन भी एक प्रक्रिया है, कोई पूर्ण अवस्था नहीं। समाज में कभी भी इतना विघटन नहीं पाया जाता कि सम्पूर्ण सामाजिक नियन्त्रण समाप्त हो जाये और चाहे जितनी भी अगतिशील एवं रूढ़िवादी

व्यवस्था हो उसमें भी पूर्ण संगठन नहीं पाया जाता। चूंकि न तो सामाजिक संगठन और न सामाजिक विघटन ही पूर्ण अवस्था है, इसलिए यह उचित होगा कि हम उन्हें सामाजिक प्रक्रियाओं (Social Processes) के रूप में मानें। सामाजिक संगठन की प्रक्रिया एकता का निर्माण करती है और सामाजिक विघटन की प्रक्रिया पृथक्ता की ओर लेजाती है।

सामाजिक विघटन सामाजिक संगठन के ही समान एक सामान्य (Normal) प्रक्रिया है। यह प्रत्येक समाज में हर समय किसी न किसी अंश में अवश्य पाई जाती है। सामाजिक विघटन कोई अपवाद नहीं है जो किसी विशेष काल या समाज में ही पाया जाता हो। समाजशास्त्री सामाजिक विघटन को व्याधि (Malady) नहीं मानते बल्कि प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन में सम्बन्धित स्वाभाविक प्रक्रिया (Natural Process) मानते हैं। सामाजिक विघटन कुछ समय के लिये अस्थायी रूप से वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को हानि पहुँचाता है इसलिये साधारण व्यक्ति चिन्ता में पड जाते हैं और इसे भयंकर व्याधि समझ लेते हैं। वास्तव में सामाजिक विघटन जिस वर्तमान व्यवस्था को विघटित करता है, उसके स्थान पर भविष्य में नवीन व्यवस्था नये मूल्यों के अनुसार स्थापित हो जाती है और समाज में पुन: सन्तुलन हो जाता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया समाज में सदैव चलती रहती है।

सामाजिक विघटन कई बार हानि के स्थान पर लाभ पहुँचाता है। रोग जिस प्रकार शरीर का विकार निकाल देता है, इसी प्रकार सामाजिक विघटन समाज में फैले हुए असन्तोष एवं अशान्ति को मिटा देता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि सामाजिक विघटन सदैव हितकर ही होता है, इसलिये उसका कोई उपचार नहीं करना चाहिए। सामाजिक विघटन कभी कभी बडा भयंकर होता है और यदि उसे उचित दिशा की ओर निर्देशित न किया जाय तो वह समाज को बड़ी हानि पहुँचाता है। सामाजिक विघटन उस जिन्द (भूत) के समान होता है जिसे निरन्तर कार्य चाहिए और यदि उसे कार्य न दिया गया तो वह अपने मालिक का ही विनाश आरम्भ कर देता है।

सामाजिक विघटन के लक्षण
(Symptoms of Social Disorganisation)

सामाजिक विघटन के भी उसी प्रकार के लक्षण होते हैं जिस प्रकार रोग के हुआ करते हैं। लक्षणों को देखकर यह निश्चयपूर्वक बताया जा सकता है कि रोगी किस रोग से ग्रस्त है। डाक्टर के समान समाजशास्त्री समाज का रोग निदान वैज्ञानिक पद्धतियों से करने का प्रयत्न करते हैं। सामाजिक

विघटन के भी कुछ विशिष्ट लक्षण होते हैं। अब हम उनमें से कुछ प्रमुख एवं सरलता से पहिचाने जाने वाले लक्षणों पर प्रकाश डालेंगे।

(१) रूढ़ियों और सस्थाओं का संघर्ष (Conflict of Mores and Institutions)

सामाजिक विघटन का एक प्रमुख लक्षण रूढ़ियों तथा संस्थाओं का संघर्ष है। विभिन्न संस्थायें एक दूसरे के साथ असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर देती हैं। परिवार की संस्था का दृष्टिकोण कुछ और होता है, जब कि स्कूल तथा समुदाय किसी दूसरी ओर निर्देशित करते हैं। इसका स्वाभाविक फल संघर्ष होता है। जब समूह की विभिन्न सस्थाओं में सामान्जस्य नहीं पाया जाता तो सामाजिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है। उदाहरण के लिये हम भारतवर्ष में पाई जाने वाली वर्तमान संस्थाओं को ले सकते हैं। परिवार, सयुक्त परिवार, उत्तराधिकार के नियम, विवाह संस्था एव धार्मिक संस्था इत्यादि एक विशिष्ट प्राचीन रूढ़िवादी आधार लिए हुए हैं। दूसरी ओर आर्थिक संस्थायें एवं शिक्षा सस्थायें इत्यादि पाश्चात्य सामाजिक प्रणाली पर आधारित हैं। इसका फल संघर्ष होता है। पढ़े लिखे नवयुवकों एवं उद्योग धन्धों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये बड़ी कठिनाई होती है। वे यह सरलता से निश्चय नहीं कर पाते कि किन संस्थाओं का निर्देश मानना चाहिये और किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये। इसके फलस्वरूप दोनों ही प्रकार की सस्थाओं का नियन्त्रण ढीला हो जाता है और व्यक्ति मनमाना व्यवहार करने लगते हैं। यह सामाजिक विघटन का लक्षण है।

(२) एक समिति से दूसरी समिति को कार्यों का हस्तान्तरण (*Transfer of functions from one association to another*)

एक विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न समितियों के निश्चित कार्य होते हैं, जो समाज की विभिन्न आवश्यक्ताओं की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक समिति के कार्य निश्चित होते हैं। जब सामाजिक विघटन प्रारम्भ होता है, तो वर्तमान व्यवस्था उसी रूप मे नहीं रह पाती और विभिन्न समितियों के कार्यों में भी परिवर्तन होने प्रारम्भ हो जाते हैं। आधुनिक युग मे प्राचीन व्यवस्था पर आक्रमण हुआ और वह धीरे धीरे टूटने लगी। यह व्यवस्था धर्म प्रधान थी एव परिवार की इकाई पर आधारित थी। धार्मिक समितियों और परिवार के अनेक महत्वपूर्ण कार्य थे, परन्तु धीरे धीरे ये कार्य अन्य समितियों को हस्तान्तरित होते जा रहे हैं। परिवार के स्थान पर राज्य

का महत्व बढ़ता जा रहा है। राज्य ने अनेक कार्य अपने हाथों म ले लिये हैं। सामाजिक विघटन के काल में इस प्रकार कार्यों का हस्तान्तरण एक समिति स दूसरी समिति या समितियों को होन लगता ह। अत यह सामाजिक विघटन का एक प्रमुख लक्षण है।

द्वितीय महायुद्ध का चित्र अभी हमार स्मृति पटल पर अंकित है। हम याद है कि युद्ध काल में अनक कार्य जो कि साधारण समय म दूसरी समितियाँ करती थीं राज्य न ल लिये थे। मूल्यों का नियन्त्रण करना आवश्यक खाद्य-सामग्री एव अन्य आवश्यक वस्तुओं का एकत्रीकरण एव वितरण करना युद्ध सामग्री का उत्पादन करना साधारण नियमों क स्थान पर विशेष नियमों का लागू करना इत्यादि काय राज्य करन लगा था। कार्यों क हस्तान्तरण स स्पष्ट था कि भयकर सामाजिक विघटन प्रारम्भ हो गया था। जैसे ही युद्ध समाप्त हुआ वस ही वे कार्य शनै शनै अपनी पूव समितियों के पास पहुँचन लग।

(३) वैयक्तिक व्यक्तिकरण (Personal Individuation)

वैयक्तिक व्यक्तिकरण स हमारा तात्पर्य है कि मनुष्य प्रत्येक निर्णय व्यक्तिगत आधार पर वैयक्तिक स्वच्छन्दता का अनुभव करते हुए करता है और उस समाज की कोई चिन्ता नहीं रहती। एक व्यक्ति इस प्रकार की स्वतन्त्रता का अनुभव दो निम्न कारणों में स किसी एक के कारण करता है—

(अ) जब मनुष्य का संस्कृति स इतना सामञ्जस्य होता ह कि उस किसी भी संघर्ष की कल्पना नहीं होती और वह यह अनुभव करता है कि जो कुछ भी वह कर रहा है वह आन्तरिक प्रेरणा के कारण कर रहा है। दूसर शब्दों में समाज और व्यक्ति एकरूप हो जात हैं।

(ब) दूसरी अवस्था वह होती है जब मनुष्य अपन को सम्पूर्ण सामाजिक बन्धनों स मुक्त समझता है और यह विश्वास करता है कि वह अपना माग निश्चित करन में स्वतन्त्र है।

पहली अवस्था एक सुदृढ़ एव सगठित समाज का लक्षण है और दूसरी अवस्था एक निर्बल एव विघटित समाज का। इस प्रकार एक स्वतन्त्र व्यक्ति कठिनाइ म पड़ जाता है। उसकी समझ म नहीं आता कि उस क्या करना चाहिए। व्यक्ति और समाज म इस प्रकार के भावुक सम्बन्ध का अभाव सामाजिक विघटन का प्रमुख लक्षण है। जब व्यक्ति के व्यवहार पर सामाजिक नियन्त्रण (Social Control) नियन्त्रण करन में असमथ सिद्ध होता है तब इस प्रकार की अवस्था पाई जाती है।

(४) स्थिति और कार्य में परिवर्तन
(Change in Status and Role)

सामाजिक विघटन का एक प्रमुख लक्षण स्थिति और कार्य में परिवर्तन होना है। प्रत्येक समाज मे स्पष्ट रूप से परिभाषित स्थिति और उससे सम्बन्धित कार्य होते हैं। जिस समाज में स्पष्ट रूप से परिभाषित स्थिति और उससे सम्बन्धित कार्य पाये जाते हैं वह संगठित समाज होता है। इस प्रकार की अवस्था अगतिशील समाजों में पाई जाती है, परन्तु गतिशील (Dynamic) समाज में स्थिर प्रतिमान (Patterns) सदैव परिवर्तन होने के कारण नहीं बन पाते। ऐसी दशा में स्थिति और कार्य परिवर्तित होते रहते हैं। इसका फल यह होता है कि व्यक्ति को निर्णय करने मे कठिनाई होती है और सामाजिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है।

विघटित समाज में ऐसी अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। प्रमुख स्थितियों से सम्बन्धित कार्यों का अनिश्चित होना और भी भयकर है। उदाहरण के लिए पत्नी की स्थिति लीजिये। आज की पत्नी यह निश्चयपूर्वक नहीं जानती कि उसे कौनसा कार्य करना चाहिए—माता का, नवविवाहित दम्पति का, मालकिन का, कमाने वाली स्त्री का या दिल बहलाने वाली संगिनी का। इनमें से कुछ कार्य एक दूसरे के सहायक हैं और कुछ विरोधी। ऐसी दशा में पति किसी और प्रकार के कार्य की इच्छा रखता है तो पत्नी किसी दूसरे प्रकार का कार्य करती है। दोनों ही एक दूसरे को प्रसन्न करना चाहते हैं, परन्तु संघर्ष उत्पन्न होता है। आजकल के शिक्षित युवक अपनी पत्नियों से उन कार्यों की आशा करते हैं, जो कि पाश्चात्य पत्नियाँ करती हैं। वे चाहते हैं कि उनकी पत्नी उनकी संगिनी एवं मित्र बने और उसी प्रकार के कार्य करे। स्त्रियों की शिक्षा अधिक न होने के कारण वे जो कुछ भी पत्नी के कार्य रीति रिवाजों के अनुसार समझती हैं, करती हैं। वे अपने पतियों को देवता समझती हैं और उसी प्रकार से उनकी पूजा करना चाहती हैं परन्तु शिक्षित युवक पूजा एवं सेवा के स्थान पर प्रेम एवं मित्रता के व्यवहार की आशा करते हैं। इस प्रकार दृष्टिकोणों की भिन्नता के कारण वे एक दूसरे को प्रसन्न नहीं कर पाते।

विघटित समाज में जिस प्रकार के कार्यों की रीति रिवाजों के अनुसार आशा की जाती है, उस प्रकार के कार्य लोग नहीं करते हैं, क्योंकि सामाजिक परिवर्तन स्थिति को बिलकुल परिवर्तित कर देता है। गतिशील समाजों में जो कुछ कहा जाता है और जो व्यवहार किया जाता है, उसमें बड़ा अन्तर होता

है। इसके कारण व्यक्तियों का विश्वास उठ जाता है और वे मनमाना व्यवहार करने लगते हैं।

सामाजिक विघटन के कारण
(Causes of Social Disorganisation)

सामाजिक विघटन के कारणों की खोज अनेक विद्वानो ने विचित्र प्रकार स की है। कुछ लोगा का कहना ह कि धर्म का लोप हो रहा है और अधर्म का साम्राज्य बढ़ रहा ह और अधर्म के कारण ही सामाजिक विघटन हो रहा है। कुछ का कहना है कि अनैतिकता सामाजिक विघटन की जननी है। कुछ लोग इसका कारण राज्य की बढ़ती हुई शक्ति बनाते हैं।

आधुनिक युग मे आज भी ऐसे व्यक्ति हैं जो यह विश्वास करते है कि सामाजिक विघटन का जन्म मनुष्य के पापो के कारण हुआ है। कुछ लोगो का मत है कि यह वर्तमान आर्थिक व्यवस्था के कारण है। उत्तम सन्तानोत्पत्तिवादियों (Eugenists) का मत है कि यदि शारीरिक एव मानसिक रूप से अयोग्य व्यक्तियों को समाप्त कर दिया जाय तो सामाजिक विघटन जैसी कोई समस्या नहीं रहेगी।

ये सारे लोग सामाजिक विघटन का केवल एक ही कारण बताते है परन्तु यह उनकी भयकर भूल है। हम पहिले लिख चुके है कि सामाजिक विघटन एक प्रक्रिया है इसलिये इसके अनेक कारण हो सकते है। सामाजिक विघटन का कोई भी एक सार्वभौमिक कारण नहीं माना जा सकता। अब हम इसके प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालेंगे।

(१) सामाजिक परिवर्तन (Social Change)

सामाजिक विघटन का प्रमुख कारण सामाजिक परिवर्तन है। ऑग्बर्न[1] ने इस पर बड़ा बल दिया है। इलियट और मेरिल ने भी इसे सामाजिक विघटन का प्रमुख कारण बतलाया है। सामाजिक परिवर्तन के कारण विभिन्न तत्वा म विभिन्न अशा म परिवर्तन होता है। कुछ तत्वा म परिवर्तन अन्य तत्वों की तुलना में तीव्र गति से होता है। ऑगबर्न ने इसी आधार पर सास्कृतिक विलम्बना (Cultural lag) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। भौतिक सस्कृति म परिवर्तन की गति तीव्र होती है। सस्कृति के अनैतिक तत्वो

[1]Reed Ogburn, William F, (a) 'Stationary and Changing Societies' 'American Journal of Sociology' vol 42 pp 16 32 July, 1936 (b) 'Social Change (c) Social Characteristics of Cities, (d) with Nimkoff, 'Handbook of Sociology'

(Non-material elements) में परिवर्तन शीघ्र नहीं होता, क्योंकि वे शताब्दियों के प्रयत्नों से स्थापित होते हैं। इनके प्रति एक विचित्र भावना बन जाती है और उन्हें हम शीघ्र परिवर्तित नहीं कर पाते। उदाहरण के लिये नये नये आविष्कार होते जा रहे हैं और उन्हें हम तुरन्त स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु अपने रीति रिवाज उसके अनुसार परिवर्तित नहीं करते। आजकल मोटरकार, विद्युत चालित रेलगाड़ी एवं अन्य तेज चलने वाले आवागमन के साधन हमने अपना लिये हैं, परन्तु पर्दा प्रथा अभी भी स्थापित है। बम्बई में मैंने देखा कि प्लेटफॉर्म पर विद्युत चालित रेलगाड़ी बिजली के समान आई और तूफान के समान चली गई। पर्दाधारी स्त्रियाँ मुँह ताकती रह गई'। ऐसा अनेक क्षेत्रों में होता है। जब संस्कृति के कुछ तत्व परिवर्तित हो जाते हैं। उनसे सम्बन्धित अन्य तत्व इन परिवर्तनों के अनुसार अपने को नहीं बना पाते तो इस स्थिति को सांस्कृतिक विलम्बना (Cultural lag) कहते हैं।

अधिकांश सामाजिक विघटन अभौतिक संस्कृति का भौतिक संस्कृति के साथ पग न मिला सकने के कारण होता है। जितनी मन्द गति से विचार परिवर्तित होते हैं, उतनी मन्द गति से कुछ भी परिवर्तित नहीं होता। विचार एक बार स्वीकार करने के उपरान्त बड़ी कठिनता से परिवर्तित होते हैं। लोग अपने विश्वासों की रक्षा के लिये प्राणों को भी बलिदान कर देते हैं। भौतिक संस्कृति में इस प्रकार की कोई अड़चन नहीं होती। भौतिक संस्कृति के लाभ सरलता से समझ में आ जाते हैं। उदाहरण के लिये बैलगाड़ी के स्थान पर मोटर और घोड़े के स्थान पर रेलगाड़ी हर व्यक्ति प्रयोग करना चाहेगा।

अधिकांश औद्योगिक अन्वेषण समाज में सांस्कृतिक विलम्बना को जन्म देते हैं, क्योंकि वे सामाजिक परिवर्तन होने के पूर्व ही समाज पर छा जाते हैं। इस परिस्थिति को एक और प्रकार से भी व्यक्त किया जा सकता है। प्रत्येक नवीन आविष्कार संस्कृति में अपना स्थान बनाता है और ज्योंही वह अपना स्थान बनाता है, समाज इस नये तत्व के अनुसार विभिन्न परीक्षणों द्वारा अनुकूलन करने का प्रयत्न करता है। विभिन्न परीक्षण करके समाज अति उत्तम अनुकूलन खोज निकालता है। इस अति उत्तम अनुकूलन को खोजने में और विभिन्न परीक्षण करने में समय लगता है। यह प्रश्न किया जा सकता है कि इतना समय क्यों लगता है और क्या आविष्कार का पहला प्रयोग तुरन्त अनुकूलन को प्रदर्शित नहीं करता। यह सत्य है, परन्तु एक आविष्कार का प्रथम अनुकूलन उन सारे अनुकूलनों को प्रदर्शित नहीं करता, जो कि अनेक संस्थाओं को करने चाहिये। इसे एक उदाहरण के द्वारा सरलता से समझाया

जा सकता है। एक कार (Motor car) का अन्वेषण हुआ। जैसे ही इस कार मे कोई बैठा कि अनुकूलन हो गया। एक कार मे बैठने का यह तात्पर्य नहीं है कि समाज ने पूर्ण अनुकूलन कर लिया बल्कि यह तो अनुकूलन की प्रक्रिया का श्री गणेश मात्र है। कार से अनुकूलन रेल, फैक्टरी, सड़कें, पुलिस, अवकाश का आनन्द लेने वाले, होटल, न्यायालय, राज्य, विद्यालय बाजार, स्वास्थ्य विभाग और इसी प्रकार की अनेक सामाजिक समितियों द्वारा किया जाना शेष है। ये समितियाँ एकदम से अनुकूलन नहीं करतीं, बल्कि काफी समय लेती हैं। संस्कृति एक आविष्कार से अनुकूलन करने मे बहुत अधिक समय लेती है, जबकि उस आविष्कार का प्रयोग समाज तुरन्त करने लगता है।

वर्तमान समाज मे टेलीफोन, मोटरकार बेतार का तार, सिनेमा, विद्युत चालित कृषि यन्त्र, छपाई फोटोग्राफी विद्युत वाहक हवाई जहाज, टेलीवीजन इत्यादि आविष्कार सांस्कृतिक विलम्बना उत्पन्न कर रहे हैं। ये सामाजिक संस्थाओं रीति रिवाजों और विचार धाराओं को प्रभावित करते है जिसका परिणाम सामाजिक विघटन होता है।

(२) युद्ध (War)

युद्ध औद्योगिक आविष्कारों से अधिक सामाजिक विघटन को जन्म देता है। युद्ध एक ऐसा आपत्ति काल होता है जबकि समाज सामान्य कार्यों की ओर ध्यान न देकर केवल अपनी रक्षा को महत्व देता है। सम्पूर्ण समाज की शक्ति युद्ध मे लग जाती है। लोग घर छोड़ कर सेना में भर्ती हो जाते हैं और स्थान स्थान पर असाधारण जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें शिविरों मे, अपने परिवारों से बहुत दूर, रहना पड़ता है। ये सारे परिवर्तन समाज मे उथल पुथल मचा देते हैं। इसके कारण सामाजिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है। युद्ध सामाजिक मूल्यों को भी क्षति पहुंचाता है। हत्यायें अधिक होने लगती है, क्योंकि युद्ध के कारण जीवन का कोई महत्व मनुष्य के मस्तिष्क मे नहीं रहता।

(३) संकट (Crisis)

यद्यपि सामाजिक विघटन एक प्रक्रिया है, फिर भी संकट की परिस्थिति के कारण इसके अनेक स्वरूप उत्पन्न हो जाते हैं। सामाजिक संकट सामाजिक विघटन का प्रमुख कारण है। सामाजिक संकट अनेक व्यक्तिगत संकटों को जन्म देते हैं, क्योंकि बहुत से लोग प्राचीन व्यवहार को छोड़कर अज्ञात व्यवहार को करने के लिये बाध्य होते हैं। सामाजिक संकट के काल में सक्रिय एवं बुद्धिमान व्यक्ति नई परिस्थिति से अनुकूलन कर लेते है, परन्तु साधारण व्यक्ति के लिये ऐसा करना बड़ा दुष्कर कार्य होता है।

सामाजिक संकट समूह के सामान्य कार्यों में घोर बाधा उत्पन्न होने को कहते हैं, जिसके कारण आदतों, रीति रिवाजों और अन्य सामूहिक व्यवहारों में परिवर्तन की आवश्यकता अनिवार्य होती जाती है। संकट की परिभाषा थॉमस ने इस प्रकार की है "संकट वह घटना है, जो कि सुचारु रूप से पालित रीति-रिवाजों के पालन करने में बाधा उपस्थित करती है और सारा ध्यान संघर्ष की स्थिति पर केन्द्रित कर देती है।"[1] सामाजिक संकट निम्न दो प्रकार के होते हैं:—

(अ) प्रबल संकट (Precipitate Crisis)

(ब) संचयी संकट (Cumulative Crisis)

(अ) प्रबल संकट (Precipitate Crisis)

प्रबल संकट वह संकट है जबकि समूह के व्यवहार में एक परिवर्तन होता है और बहुत से सदस्यों को एकदम नये कार्य (Roles) करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। प्रबल संकट के अन्तर्गत नेताओं की मृत्यु, दुर्घटनाएँ, अकाल और ईश्वर के द्वारा डाली गई अन्य आपत्तियाँ आती हैं। योजना बनाने के लिये समय नहीं होता है और कुछ न कुछ युक्ति तुरन्त निकालनी पड़ती है और यदि ऐसा न किया जाय तो समाज समाप्त हो जाता है। महात्मा गाँधी की हत्या भारतवासियों के लिये एक ऐसा ही संकट था।

(ब) संचयी संकट (Cumulative Crisis)

संचयी संकट वह संकट है, जो धीरे २ लगातार होने वाली घटनाओं के फलस्वरूप पनपता और विकसित होता रहता है। दो संस्कृतियों के लोग एक स्थान पर रहते हैं तो उनमें धीरे २ संघर्ष होते रहते हैं, और ये ही संघर्ष बाद में संकट बन जाते हैं। भारत में हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायों में रीति रिवाजों की भिन्नता के कारण संघर्ष होते रहे। धीरे २ इन संघर्षों की नींव शक्तिशाली होती गई और घृणा और रोष सञ्चित होता गया। बाद में यही संकट बन गया।

(४) सामाजिक मूल्य (Social Values)

समाजिक मूल्य मनुष्यों के लिये एक आवश्यक तत्व होता है और मनुष्य की इच्छायें, आकांक्षायें और प्रेरणायें इन्हें एक महत्वपूर्ण अर्थ में सुसज्जित कर देती हैं। सामाजिक मूल्य प्रत्येक समाज में पाये जाते हैं। वे समूह की साँस्कृतिक सम्पत्ति के महत्वपूर्ण भाग होते हैं। इनके ही द्वारा यह निश्चित होता है कि समाज किस बात को महत्वपूर्ण समझता है और उस समाज के

[1] Crisis is any occurrence which interrupts smoothly running habits by focussing attention upon a conflict situation" Thomas William, I, 'Source Book for Social Origins' p 16, University of Chicago Press, Chicago, 1909

सदस्य किन तत्वों की रचा करेंगे। जब इन मूल्यों पर आघात होता है, तो सामाजिक विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। सामाजिक मूल्यों का बड़ा महत्व है। इलियट और मेरिल ने लिखा है 'सामाजिक मूल्यों के बिना, न तो सामाजिक सगठन और न सामाजिक विघटन का कोई अस्तित्व होगा।'[1]

सामाजिक धारणाओं में परिवर्तन
(Change in Social Concepts)

सामाजिक धारणा मस्तिष्क की एक स्थिति या दशा है। मस्तिष्क की यह दशा जीवन के रहन-सहन के तरीका एव विभिन्न वस्तुओं और परिस्थितियों के अनुभवों का फल होती है। शनै शनै. यह मनुष्य सीख लेता है।

सामाजिक धारणाओं एव मूल्यों में परिवर्तन सामाजिक परिवर्नन का परिणाम होता है। समाज विरोधी धारणायें सामाजिक विघटन को जन्म देती हैं। ये समाज विरोधी धारणाय व्यक्ति अपने समूह मे सीखता है। वृहद समूह को इन धारणाओं से चति पहुँचती है। समाज विरोधी धारणायें पहिले वर्तमान व्यवहार के नियमों की कुशलता को नष्ट करती हैं और फिर धीरे धीरे सामाजिक सस्थाओं का गला घोट डालती हैं। इस प्रकार सामाजिक धारणाओं मे परिवर्तन सामाजिक विघटन का महत्वपूर्ण कारण है।

सामाजिक विघटन के घातांक[2]
(Indices of Social Disorganisation)

सामाजिक विघटन के सामान्य लक्षणों (Symptoms) का विवरण हम दे चुके हैं, अब हम उसके विशेष चिह्नों (घातांकों) पर विचार करेंगे। ये चिह्न विभिन्न व्यक्तियों के लिये विभिन्न हो सकते हैं, क्योंकि ये सामाजिक मूल्यों पर आधारित हैं। इसके कुछ प्रमुख चिह्नों पर विचार करने के पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि चिह्न (Index) और सामाजिक विघटन की प्रक्रिया में क्या सम्बन्ध है।

सामाजिक विघटन के अर्थ को हमने भली प्रकार समझ लिया है। एक चिह्न नापा जा सकता है। चिह्न की परिभाषा करते हुए इलियट और मेरिल (Elliott and Merrill) ने लिखा है, "एक चिह्न तुलनात्मक रूप से साधारण घटना होती है जो कि (समाज में) एक अधिक जटिल घटना कि

[1] "Without Social values, neither social organisation nor social disorganisation would exist" Elliott and Merrill, Social Disorganisation', p 29

[2] घातांक का अर्थ विशेष चिह्न होता है।

उपस्थिति की ओर सङ्केत करती है।"[1] इस प्रकार चिह्न सामाजिक विघटन की जटिल प्रक्रिया का द्योतक है।

चिह्न को एक दूसरे प्रकार से भी समझाया जा सकता है। सदरलैंड तथा अन्य ने लिखा है, " चिह्न ऐसी वस्तु है, जिसे आप नाप सकते हैं और वह (चिह्न) उस वस्तु को नापता है, जिसे आप नहीं नाप सकते।' *इसको समझाने के लिये एक उदाहरण दिया जा सकता है।* हम तापमान के परिवर्तन को नहीं नाप सकते, यद्यपि अनुभव कर सकते हैं। इसे नापने के लिये हम पारे के घटने बढ़ने को नापते हैं क्योंकि इसे हम नाप सकते हैं और इसकी नाप से तापमान का अनुमान लगा सकते हैं। पारे का फैलना और तापमान का परिवर्तन एक दूसरे से सम्बन्धित है। इसलिये थर्मामीटर (तापमापक यन्त्र) एक चिह्न है।

सामाजिक विघटन के चिह्न समाज में मतैक्य की भावना के अभाव को द्योतित करते हैं। जैसे ही इन चिह्नों का समाज में पाया जाना प्रारम्भ हो, सामाजिक विघटन की प्रक्रिया से सावधान हो जाना चाहिए। वैयक्तिक विघटन (Personal Disorganisation) के घातक बाल अपराध, अपराध, पागलपन, वेश्यावृत्ति, मद्यपान, आत्महत्या इत्यादि की साख्यिकी (Statistics) है। पारिवारिक विघटन के घातक विवाह विच्छेद, अवैधज बालक, मैथुन सम्बन्धी रोग इत्यादि की सख्याय हैं। सामुदायिक विघटन के घातक अपराध, अशिक्षा, बेकारी, निर्धनता, रोग इत्यादि हैं।

सामाजिक विघटन के परिणाम
(Consequences of Social Disorganisation)

सामाजिक विघटन के विषय में हम पहिले ही लिख चुके हैं कि वह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। यह एक रोग के समान समाज के विकारों को निकाल देता है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि सामाजिक विघटन समूह को कोई हानि ही नहीं पहुँचाता है। सामाजिक विघटन कई बार समाज को भारी क्षति भी पहुँचाता है। जिस प्रकार कुछ संक्रामक बीमारियाँ मनुष्य समूह को मृत्यु का ग्रास बना देती हैं, उसी प्रकार सामाजिक विघटन भी समाज को नष्ट भ्रष्ट कर देता है।

सामाजिक विघटन का परिणाम समाज के प्रत्येक सदस्य को भोगना पड़ता है। यह हजारों मनुष्यों के प्राण ले लेता है और यह प्रक्रिया फिर भी चलती

[1] "An index is thus a relatively simple phenomenon which indicates the presence of a more complicated phenomenon" Elliott and Merrill, 'Social Disorganisation', p 32

रहती है। सामाजिक विघटन के कारण सुख और चैन का लोप हो जाता है और दुःख एवं क्लेश का साम्राज्य फैल जाता है।

हम इसके परिणामों का आगे के अध्यायों मे सविस्तार वर्णन करेंगे।

सामाजिक विघटन के प्रमुख रूप
(Significant forms of Social Disorganisation)

सामाजिक विघटन के इतने रूप हैं कि उनका पूर्ण विवरण देने के लिये एक पृथक् पुस्तक की आवश्यकता पड़ेगी। आधुनिक गतिशील समाज में अनेक परिवर्तन प्रतिदिन हुआ करते हैं और इनके कारण सामाजिक विघटन होता रहता है। एक गतिशील समाज अपने मे ही सामाजिक विघटन के तत्व रखता है। इस पर भी सामाजिक विघटन के प्रमुख रूपों से परिचित होना समाजशास्त्र के विद्यार्थी के लिये अनिवार्य है। सामाजिक विघटन के प्रमुख रूपों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है, यह विभाजन कोई विशेष महत्व नहीं रखता क्योंकि एक रूप दूसरे से पूर्णतया पृथक नहीं किया जा सकता। यह वर्गीकरण केवल सरलता की दृष्टि से किया गया है।

(१) व्यक्तिगत विघटन (Individual Disorganisation)

इसके अन्तर्गत किशोरावस्था की समस्यायें, बाल अपराध, अपराध के अन्य रूप, लिंग सम्बन्धी अपराध, वेश्यावृत्ति मद्यपान, पागलपन एवं आत्महत्या इत्यादि आते हैं।

(२) पारिवारिक विघटन (Family Disorganisation)

इसके अन्तर्गत परिवार से सम्बन्धित विघटन, जैसे परिवार में अनुशासन-हीनता, पारिवारिक तनाव, विवाह विच्छेद, अन्य वैवाहिक समस्यायें इत्यादि आते हैं।

(३) सामुदायिक विघटन (Community Disorganisation)

सामुदायिक विघटन से हमारा अभिप्राय उन सामाजिक विघटनों से है जो कि सम्पूर्ण समुदाय से विशेष रूप से सम्बन्धित हैं। इसके उदाहरण राजनैतिक भ्रष्टाचार, अपराध, बेकारी, निर्धनता, धर्म तथा अन्य आधारों पर प्रभेद एवं अत्याचार, व्यवसायिक मनोरंजन इत्यादि हैं।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय विघटन (International Disorganisation)

इसके अन्तर्गत क्रान्ति युद्ध, साम्राज्यवाद, सर्वाधिकारवाद इत्यादि आते हैं।

सामाजिक विघटन के विभिन्न रूपो पर विचार करना हमारे लिये इस पुस्तक में सम्भव नहीं है, परन्तु हम अगले चार अध्यायों में क्रमश दरिद्रता, बेकारी, अपराध और बाल-अपराध पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

प्रश्न

१. वर्तमान समय में आपकी राय में कौन से तत्व सामाजिक विघटन को जन्म दे रहे हैं ?

(What factors, in your judgment, are making for Social disorganisation at the present time ?) Agra 1952.

२. सामाजिक विघटन की व्याख्या कीजिये । भारतवर्ष में संयुक्त परिवार के विघटन से सम्बन्धित स्त्रियों की वर्तमान स्थिति के विषय में आपका क्या विचार है ?

(Explain social disorganisation. What is your view of the present status of women as related to the disorganisation of the joint family in India ?) Agra, 1954

३. आप सामाजिक विघटन शब्द से क्या अर्थ समझते हैं ? विस्तारपूर्वक समझाइये ।

(What do you understand by the term 'Social Disorganisation' ? Discuss at length.) Agra, 1955

४ सामाजिक विघटन को एक प्रक्रिया के नाते समझाइये । सामाजिक विघटनका परिवार पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(Discuss social disorganisation as a process. What is the impect of social disorganisation upon family ?) Rajputana, 1954

SELECTED READINGS

1. Elliott and Merrill, 'Social Disorganisation', chapters I and II.
2 Faris Robert, 'Social Disorganisation', chapters I & II
3. M. H. Neumeyer, 'Social Problems and the Changing Society', chapter I

अध्याय २०

दरिद्रता
(Povert\ )

"देख रहा आँखों के आग
कितने जर्जर पीड़ित ऐस
भूख प्यास स ऊब माँगते
जो विष खान को ही पैस

और नही वह भी मिलता ह
मानव चीख चीख चिल्लाता
हाय नहीं यह देखा जाता।'

—श्री शिवमगल सिंह 'सुमन'

दरिद्रता सभ्यता एव वैज्ञानिक युग के साथ इस पृथ्वी पर अवतरित हुई है। दरिद्रता का जैसा करुणाजनक चित्रण सुमन जी न किया ह वैसा ही हम आदिकाल स अब तक के कवियों की रचनाओ म मिलता ह। कविता की पक्तियाँ पढ़न के साथ २ हमारे हृदय की धड़कन भी तीव्र हो जाती हैं परन्तु वस्तविक दृश्य कहीं अधिक करुणाजनक होता ह। दरिद्रता इतिहास के प्रारम्भ स ही मिलती है। मानवता वादियों समाजसुधारको एव दाशनिकों न इस समस्या पर प्रत्येक काल म प्रकाश डाला ह और इस सुलझान की प्रयत्न किया है। यह समस्या भी विचित्र है। इस जितनी सुलझान क चेष्टा की जाती है, उतनी ही यह और अधिक उलझती जाती ह। मनुष्य ने जितनी अधिक दरिद्रता के जाल स निकलन की चेष्टा की उतना ही वह मकड़ी के जाल म फँसी हुई मक्खी के समान उलझता चला गया। दरिद्रता आधुनिक युग की एक अति जटिल एव विषम समस्या है। अब हम इस समस्या पर विचार करग।

[1] श्री शिवमङ्गल सिंह सुमन की हाय नहीं यह देखा जाता' नामक कविता स अवतरित। इनकी कवितायें सामाजिक समस्याओं का सुन्दर दिग्दर्शन करती है।

दरिद्रता का अर्थ (Concept of Poverty)

दरिद्रता एक सापेक्ष शब्द है। जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार का संबन्ध है, उसी प्रकार दरिद्रता (Poverty) और प्रचुरता (Affluence) का भी सम्बन्ध है। इनका अर्थ एक दूसरे की तुलना करने से ही स्पष्ट हो सकता है। ये एक दूसरे के विरोधी हैं। दरिद्रता एक सापेक्ष स्थिति है, इस कारण इसकी परिभाषा अनेक विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है। एडम स्मिथ ने लिखा है— "एक मनुष्य उन्हीं अंशों में प्रचुर या दरिद्र[1] होता है, जिन अंशों में उसे जीवन की आवश्यकतायें, सुविधायें एवं मनोरंजन के साधन उपभोग के लिये प्राप्त हो सकते हों।"[2] यदि उसके पास ये साधन होते हैं तो वह प्रचुर या धनी कहलाता है और यदि इन साधनों का अभाव होता है तो वह दरिद्र या निर्धन कहलाता है। गोडर्ड (Godard) ने लिखा है, "(दरिद्रता) उन वस्तुओं का अभाव (है) जो कि एक व्यक्ति और उसके आश्रितों को स्वस्थ एवं पुष्ट रखने के लिये आवश्यक है।"[3] गिलिन और गिलिन ने दरिद्रता की परिभाषा इन शब्दों में की है, *"दरिद्रता वह दशा है जिसमें एक व्यक्ति या तो अपर्याप्त* आय या बुद्धिहीन व्यय के कारण अपने जीवन स्तर को इतना उच्च नहीं रख पाता कि उसकी शारीरिक व मानसिक क्षमता बनी रह सके और उसको तथा उसके प्राकृतिक आश्रितों को समाज के स्तरों के अनुसार, जिसके कि वे सदस्य

---

[1]प्रचुरता (Affluence) और दरिद्रता (Poverty) के लिये साधारणतया धन की समृद्धि तथा निर्धनता शब्दों का क्रमश: प्रयोग किया जाता है। उसका मुख्य कारण यह है कि आधुनिक युग में धन विनिमय (Exchange) का प्रमुख एवं एक मात्र साधन है। अत जिसके पास धन है वह जीवन की प्रत्येक आवश्यकता को पूरी कर सकता है। विभिन्न संस्कृतियों में यह बात उचित नहीं बैठती। धन से दरिद्रता को सम्बन्धित करने से उसका अर्थ सकुचित हो जाता है। इसलिये सार्वभौमिक प्रयोग के लिये हमने प्रचुरता तथा दरिद्रता शब्दों का प्रयोग किया है और निर्धनता को उसका अंग मात्र माना है यद्यपि यह सत्य है कि धन ही आधुनिक युग मे प्रमुख मापदण्ड है।

[2]Man as "rich or poor according to the degree in which he can afford to enjoy the necessaries, the conveniences ard the amusemnts of human life" Adam Smith, 'Wealth of Nations,' Book 1, Chapter

[3]Poverty is 'an insufficient supply of things which are requsite for an individual to maintain himself and those depen dent upon him in health and vigour " Godard, J G, 'Poverty, its Genesis and Exodus', p 5.

हैं, उपयोगी ढङ्ग से कार्य करने के योग्य न बना सके।"[1] इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होगया होगा कि दरिद्रता जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों के अभाव को कहते हैं। ये आवश्यकतायें प्रत्येक समाज में भिन्न भिन्न हो सकती हैं। जिन आवश्यकताओं को एक देश में आवश्यक समझा जाता है उसी आवश्यकता को दूसरे देश में अनावश्यक समझा जा सकता है। भारत में ४०) रुपये की आय वाला व्यक्ति निर्धन न कहलाये, परन्तु अमेरिका में ४००) रुपये मासिक आय वाला व्यक्ति भी निर्धन कहलाता है।

राउन्ट्री (Rowntree) ने इङ्गलैंड के यार्क (York) नगर के श्रमिकों की निर्धनता नापने का प्रयत्न किया था। उसने यॉर्क नगर का तीन बार पर्यालोकन (Survey) किया। प्रथम पर्यालोकन १८६८ ई०, द्वितीय १९३६ ई० और तृतीय १९५० ई० में किया। चार्ल्स बूथ (Charles Booth) ने लन्दन नगर का पर्यालोकन किया और १८ शिलिंग से २० शिलिंग प्रति सप्ताह पाने वालों को निर्धन बताया। इतने धन से वे केवल जीवित रह सकते थे।

हालेंण्डर ने लिखा है कि साधारण प्रयोग में दरिद्रता शब्द तीन स्पष्ट दशाओं के लिये प्रयोग होता है। ये दशायें—आर्थिक असमानता (Economic Inequality), आर्थिक पराश्रितता (Economic Dependence) और आर्थिक अभाव (Economic Insufficiency) हैं।[3] अधिकांश विद्वानों का मत है कि दरिद्रता आर्थिक अभाव को कहते हैं और इसी अर्थ में इसका प्रयोग होता है, परन्तु यह धारणा दरिद्रता के अर्थ को सङ्कुचित कर देती है।

दरिद्रता उस दशा या अवस्था को कहते हैं, जिसके कारण मनुष्य अपने प्राकृतिक आश्रितों एवं स्वयं की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता को, साधनों के अभाव के कारण, नहीं बनाये रख सकता।

---

[1] "Poverty is that condition in which a person, either because of inadequate income or unwise expenditures does not maintain a scale of living high enough to provide for his physical and mental efficiency and to enable him and his natural dependents to function usefully according to the standards of the society of which he is a member" Gillin, J L and Gillin, J P 'Cultural Sociology,' p 758, The Macmillan Co, New York, (1954) Third printing

[2] Charles Booth 'Life and Labour of the People in London,' First series, I, p 33

[3] Hollander, J H Quoted in 'Encyclopaedia of Social Sciences'

दरिद्रता का निश्चय
(Determination of the Poverty)

दरिद्रता का निश्चय करने के लिये कई तत्वों को ध्यान में रखना पड़ता है। दरिद्रता की परिभाषा करते हुये हमने बताया था कि आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाना ही दरिद्रता है। प्रश्न यह है कि कौनसी आवश्यकतायें आवश्यक हैं और कौनसी अनावश्यक। इसका निश्चय विभिन्न समाजों के रीति रिवाज एवं रहन सहन के स्तर पर आधारित है। इन भिन्नताओं के होते हुये भी कुछ आवश्यकतायें सार्वभौमिक हैं, वे हर दशा में पूरी होनी ही चाहिये। इन सार्वभौमिक आवश्यकताओं को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है।

(अ) जीवन और स्वास्थ्य की रक्षा

सबसे प्रथम आवश्यकता जीवन और स्वास्थ्य की रक्षा है। जीवन की रक्षा के लिये पर्याप्त भोजन, वस्त्र एवं घर की आवश्यकता होती है। भोजन ऐसा होना चाहिये जो ३००० केलोरी (Calories) शक्ति प्रदान कर सके। ब्रिटिश मेडिकल एसोसियेशन ने तो ३७०० केलोरी तक के लिये राय दी है। इंगलैंड की स्वास्थ्य समिति के मन्त्रालय ने भोजन के विषय में निम्न विचार प्रकट किये हैं:—

"भोजन चार वस्तुओं—केलोरी, प्रथम श्रेणी का प्रोटीन, खनिज पदार्थ और विटामिन—पर अवश्य आधारित रहना चाहिये।"[1]

"भोजन के अतिरिक्त वस्त्र एवं घर भी अत्यन्त आवश्यक आवश्यकतायें हैं। व्यक्ति के पास चाहे जितना भी धन क्यों न हो, यदि स्वच्छ घर नहीं है, तो वह कभी सुखी नहीं रह सकता। वह कभी भी अपने स्वास्थ्य की रक्षा नहीं कर सकता।

(ब) बच्चों का लालन पालन

बच्चों का लालन पालन भी अत्यावश्यक है। बच्चे प्राकृतिक पराश्रित होते हैं और उनके जीवन एवं स्वास्थ्य की रक्षा का भार उनके माता पिता पर होता है।

---

[1] "A diet must stand foursquare upon calories, first class protein, mineral matter and vitamins" Memorandum on Nutrition prepared by Ministry of Health Committee, 'The Criticism and Improvement of Diets,' p 9, H M Stationary office, 1934.

उनके पास आवश्यक शुल्क चुकाने के लिये धन नहीं होता। उनके बच्चे गुड़ियों, खिलौनों या मिठाई के लिये एक पैसा भी खर्च नहीं कर सकते। पिता तम्बाकू या शराब नहीं पीयेगा, माता कभी भी अपने लिये या अपने बच्चों के लिये सुन्दर कपड़े नहीं खरीद सकती। यदि कोई बच्चा बीमार पड़ जाय तो पेरिश (Parish or local body) डाक्टर को ही दिखाना पड़ता था और यदि वह मर जाय तो पेरिश (Parish) ही उसका क्रियाकर्म करेगा। सबसे आवश्यक बात तो यह है कि कमाने वाला एक दिन के लिये भी काम से अनुपस्थित नहीं रहता है।

यदि ऊपर वर्णित किसी भी बात का उल्लंघन हो तो इसके कारण उत्पन्न अतिरिक्त खर्च केवल भोजन को कम करने से ही पूरा हो सकेगा।[1]

दरिद्रता को मोटे तौर पर निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है।[2]

(अ) अभाव (Insufficiency)

(ब) न्यूनतम जीविका (Minimum Subsistence)

(स) स्वास्थ्य एवं सभ्यतापूर्ण (Health and Decency)

(द) आनन्दपूर्ण (Comfort)

दरिद्रता की उत्पत्ति
(Origin of Poverty)

सृष्टि के प्रारम्भ में दरिद्रता नाम की कोई वस्तु नहीं थी। छोटे छोटे समूह में रहने वाले लोग एक दूसरे के रक्त सम्बन्धी होते थे और इस आधार पर वे 'हम' की भावना का अनुभव करते थे, यदि कोई किसी कष्ट में पड़ता तो उसे वे अपना कष्ट समझते थे, इस कारण किसी भी व्यक्ति को जीवन की आवश्यकताओं की कमी नहीं रहती थी। इन परिस्थितियों में दरिद्रता का कोई प्रश्न ही नहीं था। समुदाय पर मनुष्य को उचित रूप से जीवित रखने का उत्तरदायित्व था। जैसे जैसे प्राथमिक समूह बड़े होते गये वैसे वैसे सम्बन्ध वैयक्तिक (Personal) से अवैयक्तिक (Impersonal) होते गये। हम पहले ही बता चुके हैं कि अवैयक्तिक सम्बन्ध द्वैतीयक (Secondary) समूहों में पाये जाते हैं और इन समूहों में कोई किसी की चिन्ता नहीं करता। आधुनिक युग में भी जिन समुदायों में प्राथमिक सम्बन्ध पाये जाते हैं, दरिद्रता के दर्शन नहीं होते। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण वन्य जातियाँ (Tribes) हैं। जैसे जैसे सभ्यता

---

[1] Ibid p 103 Also in his book, 'Poverty',

[2] Encyclopaedia of Social Sciences, Vol XII, p 289

बढ़ती जा रही है, वैसे वैसे दरिद्रता भी बढ़ती जा रही है। साधन बढ़ते जा रहे हैं या दूसरे शब्दों में हम प्रगति कर रहे हैं परन्तु और दरिद्रता या अभाव का साम्राज्य फैलता जा रहा है। यह आधुनिक युग का विचित्र लक्षण है। हैनरी जॉर्ज ने लिखा है 'दरिद्रता का प्रगति से यह सम्बन्ध हमारे युग की सबसे बड़ी पहेली है।'[1] 'सुधीन्द्र' ने भी इसी सत्य को इस प्रकार चित्रित किया है:—

> "एक ओर समृद्धि थिरकती, पास सिसकती है कंगाली,
> एक देह पर एक न चिथड़ा, एक स्वर्ण के गहनों वाली।
> उधर खड़े हैं रम्य महल वे, आसमान को छूने वाले,
> और बगल में टूटी झोंपड़ी जिसके छप्पर चूने वाले।"

हेनरी जॉर्ज ने दरिद्रता की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि दरिद्रता भूमि के एकाधिकार (Monopoly of land) के कारण हमें दिखाई पड़ती है। इसका तर्क देते हुए उन्होंने लिखा है कि नये देशों में जहाँ पर भूमि सस्ती है और उस पर एकाधिकार नहीं हुआ है, आपको भिखमगे नहीं मिलेंगे और रहन सहन के स्तर में असमानता अति न्यून मात्रा में मिलेगी। इस प्रकार उन्होंने दरिद्रता की उत्पत्ति भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व एवं एकाधिकार के कारण बताई है।[2]

दरिद्रता के कारण
(Causes of Poverty)

जिस प्रकार दरिद्रता की अनेक अर्थों में परिभाषा की गई है, उसी प्रकार इसके कारण भी प्रतिपादित किये गये हैं। उनमें से माल्थस, कार्लमार्क्स और हेनरी जॉर्ज के सिद्धान्तों पर हम प्रकाश डालेंगे।

(१) माल्थस का सिद्धान्त (Theory of Malthus)

माल्थस का मत है कि जनसंख्या गुणोत्तर वृद्धि (Geometrical Progression) के अनुसार बढ़ती है, जैसे २, ४, ८, १६, ३२, ६४, आदि और खाद्य सामग्री समानान्तर वृद्धि (Arithmetical Progression) के

---

[1] This association of poverty with progress is the great enigma of our times" Henry George's 'Progress and Poverty' Condensed Edition (1935), The Hogarth Press Ltd, London p 5

[2] Henry George's 'Poverty and Progress' in ten volumes This book is one of the masterpieces in the literature of Sociology.

हिसाब से बढ़ती है, जैसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ आदि। इस प्रकार जनसंख्या लगभग प्रत्येक २५ वर्षों में दुगनी हो जाती है, किन्तु खाद्य सामग्री (Food supply) अर्थात निर्वाह के साधनों (Means of subsistence) के लिये यह बात लागू नहीं होगी। खाद्य सामग्री इस अनुपात में नहीं बढ़ती। अस्तु, जनसंख्या में खाद्य सामग्री की सीमा को पार करके आगे बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार जनसंख्या बढ़ती जाती है और खाद्य सामग्री उस मात्रा में नहीं बढ़ती। इसका फल यह होता है कि सब व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये खाद्य सामग्री प्राप्त नहीं हो पाती। ऐसी दशा में दरिद्रता उत्पन्न होती है। यह दरिद्रता का प्रमुख कारण है।

(२) कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त (Theory of Karl Marx)

कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि समाज में कुछ व्यक्तियों के पास पूँजी होती है। इस पूँजी से वे उत्पादन के साधन उपलब्ध कर लेते हैं। इन व्यक्तियों को उन्होंने पूँजीवादी कह कर पुकारा है। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनके पास केवल श्रम होता है। वे इस श्रम को बेच कर अपनी उदर पूर्ति करते हैं। पूँजीवादी श्रमिकों के श्रम के लिये केवल उतना ही धन देते हैं, जिससे कि जीवन निर्वाह कर सकें और जिवित रह सकें वास्तव में श्रमिक अधिक श्रम लगाकर (जिसके लिये उसे कोई पुरस्कार नहीं मिलता) वस्तुओं के मूल्य को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त मूल्य (Surplus value) को पूँजीवादी हड़प जाते हैं। कार्ल मार्क्स ने लिखा है, "वह (श्रमिक) ऐसे अतिरिक्त मूल्य का सृजन करता है, जो कि पूँजीवादी के लिये वे सारे आकर्षण रखता है, जो कि शून्य से सृजन होने के होते हैं।"[1] पूँजीवादी, जो कुछ भी श्रमिक अपने श्रम से उत्पन्न करता है, हड़प लेता है। इसका परिणाम स्पष्ट है कि कुछ इने गिने व्यक्ति धनाढ्य बने रहते हैं और अधिकांश व्यक्ति दरिद्रता की अवस्था में सड़ते हैं।

(३) हेनरी जॉर्ज का सिद्धान्त (Theory of Henry George)

हेनरी जॉर्ज का मत है कि दरिद्रता भूमि के एकाधिकार के कारण होती है। भूमि के स्वामी किराये के रूप में सारा धन हड़प जाते हैं। श्रमिकों के पास केवल जीवन को बनाये रखने के योग्य ही धन छोड़ते हैं। इसलिये श्रमिक सदैव दरिद्र बने रहते हैं। वह लिखता है, "विशाल नगरों में, जहाँ पर भूमि

[1] "He creates surplus value which, for the capitalist, has all the charms of a creation out of nothing." Karl Marx, 'Capital' (English Edition) Vol I. Foreign Language publishing House, Moscow (1954), p 217.

इतनी मूल्यवान है कि फुटों में नापी जाती है, आपको दरिद्रता और प्रचुरता (भोग विलास) चरम सीमा पर मिलेगी। सामाजिक स्तर की दोनों चरम सीमाओं के बीच की दशा में यह असमानता सदैव भूमि के मूल्य से मापी जा सकती है।'[1] अत दरिद्रता का प्रमुख कारण भूमि और व्यक्तिगत स्वामित्व एव एकाधिकार है।

ये सिद्धान्त दरिद्रता की उत्पत्ति का केवल एक कारण बताते हैं परन्तु अन्य कारणों को कोई महत्व नहीं देते। किसी भी सामाजिक समस्या को एक कारण से नहीं समझाया जा सकता। दरिद्रता के अनेक कारण हैं। इन कारणों को हम निम्न प्रमुख वर्गों मे विभाजित कर सकते हैं —

(१) व्यक्तिगत कारण (Individual Factors)
(२) भौतिक कारण (Physical Factors)
(३) आर्थिक कारण (Economic Factors)
(४) सामाजिक कारण (Social Factors)
(५) राजनैतिक कारण (Political Factors)
(६) विविध कारण (Miscellaneous Factors)

(१) व्यक्तिगत कारण (Individual Factors)

ऐसे कारणों को जो कि व्यक्ति से सम्बन्ध रखते हैं और दरिद्रता उत्पन्न करते हैं व्यक्तिगत कारण कहते हैं। प्रारम्भ में ऐसा विश्वास किया जाता था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी दशा के लिए उत्तरदायी है। जो दरिद्र है, वह अपने दोष के कारण है, और जो धनी है, वह अपने गुण के कारण है। शनै शनै यह कहा जाने लगा कि अयोग्य व्यक्ति दरिद्र होते हैं क्योंकि वे जीवन की प्रतिद्वन्द्विता की दौड़ में पीछे रह जाते हैं। यह सत्य है कि कुछ लोग अन्य लोगो से अधिक योग्य होते हैं। मनुष्य की अयोग्यता चाहे पर्यावरण के कारण हो और चाहे वशानुसक्रमण (Heredity) के कारण, परन्तु यह कटु सत्य है। मनुष्य को दरिद्रता के प्रमुख व्यक्तिगत कारण निम्न हैं —

(i) बीमारी (Sickness)

मनुष्यों को अयोग्य बनाने में बीमारी सबसे प्रमुख तत्व है। बीमारी मनुष्य को निर्धन बनाने के लिये दो ओर से आक्रमण करती है। एक ओर तो

---

[1] "In the great cities, where land is so valuable that it is measured by the foot, you will find the extremes of poverty and of luxury And this disparity in condition between the two extremes of the social scale may always be measured by the price of the land" Henry George, 'Progress and Poverty,' p 111

बीमारी का इलाज करवाने में धन का व्यय होता है और दूसरी ओर बीमारी के कारण मनुष्य कार्य योग्य नहीं रहता, इसलिए आय भी बन्द हो जाती है। बीमारी के कारण आय तो बन्द होती ही है, जमा पूंजी भी डाक्टरों एवं केमिस्टों के पास चली जाती है। मनुष्य निर्धन हो जाता है। बीमारी दरिद्रता को बढ़ाती है और यह क्रम उस समय तक जारी रहता है, जब तक मनुष्य चिता की गोद में न पहुँच जाय। हन्टर (Hunter) ने उचित ही लिखा है, "दरिद्रता और बीमारी एक पतित समझौते का निर्माण करती हैं और मनुष्यों में अति अभागों के दुःखों को बढ़ाने में आपस में एक दूसरे की सहायता करती हैं।"[1]

क्षय रोग कुख्यात रोग है। यह गरीबों में अधिक पाया जाता है। गठिया (Rheumatism) रोग दरिद्रता का दूसरा अभिशाप है। यह अपर्याप्त वस्त्र एवं अशक्ति के कारण होता है। निमोनिया (Pneumonia) और ब्रानकाइटिस (Bronchitis) भी दरिद्रता के कारण उत्पन्न होते हैं। हैजा, प्लेग, टाइफाइड और डिप्थीरिया (Diphtheria) इत्यादि रोग गन्दे, अन्धेरे एवं घने आबाद मकानों में रहने के कारण होते हैं। निर्धनों के बच्चों को सूखा रोग (Rickets) हो जाता है, जो कि प्रारम्भ से ही उन्हें लंगड़ा, लूला और शक्तिहीन बना देता है। इस प्रकार इन्हें उत्तराधिकार में दरिद्रता ही मिलती है।

(ii) मानसिक रोग (Mental Diseases)

मानसिक रोग भी मनुष्यों को कार्य करने के अयोग्य बना देते हैं। इस कार्य क्षमता के नष्ट होने के कारण दरिद्रता उत्पन्न होती है। दरिद्रता भी असुरक्षाओं के कारण मनुष्य को पागल बना देती है। पाश्ले ने लिखा है, "दरिद्रता ही अकेले प्रत्यक्ष रूप से, पागल होने वालों की एक अत्यधिक मात्रा, जो कि जीविकाविहीन दरिद्रों में पाई जाती है, उत्पन्न करती है।"[2]

(iii) दुर्घटनायें (Accidents)

दुर्घटनाओं के कारण भी मनुष्य कार्य करने के अयोग्य हो जाता है। आधुनिक युग में दुर्घटनाओं की संख्या में बड़ी वृद्धि हो गई है। आवागमन के

---

[1] "Poverty and sickness form a vicious partnership, each helping the other to add to the miseries of the most unfortunate of mankind" Hunter, R., 'Poverty', p 144

[2] "Poverty alone directly produces a very large proportion of the whole number of cases of insanity which occur among the indigent poor" Pashley, R. 'Pauperism and Poor Laws,' p, 124.

साधन—रेलगाड़ी, मोटर, हवाई जहाज इत्यादि सब ही दुर्घटनाओं को बढ़ाते हैं। मिलों और फेक्टरियों में भी आधुनिक यन्त्र, विद्युत से चालित होने के कारण, अति तीव्र गति से कार्य करते हैं। इसके कारण श्रमिक से तनिक भी असावधानी होने पर उसे दुर्घटना का शिकार बनना पड़ता है। इन दुर्घटनाओं के कारण लोग अन्धे, बहरे, लगड़े, लूले इत्यादि अवस्था को प्राप्त होते हैं और जीवन की सारी आशाओं के प्रति उदासीन हो जाते हैं। बहुत सी दुर्घटनायें कमाने वालों की मृत्यु का कारण बन जाती हैं।

(iv) आलस्य (Idleness)

आलस्य भी दरिद्रता का एक प्रमुख कारण है। धनोपार्जन के लिए परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु बहुत से लोग आराम तलब होते हैं और काम से जी चुराते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि आलस्य नाड़ीशून्य ग्रंथियों (Ductless Glands) पर भी आधारित होता है। कुछ लोग प्रकृति से ही आलसी एवं कामचोर होते हैं।

(v) असामान्य व्यक्तित्व (Abnormal Personality)

कुछ लोगों का व्यक्तित्व असामान्य होता है। ये लोग किसी से भी अनुकूलन नहीं कर पाते। हर एक से झगड़ा करके अपने जीवन को नरक बना लेते हैं। ये जहाँ कहीं भी कार्य करते हैं, कुछ दिनों में किसी न किसी कारण से छोड़ देते हैं और ससार को कोसा करते हैं।

(vi) नैतिक पतन (Demoralisation)

जब मनुष्य का नैतिक पतन हो जाता है, तो वह कार्य में रुचि नहीं रखता और निम्न स्तर की बातें सोचता रहता है। इसका फल यह होता है कि वह कार्यक्षमता को खो बैठता है और शनैः शनैः कार्य करने के अयोग्य हो जाता है।

(vii) अपव्यय (Extravagancy)

अपव्यय भी दरिद्रता को उत्पन्न करता है, क्योंकि अपर्याप्त आय होते हुए भी मनुष्य व्यर्थ के कार्यों में धन व्यय कर देता है और वे आवश्यकतायें पूरी नहीं हो पातीं, जिनके द्वारा शारीरिक एवं मानसिक क्षमता बनी रह सके। आधुनिक युग में यह तत्व दरिद्रता बढ़ाने में बड़ा महत्वपूर्ण होता जा रहा है। लोग अपनी अधिकांश आय सिनेमा, होटल, फैशन की वस्तुओं इत्यादि पर व्यय कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि भोजन एवं अन्य आवश्यकतायें उचित रूप से पूर्ण नहीं हो पातीं।

(viii) मद्यपान (Alcoholism)

मद्यपान दरिद्रता को बढ़ाता है। मद्यपान की आदत पड़ जाने पर मनुष्य लापरवाह एवं आलसी हो जाता है। मद्यपान के कारण शारीरिक, मानसिक

एवं नैतिक पतन हो जाता है। दुःख और मद्यपान का घनिष्ट सम्बन्ध है। ये एक दूसरे के सहायक हैं। मिलर्ड ने लिखा है, 'मद्यपान की आदत मनुष्य को अयोग्य एवं अनिपुण बनाती है, और अयोग्यता न्यून वेतन एवं अनियमित कार्य का आधार बनाती है, न्यून वेतन बुरे पर्यावरण एवं गन्दे घरों में रहने के लिए प्रोत्साहित (बाध्य) करता है, गन्दा पर्यावरण अधिक मद्यपान करने के लिये प्रोत्साहित करता है।"[1]

(ix) अग्नि (Fire)

आग लगना भी दरिद्रता को प्रोत्साहन मिलना है। कई बार अग्नि लगने के कारण सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है और अनेक व्यक्ति दरिद्र हो जाते हैं।

(x) जुआ खेलना (Gambling)

जुआ खेलने के कारण भी मनुष्य दरिद्र बना रहता है। जुआ मनुष्य को आलसी बना देता है और उसकी कार्यक्षमता को नष्ट कर देता है। जुआरी भाग्य पर विश्वास करने लगता है और कार्य में रुचि नहीं लेता।

(xi) उपजाऊपन (Fecundity)

स्त्रियों का उपजाऊ होना अर्थात् अधिक सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति होना भी दरिद्रता को उत्पन्न करता है। जिन लोगों के अधिक सन्तानें होती हैं, वे भी दरिद्र बन जाते हैं, और जो दरिद्र होते हैं, उनके अधिक सन्तानें होती हैं। *उपजाऊपन को निम्न कारक, जो कि दरिद्रता के कारण उत्पन्न होते हैं, और अधिक प्रोत्साहित करते हैं:—*

(अ) बाल विवाह (ब) घनी आबादी (स) अनैतिकता (द) अज्ञानता (य) विचित्र विश्वास एवं धारणायें।

(xii) अपराध (Crime)

अपराध अप्रत्यक्ष रूप से दरिद्रता को बढ़ाता है। जो व्यक्ति एक बार अपराध कर लेता है, उसे कोई भी सरलता से नौकरी नहीं देता और न ही कोई व्यक्ति उस पर विश्वास ही करता है। इस प्रकार वह धनोपार्जन नहीं कर पाता।

---

[1] "Indulgence in alcohol tends to inefficiency, inefficiency tends to low wages and irregular employment, low wages encourage bad housing and bad environment generally, bad environment encourages further indulgence in alcohol." Millard, C. K. "Cyclopaedia of Temperance, Prohibition and Public Morals", p. 189.

(xiii) बुढ़ापा (Old Age)

वृद्धावस्था के कारण व्यक्ति कार्य करने के अयोग्य हो जाता है। अनेक परिवारों की दरिद्रता का तात्कालिक कारण कमाने वाले का बूढ़ा हो जाना होता है।

(xiv) कमाने वाले की मृत्यु (Death of the Wage-earner)

कमाने वाले की मृत्यु होने के कारण आय समाप्त हो जाती है और शेष सदस्य दरिद्रता में अपने दिन बिताते हैं।

(२) भौतिक कारण (Physical Factors)

भौतिक पर्यावरण पर भी दरिद्रता या प्रचुरता आधारित होती है। भौतिक पर्यावरण के निम्न प्रमुख कारक दरिद्रता को उत्पन्न करते हैं—

(i) प्राकृतिक साधनों की कमी (Dearth of Natural Resources)

कुछ क्षेत्र प्राकृतिक उत्पादन की दृष्टि से व्यर्थ होते हैं। इन क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्ति अन्य उपजाऊ क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों की तुलना में दरिद्र होते हैं। पहाड़ी हिस्सों में रहने वाले साधारणतया दरिद्र होते हैं। रेगिस्तान में रहने वाले भी अधिक धन नहीं जोड़ पाते। उनके साधन सीमित होते हैं।

(ii) प्रतिकूल मौसम (Adverse Weather Conditions)

यदि फसल पकी हुई हो और वर्षा हो जाय या ओले गिर जायें, तो किसान की सारी आशाओं पर पानी फिर जाता है, उसकी कमाई मिट्टी में मिल जाती है, इस तरह वह गरीब और अधिक दरिद्र बन जाता है। प्रतिकूल मौसम दरिद्रता को प्रोत्साहन देता है।

(iii) प्राकृतिक विपदायें (Natural Disasters)

प्राकृतिक विपदायें व्यक्तियों को दरिद्र बनाने में अधिक सहायक होती हैं। नदियों में बाढ़ का आना, बिजली का गिरना, समुद्री तूफान, आग का लगना ज्वालामुखियों के उद्गार का विस्फोट होना, भूचाल का आना आदि प्रमुख प्राकृतिक विपदाय हैं।

(iv) नाशक कीट (Insect Pests)

किसानों को सदैव नाशक कीटों से युद्ध करते रहना पड़ता है। कई बार कीड़े तमाम जानवरों को समाप्त कर देते हैं। कीड़े ऐसी महामारी फैलाते हैं कि समूह के समूह नष्ट हो जाते हैं। इनका और दरिद्रता का घनिष्ट सम्बन्ध

है। टिड्डियों के दल के दल मनुष्य की गाढ़ी कमाई को चट कर जाने के लिये आक्रमण करते हैं। जिधर होकर ये निकल जाँय, उसी ओर दरिद्रता का साम्राज्य फैल जाता है।

(२) आर्थिक कारण (Economic Factors)

दरिद्रता का आर्थिक तत्वों से इतना अधिक सम्बन्ध है कि साधारणतया दरिद्रता को आर्थिक अर्थों में ही समझा जाता है, यहाँ तक कि इसका नाम ही निर्धनता पड़ गया है। इस कारण से आर्थिक कारण बड़े महत्वपूर्ण हैं। निम्न प्रमुख आर्थिक तत्व दरिद्रता को जन्म देते एवं बढ़ाते हैं—

(i) अपर्याप्त उत्पादन (Insufficient Production)

दरिद्रता का सबसे प्रमुख कारण अपर्याप्त उत्पादन है। जिन देशों में पर्याप्त उत्पादन ही न होगा वे समृद्धिशाली कैसे हो सकते हैं। भारतवर्ष में दरिद्रता का यह एक प्रमुख कारण है। यह भारत देश, जो खनिज पदार्थों का लोक है, जहाँ गङ्गा, यमुना एवं अन्य नदियाँ सिंचन करती हैं, जहाँ खेतों की हरियाली से पृथ्वी पर मखमल सी बिछी रहती है, जहाँ फल फूल मेवे एवं उपजाऊ भूमि सभी कुछ है जो प्रकृति धाम है जहाँ का कण कण स्वर्ण है, में भी दरिद्रता का साम्राज्य है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यहाँ उत्पादन के साधन नहीं हैं।

(ii) असमान वितरण (Unequal Distribution)

दरिद्रता का दूसरा प्रमुख कारण असमान वितरण है। एक ओर इने गिने पूँजीवादी करोड़ों रुपयों की आय प्रतिवर्ष प्राप्त करते हैं और दूसरी ओर यह संख्या हजारों में भी नहीं पहुँचती। प्रजातन्त्र के साथ साथ पूँजीवादी प्रथा जुड़ी हुई है। देश का अधिकांश धन पूँजीवादियों के हाथ में रहता है।

(iii) आर्थिक उतार चढ़ाव (Economic Depressions)

आर्थिक उतार चढ़ाव के कारण भी व्यापार में बड़ी हानियाँ होती हैं। आर्थिक उतार के समय में व्यापार बिलकुल ठण्डा पड़ जाता है और लोगों की आय एक दम गिर जाती है। इन आर्थिक उतारों के कारण दरिद्रता को बड़ा प्रोत्साहन मिलता है।

(iv) बेकारी (Unemployment)

बेकारी दरिद्रता को बढ़ाने का सबसे प्रमुख कारण है। यह कारण अकेला ही शेष कारणों के बराबर है। दरिद्रता के निकटतम कारणों में अधिकांश रूप से बेकारी ही है। ८० प्रतिशत दरिद्रता का उत्तरदायित्व बेकारी पर होता है। बेकारी पर विस्तार से हम अगले अध्याय में प्रकाश डालेंगे।

(४) सामाजिक कारण (Social Factors)

दरिद्रता को जन्म देने एवं बनाये रखने में समाज का भी बहुत बड़ा हाथ होता है। नई आर्थिक व्यवस्था जिस गति से परिवर्तित हुई है एव हो रही है, सामाजिक व्यवस्था उसकी तुलना मे बहुत पीछे है। सामाजिक सगठन आधुनिक परिस्थितियों के अनुरूप नहीं है। इसके कारण विभिन्न सस्थाय एक दूसरे के अनुकूल नहीं बन पाई हैं। यह तत्व भी दरिद्रता का एक कारण है। अब हम ऐसे कुछ सामाजिक सगठन सम्बन्धी प्रतिकूल तत्वों पर प्रकाश डालेंगे जो दरिद्रता को बनाये रखने मे सहायता करते हैं—

(i) शिक्षा व्यवस्था में कमी
(Shortcoming in Educational System)

शिक्षा व्यवस्था जब वर्तमान अवस्था के अनुसार नहीं होती तो बड़ी कठिनाई होती है। भारतवर्ष इसका ज्वलन्त उदाहरण है। लाखों विद्यार्थी बी० ए० और एम० ए० की उपाधियाँ लेकर विश्वविद्यालयों स निकलते हैं परन्तु वे व्यवहारिक जगत मे किसी भी काम के नहीं होते। आजकल एक ओर तो दिन प्रतिदिन विश्वविद्यालयों की सख्या बढ़ती जा रही है और दूसरी ओर शिक्षित बेकारों की सख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। सैद्धान्तिक ज्ञान के अतिरिक्त व्यवहारिक जीवन का इन्हें बिलकुल भी ज्ञान नहीं होता। इन सबका प्रभाव यह होता है कि ये नवयुवक अपने जीवन के प्रारम्भ से ही निरुत्साहित हो जाते हैं और शनै शनै इनका आत्मविश्वास समाप्त हो जाता है। यह उनकी कार्य-क्षमता को नष्ट कर देता है।

(ii) गन्दी एवं घनी बस्तियाँ (Overcrowded Slums)

नवीन आर्थिक व्यवस्था के कारण बड़े बड़े नगरो का निर्माण हो गया है। इन नगरों मे लाखों की संख्या में लोग रहते हैं, परन्तु इनके रहने की कोई उचित व्यवस्था नहीं है। नगरो में मकानों के किराये इतने अधिक होते हैं कि लोगों को गन्दी एवं घनी बस्तियों मे रहने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यह सामाजिक व्यवस्था का दोष है। इन गन्दे मकानों में रहने के कारण ये लोग अपने स्वास्थ्य की रक्षा नहीं कर पाते। स्वास्थ्य गिरने के कारण इनकी कार्यक्षमता भी गिर जाती है। कार्यक्षमता गिर जाने के कारण आय कम हो जाती है। इस प्रकार दरिद्रता का चक्र चलता रहता है।

(iii) स्वास्थ्य रक्षण का कुप्रबन्ध
(Mismanagement of Health Measures)

बड़े बड़े कल कारखाने खुल गये हैं, परन्तु इन कारखानों में स्वास्थ्य रक्षण

का कोई भी प्रबन्ध नहीं है, इसके कारण अनेक दुर्घटनायें होती रहती हैं और लोग कार्य करने के अयोग्य हो जाते हैं, इसके कारण दरिद्रता बढ़ती है।

(५) राजनैतिक कारण (Political Factors)

दरिद्रता राज्य पर भी आधारित होती है। राज्य के स्वरूप इस बात का निर्णय करते हैं कि किसी विशिष्ट देश में किस प्रकार की आर्थिक व्यवस्था पाई जायेगी। राजनैतिक कारणों में प्रमुख कारण निम्न हैं:—

(i) युद्ध (War)

युद्ध भी दरिद्रता को प्रोत्साहन देता है। युद्ध समाज के बलिष्ठ एवं योग्य व्यक्तियों को समाप्त कर देता है और निकम्मे लोग समाज में बच रहते हैं जो कि उत्पादन उचित प्रकार से नहीं कर पाते हैं। युद्ध व्यापार को बिलकुल समाप्त कर देता है। राष्ट्रों की अधिकांश सम्पत्ति युद्ध में खर्च हो जाती है। युद्ध के कारण सामाजिक व्यवस्था विघटित हो जाती है। इन सब कारणों से दरिद्रता बढ़ती है।

(ii) राज्य का स्वरूप (Form of the Government)

दरिद्रता राज्य के स्वरूप से भी सम्बन्धित है। कल्याणकारी राज्यों (Welfare States) में दरिद्रता को समाप्त करने के प्रयत्न किये जाते हैं परन्तु निरंकुश एवं व्यक्तिवादी राज्यों में दरिद्रता की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। समाजवादी देशों में ऐसी अनेक पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं जिनके द्वारा दरिद्रता समाप्त हो सके।

(६) विविध कारण (Miscellaneous Factors)

दरिद्रता के और भी अनेक छोटे मोटे कारण हैं। वास्तव में दरिद्रता का सबसे बड़ा कारण स्वयं दरिद्रता है। दरिद्रता का जाल इस प्रकार का होता है कि जो इसमें एक बार फँस गया, फिर जीवन भर नहीं निकल सकता। श्री ज्ञान भारिल्ल[1] ने इस तथ्य को कितनी सुन्दरता से निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया है.—

> "आह ! दरिद्रता स्वयं दरिद्रता को देती अभिशाप है,
> यह ऐसी बीमारी है जो बढ़ती अपने आप है।
> सामाजिक बुराइयों का कुचक्र सा बनता जाता है,
> दरिद्रता बढ़ती जाती है, अन्त न कोई आता है।"

---

[1] आपने इसकी रचना विशेष रूप से इस पुस्तक के लिये की है। आपकी कविताओं का संग्रह 'आकाश कुसुम' है।

दरिद्रता के दुष्परिणाम
(Consequences of Poverty)

दरिद्रता के विषय में हम काफी प्रकाश डाल चुके हैं। दरिद्रता का व्यक्ति एवं समाज दोनों पर ही बड़ा दुष्परिणाम होता है। दरिद्रता वह विष है जो समाज को नष्ट कर देता है।

दरिद्रता व्यक्ति के जीवन के सब सुखों को छीन लेती है। व्यक्ति क्षमताहीन एवं कर्तव्यहीन होने के लिये बाध्य हो जाता है। उसका जीवन जलती हुई चिता के समान हो जाता है। कहावत प्रसिद्ध है कि चिन्ता और चिता दोनों ही समान हैं। दरिद्रता मनुष्य को सदैव चिन्ताग्रस्त रखती है। दरिद्रता के इस स्वरूप का चित्रण श्री शिवमङ्गलसिंह 'सुमन' ने निम्न पंक्तियों में बड़ी सुन्दरता से किया है —

"मधुबाला का प्यार उन्हें क्या ?
स्वप्नों का संसार उन्हें क्या ?
चिर अभावमय जिसका जीवन
जलता हुआ श्मशान,
अभी कहाँ मैं गा पाया हूँ
अपने जीवन गान।"

समाज पर भी दरिद्रता का प्रभाव बड़ा भयंकर पड़ता है। समाज अनैतिकता से पूर्ण हो जाता है। समाज में असीम विघटन की दशा पाई जाती है। घृणा एवं द्वेष का बोल बाला रहता है। समाज प्रगति के पथ पर नहीं चल पाता। समाज के विभिन्न वर्गों में असीम संघर्ष पाया जाता है। जब समाज में दरिद्रता अधिक मात्रा में पाई जाती है, तो वह क्रान्ति को जन्म देती है। अधिकांश क्रान्तियाँ दरिद्रता एवं आर्थिक विषमता के कारण ही हुई हैं। "अधिकांश क्रान्तियों के लिये सामूहिक दरिद्रता ही उत्तरदायी रही है।"[1]

दरिद्रता को दूर करने के उपाय
(Measures to Banish Poverty)

दरिद्रता को दूर करने के अनेक उपाय हैं। अब हम उसके प्रमुख उपायों पर विचार करेंगे।

---

[1] "Mass poverty has been responsible for most revolutions." Encyclopaedia of Social Sciences, Vol. xii, p. 290

(१) समाज द्वारा किये जाने वाले उपाय

दरिद्रता को समाप्त करने के लिये समाज को अनेक उपाय करने पड़ेंगे। दरिद्रता बड़ी विषम समस्या है और उसको समाप्त करने का उत्तरदायित्व समाज पर है। व्यक्ति ही केवल अपनी दरिद्रता के लिये उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

(i) बेकारी को दूर करना

बेकारी दरिद्रता का प्रमुख कारण है। सर्व प्रथम इसको समाप्त किया जाना चाहिए। भारतवर्ष में काम दिलाऊ कार्यालयों (Employment Exchange) में १९५१ ई० में ३.३७ लाख, १९५३ ई० में ५.२२ लाख और १९५५ ई० में ६.९२ लाख लोगों ने अपने नाम लिखाये। इससे बेकारी का अनुमान लगाया जा सकता है। योजना आयोग (Planning Commission) के अनुसार ८ से १० प्रतिशत तक बेकारी भारत के नगरों में पाई जाती है। भारत में बेकारी को दूर करने के लिये बड़े प्रयत्न किये जा रहे हैं।

(ii) बेकारी बीमा योजना

समाज को बेकारी बीमा योजना भी लागू करनी चाहिए क्योंकि इसके ही द्वारा हम बेकार लोगों की तात्कालिक सहायता कर सकते हैं।

(iii) उत्पादन में वृद्धि

उत्पादन में वृद्धि किये बिना दरिद्रता को समाप्त नहीं किया जा सकता। भारत में उत्पादन को बढ़ाने के लिये विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

(iv) न्यूनतम मजदूरी का निश्चय

राज्य को न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर देनी चाहिए। भारतवर्ष में अधिकांश राज्यों में इसे निश्चित कर दिया गया है परन्तु मिल मालिक इसे देने में अनेक बाधायें खड़ी करते हैं। सरकार को चाहिए कि इसे कार्यरूप में परिणित करने के लिये सख्त से सख्त कदम उठाये।

(v) सामाजिक बीमा योजना

समाज का यह उत्तरदायित्व है कि वह प्रत्येक सदस्य की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रबन्ध करे। यह प्रबन्ध सामाजिक बीमा योजना के द्वारा ही किया जा सकता है।

(vi) मद्य निषेध

सरकार को मद्य निषेध अधिनियम पारित करना चाहिये और कड़ाई के

साथ इसे लागू करना चाहिये । मद्यपान दरिद्रता का एक बहुत बड़ा कारण है। भारतवर्ष में कुछ राज्यों में इस कानून को पारित किया गया है, परन्तु उनमें अनेक दोष हैं।

(vii) रहने की समुचित व्यवस्था

दरिद्रता को दूर करने के लिये रहने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये गन्दे पर्यावरण मे रहते हुये मनुष्य कभी भी सम्पन्न नहीं हो सकता। केन्द्रीय तथा अन्य राज्य सरकारें इस ओर कुछ ध्यान दे रही हैं।

(viii) यान्त्रिक शिक्षा

यान्त्रिक शिक्षा भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना उत्पादन नहीं बढ़ सकता।

(ix) अनिवार्य तथा निशुल्क शिक्षा

शिक्षा अनिवार्य तथा निशुल्क होनी चाहिये। अज्ञानता के रहते हुये मनुष्य कभी भी प्रगति के पथ पर नहीं बढ़ सकता।

(x) भूमि स्वामित्व की समाप्ति

भूमि पर कृषक का अधिकार होना चाहिये। भूमि पर एकाधिकार होने के कारण अधिकांश व्यक्ति निर्धन बने रहते हैं।

दरिद्रता को दूर करने के लिये और भी अनेक तात्कालिक उपाय बताये जा सकते हैं, परन्तु दरिद्रता सामाजिक व्यवस्था से अधिक सम्बन्धित है। समाज की व्यवस्था में ही परिवर्तन होना चाहिये। राउन्ट्री और लेवर्स ने दरिद्रता और कल्याणकारी राज्य के सम्बन्धों का अध्ययन करते हुये लिखा है कि दरिद्रता कल्याणकारी राज्य में काफी कम होगई है। उन्होंने लिखा है, "हम एक प्रमुख विषय का विवरण देना चाहते हैं और वह यह है कि दरिद्रता का कारण 'बेकारी' समाप्त हो गया है।"[1] इनके प्रथम (१८६६ ई०) और द्वितीय (१६३६ ई०) पर्यालोकनों मे बेकारी दरिद्रता का एक प्रमुख कारण निकला था, परन्तु तीसरे पर्यालोकन (१६५१ ई०) में यह कारण बिल्कुल नहीं के बराबर रहा। इसका प्रमुख कारण राज्य व्यवस्था में परिवर्तन है। रूस तथा अन्य साम्यवादी देश यह दावा करते हैं कि उनके देशों में दरिद्रता समाप्त हो गई है। यह दावा सत्य है या नहीं, इसके वाद विवाद में हम नहीं पड़ना

[1] "One final matter to which we wish to refer is the disappearance of unemployment as a cause of poverty." Rowntree, B Seebohm and Lavers, G R, 'Poverty and the welfare State,' Longmans, Green and Co, (1951), p 45

चाहते, परन्तु एक बात निश्चित है कि यह प्रश्न हमारे सामने बड़ा जटिल है। यह प्रश्न समाजशास्त्र को सदैव चुनौती देता रहा है एवं देता रहेगा कि दरिद्रता का नाश करने के लिये सम्पूर्ण समाजिक पुनर्गठन की आवश्यकता है या नहीं।

दरिद्रता को दूर करने में व्यक्ति को भी बहुत बड़ा भाग लेना होगा व्यक्ति को अपनी आदतें सुधारनी होंगी और परिश्रमी बनना होगा। श्रमिक संघ एवं अन्य सहकारी समितियाँ भी दरिद्रता को दूर करने में बड़ी सहायता पहुँचा सकती हैं।

प्रश्न

१ दरिद्रता, बेकारी और अपराध का सम्बन्ध बताइये।

(Bring out the relationship between poverty, unemployment and crime.) Agra, 1953

२. निर्धनता के मुख्य कारण क्या हैं और आप इसके निवारण या सुधार के क्या उपाय प्रस्तुत कर सकते हैं?

(What are the main causes of poverty and what preventive or remedial measures would you suggest?) Agra, 1950 and Rajputana, 1955.

३. दरिद्रता, व्यक्ति और समाज को, किस प्रकार प्रभावित करती है और सामाजिक व्याधि की दशा किस प्रकार उत्पन्न करती है?

(How does poverty affect an individual and society, and create conditions of social pathology?)

Rajp. utana, 1953.

४ एक समाज में कौन से तत्व दरिद्रता की ओर ले जाते हैं? भारतीय दशाओं का विशेष ध्यान रखते हुए उपचार बताइये।

(What are the factors that lead to poverty in a society? Suggest remedies with particular reference to Indian conditions). Rajputana, 1954.

SELECTED READINGS

1. Gillin, Dittmer, Colbert and Kastler, 'Social Problems' Chapter XVII

2. Gillin and Gillin, 'Cultural Sociology,' chapter XXX.

3 Barnes, 'Society in Transition,' chapter XIII

अध्याय २१

बेकारी
(Unemployment)

"आदमी को आदमियत से गिरा देती है यह
और पथ भ्रष्ट, धीर को भी बना देती है यह।
जिन्दगी के खेल में बिल्कुल हरा देती है यह,
और तो क्या आत्महत्या तक सिखा देती है यह।"[1]

बेकारी आधुनिक युग की एक विकट समस्या है। १९२९ ई० से १९३७ ई० तक बेकारी विकराल रूप धारण किये रही। संसार के समस्त देशों में त्राहि त्राहि मच गई। व्यापार-अवसाद (Depression of trade) चरम सीमा पर पहुँच गया। लाखों व्यक्ति भूखे मरने लगे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (U. S. A.) जैसे समृद्धिशाली देश में भी सन् १९३२ में १ करोड़ ४० लाख व्यक्ति बेकार हो गये। बेकारी ने स्वाभिमानी स्त्री पुरुषों को भीख मांगने के लिये विवश कर दिया। छोटे २ बच्चे भूख प्यास से तड़पते थे और उनके माता पिता दिल मसोस कर रह जाते थे। भारतवर्ष में भी यही दशा थी। द्वितीय महायुद्ध ने इस समस्या को कुछ समय के लिये कम कर दिया। युद्ध प्रारम्भ हुआ और लोग अनेक धन्धों में लग गये, परन्तु युद्ध के समाप्त होते ही बेकारी की समस्या ने फिर उग्र रूप धारण कर लिया। भारतवर्ष में यह समस्या आजकल बड़ी भयंकर है। बेकारी सामाजिक व्यवस्था को नष्ट कर देती है और जीवन को नरक बना देती है। इससे पूर्व कि हम इस समस्या को सुलझाने के लिये सुझाव दें, हम बेकारी की समस्या पर प्रकाश डालेंगे।

बेकारी का अर्थ (Meaning of Unemployment)

बेकारी उस दशा को कहते हैं जिसमें कार्य करने योग्य व्यक्तियों को कार्य करने की इच्छा होते हुए भी कार्य नहीं मिलता है। कार्ल प्रिग्राम (Karl

[1] श्री मदन मोहन व्यास द्वारा रचित, विशेषतया इस पुस्तक के लिये।

Pribram) ने बेकारी की परिभाषा करते हुए लिखा है, "बेकारी श्रम बाजार की वह दशा है जिसमें श्रम शक्ति की पूर्ति कार्य करने के स्थानों की संख्या से अधिक होती है।"[1] फ्लोरेन्स लिखते हैं, "बेकारी उन व्यक्तियों की निष्क्रियता से परिभाषित की गई है जो कार्य करने के योग्य एवं इच्छुक हैं।"[2]

बेकारी (Unemployment) रोजगारी (Employment) का विरोधी शब्द है। रोजगारी से हमारा अभिप्राय उस दशा से है जबकि कोई व्यक्ति धन या और किसी वस्तु का उपार्जन अपनी श्रम शक्ति द्वारा करे। एक अध्यापक जब अपने बच्चों को निशुल्क पढ़ाता है, या एक पत्नी प्रातः काल से लेकर अर्धरात्रि तक घर के कार्यों में जुटी रहती है तो इसे रोजगारी नहीं कहेंगे। वह अध्यापक जब स्कूल में सशुल्क पढ़ाता है या ट्यूशन करता है या वही स्त्री जब किसी कल कारखाने में या अन्य स्थान पर कार्य करती है और धनोपार्जन करती है तो इन्हें हम रोजगार में लगे हुए कहेंगे। बेकारी इसके विपरीत अर्थों में प्रयोग होती है। यह नकारात्मक आर्थिक प्रक्रिया है, क्योंकि एक बेकार व्यक्ति वह होता है, जो कि इच्छा, शक्ति एवं प्रयत्न करने के 'उपरान्त' भी बिना किसी अपने दोष के कार्य नहीं कर पाता है या उसे वह अवसर प्राप्त नहीं होता कि वह कार्य कर सके। ऐसा वस्तुओं के उत्पादन के संगठन में मौलिक दोष होने के कारण होता है। बेकार व्यक्तियों में हम उन लोगों की गणना नहीं करते, जो कि स्थायी या अस्थायी रूप से कार्य करने के अयोग्य होते हैं, जैसे रोगी, वृद्ध, मानसिक रूप से अयोग्य, पागल और घायल इत्यादि। इनमें हम उन लोगों की भी गणना नहीं करते जो कि कार्य करने के योग्य होते हुए भी कार्य करने की इच्छा नहीं रखते। *इस प्रकार बेकार व्यक्ति वही समझे जाते हैं जो योग्य होते हैं और कार्य करने की इच्छा रखते हैं और कार्य ढूंढते भी हैं, परन्तु इस पर भी कार्य नहीं मिलता।* गिलिन तथा अन्य, ने बेकारी के लिये एक और शर्त बढ़ा दी है। उन्होंने बेकारी की परिभाषा करते हुए लिखा है, "बेकारी वह दशा है, जिसमें एक समर्थ एवं कार्य इच्छुक व्यक्ति, जो कि साधारणतया स्वयं के लिये एवं अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अपनी कमाई

[1] "Unemployment is a condition of the labour market in which the supply of labour power is greater than the number of available openings" Karl Pribram, Encyclopaedia of the Social Sciences,' Volume XV, p 147

[2] "Unemployment has been defined as the idleness of persons able and willing to work" P Sargant Florence, 'Labour'.

पर आश्रित रहता है, लाभप्रद रोजगार पाने में असमर्थ रहता है।"[1] लाभप्रद रोजगार का अभिप्राय वह रोजगार है जिससे धन की प्राप्ति हो।

बेकारी के प्रकार (Kinds of Unemployment)

चैपमेन ने बेकारी के दो प्रकार बताये हैं। पहिली प्रातीतिक (Subjective) बेकारी और दूसरी वैषयिक (Objective) बेकारी। प्रातीतिक बेकारी वह बेकारी है जो मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक दोषों के कारण उत्पन्न होती है। वैषयिक बेकारी वह बेकारी है जो उन कारणों से उत्पन्न होती है, जो मनुष्य के नियन्त्रण से परे होते हैं।

वैषयिक बेकारी को और भी भागों में बाँटा जा सकता है, उनमें से प्रमुख निम्न हैं —

(१) मौसमी (Seasonal)
(२) चक्रवत (Cyclical)
(३) संरचनात्मक (Structural)
(४) साधारण (Normal)

(१) मौसमी बेकारी (Seasonal Unemployment)

मौसमी बेकारी वह बेकारी है जो उत्पादन की मौसमी प्रकृति के कारण उत्पन्न होती है। बहुत से उत्पादन के कार्य केवल कुछ मौसमों में ही होते हैं और अन्य मौसम में नहीं होते। उदाहरण के लिये शक्कर का उत्पादन, अचार मुरब्बों का उत्पादन, बिस्कुट उद्योग इत्यादि। मौसमी बेकारी के अन्तर्गत कृषि आती है। भारतवर्ष में अधिकांश रूप से कृषि होती है इसलिये यहाँ पर मौसमी बेकारी की समस्या बड़ी भयंकर है।

(२) चक्रवत बेकारी (Cyclical Unemployment)

चक्रवत बेकारी वह बेकारी है जो आर्थिक संकट एवं उतार चढ़ाव के कारण उत्पन्न होती है। चूंकि यह उतार चढ़ाव एक क्रम से आते हैं, इसलिये इन्हें चक्रवत कहते हैं जिस प्रकार एक साईकिल के पहिये का एक भाग नीचे जाता है और फिर ऊपर आता है, इसी प्रकार व्यापार में भी तेजी मन्दी आती रहती है। इन्हें आर्थिक उतार चढ़ाव कहते हैं। इस प्रकार की बेकारी का

[1] "Unemployment is a condition in which a person, able and willing to work and normally dependent upon his earnings to provide the necessities of life for himself and family, is unable to obtain gainful employment." Gillin, John Lewis, Dittmer, Clarence G. Colbert, Roy J., and Kastler, Norman M., 'Social Problems,' Appleton Century Crofts, Inc. New York, (Fourth Ed.) p. 200.

प्रभाव अधिकतर उन उद्योगों पर होता है, जो मशीनें इत्यादि का उत्पादन करते हैं।

(३) संरचनात्मक बेकारी (Structural Unemployment)

संरचनात्मक बेकारी वह बेकारी है, जो आर्थिक संरचना (Economic Superstructure) में दोषों के कारण उत्पन्न होती है। श्रम की आवश्यकता अपनी दिशा बदलती रहती है। कभी किसी उद्योग का विकास होता है तो कभी किसी का। जिस उद्योग का ह्रास होता है, उसके श्रमिक बेकार हो जाते हैं, परन्तु इन श्रमिकों को यदि बढ़ते हुए उद्योग में लगा दिया जाय, तो बेकारी की समस्या उत्पन्न ही न होगी। व्यवहारिक रूप में इस प्रकार नहीं हो पाता है। एक ओर श्रमिक बेकार घूमते हैं, तो दूसरी ओर किसी उद्योग में श्रमिकों की बड़ी कमी बनी रहती है। कानपुर में सूती मिल मजदूरों की कमी रहती है और बम्बई की मिलों में छटनी के कारण बहुत से श्रमिक बेकारी से ग्रस्त रहते हैं। यदि ये ही मजदूर कानपुर चले जायें तो बेकारी उत्पन्न ही न होगी।

(४) साधारण बेकारी (Nomal Unemployment)

साधारण बेकारी वह बेकारी है जो किसी स्वतन्त्र श्रम बाजार में पाई जाती है। इसे समाप्त किया ही नहीं जा सकता। कार्य करने वालों की एक से तीन प्रतिशत तक संख्या यदि बेकार रहे, तो उसकी कोई चिन्ता नहीं की जाती, क्योंकि यह साधारण बेकारी है।

बेकारी के कारण
(Causes of Unemployment)

बिवरिज (Beveridge)[1] ने बेकारी के तीन प्रमुख कारण बताये हैं। पहिला कारण माँग (Demand) का गिर जाना है। दूसरा कारण माँग का निर्देशन उचित दिशा में न होना है। अन्तिम कारण श्रम बाजार का असंगठित होना है।

बेकारी का एक प्रमुख कारण मशीनों का उपयोग है। मशीनों का उपयोग करने से श्रम की आवश्यकता कम हो जाती है और लोग बेकार हो जाते हैं। आधुनिक युग में अभिनवीकरण (Rationalization) का अधिकाधिक प्रयोग हो रहा है। अभिनवीकरण का अभिप्राय यह है कि उद्योग धन्धों में आधुनिकतम मशीनों का प्रयोग किया जाय और अन्य वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करके श्रम को कम से कम प्रयोग में लाया जाय। इस प्रकार मशीनों की संख्या बढ़ती

[1] William Beveridge, 'Full Employment in a Free Society'.

जाती है और श्रमिकों की आवश्यक्ता कम होती जाती है। किसी ने उचित ही लिखा है:—

"मशीनों की भयंकर बाढ़ जो दुनिया में आई है,
इसी ने विश्व बेकारी की विपदा सर पै ढाई है।"

एडम स्मिथ (Adam Smith) का मत है कि बेकारी पूँजी की राशि के कम होने पर आधारित है। कीन्स (Keynes) ने लिखा है कि बेकारी जन-समूह के अधिक धन बचाने की प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न होती है। जितना अधिक धन जनता व्यय करेगी, उतनी ही माँग अधिक बढ़ेगी और जितनी माँग अधिक बढ़ेगी, उतना ही रोजगार बढ़ेगा और बेकारी कम होगी। इसके विपरीत जितना लोग कम व्यय करेंगे उतनी ही माँग कम होगी और उतनी ही बेकारी अधिक बढ़ेगी।

बेकारी के अनेक कारण होते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न कारण होते हैं। ये कारण विशेष परिस्थिति, देश एवं काल पर आधारित रहते हैं। भारतवर्ष की बेकारी की समस्या पर प्रकाश डालते समय हम इन पर विशेष रूप से विचार करेंगे।

बेकारी दूर करने के उपाय
(Remedies to remove Unemployment)

बेकारी दूर करने के लिये हमें अनेक उपायों को अपनाना पड़ेगा। प्रमुख उपाय निम्न हैं.—

(१) पर्याप्त माँग के स्तर को बनाये रखना
(Maintenance of a level of sufficient Demand)

बेकारी को दूर करने के लिये माँग के स्तर को इतना ऊंचा बनाये रखना चाहिये कि समस्त श्रमिक काम में लगे रहें। रोजगारी के स्तर का निश्चय उत्पादन के स्तर द्वारा होता है। उत्पादन का स्तर माँग पर आधारित है, इसलिये पूर्ण रोजगारी बनाये रखने के लिये माँग को बनाये रखना चाहिये। माँग को बनाये रखने के लिए उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति बढ़ाना आवश्यक है। उपभोग की वस्तुओं की माँग को बढ़ाने से ही कार्य नहीं चलेगा बल्कि अन्य साधन भी अपनाने पड़ेंगे। सरकार प्रत्यक्ष कार्यक्रमों द्वारा भी माँग को बढ़ा सकती है। सर्वप्रथम सरकार अपना व्यय बढ़ावे। यह व्यय विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ाना चाहिये। सड़कें बनवाना, जङ्गलों की रक्षा करना, नहरें खुदवाना, बाँध बनवाना इत्यादि कार्य सरकार के व्यय को बढ़ायगे और साथ ही साथ

उत्पादन को भी प्रोत्साहित करेंगे। दूसरा प्रत्यक्ष उपाय सरकार के पास उपभोग पर वैयक्तिक व्यय को बढ़ाने का है। सरकार इन्कमटैक्स (आयकर) कम करके लोगों के पास अधिक धन व्यय करने के लिये छोड़ सकती है। सरकार सामाजिक सुरक्षा (Social security) एवं सहायता (Assistance) के रूप में धन जनता में वितरण कर सकती है। इस धन को लोग व्यय करेंगे, जिससे कि माँग बढ़ेगी। सरकार को माँग को प्रोत्साहित करने के लिए अन्य कर भी कम करने चाहिए।[1]

(२) व्यक्तिगत विनियोग को प्रोत्साहन

(Encouragement to private Investment)

बेकारी दूर करने के लिये व्यक्तिगत विनियोग को प्रोत्साहन देना चाहिये। व्यक्तिगत विनियोग को बढ़ाने के निम्न दो मार्ग हैं:—

(अ) उधार की सुविधा को बढ़ाना चाहिये।

(ब) ब्याज की दर को कम करना चाहिये।

इनके अतिरिक्त कर घटाने से भी व्यक्तिगत विनियोग को प्रोत्साहन मिलता है। कनाडा ने इस प्रकार का मार्ग अपनाया है। व्यक्तिगत कम्पनियाँ, जो भी धन अनुसंधान पर व्यय करती हैं, उस पर कोई भी कर नहीं लगाया जाता। नार्वे और स्वीडन मे उस लाभ पर कोई कर नहीं लगाया जाता, जो कि विशिष्ट समय में विनियोग कोष के रूप में कार्य में आता है।

सरकार धन की सहायता द्वारा भी व्यक्तिगत विनियोग को प्रोत्साहित कर सकती है। फिनलैण्ड में औद्योगिक संस्थाओं को इस प्रकार की सहायता करना सन् १९३९ से ही प्रारम्भ कर दिया गया है।

(३) सार्वजनिक विनियोग (Public Investment)

जब व्यक्तिगत विनियोग को प्रोत्साहित करने से काम नहीं चलता तो सार्वजनिक विनियोग का सहारा लेना पड़ता है। बेकारी को कम करने के लिये सार्वजनिक निर्माण कार्यों (Public Works) को बढ़ाना पड़ता है। सन् १९४७ मे इटली की सरकार ने ६५ हजार मिलियन लायर (65000 Million Lire) अत्यावश्यक सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिये प्रदान किये, जिससे कि लोगों को कार्य मिल सके और बेकारी कम हो सके।

---

[1] See 'Fourth Report of the International Labour Organisation to the United Nations, (Geneva, I L O 1950), and also United Nations, Department of Economic Affairs 'National and International Measures for full Employment Report by a Group of Experts appointed by the Secretary General', New York, Dec, 1949).

(४) न्यूनतम मजदूरी कानून (Minimum Wage Legislation)

उपभोग को प्रोत्साहन देने के हेतु न्यूनतम मजदूरी कानून का निर्माण करना चाहिये। यह ध्यान में रखना चाहिये कि मजदूरी की दर बहुत अधिक बढ़ाने से विनियोग को धक्का लगता है।

(५) कार्य का समय कम करना (Shortening of Working Time)

बेकारी को दूर करने के लिये कार्य करने के समय को कम करना चाहिये, इससे अधिक लोगो को कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है।

(६) मूल्य कम करना (Reduction in Prices)

सरकार मूल्य को कम करके भी माँग को बढ़ा सकती है और उत्पादन को प्रोत्साहित कर सकती है।

(७) काम दिलाऊ कार्यालय (Employment Exchanges)

सरचनात्मक बेकारी को काम दिलाऊ कार्यालयों द्वारा दूर किया जा सकता है। काम दिलाऊ कार्यालय जहाँ श्रमिको की माँग है, वहाँ उन्हें काम दिला सकता है। देश के प्रत्येक भाग से इन कार्यालयो के पास पूर्ण सूचनाये आती रहती हैं और उन सूचनाओं के आधार पर ये श्रमिकों की सेवा कर सकते हैं और बेकारी दूर कर सकते हैं।

बेकारी दूर करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय समितियों द्वारा योजनायें

बेकारी दूर करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय समितियों ने भी कुछ उपाय अपनाये हैं। उनमें स प्रमुख निम्न हैं —

(अ) औद्योगिक सहायता (Technical Assistance)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन (I. L. O.) अनेक प्रकार से सहायता करता है। अन्तर्राष्ट्रीय धन सम्बन्धी कोष (International Monetary Fund) मुद्रा, बैंकिंग एव अन्य इनसे सम्बन्धित विषयों में राय देता है। खाद्य एव कृषि संगठन (Food and Agricultural Organization) भी कृषि के उत्पादन बढ़ाने के सम्बन्ध में परामर्श देता है।

(ब) स्थानान्तरण (Migration)

अन्तर्राष्ट्रीय स्थानान्तरण भी बेकारी को कम कर सकता है। संसार के जिन भागों में जनसख्या अधिक ह और कार्य कम है वे दूसरे भागों में, जहाँ पर कार्य अधिक है, जाकर बस सकते हैं।

(स) ऋण और सहायता (Loans and Assistance)

जिन देशों में धन की कमी होती है, उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय सहायता मिल जाती है। पुनर्निर्माण एवं विस्तार का अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank for Reconstruction and Development) इस कार्य में बड़ी सहायता पहुँचाता है।

(द) व्यापार को प्रोत्साहन (Promotion of Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक सगठन (International Trade Organisation) का निर्माण किया गया है। इस संगठन के कारण अनेक देशों को बड़ा लाभ पहुँचा है।

भारत में बेकारी
(Unemployment in India)

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। औद्योगीकरण (Industrialisation) अभी हाल म ही प्रारम्भ हुआ है। भारत की आर्थिक परिस्थिति यूरोपीय देशों स भिन्न है। जिस प्रकार भारत की आर्थिक परिस्थितियाँ अन्य प्रगतिशील देशों की आर्थिक परिस्थितियों से भिन्न है, उसी प्रकार बेकारी की समस्या का भी स्वरूप अन्य देशों की बेकारी की समस्या से भिन्न है। जो देश अच्छी औद्योगिक उन्नति कर चुके हैं, वहाँ पर बेकारी का प्रश्न अधिकांश रूप से औद्योगिक कर्मचारियों पर ही निर्भर है। भारतवर्ष में पचीस करोड़ जनसख्या में से केवल साढे तीन करोड़ लोग सगठित एवं असगठित उद्योगों म काम करते हैं जब कि शेष लोग कृषि पर आधारित हैं। अत कृषि सम्बन्धी बेकारी भारत की एक विचित्र समस्या है। औद्योगिक बेकारी और कृषि सम्बन्धी बेकारी के अतिरिक्त भारत में एक और विचित्र प्रकार की बेकारी पाई जाती है, जो कि देश के शिक्षित समुदाय स सम्बन्धित है। इस शिक्षितो में बेकारी के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार भारत मे बेकारी की समस्या पर विचार करने से पूर्व विशिष्ट प्रकार की बेकारियों पर विचार करना आवश्यक है।

कृषि सम्बन्धी बेकारी (Agricultural Unemployment)

भारतवर्ष की अधिकांश जनसख्या कृषि पर आधारित है। दस में से नौ व्यक्ति किसी न किसी रूप म कृषि पर निर्भर हैं। कृषि का उत्पादन अन्य उद्योगों की तुलना में बहुत कम है। भारत कृषि प्रधान देश होते हुए भी इस उद्यम में विशेष उन्नति न कर सका, इसके परिणामस्वरूप यह उद्यम भी इतना

समृद्ध नहीं जिससे कि इसमें काफी आदमियों को रोजगार मिल सके। कृषि मे इस प्रकार की अवस्था होने के निम्न कारण हैं —

(१) जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि

भारत की जनसख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। 1½ प्रतिशत अर्थात् ४५ लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष बढ़ जाते हे। इस बढ़ती हुई जनसंख्या को नये धन्धों के न होने के कारण कृषि पर ही निर्भर होना पड़ता हे।

(२) भूमि की सीमितता

भूमि सीमित है और करीब करीब सारी ही उपजाऊ भूमि पर खेती हो रही है। यह बढ़ती हुई जनसख्या भूमि के लिए अतिरिक्त भार है। जितने अधिक लोग बढ़ते जाते है, उतनी ही इन व्यक्तियों की उपयोगिता कम होती जाती हे। जिस कार्य को दो व्यक्ति कर सकते हे, उस पर चार व्यक्ति लगे हुए हैं।

(३) खेती की मौसमी प्रकृति

खेती की प्रकृति मौसमी है अर्थात् इन लोगों को कुछ दिनों काम रहता हे और शेष दिन बिलकुल बेकार रहते हैं। वर्ष के अधिकाश भाग मे कृषक बेकार से रहते है। डा० राधाकमल मुकर्जी ने अनुमान लगाया है कि उत्तरी भारत में एक कृषक को वर्ष में दो सौ दिन से अधिक समय के लिए रोजगार नहीं मिलता है, जब कि खाली मौसम मे दिन भर मे उस केवल एक या दो घण्टे ही काम करना पड़ता है। मद्रास राज्य मे चावल की एक फसल के लिये केवल दस सप्ताह, दो फसल के लिये सोलह सप्ताह और अन्य वस्तुओं एवं तिलहन के लिए तीन सप्ताह या चार सप्ताह वर्ष भर में कार्य करना पड़ता है।[1] उत्तर प्रदेश सरकार के पर्यावलोकन के अनुसार २४८ से २८० दिन वर्ष मे उन क्षेत्रों मे काम करना पड़ता है जहाँ पर नहरें है और पूर्वी क्षेत्रों में वर्ष मे केवल तीन या चार मास ही काम करना पड़ता है।[2] डा० साल्टर (Salter) के अनुसार दक्षिणी भारत का किसान वर्ष

[1] Asian Regional Conference, Ceylon (January 1950) Report IV, 'Agricultural Wages and Incomes of Primary Producers' (I L O Geneva) p 15

[2] Government of the United Provinces, Department of Economics and Statistics 'Rural Wages in the United Provinces A study of the Material Collected during the seventh Quinquennial Enquiry into Rural Wages, Conducted in December 1944, (Allahabad, 1947), pp 115 116.

में केवल पाँच महीने के लिये व्यस्त रहता है और सात महीने बेकार रहता है। शाही कृषि आयोग (Royal Commissino on Agriculture) का अनुमान है कि साल मे कम से कम दो से चार महीने तक कृषक बेकार रहते हैं।

(४) सहायक उद्योगों का अभाव

ग्रामों में सहायक उद्योगों का अभाव है, इसके कारण कृषक बिल्कुल बेकार रहता है। किसान बड़ा समृद्धिशाली हो सकता है, यदि वह वर्ष भर कार्य करे।

(५) कृषि वर्षा पर आधारित है

कृषि वर्षा पर आधारित रहती है। यदि वर्षा समय पर न हुई या अधिक हो गई तो कृषि का सत्यानाश हो जाता है। भारत मे वर्षा न होने के कारण करोड़ों व्यक्ति बेकार हो जाते हैं, अकाल (Famine) पड़ने लगता है, जिसका प्रबन्ध करना बड़ा कठिन होता है।

(६) अवैज्ञानिक एवं प्राचीन कृषि पद्धति

भारतवर्ष में कृषि पद्धति प्राचीन एवं दकियानूसी प्रकार की है, इसलिये कृषक उतना उत्पादन नहीं कर पाते, जितना कि अन्य देशों में उतनी ही भूमि मे किसान करते हैं।

(७) भूमि का क्षेत्र विभाजन एवं अपखण्डन
(Sub division and Fragmentation of Holdings)

भारत में कृषि की जोत बहुत छोटी होती है। भूमि छोटे छोटे टुकड़ों में बँटी हुई है, इसलिये अनार्थिक है। छोटे छोटे भागों में बँटी हुई होने के कारण उपज कम होती है।

(८) अव्यवस्थित एवं असंगठित कृषि उद्योग

कृषि उद्योग बड़ा ही अव्यवस्थित एवं असङ्गठित है, इसलिये किसान उन्नति नहीं कर पाते और उत्पादन का स्तर ऊँचा नहीं हो पाता। नये व्यक्ति इस उद्योग में रोजगार नहीं पाते।

इन कारणों से कृषि सम्बन्धी बेकारी उत्पन्न होती है। कृषि सम्बन्धी बेकारी प्रमुखतया मौसमी बेकारी (Seasonal Unemployment) होती है। इस क्षेत्र में आंशिक रोजगार (Under-Employment) की समस्या पाई जाती है।

कृषि सम्बन्धी बेकारी को दूर करने के उपाय
(Measures to remove Agricultural Unemployment)

कृषि सम्बन्धी बेकारी को दूर करने के लिये हमें कृषि की वर्तमान व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने होंगे। इसके अतिरिक्त और भी अनेक उपाय अपनाने पड़ेंगे। प्रमुख उपाय निम्न है —

(१) कृषि व्यवस्था में आमूल परिवर्तन

कृषि व्यवस्था में बड़े परिवर्तन करने पड़ेंगे। इन परिवर्तनों में से प्रमुख निम्न हैं —

(अ) अनार्थिक जोतों का अन्त करना पड़ेगा। इसके लिये भूमि का अपखण्डन रोकना होगा और उत्तराधिकारी के नियमों को परिवर्तित करना पड़ेगा।

(ब) चकबन्दी करके आर्थिक जोतों का निर्माण करना पड़ेगा।

(स) गहरी खेती (Intensive Cultivation) पद्धति को अपनाना होगा।

(द) फसलों के हेर फेर को निश्चित करना होगा।

(य) भूमि के उपादेयकरण की योजनाओं को कार्यान्वित करना होगा और अच्छे औज़ार अच्छे बीज रसायनिक खाद अच्छे पशुओं इत्यादि की व्यवस्था करनी होगी।

(२) सिंचाई का समुचित प्रबन्ध

कृषि को वर्षा पर ही निर्भर नहीं रखा जा सकता, इसके लिये सिंचाई का समुचित प्रबन्ध करना होगा। नये नये बाँध और नहरों का निर्माण करना होगा।

(३) बंजर भूमि को खेती योग्य बनाना

कृषि सम्बन्धी बेकारी को दूर करने के लिये खेती करने योग्य भूमि में वृद्धि करनी होगी, इसके लिये बंजर भूमि को उपजाऊ बनाना होगा।

(४) कुटीर उद्योगों का विकास

कुटीर उद्योगों जैसे दुग्धशाला, मधुमक्खियों का पालना, फर्नीचर बनाना, दियासलाई बनाना, चूड़ी बनाना हाथ करघे से कपड़ा बुनना इत्यादि का विकास करना होगा। जिस समय किसान बेकार होंगे, कुटीर उद्योगों में कार्य करेंगे। इस प्रकार कृषकों की शक्ति व्यर्थ में नष्ट नहीं होगी और वे वर्ष भर उत्पादन करते रहेंगे।

(५) सार्वजनिक निर्माण कार्य

मौसमी बेकारी को दूर करने के लिये सार्वजनिक निर्माण कार्य बड़ा सुन्दर उपाय है। जिस समय कृषक बेकार रहें उस समय इन योजनाओं को प्रारम्भ करना चाहिए।

(६) सामयिक स्थानान्तरण के लिये सुविधायें देना

जहाँ पूरक रोजगार की व्यवस्था न हो सके वहाँ सामयिक स्थानान्तरण के लिये सुविधायें प्रदान करनी चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह इन

लोगों को यातायात की सुविधा दे एवं रोजगार की संगठित व्यवस्था करे और यह देखे कि पूँजीवादी इनका शोषण न कर पायें।

(७) घनी जनसंख्या वाले क्षेत्रों से लोगों को दूसरे क्षेत्रों में भेजना

जिन क्षेत्रों में आबादी कम है, उन क्षेत्रों में अतिरिक्त जनसंख्या को बसाना चाहिए। इसके लिये सरकार को नई योजनायें बनानी चाहिए।

(८) कृषि सम्बन्धी बाजार का संगठन

कृषि सम्बन्धी बाजार का संगठन करना चाहिए, जिससे कि कृषि की उन्नति हो और कृषक समृद्धिशाली हो सके।

औद्योगिक बेकारी (Industrial Unemployment)

औद्योगिक बेकारी भारतवर्ष में एक नई बात है। कुछ समय पूर्व उद्योगों में श्रमिकों का अभाव रहता था, क्योंकि अपना गाँव छोड़कर लोग नगर में आना पसन्द नहीं करते थे। औद्योगिक बेकारी कितनी मात्रा में है, यह बताना बड़ा कठिन है, क्योंकि इस सम्बन्ध में विश्वस्त आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं फिर भी यह कहा जा सकता है कि यह समस्या भी गम्भीर है।

औद्योगिक बेकारी के कारण

औद्योगिक बेकारी युद्ध के समय में बिल्कुल समाप्त हो गई थी, परन्तु युद्ध के समाप्त होते ही उसने विकराल रूप धारण कर लिया। औद्योगिक बेकारी के निम्न प्रमुख कारण हैं:—

(१) अपूर्ण औद्योगिक विकास

भारतवर्ष में औद्योगिक विकास अभी पूर्ण रूप से नहीं हुआ है। प्रथम महायुद्ध के पूर्व भारत में औद्योगिक विकास शून्य था। इसका कारण अंग्रेजों की नीति थी। वे कच्चा माल भारत से इङ्गलैण्ड ले जाते और उससे अपने उद्योग चलाते थे। युद्ध के काल में अपने साम्राज्य की रक्षा की दृष्टि से उन्होंने कुछ उद्योग भारत में खोले। युद्ध के उपरान्त उन्होंने फिर से भारतीय उद्योग को हतोत्साहित करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार अंग्रेजों के काल में उद्योगों का विकास न हो सका। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त हमने इस दिशा में अपने कदम बढ़ाये हैं, परन्तु अभी हम बहुत पीछे हैं।

(२) उद्योगों की स्थान विषयक स्थिति दोषपूर्ण

भारतवर्ष में उद्योगों की स्थापना विषयक स्थिति दोषपूर्ण है। कुछ स्थानों में उद्योग धन्धों का आवश्यकता से अधिक केन्द्रीयकरण हो गया है, जिसके

फलस्वरूप उनके उत्पादन की लागत में वृद्धि हो गई है। यदि उद्योग-धन्धों का भौगोलिक विवरण सुनियोजित रूप से होता है तो उनमें रोजगार देने की क्षमता बढ़ जाती है।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का अभाव

भारतीय वस्तुओं के लिये अन्य देशों में अच्छे बाजार नहीं है, जिसके कारण उद्योगों का अधिक विकास नहीं हो पाता।

औद्योगिक बेकारी को दूर करने के उपाय

औद्योगिक बेकारी को दूर करने के लिये अधिक से अधिक उद्योगों को बढ़ाना चाहिए। सरकार को चाहिये कि पूँजीवादियों को प्रोत्साहन देकर उद्योगों में पूँजी लगवाए और सार्वजनिक उद्योगों का भी निर्माण करे। नये नये क्षेत्रों में कल कारखाने खोले जाँय और मौलिक उद्योगों पर विशेष ध्यान दिया जाय।

हर्ष की बात है कि भारत सरकार इस ओर विशेष ध्यान दे रही है और नई नई योजनाओं को कार्यान्वित कर रही है।

शिक्षितों में बेकारी

शिक्षितों में बेकारी की समस्या बहुत गम्भीर और भयानक है। भारतवर्ष में, विशेष रूप से आजकल, शिक्षितों में बेकारी पाई जाती है। शिक्षित वर्ग किसी भी देश का आधार होता है ये लोग जिह्वाहीन पशु नहीं होते जो शान्ति से प्रत्येक अत्याचार सहन कर लेंगे, बल्कि ये समाज को बड़ी क्षति पहुँचा सकते हैं। भारतवर्ष में साम्यवाद फैलने का प्रमुख कारण शिक्षितों की बेकारी है। यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि समाज द्वारा निर्धारित शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त भी व्यक्ति व्यर्थ सिद्ध होता है। शिक्षितों में बेकारी के प्रमुख कारण निम्न है —

(१) दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली

शिक्षितों में बेकारी का सबसे प्रमुख कारण दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली है। मैकाले ने भारतवर्ष में क्लर्क उत्पन्न करने के लिए इस शिक्षा प्रणाली का निर्माण किया था। मेह्यू ने उचित ही लिखा है, "प्रधान रूप से व्यवहारिक और उपयोगितावादी होने के कारण उन्होंने सरकारी कर्मचारी, वकील, डाक्टर और व्यापारिक क्लर्क उत्पन्न करने का उद्देश्य रखा।"[1]

[1] "Essentially practical and utilitarian, they have aimed at the production of Government officials lawyers, doctors and commercial clerk" May Hew, A 'The Education of India,' p. 149.

दुर्भाग्य का विषय है कि शिक्षा प्रणाली व्यवहारिक जीवन से बिल्कुल भी सम्बन्धित नहीं है। हमारी शिक्षा नवयुवकों को केवल क्लर्कों, अनुवादकों या अध्यापकों की नौकरियों के लिये तैयार करती है। वर्तमान समाज को कैसे लोगों की आवश्यकता है, इसका तनिक भी ध्यान शिक्षा प्रणाली में नहीं रखा गया है। शिक्षित नवयुवक समाज के दृष्टिकोण से बिल्कुल व्यर्थ होता है। उसके अन्दर कुछ ऐसी भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं कि वह क्लर्की को छोड़ कर और सब कार्यों के लिए अनुपयुक्त होता है। उन सारे लक्षणों को हम बाबूगिरी के लक्षण कह सकते हैं। शारीरिक श्रम से घृणा, जीवन के व्यावहारिक सत्यों के विषय में विचित्र कल्पना रखना, अहं की भावना, अशिक्षितों से सहानुभूति के स्थान पर घृणा और मेज कुर्सी से अति लगाव इत्यादि कुछ बाबूगिरी के लक्षण हैं।

(२) विश्वविद्यालयों और स्नातकों की भरमार

भारतवर्ष में इस समय ३३ विश्वविद्यालय हैं। हजारों की संख्या में छात्र बी० ए० तथा एम० ए० पास करते हैं। मैट्रिक्यूलेशन की संख्या तो प्रतिवर्ष लाखों तक पहुँच जाती है। हम पहले ही लिख चुके हैं कि ये सब केवल बाबूगिरी के काम कर सकते हैं। सभी एम० ए०, एम० एस-सी० एवं एम० कॉम इत्यादि पास करते हैं। बेकारी के लिए नियुक्त समिति ने लिखा है, "यह एक बाँस के समान है, प्रत्येक जोड़ एक परीक्षा होती है और नीचे से लेकर ऊपर तक व्यास एक ही रहता है। इसकी शाखायें नहीं होतीं और ऊपर का स्थान बहुत ही कम क्षेत्र घेरता है। आवश्यकता यह है कि ऐसा वृक्ष हो जिसकी शाखायें यथासम्भव दिशाओं में तने के विभिन्न भागों में फैली हों, न कि सब चोटी पर हों।"[1]

शिक्षितों की बेकारी दूर करने के उपाय

शिक्षितों की बेकारी दूर करने के लिए निम्न उपाय करने चाहिए —

(१) शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन

शिक्षा प्रणाली में अनेक परिवर्तन करने होंगे। साहित्यिक शिक्षा पर अधिक ध्यान न देकर टेक्नीकल (Technical) और कृषि सम्बन्धी शिक्षा

---

[1] "It is like a bamboo, each joint being an examination and the diameter remaining practically the same size from the root to very near the top. It has no branches and the crowning top covers a very small area. What is required is a spreading tree with branches going off in as many directions as possible at definite points along the trunk, not all at the top." Report of the Bengal Unemployment Committee, par 29

पर ध्यान देना चाहिए। प्रारम्भ मे भाषाओं का ज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान एव व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी ज्ञान करना चाहिए। उच्च शिक्षा समाज की आवश्यकताओं के अनुसार बनानी चाहिए। एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना चाहिए, जिससे कि उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति विश्वविद्यालय छोड़ते ही अपने क्षेत्र म व्यावहारिक अनुभव प्राप्त कर सके। इसे प्रशिक्षण काल (Apprenticeship Period) कहना चाहिए। धीरे २ इन्हें कार्य मिल जाना चाहिए।

(२) शिक्षितों में श्रम के मान की भावना

शिक्षित व्यक्तियों में श्रम के महत्व को बढ़ाना चाहिये। उन्हे शारीरिक श्रम की योजनाओं म काम कराना चाहिए जिससे कि वे जीवन में समाज के लिये उपयोगी बन सके।

(३) जीवन क प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण

शिक्षित व्यक्तियों मे जीवन के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना चाहिए, जिससे कि वे समाज स घृणा के स्थान पर प्रेम करना सीखे। कल्पना के ससार से उन्हे वास्तविक ससार म लाने का कार्य बड़ा प्रमुख है। मनुष्य का सुख एव दु ख अधिकाश भावना पर आधारित है।

(४) काम दिलाऊ कार्यालय

काम दिलाऊ कार्यालय शिक्षितों की बेकारी दूर करने में बड़ा सहायता कर सकते हैं। एक स्थान पर आदमियों की आवश्यकता होती है, परन्तु आदमी नहीं मिलते और दूसरे स्थान पर आदमी होते है, परन्तु कार्य नहीं होता, ऐसी दशा में काम दिलाऊ कार्यालय बड़ी सहायता करता है।

(५) आर्थिक विकास

सबसे महत्वपूर्ण उपाय आर्थिक विकास है। ज्यों ज्यों आर्थिक विकास होता जायगा, त्यों त्यों बेकारी की समस्या हल होती जायगी।

केन्द्रीय सरकार तथा अन्य राज्य सरकारों द्वारा बेकारी को दूर करने के प्रयत्न

बेकारी को दूर करने के लिये योजना आयोग (Planning Commission) ने निम्न कार्यक्रम की सिफारिश की थी —

(१) व्यक्तियों या व्यक्तियों के छोटे २ समूहों को विशेष आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए, जिसमे कि वे छोटे २ उद्योग एव व्यापार स्थापित कर सकें।

(२) उन क्षेत्रों में शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय जिनमें आदमियों की कमी है।

(३) कुटीर उद्योगों एवं लघु उद्योगों को, उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं को खरीद कर, सक्रिय प्रोत्साहन सरकार एवं अन्य सार्वजनिक समितियों द्वारा मिलना चाहिए।

(४) प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र स्थापित करने चाहिए।

(५) राष्ट्रीय विस्तार सेवा (National Extension Service) को दृढ़ कर करना चाहिए।

(६) सड़क यातायात का विकास करना चाहिए।

(७) नागरिक क्षेत्रों में निम्न वेतन पाने वाले व्यक्तियों को मकान बनाने की सहायता प्रदान करना चाहिए।

(८) व्यक्तिगत मकान बनाने के कार्य को प्रोत्साहन देना चाहिए।

(९) शरणार्थियों को विशेष सहायता मिलनी चाहिए।

(१०) विद्युत शक्ति के विकास की योजनाओं को प्रोत्साहन देना चाहिए।

(११) कार्य और प्रशिक्षण शिविरों को स्थापित करना चाहिए।

द्वितीय पचवर्षीय योजना का प्रमुख उद्देश्य बेकारी को दूर करने का है। योजना आयोग के अनुसार १५३ लाख स्थानों की आवश्यकता पड़ेगी, यदि पूर्ण रोजगारी की अवस्था का निर्माण किया जाय। उसने निम्न अनुमान लगाया है—

	संख्यायें मिलियन (Million) में		
	नागरिक क्षेत्र में	ग्रामीण क्षेत्र में	जोड़
नये श्रमिक			
(१९५६ से ६१ तक)	३८	६२	१००
पहले से बेकार	२५	२८	५३
जोड़	६३	९०	१५३

द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ७९ मिलियन नये स्थान उत्पन्न होंगे। इस पर भी बेकारी की समस्या पूर्ण रूप से हल नहीं हो पायेगी। योजना आयोग ने लिखा है, "यद्यपि द्वितीय पचवर्षीय योजना में अधिक प्रयत्न करने की योजना बनाई गई है फिर भी बेकारी की मात्रा द्वितीय पचवर्षीय योजना के काल में उतनी ही रहेगी, जितनी कि आजकल है।[1]

[1] 'Even with the larger effort that is envisaged in the second plan, the total volume of unemployment, during the period of the second plan may be of about the same order as at present" Second Five Year Plan A Draft Outline, p 46 Govt, of India, Planning Commission, February, 1956

बेकारी को दूर करने के लिये अनेक प्रयत्न किये जा रहे हैं। भारत में बेकारी को दूर करने का सबसे प्रमुख उपाय आर्थिक विकास करना है। जब तक आर्थिक विकास न होगा इस देश की बेकारी दूर नहीं हो सकती। आज भारत सरकार जिस लगन के साथ बेकारी को दूर करने के प्रयत्न कर रही है उन्हें देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि यदि यही गति भविष्य में भी चलती रही तो बेकारी शीघ्र ही समाप्त हो जायगी।

(How many forms are there of unemployment? Discuss the means of relief of each one of them.) Lucknow, 1950

SELECTED READINGS

1 Elliott and Merrill, 'Social Disorganisation,' chapter XXIX

अध्याय २२

अपराध

(Crime)

'जन समाज ने मानव हित के लिये नियम निर्माण किये,
इन्हे तोड़ दे यदि मानव तो किस ताकत प पले जिये।
जो समाज-हित के विरुद्ध है कार्य गहन अपराध है
कोई व्यक्ति नहीं समाज को छलने को आजाद है।
अपराधी है व्यक्ति, अगर वह भङ्ग नियम ये करता है,
शान्ति और सुख यदि समाज का बुद्धिहीन हो हरता है।''

—ज्ञान भारिल्ल

पिछले अध्यायों मे हमने समाजिक सगठन एव व्यवस्था पर प्रकाश डाला था। उससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि प्रत्येक समाज, व्यवस्था को बनाये रखने के लिये कुछ नियमों का निर्माण करता है और उन नियमों का पालन करना, उस समाज के प्रत्येक सदस्य के लिये अनिवार्य होता है। ये नियम समाज के हित के लिये होते है। जो व्यक्ति इन नियमो का पालन करते है, उनका समाज आदर करता है और जो इनका पालन नही करते, उनको समाज दण्ड देता है। साधारण शब्दों मे सामाजिक नियमों का पालन न करना ही अपराध है। इलियट और मेरिल ने लिखा है, ' समाज विरोधी व्यवहार जो कि समूह द्वारा अस्वीकार किया जाता है और जिसके लिए समूह दण्ड निर्धारित करता है, अपराध नाम से परिभाषित किया जा सकता है।'[1] मानहीम ने भी ऐसी ही अपराध की परिभाषा इन शब्दों मे की है, 'अपराध समाज विरोधी व्यवहार है।'[2]

---

[1] "Crime may be defined as anti-social behaviour which the group rejects and to which it attaches penalties." Elliott and Merrill, Social Disorganisation, p. 542-543 Harper and Brothers, Third Edition (1950)

[2] "Crime is antisocial behaviour, [illegible]" Mannheim, H 'Criminal and Social Reconstruction' p. [illegible], Routledge and Kegan Paul Ltd, (1949)

वस्तुतः अपराध की परिभाषा इतनी सरल नहीं है। आधुनिक युग में यह और भी जटिल हो गई है। प्राचीन समाज में समाज विरोधी व्यवहार प्रथाओं द्वारा परिभाषित रहता था और उसके लिए कुछ निश्चित दण्ड रहते थे, जिन्हें समाज या स्वयं व्यक्ति लागू करता था। अपराध के लिए दण्ड निश्चित नहीं थे। अपराधी को दण्डित करने के लिए कोई भी निश्चित संस्थाओं की व्यवस्था नहीं थी।[1] आधुनिक युग में कानून और अपराध का घनिष्ट सम्बन्ध है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि अपराध शब्द अर्थहीन हो जायगा, यदि कानून का आधार हटा लिया जाय। कानून नियमों का वह समूह है, जो कि राज्य द्वारा लागू किया जाता है और जो सब के लिए समान होता है। कानून को तोड़ना अपराध है। अपराध की परिभाषा करते हुए हेकरवाल ने लिखा है, "कानूनी दृष्टिकोण से अपराध कानून का उल्लंघन है।"[2] गिलिन और गिलिन ने लिखा है, 'कानूनी दृष्टिकोण से अपराध, किसी देश के कानून के विरुद्ध कार्य है।'[3] एक ही व्यवहार अपराध भी हो सकता है और मान्य व्यवहार भी, यह कानून पर आधारित है। उदाहरण के लिए, उत्तरप्रदेश के मद्य निषेध कानून को लीजिये। यह सर्व प्रथम पाँच जिलों—कानपुर, उन्नाव, फतेहपुर, फर्रुखाबाद और रायबरेली—में लागू किया गया। इन जिलों में सन् १९४६ के पूर्व शराब पीना या अन्य मादक वस्तुओं का सेवन करना अपराध नहीं समझा जाता था, परन्तु इस कानून के लागू होते ही यह कानून विरोधी व्यवहार या अपराध हो गया। यही व्यवहार लखनऊ, जो कि उत्तर प्रदेश की राजधानी है, में अपराध नहीं समझा जाता, क्योंकि वहाँ पर मद्य-निषेध कानून लागू नहीं हुआ है। इससे स्पष्ट है कि कोई व्यवहार समाज विरोधी होते हुए भी तब तक अपराध नहीं कहलाता, जब तक कि राज्य उसे अपराध घोषित नहीं करता। इसमें समय और स्थान को भी महत्व दिया गया है। अर्ष्टबेरी, आविल और हन्ट द्वारा सम्पादित पुस्तक में क्राउट लिखता

---

[1] For Crime and Punishment in Primitive Society, Read B Malinowski's 'Crime and Custom in Savage Society' Routledge and Kegan Paul Ltd London, p 95

[2] "From legal point of view, Crime is a violation of law" Hatkerwal, Bejoy Shanker, 'Economic and Social Aspects of Crime in India,' p 17, George Allen and Unwin Ltd London (1934)

[3] "From the Legal point of view, crime is an offense against the law of the land" Gillin and Gillin, 'Cultural Sociology', p 784, Third printing (1954)

के लिये गुलाबी लाल और सुर्ख लाल रङ्गों में केवल अंश का अन्तर पाया जाता है, वैसे ही इन शब्दों में भी पाया जाता है। ऑफेंडर (offender) शब्द से तात्पर्य है कि इसने अपराध प्रारम्भ ही किया है 'डिलिक्वट (Delinquent) से अभिप्राय उस व्यक्ति से है, जिसमें अपराध करने की प्रवृत्ति पाई जाती है और जो अपराध करता भी है परन्तु आयु १८ या २१ वर्ष से कम है और 'क्रिमिनल (Criminal) उसे कहते हैं जो पूर्ण अपराधी होता है। इन शब्दों के लिये क्रमश हम दोषी (offender) बाल अपराधी (Delinquent) और अपराधी (Criminal) शब्दों का प्रयोग करेंगे।

हेज (Hayes) का वर्गीकरण

हेज ने अपराधियों को निम्न चार वर्गों में उनकी अपराधी प्रवृत्ति के आधार पर विभाजित किया है —

(१) प्रथम बार अपराध करने वाला दोषी (First Offender)

यह वह अपराधी होता है जिसने प्रथम बार अपराध किया हो।

(२) आकस्मिक अपराधी (Occasional Delinquent)

आकस्मिक अपराधी वह अपराधी होता है, जो कभी कभी अपराध करता है, परन्तु अपराध करने की प्रवृत्ति अधिक नहीं होती। परिस्थितियाँ इससे अपराध करा लेती हैं।

(३) स्वाभाविक अपराधी (Habitual Delinquent)

स्वाभाविक अपराधी वह अपराधी होता है जिसका अपराध करना स्वभाव बन जाता है। तनिक सा अवसर प्राप्त होते ही वह अपराध कर डालता है। साधारणतया इसकी जीविका अपराध पर आधारित नहीं होती।

(४) व्यवसायिक अपराधी (Professional Criminal)

व्यवसायिक अपराधी वह अपराधी है जिसका अपराध करना व्यवसाय होता है। उसका जीवन अपराध पर ही आधारित होता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी कार्यालय या फैक्ट्री में काम करता है उसी प्रकार व्यवसायिक अपराधी अपराध करता है।

लम्ब्रासो (Lambroso) का वर्गीकरण

लम्ब्रासो ने अपराधियों को उनकी प्रवृत्तियों के आधार पर विभाजित किया है जो कि अपराध करने के लिए प्रेरित करती हैं। उसने भी अपराधियों को निम्न चार भागों में बाँटा है —

(१) जन्मजात अपराधी (Born Criminal)

जन्मजात अपराधी वे अपराधी होते हैं जिनमे अपराध करने की प्रवृत्ति (Cri mi t) जन्म से ही पाई जाती है। यह उनका स्वभाविक गुण होता है।

( ) अपस्मारी अपराधी (Epileptic Criminal)

अपस्मारी अपराधी वे अपराधी होते हैं जो अपस्मार रोग (E le) से पीड़ित होते हैं। इस रोग के कारण मनुष्य का मस्तिष्क जन्म से ही दूषित हो जाता है। मस्तिष्क में कुछ ऐसे विकार उठते हैं जो अपराध करने के लिये प्रेरित करते हैं इस रोग के कारण कभी कभी चेतनता बिल्कुल समाप्त हो जाती है। यह रोग मिर्गी के रोग का एक स्वरूप है। ये अपराधी भी जन्मजात होते हैं परन्तु ये मस्तिष्क के दोषों के कारण अपराध करते हैं।

(३) आकस्मिक अपराधी (Occasional Criminal)

आकस्मिक अपराधी वे अपराधी होते हैं जिसमे अपराध करने की प्रवृत्ति तो पाई जाती है परन्तु एक विशिष्ट अवसर प्राप्त होने पर ही वे अपराध करते हैं। ये कभी कभी अपराध करते हैं।

(४) कामुक अपराधी (Criminals by Passion)

कामुक अपराधी वह अपराधी होता है जो अपने काम (Pas ion) पर नियन्त्रण नहीं कर पाता है और उसके कारण अपराध कर डालता है।

सदरलैंड (Sutherland) का वर्गीकरण

सदरलैंड ने अपराधियों को निम्न दो भागों में बाँटा है। आधुनिक युग में इनके वर्गीकरण का बड़ा मान होना चाहिए क्योंकि इन्होंने एक महत्वपूर्ण अपराधियों के वर्ग की ओर संकेत किया है। इनका वर्गीकरण सामाजिक स्थिति पर आधारित है। वह इस प्रकार है —

(१) साधारण स्थिति के अपराधी या निम्न श्रेणी के अपराधी

निम्न श्रेणी के अपराधी वे व्यक्ति होते हैं जो निम्न आर्थिक एवं सामाजिक वर्गों के सदस्य होते हैं। इनके व्यक्तित्व का विकास भी बहुत कम हुआ होता है। इनको शिक्षा भी अधिक नहीं मिली होती है। इनके पास अधिक साधन नहीं होते। इन सब कारणों के परिणामस्वरूप वे अपने अपराधों को छिपा नहीं पाते और समाज उनके विरुद्ध कार्यवाही करता है। वे पकड़े जाते हैं एवं दण्ड भोगते हैं।

(७) श्वेत वस्त्रधारी अपराधी (White Collar Criminals)

श्वेत वस्त्रधारी अपराधी वे अपराधी होते हैं, जो कि उच्च आर्थिक एव सामाजिक वर्गों के सदस्य होते हैं और जिन्हे अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर भी प्राप्त हुआ होता है। ये बड़े २ अपराध करते हैं, परन्तु इन्हे कोई पकड़ नहीं पाता। ये व्यक्ति समाज के उच्च स्थानो पर सुशोभित होते हैं। समाज इनका आदर करता है।

अपने देश म भी ऐस अपराधियों की कमी नहीं है। बड़े बड़े धनाढ्य व्यवसायी एव उच्च राजकीय पदाधिकारी नित्य सैंकड़ों कानूनों का उल्लघन करते हैं। इनके कारण दुराचार, व्यभिचार इत्यादि फैलते हैं, परन्तु इनकी ऊँची स्थिति होने के कारण प्रथम तो इनके विरुद्ध कार्यवाही ही नहीं हो पाती है और यदि किसी प्रकार प्रारम्भ हो भी गई, तो ये उसे समाप्त करवा देते हैं। इन्हे कानूनों के उल्लघन करने पर न तो जेल जाना पड़ता है और न अन्य दण्ड ही भुगतने पड़ते हैं। सामाजिक दृष्टिकोण स यह एक बहुत बड़ी समस्या है।

डाक्टर सदरलैण्ड ने इन्हे श्वेत वस्त्रधारी अपराधी (White Collar Criminal) इसलिये कहा है, क्योंकि वे श्वेतवस्त्र अर्थात् सुन्दर एव मूल्यवान वस्त्र पहिनते हैं। ऐस वस्त्र पहिनना उच्च आर्थिक एव सामाजिक वर्ग का द्योतक है। अत श्वेत वस्त्रधारी अपराधिया स अभिप्राय उन अपराधियों से है जो कि उच्च आर्थिक एव सामाजिक वर्ग के सदस्य होते हैं।

अपराधों का वर्गीकरण
(Classification of Crimes)

अपराधों का भी अनेक विद्वानों ने वर्गीकरण किया है। उनम स कुछ पर हम विचार करेंगे।

साधारणतया अपराध को दो भागो म वर्गीकृत किया गया है—प्रथम साधारण अपराध (Misdemeanour) और द्वितीय जघन्य अपराध (Felony)।

साधारण अपराध (Misdemeanour) वह अपराध है, जिसमें दोष गम्भीर नहीं होता। *चूँकि दोष गम्भीर नहीं होता है, इसलिये दण्ड भी साधारण ही* दिया जाता है। जघन्य अपराध (Felony) वे अपराध होते है, जिनमें दोष बड़ा गम्भीर होता है। इसके लिये कड़ी सजा, जैस लम्बी अवधि का कारावास, आजन्म कारावास या मृत्यु दण्ड इत्यादि, दी जाती है। इन दोनों प्रकार के अपराधों में केवल गम्भीरता की मात्रा का अन्तर होता है। किसी कार्य की गम्भीरता की मात्रा स्थान स्थान पर भिन्न भिन्न होती है।

बोन्जर (Bonger) का वर्गीकरण

बोन्जर ने अपराधों को निम्न वर्गों में विभाजित किया है —

(१) आर्थिक अपराध (Economic Crimes)—आर्थिक अपराध वे अपराध होते हैं, जो धन की प्राप्ति के उद्देश्य से किये जाते हैं।

(२) लिंगिय अपराध (Sexual Crimes)—वे अपराध, जो लिंग सम्बन्धी नियमों को तोड़ते हैं, लिंगीय अपराध कहलाते हैं।

(३) राजनैतिक अपराध (Political Crimes)—राजनैनिक अपराध वे अपराध होते हैं, जो राजनीति के क्षेत्र में किये जाते हैं।

(४) विविध अपराध (Miscellaneous Crime)—अन्य विविध प्रकार के अपराध इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

लमर्ट (Lemert) का वर्गीकरण

लेमर्ट ने अपराधों को निम्न वर्गों में बाँटा है —

(१) परिस्थिति से उत्पन्न अपराध (Situational Crime)

ये वे अपराध होते हैं जो कि परिस्थिति के कारण करने पड़ते हैं। इन अपराधों को करने वाले व्यक्ति साधारणतया कानून को मानने वाले नागरिक होते हैं। बाह्य परिस्थितियाँ उनके सन्तुलन को नष्ट कर देती है और वे अपराध कर बैठते हैं। उदाहरण के लिये कोई व्यक्ति बेकार है और उसके पास खाने को कुछ भी नहीं है। ऐसे समय में किसी स्थान पर यदि उसे कुछ धन दिखाई दे और उसकी कोई रक्षा भी कर रहा हो, तो वह व्यक्ति उसे चुराने के लिये उद्यत हो जायगा।

(२) आयोजित अपराध (Systamatic Crime)

आयोजित अपराध वे अपराध हैं, जो पूर्व आयोजित होते हैं और उनका आयोजन करने वाले पूर्ण अपराधी होते हैं।

(३) विश्वासघातक अपराध

कुछ ऐसे अपराधी होते हैं, जो प्रथम तो लोगों के विश्वास का प्रतिपादन करते हैं और बाद में उन्हें ठग लेते हैं।

अपराध के कारण (Causes of Crime)

अपराध के विभिन्न कारण, विभिन्न विद्वानों ने बताये हैं। अब हम उनके प्रमुख सिद्धान्तों पर विचार करेंगे।

(१) शास्त्रीय सम्प्रदाय (Classical School)

इन विद्वानों का मत है कि अपराध दुःख सुख के सिद्धान्त पर आधारित है। यदि एक कार्य करने से दुःख कम और सुख अधिक प्राप्त होता है तो लोग उस कार्य को करेंगे। इनके अनुसार लोग अपराध इसलिए करते हैं, क्योंकि उन्हें उससे लाभ अधिक होता है।

यह कोई उचित तर्क नहीं है और न ही इस सिद्धान्त के द्वारा समस्त अपराधों को सुलझाया जा सकता है।

(२) भौगोलिकवादी (Geographical School)

भौगोलिकवादियों का मत है कि अपराध भौगोलिक परिस्थितियों पर आधारित है। यह सिद्धान्त भी अपराध के कारणों पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डालता।

(३) समाजवादी (Socialist School)

समाजवादियों का मत है कि अपराध आर्थिक कारणों के कारण होता है। इनमें सन्देह नहीं कि आर्थिक कारण अपराधों को जन्म देने में बहुत बड़ा भाग लेते हैं, तथापि इन्हें ही केवल एकमात्र कारण नहीं माना जा सकता।

(४) प्ररूपवादी (Typological School)

इस सम्प्रदाय के मानने वाले विद्वानों का मत है कि अपराध जन्मजात होते हैं और अपराधियों की शक्ल सूरत ही भिन्न होती है। इस पर हम विस्तार में विचार करें।

(५) बहुसंख्यक कारक सिद्धान्त (Multiple Factor Theory)

अभी तक विभिन्न सम्प्रदायों के विद्वानों ने अपराध का केवल एक कारण बताया है, परन्तु वस्तुतः इस प्रकार की बात नहीं है। अपराध के, एक नहीं, अनेक कारण होते हैं। भिन्न भिन्न परिस्थितियों में भिन्न भिन्न कारण व्यक्ति को अपराध करने के लिये बाध्य करते हैं।

अपराध के प्रमुख कारण (Main Causes of Crime)

अपराध के प्रमुख कारण निम्न हैं —

(१) शारीरिक कारण (Physical Causes)

अपराध के शारीरिक कारण निम्न भागों में वर्गीकृत किये जा सकते हैं :—

(अ) वंशानुसंक्रमण (Heredity)

लम्ब्रासो और उसके अनुयायियों का मत है कि अपराध का वंशानुसंक्रमण से घनिष्ट सम्बन्ध है और अपराध प्रवृत्ति माता पिता से बच्चों को हस्तगत होती

है। अपराधी जन्मजात होते हैं। अपराधी प्रवृत्ति किस 'कार बच्चा को मिलती है, इसके विषय में उन्होंने विशेष कुछ नहीं लिखा है बल्कि उसकी व्याख्या करते हुए उन्हाने लिखा है, 'जन्मजात अपराधी प्रवृत्ति बच्चों की पुरखों के रूप से समानता के आधार पर समझायी जा सकती है।''[1]

इसम सन्देह नहीं कि वशानुसक्रमण के कारण अपराधी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है क्योकि इसी सम्पत्ति पर बच्चे का शारीरिक एव मानसिक विकास आधारित होता है, परन्तु यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि वशानुसक्रमण म जैसे अन्य सब गुणा के वाहकाणु (Genes) होते हैं उसी प्रकार अपराधी प्रवृत्ति के भी वाहकाणु होते हैं।

वंशानुसक्रमणवादियों ने अनेक पर्यवलोकन एव परीक्षण करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि वशानुसक्रमण अपराधी प्रवृत्ति का एक प्रमुख कारक है। डुगडेल (Dugdale) और ईस्टाब्रक (Estabrook) ने ज्यूक (Jukes) और केलिकाक (Kallikak) परिवारों का अध्ययन किया।[2] इन परीक्षणों का सबस बड़ा दोष यह है कि ये पर्यावरण को कोई महत्व नहीं देते।

गोरिङ्ग (Goring) ने भी अपराधी प्रवृत्तियों को जन्मजात सिद्ध करने का प्रयत्न किया ह। उसने पिता और पुत्रा के कारावास जाने की सख्याओ स यह पाया कि पिता और पुत्र की अपराधी प्रवृत्ति मे पारस्परिक सम्बन्ध (Coefficient) होता है। इतना पारस्परिक सम्बन्ध बहुत अधिक है। गोरिङ्ग इस *परिणाम पर पहुँचा ह कि यह वशानुसक्रमण के कारण ह। उसने इसम पर्यावरण* का प्रभाव नाम मात्र ही माना है। कार्ल पियरसन (Karl Pearson) ने अपराधी प्रवृत्ति को सामाजिक मूल प्रवृत्ति के दोष के कारण (due to defectiveness of the social instinct) बताया परन्तु सामाजिक मूल प्रवृत्ति की कोई परिभाषा नही दी। डेवन पोर्ट (Daven Port) ने लिखा है कि वशानुसक्रमणीय या जन्मजात अपराधी की मूल प्रवृत्तिया होती हैं।

वशानुसक्रमण का अर्थ बड़ा ही भ्रमपूर्ण है। ऐसा कहना उचित नहीं है कि अपराधी प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती है और जिनमे पाई जाती हैं, वे चाहे जैसे पर्यावरण में रहें, अपराधी ही रहेंगे। इस पर भी वशानुसक्रमण के प्रभाव को कम नहीं किया जा सकता। वशानुसक्रमण और पर्यावरण दोनों ही आवश्यक

[1] 'Inborn criminality as an atavism'

[2] For details of these experiments, See author's book Part I's chapter on 'Heredity and Environment'

हैं। हल्डेन ने उचित ही लिखा है, "एक विशिष्ट बनावट के व्यक्ति को एक विशिष्ट पर्यावरण में रखने पर वह अपराधी होगा।"[1]

(ब) दैहिक एवं शारीरिक बनावट
(Anatomical and Physiological)

लम्बरासो (Lambroso) का मत है कि अपराधियों की बनावट साधारण व्यक्तियों से भिन्न होती है। हूटन (Hooten) ने लिखा है कि अपराध का मौलिक कारण शारीरशास्त्रीय हीनता है।[2]

(स) शारीरिक दोष एवं असमानतायें
(Physical defects and Abnormalities)

अपराध उत्पन्न करने में शारीरिक दोष, जैसे अन्धापन, लंगड़ापन, बहरापन एवं कानापन, बड़े सहायक होते हैं। समाज में ऐसी बहुत सी कहावतें प्रचलित हैं। उदाहरण के लिये निम्न कहावत बड़ी प्रचलित है—

सौ में सूर, हजार में काणा, इसके ऊपर एँचाताना।
एँचाताना करे पुकार, गंजे से रहियो हुशियार ॥

इन दोषों के कारण समूह उनका उपहास करता है और इसके कारण इन व्यक्तियों में समूह के प्रति प्रतिशोध की भावना जागृत होती है और वे समूह से बदला लेने का निश्चय कर लेते हैं। इलियट और मेरिल ने उचित ही लिखा है, "उनकी अपराधी प्रवृत्ति क्षतिपूर्ति करने की प्रतिक्रिया हो सकती है।"[3] विक्टर नेलसन (Victor Nelson) ने शारीरिक दोषों को अपराध का कारण बताया है और उसको इस प्रकार समझाया है कि बदसूरत व्यक्ति स्वाभाविक रूप से स्त्रियों के लिये प्रतियोगिता करने में अपने को हीन पाता है। इस क्षति की पूर्ति के लिये वह धन की इच्छा करता है, जिससे कि वह स्त्री पर प्रभाव डाल सके। जब उसको वैधानिक उपायों से शीघ्र धन की प्राप्ति नहीं होती, तो वह चोरी करता है।

असमानता एवं असाधारण होना भी अपराध को जन्म देता है। जब शक्ति अधिक होती है, तो बेचैनी बढ़ती है और यह बेचैनी अपराध की ओर

---

[1] "A man of certain constitution put in a certain environment will be criminal" Haldane, J B S, in a foreword to 'Crime as Destiny' by Dr J Lange p 14

[2] Hooton, E A 'Crime and Man', and 'The American Criminal An Anthropological Study'

[3] "His delinquency may be a compensatory reaction" ibid, p 80

निर्देशित करती है। कभी कभी लड़कियों में यह शक्ति तीव्र कामना (Hypersexualism) के रूप में दिखाई पड़ती है। हेली (Healy) और ब्रोनर (Bronner) ने लिखा है असाधारण बढ़ाव (Overdevelopment) और अधोविकास (Underdevelopment) दोनों ही अपराध की ओर प्रवृत्त करते है।

(द) बीमारियाँ (Diseases)

कुछ ऐसी बीमारियाँ होती हैं जिनके कारण व्यक्ति अपराध करने लगता है। विशेषतया मस्तिष्क शोथ (Encephalitis) अपराध से बहुत अधिक सम्बन्धित है क्योंकि इसके कारण मस्तिष्क में चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है। कोरिया (Chorea) और अपस्मार राग (Epilepsy) भी अपराधों को उत्पन्न करते हैं।

(२) मानसिक कारण (Mental Causes)

मानसिक दोष भी अपराधों को उत्पन्न करते हे। उनमे से प्रमुख मानसिक कारण निम्न हैं—

(अ) मानसिक दोष एवं हीनता
(Mental Deficiency and Defects)

मानसिक दोष को अपराधो का, कुछ विद्वानो ने प्रमुख कारण माना है। उनका सिद्धान्त निम्न धारणाओं पर आधारित है —

(i) प्राय सभी अपराधी हीन बुद्धि (Feeble Minded) होते हैं।
(ii) हीन बुद्धि वाले व्यक्ति अपराध अवश्य करते है, क्योंकि उनके पास इतनी बुद्धि नही होती कि वे कानूनो का पालन कर सके और कानून तोड़ने के परिणामों को समझ सके।
(iii) हीन बुद्धि, मेंडल (Mendel) के वंशानुसंक्रमण के सिद्धान्त के अनुसार, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तगत होती रहती है।
(iv) अपराधों को रोकने का केवल एक ही मार्ग है कि अपराधियों को पृथक् रखा जाय या जीवाणुघात की नीति (Policy of Sterilisation) को अपनाया जाय।

हीन-बुद्धि ही अपराधों का एकमात्र कारण नही माना जा सकता। यह कारण लिंग सम्बन्धी अपराधों में अधिक पाया जाता है। बहुत से अपराधो में अत्यधिक बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है।

(ब) उद्वेगीय अस्थिरता एवं संघर्ष (Emotional Instability and Conflict)

उद्वेगीय अस्थिरता अपराधों का एक प्रमुख कारण है। बर्ट (Burt) ने लिखा है कि अपराधियों में ४८'१ प्रतिशत लोग मानसिक अस्थिरता वाले मिले, जब कि साधारण लोगों में केवल ११'८ प्रतिशत लोग ही मिले। हेली (Healy) और ब्रोनर (Bronner) ने लिखा है कि उन्हें परीक्षण में ९१ प्रतिशत अपराधी ऐसे मिले, जो किसी न किसी कारण से मानसिक संघर्ष से ग्रस्त थे।

(स) चरित्रहीनता (Lack of Character)

चरित्र बड़ी आवश्यक वस्तु है। इसके कारण मनुष्य निर्माण करने में सफल होता है। चरित्र मस्तिष्क की बनावट के झुकाव को द्योतित करता है। यह प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में पाया जाता है। चरित्र सामाजिक अन्त करण (Social Conscience) होता है। जो व्यक्ति चरित्रहीन होता है, वह अपराध की ओर शीघ्र प्रवृत्त हो जाता है, क्योंकि वह उचित निर्णय नहीं कर पाता।

(द) मानसिक बीमारियाँ (Mental Diseases)

मानसिक बीमारियों के कारण लोग अपराध करने के लिये विवश हो जाते हैं। उनकी विचारशक्ति क्षीण हो जाती है। मनोविकृतियाँ (Psychoses) कई प्रकार से अपराध उत्पन्न करती हैं। व्यक्ति को अन्दर से ऐसी आवाज सुनाई पड़ती है कि मार डालो और मनोवृत्ति का रोगी तुरन्त उस आवाज की आज्ञा का पालन कर डालता है।

(३) पारिवारिक कारण (Familial Causes)

परिवार का प्रभाव व्यक्तियों पर अत्यधिक होता है। परिवार व्यक्ति को सुन्दर नागरिक बना सकता है और एक जघन्य अपराधी भी। अब हम उन कारणों पर प्रकाश डालेंगे जो परिवार से सम्बन्धित हैं। और अपराधी प्रवृत्ति को जन्म देते हैं।

(अ) बरबाद परिवार (Broken Home)

बरबाद परिवार वे परिवार कहलाते हैं, जिनके पास कोई साधन नहीं होते—धनोपार्जन करने वाले की मृत्यु हो जाती है या परिवार को छोड़ देता है या पत्नी को तलाक दे देता है। बरबाद घर अपराधों को उत्पन्न करने में बड़ा सहयोग देते हैं। जॉनसन ने लिखा है कि उसके अध्ययन में उसने

५२ / उद्दण्ड बच्चा को बरबाद घर का पाया। हली और ग्रोनर न शिकागो और बास्टन क चार हजार अपराधी बालको मेंस दो हजार को बरबाद घरों का पाया।

(ग) अनतिक परिवार (The Immoral Home)

अनतिक परिवार स हमारा अभिप्राय उन परिवारों स है जिनमे माता पिता या अ य सदस्य अनैतिक होते हैं। लड़कियों क अपराधी बनन म यह तत्व बड़ा सहायक होता ह। मिस इलियट न स्लटन फॉर्म की अपराधी लड़कियों म ६७ लड़कियो का अनैतिक परिवारो स आइ हुई पाया। अनैतिक परिवारो म बच्चा क विचार अच्छ नहा बन पात जिसका प्रभाव उनक मूल्या (V ılue) पर पड़ता है।

(स) माता पिता द्वारा तिरस्कृत बच्चे (Rejected Children)

व बच्चे जो माता पिता द्वारा तिरस्कृत होत हैं उनक अन्दर किसी न किसी का प्रेम प्राप्त करन की प्रबल इच्छा रहती है। उनक हृदय म समाज क प्रति एक प्रकार की घृणा क अकुर पैदा हो जात हैं। इसक कारण वे अपराधियो क जाल म शीघ्र एव सरलता स फस जात हे क्योंक वहा पर उन्ह प्रेम मिलता है।

(द माता पिता का व्यवहार (Behaviour of Parents)

ब च माता पिता क व्यवहार का अनुकरण करत हैं और उनका व्यवहार अधिकाश रूप म परिवार द्वारा प्रदत्त शिक्षा पर आधारित रहता है। बट (B ı t) का निष्कप है कि अपराध ८० / बच्चो म माता पिता के व्यवहार क कारण पाया जाता ह।

(य) अपराधी भाई बहना का प्रभाव
(Effect of Delinquent Siblings)

जिन बच्चों क भाइ बहिनो म कोई भी अपराधी होता ह तो बच्चे शीघ्र अपराधी बनते हैं। अपराधी बच्चो का प्रभाव अन्य भाइ बहिना पर शीघ्र पड़ता है क्योंकि व हर समय साथ रहत हैं।

(४) माता पिता क द्वारा नियन्त्रण म कमी
(Lack of Parental Control)

जिन परिवारा म माता पिता बच्चों पर उचित नियन्त्रण नहीं रखत हैं वहाँ पर भी अपराधी प्रवृत्तियाँ शीघ्र विकसित होती है। बच्चा पर सदैव उचित नियन्त्रण रखना चाहिय।

[1]Elliot Mable A Correctional Education and the Delinquent Girl pp 26 28

४. सामाजिक कारण (Social Causes)

सामाजिक व्यवस्था भी अपराधों को जन्म देने में बड़ी सहायक होती है। इसके कुछ तत्वों पर हम विचार करेंगे :—

(अ) सामाजिक धारणायें और मूल्य (Social Attitudes and Values)

किसी विशिष्ट समुदाय में जो धारणायें और मूल्य पाये जाते हैं, उन पर भी यह आधारित रहता है कि अपराध को जन्म मिलेगा या नहीं। जब विचार धाराओं और धारणाओं में संघर्ष पाया जाता है, तो सामाजिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है और अपराध होने प्रारम्भ हो जाते हैं। उदाहरण के लिये आधुनिक युग में व्यक्तिवाद (Individualism) अपराध को जन्म देता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सब लोग अपना अपना लाभ देखते हैं और सामाजिक कल्याण की ओर कोई नहीं देखता। जब नेता व्यक्तिगत स्वार्थ की नीति अपनाते हैं तो साधारण व्यक्ति एवं अपराधी इस नीति को क्या नहीं अपनावेंगे। अपराधी भी इसी विश्वास के साथ अपराध करता है कि वह व्यक्तिगत कल्याण चाहता है, उसके लिये साधन कुछ भी अपनाये जाँय। सदरलैंड उचित ही लिखते हैं, 'ऐसी आदरणीय विचारधारा की कल्पना करना कठिन है जो कि इस व्यक्तिवाद की विचारधारा से अधिक, अपराधी प्रवृति से तालमेल रखती हो और अपराधी प्रवृति को प्रेरणा देती हो।"[1]

(ब) धन के विषय में गलत विचार (Wrong Notion for Wealth)

आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में धन की महत्ता बहुत अधिक बढ़ गई है। सम्पत्ति सब गुणों से अधिक पूज्य हो गई है। सम्पत्ति के विषय में ऐसी विचार धारा होने के कारण उसको प्राप्त करने की इच्छा भी बढ़ गई है। हर व्यक्ति अधिक से अधिक धन प्राप्त करने की इच्छा रखता है और जीवन का सार भोग विलास में समझता है। इतनी तीव्र इच्छा होने के कारण लोग किसी न किसी प्रकार धन प्राप्त करना चाहते हैं। सदरलैंड ने लिखा है "अपराध अधिकाशतया सरलता से धन प्राप्त करने की इच्छा की उसी प्रकार की काल्पनिक अभिव्यक्ति है।"[2]

---

[1] "It is difficult to imagine a respectable philosophy which would be more in harmony in with and conducive to criminality than this philosophy of individualism" Sutherland Edwin H, 'Principles of Criminology' Fourth Edition (1947) J B Lippincott Company, New York, p 73

[2] "Crime is frequently similar speculative expression of the desire for easy money" ibid, p 74

(५) आर्थिक कारण (Economic Causes)

अनेक विद्वानों ने कई बार इस तथ्य को दोहराया है कि आर्थिक कारण अपराध को उत्पन्न करने मे महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। अधिकाश अपराध आर्थिक सम्पत्ति के विरुद्ध होते हैं। वे अपराध, जो बाह्य रूप से आर्थिक प्रतीत नहीं होते, उनके पीछे भी आर्थिक उद्देश्य छिपे रहते हैं। उदाहरण के लिये हत्या का अपराध व्यक्ति के शरीर के विरुद्ध है परन्तु उनके पीछे भी आर्थिक दृष्टिकोण हो सकता है। वेश्यावृत्ति साधारणतया सार्वजनिक आचार के विरुद्ध अपराध है, परन्तु उसमे भी आर्थिक तथ्य छिपा हुआ है। अपराध और आर्थिक दशाओं का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये अनेक अध्ययन हुये हैं। अब हम कुछ आर्थिक कारणों पर प्रकाश डालेंगे—

(अ) दरिद्रता (Poverty)

दरिद्रता अपराध को जन्म देती है। दरिद्रता के कारण माता-पिता बच्चों की कोई चिन्ता नहीं कर पाते हैं, इसके कारण बच्चे अपराधी बन जाते हैं। दरिद्रता स्वय समाज के प्रति विद्रोह उत्पन्न कराने के लिये पर्याप्त है।

(ब) क्षुधा एव भुखमरी (Hunger and Starvation)

क्षुधा एव भुखमरी भी मनुष्य को अपराध करने के लिये बाध्य करती है। डा० हेकरवाल ने उचित ही लिखा है, "क्षुधा और भुखमरी उन्हें अपराध के सरल एव कुटिल मार्ग पर चलने के लिए प्रलोभित करती है।"[1]

(स) धन का लालच (Greed for money)

धन का लालच भी अपराध का प्रमुख कारण है। श्वेत वस्त्रधारी अपराधियों का विवरण हम दे चुके हैं। इन लोगों के पास काफी धन होता है, फिर भी यह इच्छा बनी ही रहती है कि और अधिक धन मिले। हजार से लाख, लाख से करोड़ और करोड़ से अरब की भावना इन्हें जालसाजी एव अन्य अपराध करने के लिए प्रेरणा देती है।

(द) बिना परिश्रम के धन प्राप्त करने की इच्छा (Craving for Easy Money)

लोग बिना परिश्रम के धन प्राप्ति करना चाहते हैं और उसके लिए नये नये उपाय प्रयोग मे लाते हैं। अभी हाल में दिल्ली, कानपुर और कलकत्ते में कुछ ऐसी फर्में (Firms) पकड़ी गई थीं, जो विज्ञापन द्वारा झूठी झूठी बातें

[1] "Hunger and starvation tempt them to tread the easy and devious path of crime" Haikerwal, B S, 'Economic and Social Aspects of Crime in India,' p 64

निकालती थीं और लोगों को ठगती थीं। साधारणतया हर एक व्यक्ति में यह इच्छा पाई जाती है कि मैं शीघ्र धनी हो जाऊँ। यही इच्छा भ्रष्टाचार, चोर-बाजारी एवं रिश्वतखोरी को जन्म देती है।

(४) अनिर्दिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति
(Fulfilment of Vague wants)

आवश्यकतायें सदैव बढ़ती रहती हैं। इनकी पूर्ण तृप्ति कभी नहीं हो सकती। अनिर्दिष्ट आवश्यकताओं के पीछे लोग उसी प्रकार दौड़ते हैं, जैसे कोई परछाईं के पीछे दौड़े। कई बार तीसरी मोटरकार की आवश्यकता उसी प्रकार अपराध करने के लिए प्रेरित करती है, जैसे क्षुधा एवं भुखमरी।

(५) अत्यधिक धन का एक व्यक्ति के पास होना या पूँजीवाद
(Excessive Money in one hand or Capitalism)

जब धन अधिक मात्रा में किसी के पास होता है, तो वह गर्व करने लगता है और धन से मदान्ध होकर कुमार्ग पर चलने लगता है। धनाढ्यों द्वारा किये जाने वाले अपराध किसी से छिपे नहीं हैं। मद्यपान और वेश्यावृत्ति तो उनके साधारण खेल हैं। वे राजनैतिक भ्रष्टाचार को भी प्रोत्साहित करते हैं।

(६) राजनैतिक कारण (Political Causes)

राजनैतिक कारण भी अपराधों को जन्म देते हैं। उनमें से प्रमुख कारण निम्न हैं —

(अ) राजनैतिक भ्रष्टाचार (Political Corruption)

जिन लोगों के हाथ में सत्ता होती है, वे राज्य के बहाने अनेक स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। कई बार कानून ही परिवर्तित कर दिये जाते हैं। इन नेताओं को देखकर अन्य नागरिक भी कानून के महत्त्व को नहीं समझते हैं। अपराध करने वालों की सहायता अनेक बार राजनैतिक नेता करते हैं, इसके कारण भी अपराधों को प्रोत्साहन मिलता है।

(ब) पुलिस विभाग की अनैतिकता एवं कौशलहीनता
(*Inefficiency and Immorality* of police department)

पुलिस विभाग के कारण भी अपराध होते हैं। प्रथम तो ये अपनी कौशलहीनता के कारण अपराधियों को पकड़ नहीं पाते हैं और जिन्हें पकड़ भी लेते हैं, उनको स्वतन्त्रता देकर प्रोत्साहित करते हैं। स्वयं घूस लेते हैं, जिसका प्रभाव साधारण जनता पर बड़ा अनैतिक होता है। एक और प्रकार से पुलिस विभाग अपराधों को जन्म देता है, ये भले आदमियों को निर्दोष

होते हुए भी पकड़ कर जेल में डाल देते हैं। जेल में एक बार जाने का जो प्रभाव होता है, वह हम सब जानते हैं।

(स) वकीलों की अनैतिकता (Immorality of the Lawyers)

वकीलों की अनैतिकता भी अपराधों को प्रोत्साहित करती है। वकील झूठा सच्चा हर मुकदमा ले लेते हैं और गवाहों को झूठ बोलने में परिपक्व कर देते हैं। लोग यह सोचते हैं कि अच्छा वकील कर लिया तो जघन्य से जघन्य अपराध से भी छूट जायेंगे इस भावना के कारण वे उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करते।

(७) साँस्कृतिक कारण (Cultural Causes)

साँस्कृतिक कारण भी अपराध का एक प्रमुख कारण है। साँस्कृतिक संघर्ष (Culture Conflict) के कारण व्यक्ति अपने समूह के अनुसार नहीं बना पाता है। उसके मस्तिष्क में सदैव यह संघर्ष चलता रहता है कि कौनसा व्यवहार उचित है और कौनसा नहीं। इस संघर्ष के कारण वह कानून का उल्लंघन कर डालता है।

(८) भौगोलिक कारण (Geographical Causes)

भौगोलिक कारण भी अपराधों को प्रोत्साहित करते हैं। प्रारम्भिक अपराधशास्त्रियों के अनुसार अपराध भौगोलिक स्थिति, मौसम एवं जलवायु पर आधारित होता है। लम्बरासो का विश्वास था कि शरीर के विरुद्ध अपराध मैदानों में सबसे कम, पठारी प्रदेशों में उससे अधिक और पहाड़ी भागों में सबसे अधिक होते हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि गर्म देशों में शरीर के विरुद्ध अपराध अधिक होते हैं, जब कि ठण्डे देशों में तुलनात्मक दृष्टि से सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध अधिक होते हैं। अपराध मौसमों के अनुसार भी परिवर्तित होते रहते हैं। सर्दियों में सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध बढ़ जाते हैं, जब कि गर्मियों में शरीर के विरुद्ध अपराध पराकाष्ठा पर होते हैं।

(९) संदेशवाहन के साधनों का प्रभाव
(Effect of Means of Communication)

संदेशवाहन के साधनों के प्रभाव के कारण भी अपराध उत्पन्न होते हैं। इनका प्रभाव मनुष्यों के मूल्यों को निर्धारित करता है और चरित्र का निर्माण या पतन करता है। संदेशवाहन के निम्न साधन विचारणीय हैं —

(अ) समाचार पत्र (News Papers)

समाचार पत्र अपराधों को घटाने मे बड़ी सहायता करते हैं। समाचार पत्रों में अपराध के समाचार बड़ी ही रोचक एव आदरपूर्ण भाषा में छापे जाते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि लोग अपराधियों को *आदर्श मानकर* उनका अनुसरण करने की इच्छा करने लगते हैं। समाचार पत्र अपराधियों के *विरुद्ध होने वाली सम्पूर्ण कार्यवाही* को पहले से ही छाप देते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि अपराधी सतर्क हो जाते हैं।

(ब) चलचित्र (Motion Pictures)

चलचित्र मनुष्यों के जीवन पर बड़ा प्रभाव डालते हैं। चलचित्र म अपराध करने की सम्पूर्ण विधियाँ प्रदर्शित की जाती हैं। हरबर्ट ब्लूमर (Herbert Blumer) ने लिखा है कि १९३३ ई० मे इलिन्योस (Illinois) नगर में 'The wild boys of the road' चलचित्र के प्रदर्शित होने के एक मास के अन्दर ही १४ बच्चे *घर से भाग गये*। इनमें से एक १२ वर्ष की *लड़की थी* जो कि बिल्कुल उसी प्रकार कपड़े पहने थी, जैसे कि उस चलचित्र की प्रमुख नायिका।[1]

(स) रेडियो (Radio)

जिस प्रकार समाचार पत्र और चलचित्र अपराधों को प्रोत्साहित करते हैं उसी प्रकार रेडियो भी करता है।

(१०) विविध कारण (Miscellaneous Causes)

अपराध के और भी अनेक कारण हैं। अब हम उनमें से कुछ अत्यन्त प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालेंगे।

(अ) बुरी सगत (Bad Company)

मनुष्य का व्यवहार उसकी सगत पर आधारित रहता है। यदि सगत खराब हुई तो मनुष्य खराब प्रवृत्तियों की ओर प्रवृत्त होने लगता है।

(ब) मनोरजन के साधनों की कमी
(Lack of means of recreation)

मनुष्य अपने खाली समय में व्यर्थ की बात सोचता है। इस समय का उपयोग यदि रचनात्मक मनोरजन द्वारा किया जाय, तो मनुष्य का विकास हो सकता है। अधिकाश रूप से मनोरजन के साधनों की बड़ी कमी है।

---

[1] Herbert Blumer, 'Movies and Conduct'

(स) घने बसे घर (Over Crowding)

अव्यवस्थित एव घने बस घर भी अपराध को जन्म देते हैं। इन घरों में कोई भी नैतिकता नहीं रहती। बच्चों का विकास भली प्रकार से नहीं हो पाता।

(द) पड़ौस (Neighbourhood)

पड़ोस पर भी यह आधारित होता है कि कोई व्यक्ति अपराधी बनेगा या नहीं। कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं जिनमें अपराधियों की संख्या अधिक पाई जाती है। इन क्षेत्रों में लोग शीघ्र अपराधी बन जाते हैं।

अपराधों का नियन्त्रण (Control of Crimes)

अपराध मानव समूह के प्रारम्भ से ही पाया जाता है। भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न साधनों द्वारा अपराध को नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया गया है। अपराध को अधिकाश रूप स अपराधी का उत्तरदायित्व समझा जाता रहा है इस कारण से उन्हें किसी न किसी कारण से दण्ड दिया जाता रहा है। आधुनिक युग में विचार कुछ कुछ परिवर्तित होते जा रहे हैं। अब हम कुछ उन सिद्धान्तों का वर्णन करेंगे जिन पर कि अपराधों को नियन्त्रित करने के साधन आधारित रहे हैं।

दण्ड के सिद्धान्त (Theories of Punishment)

एल्सवर्थ फेरिस (Ellsworth Faris) ने दण्ड के सिद्धान्तों को निम्न पाँच प्रमुख वर्गों में बाँटा है —

(१) प्रायश्चित का सिद्धान्त (Theory of Expiation)
(२) प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त (Retributive Theory)
(३) निवर्त्तक सिद्धान्त (Deterrent Theory)
(४) निरोधात्मक सिद्धान्त (Preventive Theory)[1]
(५) सुधारात्मक सिद्धान्त (Reformative Theory)

प्रायश्चित का सिद्धान्त (Theory of Expiation)

इस सिद्धान्त के अनुसार जो व्यक्ति अपराध करता है, वह पाप भी करता है। पाप करने के कारण वह क्रुद्ध ईश्वर के सामने पापी के रूप में उपस्थित होता है। ईश्वर कभी न कभी इस पाप का प्रायश्चित कराने के लिए घोर विपदा डालता है। जो भी व्यक्ति अपराध करता है, उसे ईश्वर अवश्य दण्ड देता है।

---

[1] Faris has written it as 'Theory of Disablement' (अयोग्यता का सिद्धान्त)।

प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त (Retributive Theory)

यह सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि अपराध करने वाले के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। यह सिद्धान्त प्रतिशोध की भावना से पूर्ण है। इसका आधार यह है कि आपका किसी ने दाँत तोड़ दिया है, तो आप भी उसका दाँत तोड़ दीजिए। यदि किसी ने पाँच हजार रुपए चुराए हैं, तो उससे उतना ही धन वसूल कर लेना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति ने एक व्यक्ति की हत्या कर दी है, तो उसको भी प्राण दण्ड दिया जाना चाहिये। जर्मन दार्शनिक काण्ट (Kandt) ने इस सिद्धान्त का जोरदार समर्थन किया है। उसका कहना है कि दुनियाँ में कर्तव्य सर्वोच्च वस्तु है और अपराध के लिए दण्ड देना ही नैतिकता है।

प्राचीन समय में इस सिद्धान्त को कार्य में लाया जाता था। आधुनिक युग में भी कुछ पिछड़े हुए क्षेत्रों में इस सिद्धान्त का प्रयोग होता है।

इस सिद्धान्त के कारण अपराधों का निरोध नहीं हो पाता। यह भावना बनी रहती है कि जितना पाया है, यदि पकड़े गये तो उतना ही दे देंगे, घर से क्या जाता है। यह दण्ड का सिद्धान्त केवल प्रतिशोध पर आधारित है, परन्तु अपराध अनेक मानसिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों से उत्पन्न होते हैं। अपराध को रोकने के लिए उन कारणों को नष्ट करना चाहिए, जो अपराध को जन्म देते हैं।

निवर्त्तक सिद्धान्त (Deterrent Theory)

यह सिद्धान्त इस सत्य पर आधारित है कि अपराध करने वालों को ऐसा कठोर दण्ड देना चाहिये, जो दूसरों के लिए बड़ा भयानक एवं शिक्षाप्रद हो और वे अपराध करने से डरने लगें।

दुःख और सुख के सिद्धान्त (Pain and Pleasure Theory) द्वारा इसकी पुष्टी की गई है। इनका कहना है कि व्यक्ति वह कार्य करता है, जिसमें उसे कम दुःख सहकर अधिक सुख की आशा होती है। जैसे एक व्यक्ति चोरी करता है और उसके लिए उसे छः माह कारावास मिलता है, तो वह छः माह के दुःख की तुलना उस सुख से, जो दस हजार रुपयों से मिलेगा, करता है। यदि सुख अधिक हुआ, तो वह चोरी करेगा। इनका कहना है कि मनुष्य का सारा व्यवहार इसी सिद्धान्त द्वारा निश्चित एवं निर्धारित होता है। अतः इनके अनुसार छोटे से छोटे अपराध करने पर कड़े से कड़े दण्ड देने चाहिए। इसके दो प्रभाव होंगे :—

(i) अपराध करने वाला अपराध नहीं करेगा और (ii) दूसरों के लिए यह भय उत्पन्न करेगा कि ऐसा करने से इतना कठोर दण्ड मिलता है, इसलिए अपराध नहीं करना चाहिए।

जर्मन दार्शनिक हेगल (Hegel) ने इस सिद्धान्त का बड़ा समर्थन किया है। बहुत समय तक इस सिद्धान्त के अनुसार अपराधियों को बड़ी कड़ी सजायें मिलती रहीं।

इस दण्ड के सिद्धान्त को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके विरुद्ध सबसे महत्वपूर्ण तर्क यह है कि अतीत काल से इस सिद्धान्त का अनुसरण किया जाता रहा है, फिर भी अपराध साधारणतया बढ़ते ही जा रहे हैं। दूसरा तर्क इसके विरुद्ध यह है कि जिन लोगों में अपराधी प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है, उन्हें दण्ड से डरवाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

निरोधात्मक सिद्धान्त (Preventive Theory)

इस सिद्धान्त का आधार यह है कि न होगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी'। इस सिद्धान्त के अनुसार अपराधियों को किसी प्रकार से भी अपराध करने से रोका नहीं जा सकता। इसका केवल एक ही उपाय है कि अपराधियों को समाज से पृथक् कर दिया जाय। पृथक् करने दो मार्ग हैं:—आजन्म कारावास और मृत्यु दण्ड।

यह सिद्धान्त भी अपराधों पर कोई विशेष नियन्त्रण न कर सका। यदि सारे अपराधियों को बन्दीगृह में जीवन भर के लिये बन्द करना प्रारम्भ कर दिया जाय, तो पृथ्वी का अधिकांश भाग बन्दीगृहों में परिवर्तित हो जायगा। उदाहरण के लिये भारत सरकार ने जघन्य अपराध करने वालों को अंडमान निकोबार द्वीपों में भेजना प्रारम्भ किया। कुछ समय के उपरान्त ये द्वीप अपराधियों से भर गये।

सुधारात्मक सिद्धान्त (Reformative Theory)

आधुनिक युग में एक नवीन सिद्धान्त की ओर हम लोग बढ़ रहे हैं। यह सिद्धान्त निम्न दो प्रमुख विचारों पर आधारित है:—

(अ) अपराध केवल व्यक्ति के दोष के कारण नहीं होते। समाज अपराधों के लिये परिस्थिति उत्पन्न करता है और उन्हें अपराध करने के लिए अवसर प्रदान करता है, इसलिए समाज दोषी है न कि व्यक्ति। अतः समाज को इन दोषों को दूर करना चाहिए और अपराधियों का सुधार करना चाहिए।

(ब) यदि यह भी स्वीकार कर लिया जाय कि अपराध करने का दोष व्यक्ति पर है, तो यह प्रश्न उठता है कि किन कारणों से वह अपराध करता है।

ये कारण उसकी शक्ति के बाहर के होते हैं। अपराधी रोगी के समान है। क्या शारीरिक दोषों से पीड़ित रोगियों को दण्ड दिया जाता है? इसके विपरीत उनके साथ हम अधिक सहानुभूति रखते हैं। इन रोगियों के ही समान सामाजिक रोगियों, अपराधियों को दण्ड न देकर उनका उपचार करना चाहिए।

इस सिद्धान्त के अनुसार अपराधी होने के उन कारणों पर विचार किया जाता है, जिनके कारण वह अपराध करता है और फिर उसका सुधार वैज्ञानिक रीतियों द्वारा किया जाता है।

रूढ़िवादी व्यक्ति इस सिद्धान्त की बड़ी आलोचना करते हैं। उनका मत है कि दण्ड न दिया गया, तो अपराधों की संख्या अत्यधिक बढ़ जायेगी और अराजकता फैल जायगी। इसका उत्तर इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों ने यह दिया है कि जो दण्ड के सिद्धान्त युगों से प्रयोग हो रहे हैं, वे यदि अपराधों का निराकरण न कर सके, तो उनके प्रयोग का क्या लाभ। वास्तव में किसी रोग को तभी ठीक किया जा सकता है, जबकि उसके कारणों को समाप्त किया जाय। बर्नार्ड शॉ ने उचित लिखा है, "यदि अपराधों को बिल्कुल दण्डित न किया जाय, तो संसार समाप्त न होगा, जिस प्रकार कि बीमारियों के दण्डित न करने से समाप्त नहीं हुआ है। दण्ड एक भूल और पाप है।"[1]

इस सिद्धान्त के पक्षपातियों की संख्या सामाजिक विज्ञानों के साथ २ बढ़ती जा रही है। इस सिद्धान्त के द्वारा अपराध निरोध सरलता से हो सकेगा। कई स्थानों पर इसके प्रयोग चल रहे हैं। आधुनिक सरकारें बहुत कुछ इस सिद्धान्त की ओर झुक रही हैं। अनेक देशों में मृत्युदण्ड समाप्त कर दिया गया है। इङ्गलैंड में भी गत वर्ष मृत्युदण्ड को हटाने के लिये विधि लोकसभा द्वारा पारित की गई है। भारतीय लोकसभा में भी इसे समाप्त करने के लिये शीघ्र ही विधि पारित होने वाली है।

सुधारात्मक सिद्धान्त को दण्ड का सिद्धान्त कहना उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यह निर्धारित नहीं करता, बल्कि उपचार प्रस्तुत करता है। सुधार को दण्ड कहना भारी भूल है। दण्ड की काली स्मृति को आधुनिक युग में समाप्त कर देना चाहिए। अपराधियों से शत्रुता का व्यवहार न करके मित्रता एवं सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए।

---

[1] "*If crimes were not punished at all, the world would not* come to an end any more than it does now that disease is not punished at all Punishment is a mistake and a sin" Bernard Shaw, Preface to English Prisons under Local Government", by Sidney & Beatrice Webb

अपराधी और समाज (Criminal and Society)

समाज अपराधियों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखता। प्रारम्भ से ही समाज ने अपराधियों पर कड़ी दृष्टि रखी है। अपराधी समाज का शत्रु समझा जाता है। जब तक राज्य का पूर्ण रूप से विकास नहीं हुआ था, जिस व्यक्ति या समूह को हानि पहुँचती थी, वह अपना बदला विरोधी पक्ष से ले लेता था। *आधुनिक युग में अपराधियों को दण्डित करने के लिए राज्य ने बड़ी व्यवस्था* की है। इस व्यवस्था को समझना भी अत्यन्त आवश्यक है।

पुलिस (Police)

पुलिस विभाग का यह उत्तरदायित्व है कि समाज में शान्ति और सुरक्षा *स्थापित रखे। जो व्यक्ति कानूनों का उल्लङ्घन करें, उन्हें गिरफ्तार करे* और न्यायालय में उपस्थित करे। राज्य के अपराध नियन्त्रण कार्यक्रम में पुलिस विभाग का बड़ा महत्व है। वास्तव में देखा जाय तो यह विभाग ही एक मात्र इसका उत्तरदायी है।

इतना महत्त्वपूर्ण विभाग होते हुए भी सरकार ने इसमें योग्य व्यक्ति भर्ती नहीं किये हैं। साधारण सिपाही का वेतन बहुत कम है, इसके कारण वह अपराध रोकने के बजाय अपराधों को बढ़ाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व पुलिस विभाग का प्रमुख कार्य राष्ट्रीय विचारधारा वाले व्यक्तियों को कुचलना था। यह विभाग भ्रष्टाचार, निर्दयता एवं अनैतिकता के लिये बड़ा कुख्यात है। सन् १९४७ के उपरान्त इस विभाग में कुछ सुधार किये गये हैं। उच्च अधिकारियों का चुनाव होता है और उन्हें शिक्षा भी दी जाती है। आशा की जाती है कि भविष्य में यह विभाग अपना वास्तविक स्थान प्राप्त कर लेगा और अपराध निरोध में सहायक हो सकेगा।

न्यायालय (Courts)

अपराधी पुलिस द्वारा पकड़ा जाने पर, न्यायालय के सामने उपस्थित किया जाता है। न्यायालय उस पर लगाये गये अभियोग पर विचार करता है और अपना निर्णय देता है। जिन व्यक्तियों को न्यायालय दोषी पाता है, उन्हें कानून के अनुसार दण्ड देता है।

आजकल न्यायालय में वादी और प्रतिवादी का सङ्घर्ष मात्र रहता है। वकीलों के तर्क चलते हैं। वास्तव में न्याय की यह उचित पद्धति नहीं। न्याय करने के लिये न्यायालय को अच्छी तरह अभियोग की छानबीन करना चाहिये और ऐसे विभागों को विकसित करना चाहिये, जो कि सत्य वृत्तान्त का पता लगा सकें।

न्यायालय में आजकल जिस प्रकार कार्य होता है, वह बड़ा ही दोषपूर्ण है। इनमें इतना अधिक धन खर्च करना पड़ता है कि साधारण व्यक्ति न्यायालय में जाने का साहस ही नहीं कर सकते। समय इतना लगता है कि सन्तोषी से सन्तोषी व्यक्ति भी ऊब जाता है। न्यायालय की कार्य पद्धति इतनी पेचीदा है कि अच्छे पढ़े लिखे लोग भी भूलभुलैया में फस जाते हैं। सरकार को चाहिये कि इस ओर ध्यान दे और न्यायालय को वास्तविक रूप में न्यायालय बना दे।

बन्दीगृह (Jails)

जो व्यक्ति न्यायालय द्वारा अपराधी ठहराये जाते हैं, उन्हें कारावास या बन्दीगृह में भेज दिया जाता है। बन्दीगृह अपराधियों को शेष समाज से पृथक् रखने की एक युक्ति है। बन्दीगृह के तीन मुख्य कार्य हैं—अपराधियों को बन्दी रखना, सुधार करना और निवृत्त करना। बन्दीगृह प्रथम कार्य को छोड़ कर अन्य कार्यों को पूरा करने में असमर्थ रहा है। अपराधियों के सुधार एवं निवृत्त करने के स्थान पर बन्दीगृह अपराधी प्रवृत्तियों को जन्म देने का केन्द्र बन गया है। बन्दीगृह की इस दशा के निम्न प्रमुख कारण हैं:—

(अ) अप्रशिक्षित व्यक्तियों की नियुक्ति।
(ब) प्रशासन में कमियाँ।
(स) भेड़ियाधसान व्यवहार।
(द) निर्दयतापूर्ण व्यवहार।
(य) रहने का अमानुषिक प्रबन्ध।
(र) लाभदायक तथा उपयोगी रोजगार की कमी।
(ल) अविश्वास का वातावरण।
(व) घनी आबादी।

बन्दीगृह में अत्यधिक सुधार की आवश्यकता है। बन्दीगृहों की वर्तमान अवस्था के बारे में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जहाँ तक हो किसी को बन्दीगृह में न भेजा जाय।

अपराध निरोध (Crime Prevention)

आधुनिक युग मे यह अनुभव किया जाने लगा है कि अपराधी शत्रु नहीं बल्कि एक रोगी के समान हैं, उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। क्लॉड म्युलिन्स (Claud Mullins) ने लिखा है, "यद्यपि मैं विश्वास करता हूँ कि अनेक मामलों में कारावास की सजा को टाला नहीं जा सकता, तथापि मैं निश्चित रूप से इस सिद्धान्त मे विश्वास करता हूँ (जैसी कि मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक प्रस्तुत करेगी) कि कारावास का दण्ड

देने के पूर्व प्रत्येक सम्भव विकल्प पर विचार करना चाहिये। इन विकल्प-पद्धतियों के विकास की आवश्यकता है और जैसे वे विकसित एवं समुन्नत होती जाय कारावास की सजायें कम होनी चाहिये। मैं प्रोबेशन व्यवस्था में उसके दोषों के होते हुए भी पूर्णतया विश्वास करता हूँ।"[1]

अब हम आधुनिक युग में जो प्रमुख नवीन साधन अपनाये गये हैं उन पर प्रकाश डालेंगे।

प्रोबेशन उस युक्ति को कहते हैं जिसमें न्यायालय द्वारा दण्डित अपराधी को जेल न भेज कर समाज में ही कुछ शर्तों पर रहने की आज्ञा प्रदान की जाती है। प्रोबेशन से अभिप्राय यह है कि दण्ड को अस्थायी रूप से स्थगित कर दिया जाता है, जिससे कि दोषी को अपने को सुधारने के लिये एक अवसर और मिल सके।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि प्रोबेशन का उद्देश्य दोषी को वह अवसर और प्रोत्साहन प्रदान करना है, जिससे कि वह अपने जीवन की रक्षा कर सके और उसे सुखपूर्ण बनाने की योजना बना सके।

जब किसी व्यक्ति को प्रोबेशन प्रदान किया जाता है, तो वह एक प्रोबेशन ऑफिसर के संरक्षण में रखा जाता है। प्रोबेशन ऑफिसर अपने व्यक्तिगत प्रभाव एवं प्रत्यक्ष देख रेख के द्वारा उसी पर्यावरण में दोषी को सुधारने का प्रयत्न करता है।

प्रोबेशन ऑफिसर के कार्य

(Functions of Probation Officer)

प्रोबेशन व्यवस्था में प्रोबेशन ऑफिसर का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह योजना उसके व्यक्तित्व पर आधारित है। जिस तरह रोगी के लिये डॉक्टर महत्वपूर्ण होता है, न कि दवा, उसी प्रकार एक दोषी के लिये प्रोबेशन ऑफिसर महत्वपूर्ण होता है न कि प्रोबेशन व्यवस्था। प्रोबेशन ऑफिसर यदि विश्वास का प्रतिपादन कर सका और दोषी के अपराध करने का कारण जान

---

[1]"Though I am convinced thrt sentences to prison cannot be avoided in many cases, I firmly believe (as I hope this book will show) in the principle that every possible alter *native should be thought of before a sentence to incarceration* is passed These alternative methods need to be developed and as they are developed and improved, sentences to prison should decrease I firmly believe in the probation system, despite its defects" Claud Mullins, 'Crime and Psychology' p p 120-21, Methuen & Co Ltd London Fifth Edition Revised 1949.

सका, तो दोषी को सुधारने में देर नहीं लगती। प्रोबेशन ऑफिसर अनुनय (Persuasion) और चेतावनी (Warning) द्वारा दोषी को सुधारने का प्रयत्न करता है। दोषी का मित्र एवं संरक्षक दोनों ही रूपों में कार्य करता है। प्रोबेशन ऑफिसर निम्न प्रमुख कार्य करता है –

(अ) दोषियों को अपने सरंक्षण में रखता है।

(ब) दोषियों की जीवनी (Case History) को तैयार करता है और उसके द्वारा अपनी प्रवृत्ति उत्पन्न होने के कारणों का पता लगाता है।

(स) दोषियों को सुधारने का प्रयत्न करता है।

(द) न्यायालय को दोषियों के विषय में सूचना देता है।

(य) दोषियों को हर सम्भव उपाय से समाज का सुन्दर नागरिक बनाने का प्रयत्न करता है।

(र) दोषियों को रोजगार भी दिलवाने की चेष्टा करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रोबेशन ऑफिसर हर सम्भव उपाय से दोषियों की समस्याओं को सुलझाता है। वह दोषी के परिवार की भी सहायता करता है। वह उनके लिये उचित घर ढूंढने में, पति पत्नि के झगड़ों को समाप्त करने में एवं अन्य समस्यायें सुलझाने में सहायता करता है।

(ल) जो दोषी अच्छा व्यवहार नहीं करते और जिनकी सुधरने की आशा नहीं होती, उन्हें कारावास भिजवा देता है।

प्रोबेशन काल में जो लोग सन्तोषजनक व्यवहार नहीं करते उन्हें अपना दण्ड भुगतना पड़ता है। प्रोबेशन व्यवस्था का काफी अच्छा परिणाम रहा है। संसार की सभी प्रगतिशील सरकारों ने इस प्रणाली को प्रयोग में लिया है। भारतवर्ष में भी यह प्रणाली अपनाई गई है। यद्यपि यह प्रणाली इस समय छ सात राज्यों में अपनाई गई है, तथापि बम्बई तथा उत्तर प्रदेश इसमें अग्रसर हैं।

प्रोबेशन के कारण आज संसार में लाखों व्यक्ति कारावास जाने से बच गये हैं और स्वतन्त्रतापूर्वक नयी समस्याओं एवं परिस्थितियों का सामना कर रहे हैं। जैसे जैसे योग्य एवं सेवाभावी व्यक्ति प्रोबेशन को बढ़ाने की चेष्टा करेंगे वैसे वैसे यह व्यवस्था शक्तिशाली होती जायगी। और आगे आने वाली सन्तानों में अपराधी प्रवृत्ति को रोकने में सहायक होगी। क्रेवन (Craven) ने उचित ही लिखा है, "प्रोबेशन अपराध के विरुद्ध रक्षा की पहली पंक्ति है।*

---

* "Probation is the first line of defence against crime" Craven, Cicely M., 'Punishment and Reform', p 46, Oxford University Press, (1951)

(२) पैरोल (Parole)

पैरोल से अभिप्राय यह है कि दण्ड काल पूरा होने के पहले ही दोषी को जमानत पर छोड़ दिया जाता है। पैरोल के समय में दोषी को अच्छा आचरण रखना पड़ता है। दोषी को प्रोबेशन ऑफिसर के सरक्षण मे रहना पड़ता है।

(३) नवीन प्रकार के बन्दीगृह (New Types of Prison)

पिछली शताब्दी में सब से बड़ी खोज यह हुई कि बन्दियों पर विश्वास किया जा सकता है। पहले बन्दियों को कड़े पहरे मे रखा जाता था। अधिकतम सुरक्षा (Maximum Security) का प्रबन्ध किया जाता था। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ससार का सबसे सुरक्षित बन्दीगृह है।

आधुनिक युग में न्यूनतम सुरक्षा (Minimum Security) वाले बन्दी गृह स्थापित किये गये हैं।

प्राचीरविहीन एव खुले बन्दीगृह (wall-less and Open Prison)

प्राचीरविहीन बन्दीगृह इङ्गलैंड में सर्व प्रथम सन् १६३३ में प्रारम्भ किया गया इसका नाम न्यू हॉल कैम्प (New Hall Camp) है। सर्वप्रथम इस स्थान पर वेकफील्ड (Wekefield) बन्दीगृह से लारियों में जाते थे और पेड़ों को उखाड़ते थे। *बाद में इन्होने एक सड़क का निर्माण किया।* कुछ समय बाद इन्होंने झोंपड़ियों और घर निर्माण किये और वहीं पर रहने लगे। बन्दियो पर विश्वास किया जाने लगा। झोपड़ियो में ताले नहीं लगते थे, खिड़कियो मे सींखचे नहीं जड़े हुए थे, जङ्गल मे गगनचुम्बी प्राचीरें नहीं खड़ी की गई थीं और द्वार पर बन्दूकधारी सन्तरी तैनात नहीं थे। केवल पाँच बन्दीगृह के अधिकारी उनके साथ रहते थे। सबमे प्रमुख बात यह है कि शिविर के चारों ओर सीमा निर्धारित करने के लिये पेड़ों पर श्वेत चिन्ह लगा दिये गये थे और कोई भी प्राचीर नहीं थी, परन्तु १५ वर्ष में केवल एक बन्दी भागा।

रूस में बोलशैवो (Bolshevo), टर्की मे इमराली और स्वीडन के बन्दीगृह ससार मे प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष में भी डाक्टर सम्पूर्णानन्द के प्रयत्नों से इस प्रकार के शिविरों की स्थापना की गई है। सन् १९५२ मे इस प्रकार का एक शिविर लगाया गया था। नवलगढ़ (बनारस जिला) एव पीलीभीत (उत्तर प्रदेश) मे प्राचीरविहीन बन्दीगृहों की स्थापना के प्रयत्न हो रहे हैं।

आदर्श बन्दीगृह (Model Prisons)

स्वीडन के आदर्श बन्दीगृह संसार मे सर्वश्रेष्ठ है। उत्तर प्रदेश के लखनऊ नगर मे भी एक आदर्श बन्दीगृह की स्थापना की गई है। इन बन्दीगृहों मे

जीवन अनेक सुविधायें देने का प्रयत्न किया गया है। बन्दी स्वतन्त्रता से घूम सकते हैं और उनके रहने की व्यवस्था भी सन्तोषजनक रहती है। लखनऊ के आदर्श बन्दीगृह में एक बड़े सुन्दर हाल (Hall) की व्यवस्था की गई है। इसमें नाटक खेलने के लिये मञ्च की भी व्यवस्था है। बन्दियों के लिये अन्य मनोरञ्जन के साधन उपलब्ध हैं। कभी कभी इन बन्दियों को नगर में भी जाने दिया जाता है।

(४) वयस्क सुधारगृह (Adult Reformatories)

संयुक्त राज्य अमेरिका (U S.A) में सन् १८७६ में एलमीरा (Elmira) सुधारगृह न्यूयार्क राज्य में स्थापित किया गया। इन सुधारगृहों में अपराधियों को नये नये व्यापार सिखाये जाते हैं और शारीरिक शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, आचारशास्त्र एवं नागरिकता की शिक्षा दी जाती है।

ये सारे उपाय अपराध निरोध के लिये प्रयोग में लाये जा रहे हैं, परन्तु ये उपाय केवल बन्दियों के प्रति जो व्यवहार होना चाहिये, उस तक ही सीमित हैं। साधारणतया अपराधियों को मानव समझना चाहिये और न्यायालयों को अपराधियों के विषय में सोचना चाहिये, न कि अपराधों के विषय में। उन्हें अपराधियों के भविष्य एवं समाज के कल्याण को दृष्टि में रखना चाहिये, न कि दण्ड देने के उद्देश्य को।

अपराधों के निरोध का कार्यक्रम बहुत बड़ा है। इसके लिये हमें उन कारणों को समाप्त करना होगा, जिनके कारण अपराध उत्पन्न होते हैं। जहाँ तक वंशानुसंक्रमण के कारणों का सम्बन्ध है, वे मनुष्य की शक्ति से परे हैं। सुप्रजनन विद्या के द्वारा प्राणीशास्त्रीय तत्वों को सुधारने का प्रयत्न किया जा सकता है। मनुष्य के स्वास्थ्य को सुधारने के प्रयत्न होने चाहिये। आर्थिक कारण अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। बेकारी को समूल नष्ट करना चाहिये। लोगों को न्यूनतम वेतन मिलना चाहिये। सट्टेबाजी को बन्द करना चाहिये। सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं को अधिक स अधिक कार्यान्वित करना चाहिये। क्राउट (Krout) ने उचित लिखा है, 'प्रजातन्त्र समाज में सुरक्षा अपराध निरोध का सबस महत्वपूर्ण साधन है।'[1]

गन्दी एवं घनी बस्तियों के स्थान पर स्वच्छ एवं स्वास्थ्यप्रद गृहों का निर्माण होना चाहिये। मनोरञ्जन एवं मनोविनोद के साधनों की भी व्यवस्था करनी चाहिये। परिवार अपराध उत्पन्न करने का सबसे प्रमुख कारण है।

[1] "Security in a democratic society is a most important means of crime prevention" Krout, Maurice H , p 61, ibid,

माता पिता को उचित शिक्षा दी जानी चाहिये। सामाजिक एवं वयस्क शिक्षा का भी प्रबन्ध करना चाहिये। माता-पिता को जीवन की कलायें, शान्तिपूर्ण अनुकूलन एवं बच्चों को मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के विषय में ज्ञान कराना चाहिये। पिता और अध्यापक के सम्बन्ध भी विकसित होने चाहिये। प्रत्येक बच्चे का मनोवैज्ञानिक, शारीरिक एवं सामाजिक परीक्षण होना चाहिये। मानसिक संघर्ष का बाल्यकाल में ही पता लगा लेना चाहिये और उनकी परिचर्या भी तभी हो जानी चाहिये। सबसे प्रमुख आवश्यकता यह है कि बच्चे के जीवन को प्रारम्भ से ही उचित निर्देशन मिलना चाहिये।

इनके अतिरिक्त सबसे बड़ी आवश्यकता धारणाओं एवं मूल्यों में परिवर्तन करने की है। यदि लोग समाज के नियमों का मूल्य समझने लगे तो वे कभी भी कानून का उल्लङ्घन नहीं करेंगे। मैं हेली और ब्रोनर के निम्न कथन से पूर्णतया सहमत हूँ —

अपराधी प्रवृत्ति से युद्ध करने के लिये केवल दमन करने वाले उपाय सम्भवत उतना प्राप्त नहीं कर सकें जितना कि समाजीकृत जीवन के मूल्यों के लिये उच्च प्रकार की सामान्य भावना प्राप्त करेंगे।[1]

प्रश्न

१. अपराध के कारणों का वर्णन कीजिये। अपराध निरोध के लिये उपाय लिखिये।

(Discuss the causes of crime Suggest ways and means for the prevention of crime) Rajputana, 1954.

२. भारत में अपराधों की वृद्धि के लिये कौन से कारक उत्तरदायी हैं? इस समस्या के लिये आप क्या समाधान प्रस्तुत करते हैं?

(What are the factors responsible for the increase of crime in India? What solution would you offer for this problem?) Agra, 1956.

३. बाल अपराध की परिचर्या में प्रोबेशन ऑफिसर के कार्यों का वर्णन कीजिये।

---

[1] "No mere repressive measures for combating delinquency can possibly accomplish what a better type of general feeling for the values of socialized living might produce" Healy, William and Bronner, Augusta F 'New Light on Delinquency and its Treatment,' p 219

(Describe the duties of the probation Officer in the treatment of Juvenile crime) Agra, 1953

४ दण्ड के विभिन्न सिद्धान्तों को लिखिये।

(*State the various theories of punishment*)

५ निम्न पर टिप्पणी लिखिये —

(१) सुधार गृह (२) आदर्श बन्दीगृह (३) पैरोल।

(Write short notes on the following)—

(1 Reformatories [Rajputana, 1953] 2 Model Prison 3 Parole)

SELECTED READINGS

1 Elliott and Merrill 'Social Disorganisation,' chapters V, VI and XXVI

2 Lemert, Social Pathology chapter IX

3 Phelps and Henderson Contemporary Social Problems chapters XVIII and XIX

4 Sethna 'Society and the Criminal' chapters V, VI, and VII

अध्याय २३

बाल अपराध
(Juvenile Delinquency)

सामाजिक अन्तर्क्रिया (Social Interaction) के रूप मे बाल अपराध (Juvenile Delinquency) एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं विचारणीय सामाजिक समस्या है। राष्ट्र का समुचित चरित्र निर्माण तथा क्षमतायें बालक के चरित्र विकास पर ही पूर्णतया आधारित है। बाल अपराध एक समाज-विरोधी क्रिया है, जिसका तत्कालीन प्रभाव यद्यपि विशेष हानिकर नहीं पड़ता परन्तु उससे उसका भविष्य गम्भीर रूप से प्रभावित होता है।

बाल अपराध का अर्थ
(Meaning of Juvenile Delinquency)

बाल अपराध, अपराध (Crime) का ही एक पहलू है, जिसे अपराध शास्त्रीय शब्दों में 'कम गम्भीर अपराध (Misdemeanor) कहते हैं। साथ ही स्थान विशेष के अन्तर्गत निश्चित की गई आयु के बालक द्वारा किये गये अवैधानिक तथा समाज विरोधी (Anti Social) कार्य को कहते हैं। श्री कोचावरा (T. L. Kochavara) ने बाल अपराधी के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ' एक बाल-अपराधी वह है, जिसकी क्रियायें माता-पिता, शिक्षक अथवा अन्य उत्तरदायी व्यक्ति, जो इनकी देख-रेख तथा शिक्षा की हेतुक सम्बन्धी एवं सजगता को प्रकट करता है। बालक, जो बिना कारण के स्कूल से अनुपस्थित रहते हैं, कानून भग करते हैं अथवा सामाजिक अपराध करते हैं, इस परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं।''[1] समाजशास्त्रियों की दृष्टि मे किसी विशेष समय के संस्थापित रीति रिवाजो या मान्य लोक मतों के विरुद्ध कार्य करना ही अपराध है। इस प्रकार अपराध का अर्थ विधि द्वारा निषिद्ध कार्यों तक सीमित नहीं रहता है। बाल अपराध पर तो यह कथन अक्षरशः घटित होता है।

[1] "A delinquent is one whose activities cause concern and alarm to parents, teachers or others responsible for its care and education Children who play truant without reason, violate la o- commit a social offence come under this definition" T·L Kochavara The Delinquent child. (The Indian Journal of Social work Volume XIII, Dec, 1952), p. 168.

पारिभाषिक दृष्टिकोण से यदि सूक्ष्म अवलोकन करें तो बाल अपराध पर अपराधशास्त्री और समाजशास्त्री एक मत नहीं हैं। इसी प्रकार कानूनी दृष्टि से भी भिन्न २ राज्यों ने बालक के अलग २ कार्यों को बाल अपराध माना है। फिर भी एक बात सामान्य रूप से पाई जाती है कि बच्चों के वे कार्य या वे व्यवहार, जो लोक-कल्याण के विपरीत हों, बाल अपराध कहे जा सकते हैं। गिलिन तथा गिलिन ने लिखा है, "समाजशास्त्र की दृष्टि में वयस्क अपराधी या बाल-अपराधी एक ऐसा व्यक्ति है, जो ऐसे कार्य का अपराधी हो, जिसको एक समूह समाज के लिए हानिप्रद समझता है, जिसमें अपना विश्वास कार्योन्वित करने की शक्ति है और इसलिए वह कार्य निषिद्ध है।"[1] परन्तु इतना ही नहीं, बाल अपराधों की सख्या में ऐसे भी अपराध आते हैं, जो यदि वयस्क द्वारा किए जावें तो अपराध नहीं कहे जावेंगे, क्योंकि बालक समाज की धरोहर एवं भविष्य है, अत. समाज के कल्याण तथा इच्छा के साथ ही साथ वे कार्य भी सम्मिलित हैं, जो स्वयं उस बालक के विरुद्ध हों।

सन् १९०९ में हुई श्वेत गृह सम्मेलन (White House Conference 1909) ने बाल अपराध को इस प्रकार से व्यक्त किया, "बालक का कोई भी दुर्व्यवहार, जिसकी कानून के द्वारा विवेचना हो सके।"[2] अमेरिका के कानून द्वारा बाल अपराध की विस्तृत व्याख्या की गई है। बाल अपराध की सुगठित परिभाषा, जो कि न्यूयार्क के कानून अनुसार है, वह यह है, "..........'अपराधी बालक' शब्दों का अर्थ होगा सात से ऊपर तथा सोलह वर्ष की आयु से कम (१) जो संयुक्त राष्ट्र के किसी भी कानून को भग करता है तथा इस राज्य के अथवा न्यूयार्क शहर के किसी भी अधिनियम या आदेश का या ऐसा कोई कार्य करते हैं, जिसे यदि कोई वयस्क द्वारा किया हुआ होता तो उसे उस पर मृत्यु दण्ड अथवा आजीवन कारावास का दण्ड मिलता, जब तक कार्य को हटाने की कोई आज्ञा बाल न्यायालय द्वारा प्राप्त न हो, यह क्षेत्र में लागू होगा। धारा ३१२–c, उपविभाग (c) और धारा ३१२–f, उपविभाग (a) तथा (b) अपराधी प्रक्रिया का विधि समूह; (b) जो अशोध्य, अशासनीय या आदतन अवज्ञाकारी और

[1] "Sociologically either a criminal or a Juvenile delinquent is one who is guilty of an act believed by a group that has the power to enforce it's belief, to be injurious to society and therefore prohibited" Gillin and Gillin 'Cultural Sociology' p 788

[2] "Any such juvenile misconduct as might be dealt with under law" Quoted from G B Mangold 'The Problem of Child Welfare" p 368

माता पिता, संरक्षक देख रेख करने वाले या अन्य कानून अधिकारी के नियन्त्रण के बाहर है, (c) जो आदतन आवारा है, (d) जो बिना ठीक कारण के और माता पिता संरक्षक या अन्य देख रेख करने वाले के घर तथा रहने के स्थान का त्याग कर देता है (e) जो किसी भी न्याय भंग करने वाले व्यवसाय में लगता है (f) जो भीख माँगता है अथवा भिक्षा के लिये अनुरोध करता है अथवा पैसा जनता में माँगता है (g) जो अनैतिक या पतित लोगों के साथ रहता है (h) जो कि बुरी आदत डालने वाले स्थान पर बार बार जाता है, जिसका सचारण नियम के विरुद्ध है, (i) जो आदतन रूप में अग्र दर्शनीय का प्रयोग अथवा अश्लील भाषा का प्रयोग करता है या (j) जो इच्छा से ऐसा व्यवहार करता है जो दूसरों को अथवा उसको स्वयं को क्षति या नैतिक व स्वास्थ्य को खतरे में डालता हो।"[1] यह बाल अपराधी की कानूनी भाषा में परिभाषा है। वास्तव में बाल अपराधी यहीं तक सीमित नहीं हो जाता। समाज की अनेक ऐसी रूढ़ियाँ हैं, जिनका प्रवेश कानून के द्वारा

---

[1] the words 'Delinquent child' shall mean a child over seven and under sixteen years of age (a) who violates any law of United States or of this state or ordinance of the city of New York, or who commits any act which if committed by an adult would be a crime except any child fifteen years of age who commits any act which if committed by an adult would be a crime punishable by death or life imprisonment, unless an order removing the action to the children s court has been made and filed pursuant to section three hundred twelve -c, sub-division (c) and section three hundred twelve f, sub-division (a) and (b) of the code of criminal procedure or habitually disobedient and beyond the control of his parents guardian, custodian or other lawful authority (c) who is habitually truant (d) who without just cause and without the consent of his parent guardian or other custodian, deserts his home or place of abode (e) who engages in any occupation which is in violation of law (f) who begs or who solicits alms or money in public place (g) who associates with immoral or vicious persons (h) who frequents any place the maintenance of which is in violation of law (i) who habitually uses obscene or profane language or (j) who so deports himself as wilfully to injure or endanger the morals or health of himself or others Criminal code, Domestic Relations Court Act of the city of New York section 2, (15) as amended 1948 Quoted from Police and children, A study of New York city's Juvenile Aid Bureau Citizens Committee on Children of New York City, Inc, 1951

भी नहीं हो पाया है। श्री न्यूमेयर ने लिखा है, "अतः बाल-अपराध का अर्थ समाज विरोधी व्यवहार का कोई प्रकार है, यह व्यक्तिगत तथा सामाजिक विघटन का समावेश करता है।"[1]

बाल अपराध में वे बालक आते हैं, जो बालिग मताधिकार से पहले की आयु वाले हों। पुनरपि च अलग अलग राज्यों ने अपने अपने कानूनों द्वारा इसके लिये विभिन्न आयु सीमा निर्धारित की है। भारतवर्ष में यह आयु सीमा १६ वर्ष है। मध्यप्रदेश में १८ वर्ष तथा कहीं कहीं २१ वर्ष तक भी पहुंच गई है। इसी प्रकार विदेशों में भी इस आयु सीमा में विभिन्नता का दिग्दर्शन होता है। संयुक्तराज्य अमेरिका के अन्तर्गत २६ राज्यों में १८ वर्ष, ५ राज्यों में १६ वर्ष, ७ राज्यों में १७ वर्ष तथा ३ राज्यों में २१ वर्ष निश्चित की गई है। कनाडा ने बालक की आयु सीमा १६ वर्ष रखी है, परन्तु राज्यपाल की आज्ञा से १८ वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है। अल्बेटा (Albreta) में बालक की आयु सीमा १६ वर्ष तथा बालिका की १८ वर्ष निश्चित की गई है।

आदि काल में बालक तथा स्त्रियाँ अपराधी क्रियाओं के लिये क्षम्य समझे जाते थे। इस प्रकार उस समय बाल अपराध सम्बन्धी कोई विकट समस्या समाज के समक्ष नहीं थी, परन्तु बाद में शनैः शनैः बालकों को अपराध करने पर वे ही दण्ड दिये जाने लगे, जो कि वयस्कों के लिये निर्धारित थे। उदाहरणतया १८३१ में जार्ज वेल नामक तेरह वर्षीय बालक को मेडस्टोन (Maidstone) में फाँसी दी गई। इसी प्रकार १८३३ ई० में निकॉल्स वाइट नामक ९ वर्षीय बालक को भी फाँसी की सजा दी गई। भारतवर्ष में तो यह आततायी प्रथा अब तक प्रचलित है। फिरोजपुर में एक चौदह वर्षीय बालक विजयकुमार को उसकी माँ के आत्म सम्मान की रक्षार्थ एक खून करने के अपराध में १५ अप्रेल, १९६० को आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया है।[2]

यह आततायी मत आधुनिक बाल मनोवैज्ञानिकों के द्वारा पूर्णतया ठुकरा दिया गया है। 'बाल अपराधी' धारणा की उत्पत्ति बाल न्यायालय आन्दोलन संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा से हुई। अब बालकों के साथ भिन्न प्रकार का व्यवहार किया जाता है। उन्हें दण्ड नहीं दिया जाता, वरन् सुधार के प्रयत्न

---

[1] "Thus delinquency implies some from of antisocial behaviour, involving personal and social disorganisation " Martin H Neumeyer Juvenile Delinquency in 'Modren Society', p 27

[2] The Hindustan Times, dated 16th April, 1960.

किये जाते हैं। बालक को उसकी क्रिया के प्रति चाहे वह समाज विरोधी हो या न हो, उसे अनुत्तरदायी स्वीकार किया जाता है। इसी मूल भावना से प्रेरित होकर बालकों के द्वारा किये गये अपराधों को भिन्न श्रेणी में किया जाने लगा है।

बाल अपराधी तथा वयस्क अपराधी में अन्तर

(Difference beetwen Juvenile Delinquent and Adult Offender)

बाल अपराध को विशिष्ट तथा सामान्य रूप में जान लेने के पश्चात् यह भी आवश्यक है कि बाल अपराधी तथा वयस्क अपराधी के मूलभूत अन्तरों को स्पष्ट रूप से जान लिया जाय। अब हम इनके अन्तर पर प्रकाश डालेंगे।

बाल अपराधी (Juvenile Delinquent)	वयस्क अपराधी (Adult Offender)
(१) बाल अपराधी सामान्यतया २१ वर्ष से कम आयु का होता है।	(१) वयस्क अपराधी सामान्यतया २१ वर्ष की आयु से अधिक होता है।
(२) यह अपराधी नहीं कहला सकता, जब तक कि कोई बहुत गम्भीर अपराध नहीं कर दिया गया हो, क्योंकि अन्य अपराध बिना इच्छा के तथा अबोध रूप में कर देता है। उसे इसके परिणाम के प्रति पूर्णतया अज्ञानता होती है।	(२) वयस्क कोई भी अपराध अथवा समाज विरोधी क्रिया जान बूझ कर करता है। उसे इसके परिणामों के प्रति अज्ञानता नहीं होती तथा यदि होती भी है तो वह उसके लिये पूर्ण तथा उत्तरदायी है। अत उसे अपराधी कहा जाता है।
(३) अपराध कर देने के पश्चात् भी बालक का प्रत्येक दृष्टि से समाज में तथा कानून की दृष्टि से स्तर समान ही रहता है। अपराधी तथा गैर अपराधी (Non-Delinquent) में कोई अन्तर नहीं पड़ता।	(३) वयस्क अपराधी के विषय में यह बात नहीं है। उसका सामाजिक स्तर (Status) पूर्ण रूप से गिर जाता है। वह एक असम्माननीय व्यक्ति बन जाता है।
(४) बाल अपराधी की नागरिकता (Citizenship) के अधिकार समाप्त नहीं हो जाते तथा वह पूर्ववत् ही अमुक देश का नागरिक बना रहता है।	(४) वयस्क अपराधी की नागरिकता छीन ली जाती है तथा उसे वे अधिकार नहीं जो एक नागरिक को होते है।
(५) बाल अपराधियों को उनके विषय में स्थापित पूर्व प्रलेख (Record) भविष्य में किसी रूप में	(५) वयस्क अपराधी का पूर्व रेकॉर्ड अत्यधिक महत्वपूर्ण तथा गम्भीर रूप में उस न्यायालय को प्रभावित करता है।

प्रभावित नहीं करते। नौकरी या किसी भी रूप में स्थापित होने के लिये बाल अपराधी होना अवगुण (Disqualification) नहीं है गुण (Qualification) तो निश्चितरूप से है ही नहीं। दण्ड देने मे भी न्यायालय उसके पूर्व रेकार्ड से प्रभावित नहीं होता है।	
(६) न्यायालय से परिचित नहीं कराया जाता, वरन् अन्य सुधारात्मक सस्थाओं में सहानुभूति पूर्ण आश्रय तथा शिक्षा प्राप्त होती है।	(६) वयस्क अपराधी न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है।
(७) बाल अपराधी को किसी प्रकार का कारावास अथवा मृत्युदण्ड आदि नहीं दिया जाता, वरन् स्कूल या अन्य सस्थाओं में भेज दिया जाता है।	(७) अपराधी को न्यायालय के द्वारा *कारावास अथवा मृत्युदण्ड आदि* दिये जाते हैं।
(८) बाल अपराधी समाज के लिये वर्तमान रूप में अधिक प्रभावकारी अथवा हानिकर नहीं होते।	(८) वयस्क अपराधी समाज तथा राज्य व्यवस्था को तितर बितर कर देते हैं तथा इस प्रकार अत्यन्त हानिकारक समाज व राज्य विरोधी होते हैं।
(९) बाल अपराधी भविष्य को अत्यन्त गम्भीर रूप में प्रभावित करते हैं।	(९) वयस्क अपराधी से भविष्य इतना प्रभावित नहीं होता, वह जैसा बन जाता है, स्थायी रूप से बना रहता है।

बाल अपराध का विस्तार
(Extent of Juvenile Delinquency)

बाल अपराधियों की साख्यिकी गणना करने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं। इनके वास्तविक विस्तार का ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है। जो कुछ सख्या *मालूम पड़ती है या होती है वह न्यायालय में प्रस्तुत किए गये बाल अपराधियों* की सख्या पर आधारित होती है। समाज की रूढ़ियों तथा अनेक नियमों के अनुसार ऐसे कई बाल अपराधी न्यायालय म प्रस्तुत नहीं किये जाते हैं। ज्ञात आंकड़ो से प्राप्त सख्याय निम्न प्रकार से हैं :—

शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित विज्ञप्ति के अनुसार १६४६ में २८,२१० तथा १६५१ मे ४०११६ बाल अपराधी न्यायालयो में प्रस्तुत किये गये। ११ मार्च १६६० को स्वराष्ट्र उपमन्त्री श्रीमती वायलेट अलवा ने बताया कि १६२४ बाल अधिनियम बम्बई (जो कि दिल्ली में भी लागू होता है) के अन्तर्गत सन् १६५६ में १६५६ आवारा बालक देहली में पकड़े गए। अमेरिकी बालक समिति (Children's Bureau) तथा श्वेत गृह सम्मेलन (White House Conference 1909) ने बाल अपराधियो की सख्या २,००,००० प्रति वर्ष बताई।

सर्वेक्षण के द्वारा ज्ञात हुआ है कि बालिकाओं की अपेक्षा बालकों द्वारा अपराध अधिक किये जाते है। इसका अनुपात अमेरिका में ६ १, इङ्गलेंड मे ७ १ तथा भारतवर्ष में ८ १ निर्धारित किया गया है।

बाल अपराधियों के प्रकार (Types of Juvenile Delinquents)

अपराध विशेषज्ञों ने विशिष्ट रूप से बाल अपराधियों के तीन प्रमुख प्रकार बताये है।

(१) आक्रमणकारी प्रकृति का (To Aggresive in Nature)

विशेषतया इसमें बालिकाओ की अपेक्षा बालको की सख्या अधिक आती है। बालक में अपराध करने की मूल प्रेरणा नहीं होती है, वरन् शान दिखाने के लिये या क्रोधाभिभूत होकर अपराध करता है। बालक मे 'दादा' बनने की प्रवृत्ति अधिक बलवती होती है तथा वह स्थान स्थान पर अपने कारनामो को रुचि के साथ प्रकट करता है।

(२) सुप्तावस्थित बाल अपराधी
(Sleeping Type of Juvenile Delinquent)

बालक अत्यन्त चालाक तथा अन्तर्मुखी केन्द्रीकरण से ग्रस्त होता है। कितने ही प्रलोभन अथवा भय के होते हुए भी उसके मुख से कोई बात निकलवा लेना सरल बात नहीं है। बालिकाओं में इस प्रकार की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में पाई जाती है।

(३) अबोध बाल-अपराधी
(Innocent Type of Juvenile Delinquent)

इस प्रकार के अन्तर्गत बालक और बालिकायें समान रूप से आते हैं। इसके अन्तर्गत वे बाल अपराधी आते हैं, जो बिना किसी उद्देश्य, भावना या इच्छा के अपराध कर देते है। अपराध के समय उसकी क्रिया अवश्य सचेत रहती है, परन्तु वह किसी जानकारी, उद्देश्य या योजना के अभाव मे होती है।

बाल अपराध के कारण (Causes of Juvenile Delinquency)

बाल अपराध को जन्म देने वाले विभिन्न कारण हैं। इसके वे ही कारण हैं, जो अपराध (Crime) के हैं। अपराध के कारणों पर हम पिछले अध्याय में प्रकाश डाल चुके हैं, अत. पुन दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। अब हम बाल अपराध के नियन्त्रण से सम्बन्धित पक्षों पर विचार करेंगे। उनका हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं —

१. बाल अपराध निरोध (Prevention of Juvenile Delinquency)
२. बाल न्यायालय (Juvenile Court)
३ बाल अपराधी का उपचार (Treatment of Juvenile Delinquency)

१. बाल अपराध निरोध (Prevention of Juvenile Delinquency)

उपचार से निरोध सदैव उत्तम रहता है। बालक को अपराधी बनने से पूर्व ही उस स्थिति से बचा लेने को बाल अपराध निरोध कहते हैं। निरोध सम्बन्धी उपायों को प्रयोग में लाने से पूर्व बाल-अपराध के समस्त कारणों पर विस्तृत एवं सूक्ष्म दृष्टि डालना आवश्यक होता है, क्योंकि उसी के माध्यम से बालक की समाज विरोधी प्रवृत्ति में रुकावट डाली जा सकती है। भारतवर्ष में यद्यपि बाल अपराधी के उपचार से सम्बन्धित कुछ कार्य हो चुके हैं, परन्तु निरोध पक्ष पूर्णतया अछूता है। डा० सबनिस ने इसके लिये लिखा है "हमें आर्थिक पुनर्निर्माण के साथ प्रारम्भ करना चाहिये अथवा विस्तृत शिक्षा के *साथ ?"*[1] *निरोध के कार्यक्रम पूर्व अपराधी बालक (Pre delinquent)* के लिये आयोजित किये जाते हैं।

अपराध निरोध के लिये चाहे जो भी उपाय अपनाए जाँय, यह आवश्यक है कि बच्चे का शारीरिक और मानसिक विकास किस प्रकार हो रहा है, इस ओर ध्यान दें।

बाल अपराध निरोध में परिवार के महत्व पर प्रकाश डालते हुए क्लिफोर्ड ने लिखा है, "एक सन्तोषप्रद पारिवारिक जीवन बाल अपराध के विरुद्ध रक्षा करता है। यह इसलिये समुदाय का उत्तरदायित्व है कि उन समस्त संस्थाओं

---

[1] "Should we begin with economic reconstruction or with mass education ?" Dr M Sabnis Preventing Delinquency (An Article in 'Social Welfare' March 1956, p 13)

को शक्तिशाली बनाये जो आगे समुचित पारिवारिक जीवन के विकास में सहायता करेंगी।' [1]

इङ्गलैण्ड में सर्वप्रथम बाल अपराध की रोकथाम के लिये निराश्रयता निरोध सम्बन्धी कदम उठाये गये। सन् १८१२ में सिडनी तथा बैटरिस वैब ने निराश्रयता निरोध के लिये 'नेशनल सोसाइटी' की स्थापना की। इसके मुख्य कार्य थे बाल उपेक्षा, बाल क्षय तथा अन्य रोगों की रोकथाम, सामाजिक बीमे का महत्व और अशक्त बच्चों की चिकित्सा आदि। विशेषज्ञों का यह विश्वास है कि निराश्रयता अपराध की पूर्व स्थिति है। जर्मनी, बेलजियम और स्विटजरलेंड मे अनेक श्रमिक उपनिवेश स्थापित किये गये हैं, जहाँ भिखारियों, आवारागर्दों, छोटे-मोटे अपराध करते रहने वाले अपराधियों और थोड़े शारीरिक रूप से बाधित व्यक्तियों को, जो कि कठिन श्रम करने में असमर्थ होते हे, काम दिया जाता है।

सामुदायिक तथा पर्यावरणीय सुधार के साथ ही साथ निरोध के लिये व्यक्तिगत सुधार की भी मूल आवश्यकता है। न्यूमेयर ने लिखा है, "केवल अच्छा घर, स्कूलें, धार्मिक स्थान तथा क्रीड़ा स्थान बनाने से ही कुछ बालकों को गलत राह पर जाने से नहीं रोका जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी स्वतन्त्र राय की निश्चित पहुँच होती है और आचरण का पिछड़ा होना विरोध का तत्व है।"[2] इस प्रकार की शिक्षा देना, जो सामान्य व्यक्तियों को मान्य हो तथा हृदयग्राही बन सके, आचरण निर्माण तथा अपराध निरोध के लिये पहली आवश्यकता है। इसी के आधार पर बालक का ऐसा निर्माण सम्भव है, जिससे कि वह सही वस्तुएँ प्राप्त करने की इच्छा रख सके। इसके अतिरिक्त बालक में समाज द्वारा मान्य आचरण करने की शिक्षा देकर उसी में पूर्ण सतुष्टि प्राप्त करने की शिक्षा देना भी आवश्यक है।

निरोध सम्बन्धी व्यक्तिगत कार्यक्रमों के अतिरिक्त सामाजिक सेवाओं की भी अवहेलना नहीं की जा सकती। इस सम्बन्ध में न्यूमेयर का कथन

[1] "...a satisfying family life protects against delinquency It is, therefore, the responsibility of the community to strengthen all agencies which further the development of wholesome family life" Clifford Manshardt The Delinquent Child in India p 265

[2] "Moraly building fine homes, Schools, Churches and playgrounds will not prevent some youngster from going wrong. Each individual has a certain range of free choice and back of conduct is the element of volition' Martin H. Neumeyer: Juvenile Delinquency in Modern States, p 375

उल्लेखनीय है, "सामान्यया समस्त मानव व्यवहार मानव जीवन के उत्पादन हैं।"[1] थ्रेशर (Thrasher) शो (Show) आदि के अध्ययनों ने इस तथ्य की पुष्टि की है। अत यह व्यर्थ होगा, यदि व्यक्ति को तथा उसके व्यवहार को *उस सामाजिक ससार से दूर रहकर देखा जाय, जिसमें कि वह रहता है।* एप्लेगेट (Applegate)[2] ने बालकों को जो कठिनाई में थे, साथ देने का कार्य किया तथा इस सम्बन्ध में अपने विस्तृत अनुभव प्रस्तुत किये। उसकी पद्धति कठिनाई में पड़े बालक के लिये 'बड़े भाई' (Big Brother) नाम से प्रसिद्ध है। उसका मत है कि बालक की अन्तरात्मा की बात जानने के लिये तथा विरोधी व्यवहार के निरोध हेतु बालक के साथ मित्रतापूर्ण एव सहायता का दृष्टिकोण होना चाहिये।

बाल परामर्शदात्री समितियों (Child Guidance Clinics) ने भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। अमेरिका में बाल संघ (Children's Bureau), ने जिसकी स्थापना श्रीमती जूलिया लेमोप के संचालिका रूप में सन् १९१२ में हुई, महत्वपूर्ण कार्य किये। सबसे अधिक क्रान्तिकारी कार्य १९३० म हुई प्रेसीडेन्ट हूवर के *समय श्वेत गृह सम्मेलन* (White House Conference 1930) ने किया। उसने बाल अधिकारों (Charter Rights of Children) की महत्वपूर्ण घोषणा की। इसमें बालक के अधिकारों की सुरक्षा तथा उसके समाज विरोधी पथ की ओर जाने से रोकने के कार्यक्रमों की योजना थी।

भारतवर्ष में बाल अपराधी प्रवृत्ति रोकने के लिये किसी प्रकार का नियोजित कार्यक्रम नहीं है। इस कमी की पूर्ति के लिये बम्बई बाल सहायक समाज (Children's Aid Society, Bombay) ने बाल सवा समितियों (Juvenile Service Bureau) की स्थापना की तथा अनेक *उल्लेखनीय कार्य सम्पादित किये। इसका उद्देश्य बालक का परिवार, स्कूल तथा* समाज में व्यवस्था करना है। डा० सबनीस[3] ने बाल अपराध निरोध के लिये प्रमुखत ६ सस्थाओं के सहयोग की आवश्यकता बताई है, वे हैं, प्रथम पुलिस तथा कानून पालक सस्थाएँ, द्वितीय प्राथमिक पाठशालाओं के अधिकारी,

---

[1] "Nearly all human behaviour is a product of group life," Ibid.

[2] Melbourne S Applegate, "Helping boys in Trouble The Layman in Boy Guidance (New York, Association Press, 1950)

[3] Dr M S Sabnis Preventing Delinquency (Anarticle in 'Social Welfare' Vol 2 No 12 March 1956, p 13)

तृतीय स्थानीय चिकित्सालय तथा चिकित्सक, चतुर्थ मनोरञ्जन संगठन, पंचम नारियों के सगठन और षष्ठम स्वय परिवार ।

भारतवर्ष में राज्य सरकारों द्वारा इस सम्बन्ध में किया गया सबसे महत्वपूर्ण कार्य है, वेश्यावृत्ति निरोधक अधिनियम । इन अधिनियमों के अन्तर्गत नाबालिगों को नैतिक सकट से छुटकारा दिलाने तथा उन्हें चकलों से मुक्त करवाये जाने की व्यवस्था है । राज्यों मे ऐस अधिनियम भी हैं, जिनके द्वारा एक निश्चित आयु से कम के बालकों को दुकानों एव व्यावसायिक सस्थाओं मे भर्ती किये जाने पर प्रतिबन्ध है ।

डा० सबनीस[1] *ने बाल अपराध निरोध की एक अत्यन्त ही व्यावहारिक योजना प्रस्तावित की है, जिसमें समग्र पक्षों का समुचित ध्यान रखा गया है । योजना निम्न प्रकार से है —*

(१) बच्चे के लिये उसका अपना घर, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो, उसकी सबसे बड़ी आशा और शक्ति होती है, इसलिये किसी प्रकार की भी समाज कल्याण योजना बनाते समय हमे इस बात का अवश्य ध्यान रखना है कि बच्चे के घर का जीवन अत्यन्त सुरक्षित और सुखी हो ।

(२) यदि हम बच्चे को उपर्युक्त सुविधायें पहुँचाने की बात कहते हैं तो इसके साथ यह देखना भी आवश्यक है कि इन साधनों को प्रदान करने के लिये उसके माता पिता की आय भी काफी हो ।

(३) शारीरिक और मानसिक रूप से बाधित प्रत्येक बच्चे के पोषण और उसकी देखभाल का दायित्व राज्य या समुदाय पर होना चाहिये । यद्यपि हम यहाँ भी अपने इसी विश्वास की पुनरुक्ति करते हैं कि बच्चे का घर उसके जीवन की सबसे बड़ी शक्ति है पर फिर भी अपनी आर्थिक विकास की वर्तमान स्थिति को देखते हुए हम कह सकते हैं कि यदि किन्हीं परिस्थितियों में घर की सुविधा न प्राप्त हो सके तो बाधित बच्चों के लिये सस्थागत सेवाएँ प्राप्त करना ही इसका दूसरा विकल्प है । यह सुझाव देना इसलिये आवश्यक जान पड़ता है, क्योंकि एक ही बाधित बच्चे पर परिवार की कुल आय का इतना अधिक भाग खर्च हो जाता है कि शेष धन से उसके दूसरे भाई बहनों तथा परिवार के अन्य सदस्यों की आवश्यकताओं का पूरा होना कठिन हो जाता है ।

---

[1] डा० सबनीस, "बाल अपराध निषेध और उपचार" (समाज कल्याण, वार्षिक अक, अगस्त १९५७ मे प्रकाशित एक लेख, पृष्ठ सख्या ४६, ४७)

(४) अनिवार्य शिक्षा का सिद्धान्त (पूर्व प्राथमिक तथा प्राथमिक) सामान्यत सभी राज्य सरकारों द्वारा स्वीकार कर लिया गया है, पर शिक्षा पद्धति में आज भी एक ऐसी कमी है जिसकी ओर इशारा करना आवश्यक हो जाता है यह सुयोग्य अध्यापकों की कमी। अपनी भावी सन्तति को इस प्रकार के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं द्वारा शिक्षा दिलाना, जो कि इतने सुयोग्य नहीं, जिन्हें कम वेतन मिलता है तथा जो अपने विद्यार्थियों पर किसी प्रकार भी उपयोगी एव स्थायी प्रभाव डालने में असमर्थ हैं, एक राष्ट्रीय क्षति है तथा धन का अपव्यय है। अध्यापिकाओं को उचित रीति से प्रशिक्षित करना तथा उन्हें उचित वेतन देने की समस्या को एक राष्ट्रीय समस्या समझ कर हल करना चाहिए।

(५) राष्ट्रीय, राजकीय और स्थानीय प्रशासनों एव नागरिक तथा स्थानीय संस्थाओं को, सभी बच्चों को शिक्षा, स्वास्थ्य एवं मनोरञ्जन सम्बन्धी सुविधायें प्रदान करने का दायित्व सभालना चाहिये।

(६) जब हम बच्चों को अच्छी किस्म की शिक्षा देने की बात कहते हैं तो हमें यह नहीं भूलना है कि इस सिलसिले में माता पिता को भी शिक्षित करना आवश्यक है।

इस प्रस्तावित योजना को क्रियान्वित करते समय भारत के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों की सामाजिक संस्थाओं का विशेष प्रभाव भी स्वीकार करना पड़ेगा। ग्रामीण और शहरी साधनों में से निम्नलिखित का योजना पर सीधा प्रभाव पड़ता है —

ग्रामीण—

१. सामाजिक दायित्व के प्रति सम्मान।
२. अच्छा पड़ौस।
३. स्वय सहायता और पारस्परिक सहायता की परम्परायें।
४ परिवार की एकता।
५ सामाजिक नियन्त्रण को स्वीकार करना।
६ सामाजिक सम्बन्धों में उदारता का भाव।
७ स्थानीय संस्कृति का गौरव।

शहरी—

१ सामाजिक अधिकारों के प्रति जागरूकता।
२. पारस्परिक आर्थिक निर्भरता।
३ बढ़ती हुई सामाजिक जिम्मेदारी।

४. सामूहिक आस्था।
५. जातपांत के भेदभाव का अभाव।
६. राजनैतिक और आर्थिक चेतना।
७. कल्याण (नये और पुराने, स्वदेशी और विदेशी ढग पर)।

उपरोक्त बातों को ध्यान से देखा जावे तो ज्ञात होगा कि यह कार्य व्यावहारिक रूप में इतना सरल नहीं है जितना वर्णन से लगता है। टप्पन ने भी इस बात की पुष्टि करते हुए लिखा है " सम्भवतया न कोई अधिक महत्वपूर्ण, निश्चित रूप से न कोई अधिक कठिन है, जितना कि एक बाल अपराध का निरोध।"[1] लेकिन इतना कहने मात्र से काम नहीं चलेगा। अपराध में कमी लाने का यही एक मात्र सुन्दर तरीका है। सदरलैण्ड ने भी उचित ही लिखा है, "... .. निरोध की नीति पर अवश्य ही बल दिया जाना चाहिये, अगर अपराध की दर में महत्वपूर्ण कमी लानी हो तो।"[2] बाल अपराध की समस्या के निरोधात्मक पक्ष पर बल देते हुए स्टोट (Stott) ने लिखा है, 'इस समस्या का सुझाव निरोधात्मक उपायों की कुशलता के विश्वास अथवा अविश्वास में है।'[3] स्टोट ने ही आगे लिखा है, । "परन्तु यह तभी किया जा सकता है, यदि बाल अपराध को अप्रसन्न बालकपन की विस्तृत बुराई के भाग के रूप में देखें। यदि हम बाद वाली समस्या का निरोध करें तो बाल अपराध भी निरोधित हो जायगा, जैसे कि एक रोग के कारणों के निवारण के साथ ही उसके लक्षण समाप्त हो जाते हैं।"[4] इस प्रकार निरोध बाल अपराध की रोकथाम में अत्यधिक सहायक हो सकते हैं। बाल अपराध के उत्पादक कारकों का मूलोच्छेदन ही इस समस्या का निरोधात्मक उपाय है।

---

[1] " Probably none is more important, certainly none is more difficult, than the one of delinquency prevention" Paul W Tappan Juvenile Delinquency p 491

[2] " Policy of prevention must be emphasized if the crime rate is to be reduced significantly" Edwin H Sutherland Principles of Criminology (Revised by Donald R Cressey Fifth Edition) p 607

[3] "The crux of the problem is one of belief or disbelief in the efficiency of preventive measures" D H Stott 'Saving Children From Delinquency' p 5

[4] 'But this can only be done if delinquency is seen as part of the wider evil of unhappy childhood If we prevent the latter delinquency will also be prevented as with the removal of the cause of a disease the symptoms disappear." Ibid p. 40.

२ बाल न्यायालय (Juvenile Court)

बाल न्यायालय सामान्य न्यायालयों से पृथक् होते हैं। इस न्यायालयों का उद्देश्य अपराधी बालक को दण्ड देना नहीं, अपितु संरक्षण एवं सुधार करना होता है। इनमें अपराधी बालकों पर सबके सामने अभियोग नहीं सुनाया जाता है। अभियुक्त की बात भी बड़ी सहानुभूति से सुनी जाती है और उनकी सारी परिस्थितियों का बड़े ध्यान से अध्ययन किया जाता है। इसका अध्यक्ष एक भत्ता प्राप्त न्यायाधीश होता है, जो दो या एक अवैतनिक स्त्री न्यायाधीशके साथ बाल अपराधियों के मुकदमे सुनता है। आवश्यकता पड़ने पर चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषक का भी सहारा लेते हैं। यहाँ सिपाही साधारण वेषभूषा में रहता है।

बाल न्यायालय की उत्पत्ति तथा विकास
(Origin and development of Juvenile Court)

अपराध का बालक और वयस्क पर विभिन्न प्रभाव पड़ता है, साथ ही सुधारात्मक साधनों का प्रभाव वयस्क की अपेक्षा बालक पर अच्छा एवं शीघ्र पड़ता है। अत राजकीय नीति भी वयस्क की अपेक्षा बाल अपराधी के साथ सुधारात्मक तरीके अधिक काम में लाती है। सर्वप्रथम १८२४ में न्यूयार्क राज्य (New York State) में बाल सुधारालय स्थापित किया, जिससे कि बाल अपराधी वयस्क अपराधों से पृथक् रखे जा सकें। सन् १८३१ के इलीनस नियम (Law of Illinois 1831) के अनुसार छोटों के अपराध एव दण्ड बड़ों से पृथक् किये गये। सन् १८६७ में बाल अपराधी सम्बन्धी सारा कार्य साधारण न्यायालयों को सौंपा। इस प्रकार बाल अपराधियों के अपराध की सुनवाई के लिये पृथक् प्रबन्ध तो नहीं किया गया था परन्तु हाँ, इतना अवश्य था कि राजकीय बाल प्रतिनिधियों का सुनवाई के समय उपस्थित रहना आवश्यक था। सन् १८७० में बोस्टन (Boston) में तथा सन् १८७२ में मेसच्यूसेट्स राज्य (State of Massachusetts) के प्रत्येक हिस्से में बाल-अपराधियो के अभियोग की पृथक् सुनवाई की आवश्यकता प्रतीत हुई। सन् १८७७ में मेसच्यूसेट्स और न्यूयॉर्क राज्य में पृथक् अधिकार सम्पन्न सेशन्स (Sessions) की बाल विषयक मुकद्दमों के लिये स्थापना हुई। इस प्रकार प्रारम्भिक दोषों का निराकरण होते होते सन् १८९९ में शिकागो (Chicago) में बाल न्यायालय की स्थापना हुई। न्यूयार्क शहर मे सन् १९०२ में बाल न्यायालय का प्रवेश हुआ और ब्रोकलयन (Brooklyn) तथा सेन्ट लूइस (St Louis) में एक वर्ष बाद इस प्रकार शिकागो के बाद बाल न्यायालय का आन्दोलन बढ़ता ही गया।

उसके दस वर्ष तक तो बाइस राज्यों ने इसको अपना लिया । भारतवर्ष में भी १६ वर्ष की आयु से पूर्व के लड़के व लड़कियों को इसके अन्तर्गत लिया गया । जब तक पर्याप्त मात्रा मे बाल न्यायालयों की स्थापना नहीं हो जाती, प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश (First Class Magistrate) को बालक सम्बन्धी नियमों के दायरे में अभियोग की सुनवाई करने के अधिकार दिये गये हैं। फिर भी हमारे देश में पृथक् बाल न्यायालयों की स्थापना सम्बन्धी पर्याप्त प्रगति हुई है । २५ बाल न्यायालय बम्बई राज्य मे २ बाल न्यायालय परिचमी बङ्गाल मे, २४ बाल न्यायालय मद्रास में एक हैदराबाद में तथा दो देहली म स्थापित हो चुके हैं। इस प्रकार हम देखते है कि प्रत्येक सभ्य देश मे बाल न्यायालय की स्थापना सम्बन्धी प्रगति शीघ्रातिशीघ्र होती जा रही है ।

बाल न्यायालय तथा अन्य न्यायालयों में तुलना
(Comparison of the Juvenile court and other courts)

बाल न्यायालयो एव अन्य न्यायालयों का तुलनात्मक अन्तर हम निम्न सारिणी पद्धति द्वारा प्रस्तुत करेंगे ।

बाल न्यायालय	अन्य न्यायालय
१, बाल न्यायालय में बालक के अभियोग की सुनवाई का मुख्य ध्येय यह विश्वास करना होता है कि वास्तव मे बालक अपराधी है या नहीं। साथ ही उस बालक से सम्बन्धित साधारण परिस्थितियाँ व चरित्र जानना होता है ।	१ इनमे अपराधी के अभियोग की सुनवाई का मुख्य ध्येय यह जानना होता है कि अपराधी पर जो अभियोग (Charge) लगाया गया, वह अपराध उसने किया या नहीं ।
२. अनुसधानात्मक वैज्ञानिक पद्धति द्वारा अभियुक्तों की सुनाई की जाती है।	२ इन न्यायालयो मे सुनवाई का मुख्य ध्येय सघर्षात्मक प्रणाली पर आधारित होता है । इस प्रकार इसमें दो दल बन जाते हैं-एक *अभियोग लगाने वाला* और दूसरा अभियुक्त ।
३ इन बाल न्यायालयों के अन्तर्गत बालक की चरित्र सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित करने के लिये	३, इन न्यायालयों के अन्तर्गत अपराधियों के चरित्र सम्बन्धी सूचनायें एकत्रित करने के लिये

विस्तृत प्रक्रिया (Elaborate Machinery) होती है।	छोटी प्रक्रिया (Little machinery) होती है।
४. इस प्रकार ये एकत्रित की हुई सूचनायें इस न्यायालय की दृष्टि से अपराधी के सम्बन्ध में निर्णय का आधार बनती हैं।	४. इस न्यायालय में इस प्रकार अभियुक्त के सम्बन्ध में एकत्रित या प्राप्त सूचनायें गवाह के रूप में प्रयोग नहीं की जा सकतीं।
५ विशिष्ट अभियोगों में सुधारात्मक पद्धति अपनाई जाती है, जो कि व्यक्ति विशेष की आवश्यकता के अनुसार निर्धारित होती है, न कि वास्तविक और प्रभावोत्पादक अपराध के प्रसग मे।	५. इस न्यायालय के अनुसार विशिष्ट अभियोगों में सुधारात्मक पद्धति व्यक्ति विशेष की आवश्यकता के अनुसार नहीं अपनाई जाती, अपितु नियमानुसार अपनाई जाती है, जो सभी अपराधियों पर समान रूप से लागू होती है।
६ बाल न्यायालयों में यदि कोई बालक अपराधी प्रमाणित हो जावे और उस स्थिति में राज्य को आवश्यकता प्रतीत हो तो वह उसे सरंक्षण, सुरक्षा तथा उपचार देगा न कि दण्ड।	६. यह न्यायालय अपराधी पर अपराध प्रमाणित हो जाने पर उसे दण्ड देगा।
७. इन न्यायालयों में पुलिस वाले साधारण वेश में रहते हैं तथा अपराधी को पहनाव, बर्ताव या व्यवहार से तनिक भी भय उत्पन्न नहीं होने देते हैं तथा न उनके हथकड़ी लगाते हैं। उनके साथ सामान्य बालक की तरह व्यवहार किया जाता है।	७. ऐसी बात इन न्यायालयों में नहीं होती है, अपितु भय की मात्रा अभियुक्त के कारनामों के अनुसार बढ़ाते जाते हैं, जैसे साधारण अपराधी है तो हथकड़ी डाले बहुत चौकसी के साथ रहेंगे। यदि बहुत बड़ा खूनी या डाकू है तो पुलिस भी सशस्त्र व विशेष जागरूकता के साथ रहेगी।
८. इस न्यायालय की सुनवाई व निर्णयों का प्रचार व प्रसार नहीं किया जाता तथा सुनवाई भी	८. इन न्यायालयों के अन्तर्गत ऐसा नहीं होता। अपराध को खूब प्रसार व प्रचार मिलता है।

बड़े सीधे सादे ढंग से एवं अनौपचारिक रूप में होती है।	इसके अन्तर्गत अन्य भावना तो कुछ भी हो परन्तु यह मान्यता भी अभी तक क्रियाशील है कि अन्य नागरिकों पर अपराध न करने का भय उत्पन्न हो जावे।
६ इन न्यायालयों में सुनवाई के समय वकील आदि को पक्ष या विपक्ष में बोलने की आज्ञा नहीं दी जाती। हाँ आवश्यकता हो तो चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषक, की सहायता ली जा सकती है।	६ ऐसा इन न्यायालयों में नहीं होता। इनके अन्तर्गत अपराधी को अपनी सफाई प्रस्तुत करने हेतु वकील की सहायता लेने की पूरी सुविधा होती है।

बाल न्यायालय के लक्षण
(Characteristics of Juvenile Court)

बाल न्यायालय बालक के समाज विरोधी व्यवहार पर नियन्त्रण रखते हैं। जिस प्रकार भी इस न्यायालय से उसके अधिकार, व्यवहार, पर्यावरण आदि को ठेस लगती है, तो वह सब उसके कल्याण हेतु लगती है, साथ ही इन बाल न्यायालयों के निर्णय बाल-अपराधी के कल्याण हेतु ही होते हैं न कि हानिप्रद।

सीमाएं (Limitations)

इस न्यायालय की सीमा अपने देश की राज्य व्यवस्था पर आधारित है। बाल न्यायालय कुछ समय के लिये स्वतन्त्र होता है और कभी कभी अन्य न्यायालय का ही विशेष भाग होता है।

आयु सीमा (Age Jurisdiction)

बाल अपराधी की आयु सीमा अलग अलग राज्यों में अलग अलग निर्धारित की गई है, जिनका हम विस्तारपूर्वक पहले वर्णन कर चुके हैं। बालक बालिकाओं की आयु सीमा का निर्धारण कहीं कहीं तो समान होता है और कहीं कहीं अन्तर होता है।

न्यायाधीश (The Judge)

बाल अपराध के न्यायाधीश कुछ स्थानों पर तो निर्वाचित होते हैं, कुछ स्थानों पर गवर्नर नियुक्त करता है और कुछ स्थानों पर राष्ट्रपति। संयुक्त-राज्य अमेरिका के अधिकतर राज्यों में स्थानीय न्यायालयों के न्यायाधीश

निर्वाचित किये जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में सब प्रकार के मामलों (Cases) के लिये एक ही न्यायाधीश होता है। कुछ स्थानों पर अन्य न्यायालय के न्यायाधीश को ही बाल न्यायालय के न्यायाधीश का कार्य सौंप देते हैं, अत उनकी नियुक्ति की भिन्न या विशेष पद्धति नहीं होती है। कभी कभी क्रमानुगत प्रणाली (System of Rotation) भी बाल न्यायालय में कार्य के सुधार की भावना से अपनाई जाती है। न्यायाधीश की योग्यतायें बताते हुए मैंगोल्ड लिखते हैं, "न्यायाधीश का अधिक महत्वपूर्ण गुण यह है कि उसे मनोविज्ञान का ज्ञान हो, अपराध और उपेक्षा की समस्या समझ सके और निरोधात्मक कार्यक्रम की प्रशसा की सम्भावना हो।"[1] जहा तक सम्भव हो लड़कियों के मामले स्त्री निर्णयकों (Women Referee) के सामने रखे जाने चाहिए।

इस प्रकार बाल न्यायालय बाल अपराध को रोकने मे तथा उसके सफल मनोवैज्ञानिक पद्धति से उपचार करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए हैं। बाल न्यायालय में अधिकार तथा अधिकारी की भावना के स्थान पर अधिक से अधिक मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र की भावना का प्रवेश ही उसकी सफलता का मूल मत्र है।

बाल अपराधी का उपचार
(Treatment of Juvenile Delinquent)

अपराधी बालक को अपराधी वातावरण से दूर रख कर उसमें सुधार लाया जा सकता है। बालक में अपराधी प्रवृत्ति उसके मूल में स्थायी भावना के रूप में स्थापित नहीं होती, वरन् वह किन्हीं आन्तरिक तथा बाह्य प्रभावों का परिणाम है। इनका उपचार सम्भव है। वैज्ञानिक अनुसधानों ने यह सिद्ध किया है कि बाल अपराधियों की समस्यायें प्रौढ़ अपराधियों से पर्याप्त भिन्न हैं। उन्हें सुलझाने के लिए प्रौढ़ अपराधियों पर प्रयुक्त तरीकों से पृथक तरीके काम मे लाने होंगे, परन्तु यह अनुभव अभी हाल की ही वस्तु है। पहले उनके साथ वही व्यवहार होता था, जो प्रौढ़ों के साथ होता था तथा उन्हें प्रौढ़ व्यावसायिक अपराधियों के साथ ही कारावास में डाल दिया जाता था। इस प्रकार वे निरीह, अबोध बालक जब कारावास से मुक्त होकर आते तो पक्के

---

[1] "The more important qualifications of this judge are a knowledge of child psychology and understanding of the problems of delinquency and neglect, and an appreciation of the possibilities of a preventive programme" George B Mangold Problems of Child Welfare, p 392

अपराधी बनकर बाहर निकलते थे। कानून अपराधी की परवाह न कर अपराध की परवाह करता था। इससे रोग का उपचार होने के स्थान पर वृद्धि होती थी।

इंगलैण्ड में १७८८ ई० 'फिलन्थ्रोपिक सोसाइटी, (Philanthropic Society) ने सर्वप्रथम बाल अपराधियों के लिये संस्थायें खोलीं, इनका उद्देश्य बाल अपराधियों का सुधार करना था, न कि दण्ड देना। भारतवर्ष में यह आन्दोलन बहुत देर से प्रारम्भ हुआ। कार (Karr)[1] ने बाल अपराधी की चिकित्सा या सुधार के सम्बन्ध में बहुत खोज करके बताया कि अपराधी के सुधार के लिये निम्नलिखित कदम उठाये जाने चाहिये—अपराधी के सम्बन्ध में विचार प्रतिरोधात्मक विलम्बन, कठिनाई की प्रारम्भिक परीक्षा, भविष्य में कार्य करने की योजना, उपचार की आवश्यकता के सम्बन्ध में निर्णय, उपचार की विधि उपचार का क्रमिक ह्रास तथा उपचार की योजना की समाप्ति, इस कार्यक्रम को लागू करने के लिये इन पाँच साधनों की आवश्यकता है। ये हैं पुलिस विलम्बन (Detention Homes) बाल न्यायालय, प्रोबेशन विभाग (Probation Department) तथा अन्य सुधारात्मक संस्थायें (Correctional Institutions)। इस योजना में सम्भव पूर्णता है, परन्तु बाल अपराध के दूर करने में कुछ ऐसी व्यापक और जटिल परिस्थितियाँ होती हैं जिनको प्रयोगशाला या सुधारालयों में दूर नहीं किया जा सकता, जैसे देश व्यापी आर्थिक दुरावस्था, पारिवारिक विघटन तथा अन्य पर्यावरणीय एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव। ऐसी परिस्थितियों को दूर करने के लिये समाज और सरकार दोनों को एक साथ प्रयत्न करना चाहिए।

१८५४ ई० में इङ्गलैण्ड में रिफॉर्मेट्री स्कूल कानून पास हुआ। १८७१ में एक समरी जूरिस्डिक्शन एक्ट पास हुआ, जिसके अनुसार चोरी इत्यादि अपराधों के लिये उसकी परिस्थितियों को ध्यान में रख कर न्यायालय बाल-अपराधी को दण्ड कम, स्थगित अथवा बिल्कुल ही क्षमा कर सकता था। १८८७ में प्रोबेशन ऑफ फर्स्ट ऑफेन्डर्स अधिनियम पारित हुआ, जिसमें निर्धारित परिस्थितियों में सतर्क रिहाई की व्यवस्था थी। १९०७ में प्रोबेशन ऑफ ऑफेन्डर्स अधिनियम ने *अपराधी व व्यक्तिगत व्यवहार के सम्बन्ध में* न्यायालयों को विस्तृत अधिकार प्रदान किये। इसी प्रकार बाद में इससे सम्बन्धित अनेक अधिनियम तथा व्यवस्थाओं का निर्माण हुआ, जिनके अनुसार बाल अपराधी की अपराधी प्रवृत्ति सम्बन्धी रोग का समुचित उपचार किया जाता है।

[1] Lowell J Carr Delinquency Control, p 223

भारतवर्ष में १६ वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारावास से बचाने के लिये सर्वप्रथम प्रयास सन् १८५० ई० में हुआ और उसी वर्ष अप्रेन्टिस अधिनियम पारित हुआ, जिसके अनुसार १० से १८ वर्ष के बालकों को विशिष्ट परिस्थितियों के किये गये अपराधों के अभियोग में मुक्ति दी गई। १८९७ ई० में रिफॉर्मेटरी स्कूल के आठवें अधिनियम के अनुसार बम्बई प्रेसीडेन्सी में १६ तथा अन्य प्रेसीडेन्सियों में १५ वर्ष की आयु के अपराधी बालक के लिये सुधारात्मक स्कूल स्थापित करने की व्यवस्था की गई। न्यायालय इन्हें कारावास भेजने के स्थान पर इन संस्थाओं में भेज सकता था। इसी के अनुसार १४ वर्ष से अधिक आयु के बालकों को उचित रोजगार मिलने पर लाइसेंस देकर छोड़ा जा सकता था। १९१७ में पश्चिमी भारत में बाल संरक्षण समिति की स्थापना हुई। १९२४ में बम्बई, १९२८ में मध्यप्रदेश, १९२२ में बंगाल तथा १९५२ में उत्तर प्रदेश में बाल अधिनियम (Children's Act) पारित हुआ। अब यह दिल्ली तथा अजमेर में भी लागू है। इनमें बच्चों के संरक्षण और अपराध निवारण तथा प्रोबेशन आदि की विभिन्न व्यवस्थायें हैं। १९४८ का बम्बई बाल अधिनियम इस दशा में एक और प्रगतिशील कदम है। बाल न्यायालय विचार ने प्रसार और प्रगति पाई, जिस पर विस्तार से हम पिछले पृष्ठों में लिख चुके हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N O.) के सामाजिक कार्यविभाग ने १९५३ में 'भारत में बाल अपराधियों के प्रति व्यवहार' नामक एक उपयोगी विज्ञप्ति प्रस्तुत की। इससे यह स्पष्टतया विदित होता है कि भारतवर्ष में बाल अपराधियों के सुधार, संरक्षण तथा सहायता की समस्याओं का बहुत अभाव है। यहा पर केवल ३१ प्रमाणित स्कूलें तथा ४ सुधार संस्थाएं हैं, जो कि समस्या के विस्तार को देखते हुए नगण्य हैं। अधिकांश बाल अपराधियों को प्रौढ़ अपराधियों के सुधार के लिये स्थापित संस्थाओं में ही रहना पड़ता है। बाल अपराधियों की विशेष संस्थाओं में भी मनोविश्लेषक और मनोवैज्ञानिक नहीं रखे जाते तथा वहां के कार्यकर्ताओं को पुनर्शिक्षण की सुविधायें नहीं मिलतीं। संस्थाओं में रखे जाने के समय के समाप्त होने के पश्चात् भी उपरान्त संरक्षण सेवाओं का प्राय अभाव है और वह मुख्यतः पैरोल काल में देख रेख तक ही सीमित है।

बाल अपराधियों का उपचार एक निश्चित योजना द्वारा ही सम्भव है। इस सम्बन्ध में अनेक प्रगतिशील विचार तथा व्यवहारों ने विकास पाया है। प्रमुखतया बाल अपराधियों के साथ उपचार हेतु सामान्यतया निम्न प्रकार का व्यवहार किया जाता है —

(१) चेतावनी के उपरान्त रिहा करना
(Release after admonition)

जब न्यायालय यह देखता है कि अपराधी ने साधारण सा अपराध किया है, जो कि परिस्थितिवश हो गया है तो वह बाल अपराधी और उसके माता-पिता को चेतावनी देकर बालक को मुक्त कर दिया जाता है। ऐसी आशा की जाती है कि माता पिता अथवा सरक्षक भविष्य मे बालक का अधिक ध्यान रखेंगे तथा अपराध का पुनरावर्तन नहीं होगा। इस प्रक्रिया के द्वारा बालक के हृदय में भी अपराध के प्रति एक मनोवैज्ञानिक भय बैठ जाता है, जिससे वह पुन: अपराधी प्रवृत्ति की ओर सरलता से आकृष्ट नहीं होता है।

(२) माता पिता अथवा सरक्षक की देख रेख में रिहा करना
(Release under the care of Parents or Guardians)

जहाँ तक सम्भव होता है बाल अपराधी को किसी भी सस्था में नहीं भेजा जाता है। यदि ऐसी आशा होती है कि बालक उसी पर्यावरण में सुधर जायेगा तथा पर्यावरण में कोई मूल दोष नहीं है, तो उसे माता पिता सरक्षक की देख रेख में छोड़ दिया जाता है। इसमें बालक के द्वारा भविष्य में किये जाने वाले आचरण का पूर्ण उत्तरदायित्व माता पिता अथवा सरक्षक पर ही होता है। कभी कभी यदि घर का पर्यावरण असन्तोषप्रद हो तो बालक को किसी अन्य निकट के सम्बन्धी आदि की देख रेख में भी भेज दिया जाता है।

(३) प्रतिपोषक या उचित व्यक्ति के संरक्षण में रिहा करना
(Foster-parent or fit-person release)

जब यह देखा जाता है कि बाल अपराधी का पारिवारिक पर्यावरण अच्छा नहीं है तो उसे किसी अन्य परिवार मे रखने पर विचार किया जाता है। ऐसी दशा में बाल न्यायालय उसे किसी सम्बन्धी, परिवार के मित्र या अन्य किसी उचित व्यक्ति को जो बालक को रखने का इच्छुक हो, दे देता है। यह व्यवस्था छोटे बच्चों के लिये बहुत अच्छी है। जोन्स ने उचित लिखा है, "यह स्पष्ट है कि बच्चा जितना छोटा होगा, उतनी ही अधिक सफलता प्रतिपोषक परिवार में मिल सकेगी और जितना बड़ा होगा उतना ही वह अपने माता पिता के स्थान पर अन्य किसी को हृदय से स्वीकार नहीं करेगा।"[1]

---

[1] 'It is obvious, of course, that the younger the child the better the chance of success in a forter home, and the older the child the less, likely it is that a substitute for the real parent will be accepted whole heartedly" A E Jones Juvenile Delinquency and the Law, p 44

(४) जुर्माने अथवा बेंत पर रिहाई (Release on Fine Canning)

कभी कभी बाल अपराधियों को कुछ बेंते लगाकर अथवा किसी प्रकार का जुर्माना करके भी मुक्त कर दिया जाता है।

(५) पैरोल व्यवस्था (Parole System)

इसमें दोषी को जमानत पर छोड़ देने की व्यवस्था होती है। यह व्यवस्था बाल अपराधी तथा वयस्क अपराधी दोनों के लिये ही स्वीकृत है। जमानत पर इस शर्त के आधार पर छोड़ा जाता है कि निश्चित किये गये पैरोल के समय तक उसका आचरण ठीक रहेगा। दोषी को प्रोबेशन अधिकारी के संरक्षण में रहना पड़ता है।

(६) प्रोबेशन व्यवस्था (Probation System)

प्रोबेशन व्यवस्था वह व्यवस्था है, जिसमें न्यायालय द्वारा दण्डित अपराधी को समाज में ही सामान्य व्यक्तियों की भांति कुछ शर्तों पर जीवन यापन की आज्ञा मिल जाती है अर्थात् इस व्यवस्था के अन्तर्गत दोषी को कुछ शर्तों के साथ यथावत् सामान्य जीवन प्रदान कर अपने आपको सुधारने की ओर प्रयास है। मैंगोल्ड ने बाल अपराध के सम्बन्ध में प्रोबेशन व्यवस्था के महत्व पर बल देते हुए लिखा है, ' प्रोबेशन व्यवस्था बाल न्यायालय की आत्मा है। केवल यही न्यायालय को सफल बना सकती है।"[1]

इस व्यवस्था की उत्पत्ति सन् १८६६ में हुई तथा १६०३ के पश्चात् इस व्यवस्था का अत्यधिक प्रचार बढ़ा। कुमारी कृष्णा घोष ने अत्यन्त सुन्दर शब्दों में लिखा है, "परन्तु जब कभी इसका प्रयोग किया जाता है तो यह एक तीर से दो चिड़ियों के शिकार की नवीन पद्धति है, जैसे कि व्यक्ति का सामाजिक पुनर्स्थापन तथा उस प्रकार के व्यक्तियों के समाज के विरोध में भविष्य के अपराध से रक्षा।"[2] इसका अधिकाधिक प्रयोग में लाना अपराध के निवारण तथा निरोध के लिये सर्वोपयुक्त समझा गया है। भारतवर्ष में दण्ड विधि प्रक्रिया की धारा ५६२, अधिनियम V सन् १८३८ के अनुसार यह व्यवस्था प्रचलित है। इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति जो २१ अथवा २१ वर्ष

[1] "The keystone of the juvenile court is the probation system It alone can make the court successful " Ibid, p 402

[2] "But whenever it is used it is a novel method of killing two birds with one arrow i e, social rehabilitation of the individual and the prevention of society against future crime by such individuals " Kumari Krishna Ghosh (Social Welfare August 1959 Vol VI No 5, p 21)

से अधिक आयु का नहीं है और अधिक से अधिक सात वर्ष का दण्ड पाये हुए हैं तथा कोई भी स्त्री, जिसको कि आजन्म कारावास अथवा फासी के दण्ड का निर्णय न मिला हो, प्रोबेशन पर छोड़ा या छोड़ी जा सकती है। इन प्रोबेशन के आधार पर रिहा व्यक्तियों को स्युरिटी या बिना स्युरिटी के एक बौंड भरना पड़ता है और सदाचरण तथा तीन साल के भीतर किसी भी समय अभियोग और सजा भुगतने के लिये वचन देना होता है।

प्रोबेशन आफिसर के कार्य
(Role of the Probation Officer)

प्रोबेशन ऑफिसर के निम्न मुख्य कार्य हैं —

१ दोषियों को सुधारने का प्रयत्न करना।

२ दोषियों को अपने सरक्षण मे रखना।

३ दोषियो की जीवनी (Case study) तैयार करना एव उनकी अपराधी प्रवृत्ति होने के कारणों का पता लगाना।

४ दोषियों को अच्छे नागरिक बनाने हेतु हर सम्भव प्रयत्न करना।

५ न्यायालय को समय समय पर दोषी के सम्बन्ध मे सूचनाय देते रहना।

६ दोषियों की समस्याओं को समझ कर उनको सुलझाने का प्रयत्न करना।

७ अन्त मे, जिन दोषियों के सुधरने की सम्भावना न हो, उन्हे पुन कारावास में भिजवाना।

इस व्यवस्था के कारण लाखों व्यक्ति कारावास म जाने से बच गये। जेस जैसे योग्य एव सेवाभावी व्यक्ति इस प्रोबेशन व्यवस्था को बढ़ाने की चेष्टा करेंगे, इसकी सफलता की सीमा बढ़ती जावेगी।

कुछ बालक ऐस होते हैं, जिन्ह न्यायालय कुछ कारणवश रिहा न करके उन्हें सस्थात्मक देखरख के अन्तर्गत रखा जाता है। इन सस्थाओं के सगठन निम्न प्रकार स हैं —

१. औद्योगिक स्कूल (Industrial School)

औद्योगिक स्कूलों की स्थापना बाल अपराधियों में सुधार लाने की भावना स की जाती है। इन स्कूलो में प्रारम्भिक शिक्षा एव व्यावसायिक कार्य सिखाने की व्यवस्था होती है। आजकल सुधारात्मक विद्यालय (Reformatory School) और औद्योगिक स्कूलों को मिलाकर एक कर दिया गया है। इन विद्यालयों का दृष्टिकोण सुधारात्मक होता है। भारतवर्ष म कुछ मान्यता प्राप्त विद्यालय हैं, जिनमें स मुख्य निम्न हैं —

(i) डेविडसेसन औद्योगिक स्कूल बम्बई राज्य।
(ii) यर्वदा औद्योगिक स्कूल बम्बई राज्य।
(iii) विलिङ्गटन बॉयज होम बम्बई राज्य।
(iv) बहरामजी बॉयज होम बम्बई राज्य।
(v) उमरखादी जूनियर स्कूल बम्बई राज्य।
(vi) दिल्ली सुधार गृह दिल्ली राज्य।
(vii) लखनऊ सुधार गृह उत्तर प्रदेश।

२. बोर्स्टल विद्यालय (Borstal School)

बोर्स्टल विद्यालय बन्दीगृह तथा मान्यता प्राप्त विद्यालय के बीच की वस्तु है। इसमें १६ वर्ष से २३ वर्ष के बीच के अपराधियों को रखा जाता है। वास्तव में मान्यता-प्राप्त विद्यालय तथा बोर्स्टल विद्यालय में केवल यही अन्तर है कि प्रथम में केवल १६ वर्ष के बालक को रखा जाता है तथा द्वितीय में १६ से २३ वर्ष तक के अपराधी को रखा जाता है। इन विद्यालयों में अनुशासन कठोर होता है तथा सामान्य बन्दीगृहों की भाँति निगरानी रखी जाती है। अन्य संस्थाओं की अपेक्षा इनमें बालकों से शारीरिक परिश्रम सम्बन्धी कार्य भी अधिक लिया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य सम्पूर्ण व्यवस्था में यह मान्यता प्राप्त विद्यालयों के समान ही है।

३ उपरान्त संरक्षण समितियाँ (After care Associations)

बाल अपराधियों के सुधार की समस्या केवल स्कूलों से ही हल नहीं हो जाती, उसके लिये यह भी आवश्यक है कि उनसे निकलने के बाद भी उनके नियन्त्रण और सहायता की आवश्यकता रह जाती है। यह कार्य उपरान्त संरक्षण समितियों द्वारा किया जा सकता है। इन समितियों का कर्त्तव्य है कि वह संस्थाओं आदि से मुक्त बालकों के निवास स्थान एवं रोजी ढूढने में सहायता दें।

बाल अपराध नियन्त्रण के सम्पूर्ण विवेचन के उपरान्त हम यह विश्वास के साथ कह सकते हैं कि बाल अपराध का निरोध तथा उपचार एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें कि न्यायालय तथा अन्य संस्थाएं उस विस्तृत कार्यक्रम के भाग मात्र हैं। सम्पूर्ण कार्यक्रम की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि नियन्त्रण के समस्त साधन यथा सामाजिक संस्थाएं, समितियाँ, परामर्शदात्री समितियाँ, पुलिस, न्यायालय, चिकित्सालय, प्रोबेशन, पोषक गृह आदि में निजी सम्पूर्णता तथा योग्यता एवं इनमें पारस्परिक सहयोग से सफलता प्राप्त हो सकती है।

प्रश्न

1 What do you mean by Juvenile delinquency ? Suggest ways and means to reform Juvenile delinquents

बाल अपराध से आपका क्या अभिप्राय है ? बाल अपराधियों को सुधारने के लिये अपने सुझाव दीजिये ।

2. What is Juvenile delinquency ? What are the causes responsible for Juvenile delinquency in India ? Describe them fully and suggest remedies

बाल अपराध क्या है ? भारत में बाल अपराधों के लिये कौन से कारण उत्तरदायी हैं उनका विस्तार से वर्णन कीजिये एवं सुधार के उपाय बताइये ।

SELECTED READINGS

1. COHEN : Delinquent Boys
2. SINGH · Juvenile Delinqency in India

सप्तम खण्ड

मानव प्रकृति एवं सामूहिक व्यवहार
(Human Nature and Collective Behaviour)

अध्याय २४ : मानव प्रकृति
(Human Nature)

,, २५ : प्रतिमान प्रतिक्रियाएँ : ट्रापिज्म तथा प्रतिक्षेप क्रिया
(Pattern Reactions :
Tropism and Reflex Action)

,, २६ : प्रतिमान प्रतिक्रियाएँ : मूल प्रवृतियाँ
(Pattern Reactions Instincts)

,, २७ : सुझाव, अनुकरण तथा सहानुभूति
(Suggestion, Imitation and Sympathy)

,, २८ : सामाजिक जीवन में मूल प्रवृतियाँ
(Instincts in Social Life)

,, २९ : समाज में सुझाव,
अनुकरण तथा सहानुभूति का कार्य
(Role of Suggestion, Imitation and Sympathy in Society)

,, ३० : सामूहिक व्यवहार
(Collective Behaviour)

,, ३१ : भीड़ व्यवहार
(Crowd Behaviour)

अध्याय २४

मानव-प्रकृति

(Human Nature)

मानव प्रकृति का विश्लेषण बडा दुष्कर है। हम अपने दैनिक जीवन में एक दूसरे के व्यवहार को समझने की बडी चेष्टा करते हैं, परन्तु फल विपरीत ही होता है या यों कहें कि हम जितना मानव व्यवहार को समझने की चेष्टा करते हैं उतना ही वह जटिल दिखलाई पडता है। इतनी कठिनाइयाँ होते हुए भी मनुष्य ने अपना धैर्य नहीं खोया है और मानव व्यवहार को समझने की चेष्टायें होती रही हैं।

पशुओं के व्यवहार के आधार पर

मनुष्य समझदार पशु है। अरस्तू ने मनुष्य को सामाजिक पशु (Social Animal) कहकर पुकारा है। मनुष्य अन्य पशुओं से केवल बुद्धि अधिक रखता है। और इसके आधार पर इसने बड़े बड़े चमत्कार किये हैं।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि मनुष्य चाहे जितना भी अपनी बुद्धि के बल पर ऊपर उठ गया हो तथापि वह पशु ही है और उसका व्यवहार भी उन्हीं आधारभूत तत्वों पर आधारित है जिस पर कि निम्न श्रेणी के पशुओं का। इसी धारणा से प्रेरित होकर अनेक मनोवैज्ञानिक पशु पक्षियों के व्यवहार के अवलोकन (Observation) में जुट गये और अपने परीक्षणों के आधार पर उन्होंने मानव व्यवहार को समझाने की चेष्टा की है।

कुछ विद्वानों ने मानव व्यवहार को प्रतिमान प्रतिक्रियाओं (Pattern Reactions), जैसे ट्रापिज्म (Tropism), प्रतिक्षेप क्रियाओं (Reflex Action) तथा मूल प्रवृत्तियों (Instincts) के आधार पर आधारित किया है। जो विद्वान मानव व्यवहार को प्रतिक्षेप प्रतिक्रियाओं श्रृङ्खला की (Chain of Reflex Action) मानते हैं, उन्हे मनोविज्ञान में यन्त्रवादी (Mechanistic School) कहते हैं। दूसरे समूह के विद्वान मूल प्रवृत्तिवादी हैं। इनमें सर्व-प्रमुख विलियम मैकडूगल (William McDougall) हैं। आपकी प्रमुख पुस्तक 'सामाजिक मनोविज्ञान' (Social Psychology) है। इन दोनों विचार धाराओं को मिलाकर इन्हें अबुद्धिवादी (Non-intellectualists) भी कहते

हैं, क्योंकि ये मनोवैज्ञानिक वंशानुसंक्रमण (Heredity) पर अत्यधिक बल देते हैं और उनका कहना है कि मानव व्यवहार पूर्व निश्चित वंशानुसंक्रमण द्वारा प्राप्त गुणों के अनुसार आदेशित होता है।

इसके विपरीत बुद्धिवादी (Intellectualists) मनोवैज्ञानिक का मत है कि मानव व्यवहार बुद्धि पर आधारित है। उनका कहना है कि इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य एक पशु है परन्तु यह एक विवेकशील पशु (Rational Animal) है। अतः इस विचित्र पशु को बुद्धि से पृथक् करके कभी नहीं समझा जा सकता। प्रत्येक ऐसे कार्य में भी, जिसे हम मूल प्रवृत्तियों या वंशानुसंक्रमण के कारण समझते हैं, कुछ न कुछ बुद्धि का अंश रहता है। मस्तिष्क न केवल जागरूक अवस्था में ही कार्य करता है परन्तु मस्तिष्क का कुछ भाग अचेतन अवस्था में भी कार्य करता रहता है, उसे मनोवैज्ञानिकों ने अचेतन मस्तिष्क (Unconscious Mind) कहा है।

इन मनोवैज्ञानिकों ने पर्यावरण (Environment) पर भी अत्यधिक जोर दिया है। इनका मत है कि वंशानुसंक्रमण, पर्यावरण[1] की तुलना में मानव व्यवहार पर नहीं के बराबर प्रभाव डालता है। इस समस्या पर हम पहिले ही विस्तार पूर्वक विचार कर चुके हैं।

कुछ विद्वानों ने पहले मत को थोड़ा सा परिवर्तित करते हुए अनुकरण सिद्धान्त बनाया है। उनका कहना है कि मानव व्यवहार सुझाव तथा अनुकरण से चलित होता है। इसका अध्ययन हम आगे करेंगे।

हमने देखा कि मानव व्यवहार को समझने का प्रयत्न कई सिद्धान्तों के आधार पर किया गया है। उनमें से निम्न पर हम क्रमशः विचार करेंगे—

१. ट्रापिज्म तथा प्रतिक्षेप क्रिया सिद्धान्त,
२. मूल प्रवृत्तियों का सिद्धान्त,
३. सुझाव, अनुकरण तथा सहानुभूति का सिद्धान्त,

---

[1] देखिये "वंशानुसंक्रमण तथा पर्यावरण" राम बिहारी सिंह तोमर की पुस्तक 'समाजशास्त्र की रूपरेखा' भाग १।

अध्याय २५

ट्रापिज्म और प्रतिक्षेप क्रिया
(Tropism and Reflex Action)

जब हम निम्न श्रेणी के पशुओं के व्यवहार का अध्ययन करते हैं, तो बहुत सी निरन्तर क्रियायें (Consecutive Actions) बिना अधिक हेर-फेर के होते हुये दृष्टिगोचर होती है। जब कोई वस्तु नेत्रों की ओर शीघ्रता से आती है, तो पलकें झुक जाती हैं, जिसे हम पलक झपकाना (Blinking of the eyes) कहते हैं। चाहे जितनी बार हम ऐसा दोहरायें, पलकें प्रथम बार की भाँति झुक जाती हैं। हम दाढ़ी बनाते हैं, हमारा हाथ एक निश्चित प्रकार से बिना चिन्ता के चलता रहता है। गिलहरी अखरोट लेती है कुछ को एक विशिष्ट ढग से तोडती है और कुछ को जमीन में गाड़ देती है। बार बार देने पर भी वह इसी व्यवहार को दोहराती है। पतंगे दीपक की ओर बढ़ते चले जाते हैं और अपने प्राण दीपक पर न्यौछावर कर देते हैं। ऐसा बार बार होता है।

प्रतिमान प्रतिक्रियाओं का अर्थ
(Concept of Pattern Reactions)

हमने देखा कि कुछ क्रियायें बिना अधिक हेर के सदैव पशुओं द्वारा व्यवहार में दोहराई जाती हैं। दूसरे शब्दों में हम प्रतिमान प्रतिक्रियायें उन क्रियाओं को कहते हैं, जो बिना अधिक हेर फेर के होती हैं। थाउलस (Thouless) ने लिखा है, "इन्हीं अधिक या न्यून अभिन्न क्रियाओं का व्यापक नाम प्रतिमान प्रतिक्रियायें हैं।"[1]

प्रतिमान प्रतिक्रियायें दो प्रकार की होती हैं—(१) वे क्रियायें जो सहज (Innate disposition) पर आधारित होती हैं जैसे ट्रापिज्म (Tropism) प्रतिक्षेप क्रियायें (Reflex Action) तथा मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts)। (२) वे जो मनुष्य के प्रयत्नों द्वारा बार बार करने एवं पर्यावरण के प्रभाव पर आधारित हैं।

---

1 "A general name for these more or less uniform actions is pattern reactions" R. H. Thouless, 'General and Social Psychology' Third Edition, P. 18. University Tutorial Press Ltd, London, 1951

ट्रॉपिज्म (Tropism) का अर्थ (Concept of Tropism)

म की परिभाषा थाउल्स ने इन शब्दों में की है, "ट्रॉपिज्म वह अति सरल प्रकार की योग्य एवं अनुकूल (या लाभप्रद) प्रतिमान प्रतिक्रिया है, जिसे हम इस तथ्य से स्पष्ट रूप से पहिचानते हैं कि प्राणी पर भौतिक या रसायनिक उत्तेजना का सीधा प्रभाव होता है।"[1]

इस प्रकार की प्रतिक्रिया उन पौधों में पाई जाती है, जिनकी जड़े नीचे की ओर पृथ्वी के आकर्षक केन्द्र (Gravitation fled) की दशा में बढ़ती हैं, इसे भूम्यावर्तना (Positive Geotropism) कहते हैं। इसी तरह कुछ पौधों का तना प्रकाश की ओर उगता है, इसे सूर्यावर्तना (Positive Heliotropism) कहते हैं। उदाहरण स्वरूप कमल के फूल को लीजिये। वह सूर्य के निकलने पर खिलता है और सूर्य के अस्त होने के साथ साथ मुरझा जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि साधारण पशु प्राणियों (कीड़ मकोड़े) की गति भी ट्रापिज्म है। एक कोष वाले (Unicellular organism) जैसे प्रजीव सुतार(Protozoon Euglena)प्रकाश की ओर तैरते हैं और मासमक्षी का डिम्ब (Larva of the blow fly) प्रकाश से अन्धकार की ओर जाते हैं। जो प्रकाश की ओर जाते हैं, उन्हें प्रकाशावर्तित (prositively photoropic) और जो अन्धकार की ओर जाते हैं, उन्हें अप्रकाशावर्तित (Negatively photoropic) कहते हैं।

ट्रापिज्म(Tropism)के सिद्धान्त के अनुसार इन अन्तरों को यह मानकर समझाने की चेष्टा की गई है कि प्राणी क एक ओर प्रकाश पड़ने से उसकी प्रकाश पड़ने वाले भाग की, गतिशील इन्द्रियाँ (Locomoter Organs) दूसरे भाग की गतिशील इन्द्रियों से कम सिकुड़ती हैं। इसके कारण (Organism) प्रकाश की ओर मुड़ जाता है और जब वह प्रकाश की ओर हो जाता है तो उसके दोनों ओर के भाग पर बराबर प्रकाश पड़ता है। इसी कारण से वह प्रकाश की ओर बढ़ता चला जाता है।

ट्रापिज्म के सिद्धान्त की आलोचना

ट्रापिज्म के सिद्धान्त के द्वारा इस पशु व्यवहार को इतनी सरलता से समझाया गया है, परन्तु यह इतना सरल नहीं है। प्रारम्भ में अवलोकनकर्त्ताओं

1 "The tropism is the simplest form of adaptive (or useful) pattern reaction, distinguished by the fact that it is rigidly determined by the direct action on the organism of physical or chemical stimuli" Thouless, R H, ibid

(Ovservers) को इस व्यवहार का सीधा सादा नुस्खा (Formula of Tropism) इसलिये ठीक लगा होगा, क्योंकि उन्होंने व्यवहार की अन्तिम क्रिया पर ही ध्यान दिया और हर क्रम पर विचार नहीं किया। जेनिंग्स (Jennings)[1] ने इस प्रकार के विभिन्न परीक्षण किये और वह इस निष्कर्ष पर पहुचा कि इतने सरल व्यवहार को भी इस सिद्धान्त द्वारा नहीं समझाया जा सकता। एकदम से मुड़कर जाना, जैसा कि ट्रॉपिज्म के सिद्धान्त द्वारा मान लिया गया है, परीक्षणों म नहीं पाया गया। इस व्यवहार की प्रतिक्रिया एक निश्चित् प्रकार की है जिस जेनिंग्स ने अन्वीक्षा विभ्रम व्यवहार (Trial and Error behaviour) कहा है।

प्रतिक्षेप-क्रिया (Reflex Action)

प्रतिक्षेप क्रिया का अर्थ (Concept of Reflex Action)

थाउलस (Thouless) ने प्रतिक्षेप क्रिया की निम्न परिभाषा दी है, 'प्रतिक्षेप क्रिया वह साधारण स्वाभाविक प्रतिमान प्रतिक्रिया है, जिसमें क्रिया के द्वारा कोई भी लाभप्रद कार्य किया जाता है।"[2]

प्रतिक्षेप क्रिया के उदाहरण पलक झपकाना, छींक आना और आँख के तारे (Iris) का कम प्रकाश में फैल जाना और अधिक प्रकाश में बन्द हो जाना है। *ये एक प्रकार की ऐसी प्रतिक्रियाय हैं, जो एक निश्चित् सेवा करती हैं।* नेत्रों की ओर जब कोई वस्तु आती है, तो पलक झुक जाती हैं और इस प्रकार से नेत्रों की रक्षा होती है। नासिका की आन्तरिक झिल्ली (Inner-membrane) मे खुजलाहट को समाप्त करने के लिये छींकें आती हैं और छींकें आने के उपरान्त सुख का अनुभव होता है। जब प्रकाश अधिक होता है,तो आँख के तारे (Iris) का व्यास (Diametter) इस प्रकार कम हो जाता है कि पुतली (Retina) पर कोई हानिकारक प्रभाव न पड़े। इनमें से कोई प्रतिक्रिया चेतन अवस्था में होती है और कोई अचेतन अवस्था मे ही हो जाती है।

शेरिंगटन ने प्रतिक्षेप क्रिया की परिभाषा करते हुए लिखा है, "प्रतिक्षेप क्रियायें वे प्रतिक्रियाय हैं जिनमें प्रारम्भिक प्रक्रिया, एक प्रवाहक के माध्यम द्वारा, *किसी नाड़ी (या अवयव) को उस प्रक्रिया को समाप्त करने की शक्ति प्रदान*

[1] Jennings, H S "The behavior of lower Organisms", Washington, p 190

[2] "The reflex is also a simple innate pattern reaction in which a movement of a sarviceable kind is carried out"
Thouless, R H, p 20, ibid.

करती है, जब कि इस नाड़ी (या अवयव) में स्वय कार्य को समाप्त करने की शक्ति नहीं है और प्राकृतिक दशा में न ही उसमें प्रक्रिया प्रारम्भ करने की शक्ति है।[1]

प्रतिक्षेप क्रिया क्या है (What is Reflex Action)

१. प्रतिक्षेप क्रिया प्रतिमान प्रतिक्रिया है। (वह प्रक्रिया जो बार बार अभिन्न रूप से प्रथम बार के समान होती है।)

२. प्रतिक्षेप क्रिया सहज प्रकृति (Innate disposition) है।

३. प्राणी को इस प्रक्रिया से सदैव लाभ ही होता है।

प्रतिक्षेप क्रिया की कार्य प्रणाली
(Working of the Reflex Action)

एक प्रतिक्षेप क्रिया को तीन ढाँचों (Structures) की आवश्यकता होती है। एक अवयव (Organ) वह होता है, जो कि उत्तेजना को प्राप्त करता है, उसे प्राप्तकर्त्ता (Receptor) कहते हैं। एक नाड़ी (Nerve) इस उत्तेजना (Stimulus) को उस अवयव (Organ) तक ले जाती है, जो कि प्रतिक्रिया करता है। इस उत्तेजना ले जाने वाली नाड़ी को प्रवाहक (Conductor) कहते हैं। तीसरा वह अवयव (Organ) या माँस पेशी (Muscle) है जो कि प्रतिकार करती है, इसेकार्यसाधक (Effector) कहते हैं।

प्रतिक्षेप वृत्त खण्ड (Reflex Arc)

हमने ऊपर देखा कि एक प्रतिक्षेप क्रिया के लिये तीन ढाँचों की आवश्यकता होती है। इन तीनों ढाँचों—प्राप्तकर्त्ता (Receptor), प्रवाहक (Conductor) और कार्यसाधक (Effector), जो कि एक साधारण प्रतिक्षेप क्रिया (Simple Reflex Action) में सक्रिय भाग लेते हैं—को प्रतिक्षेप वृत्तखण्ड (Reflex Arc) कहते हैं।

साधारण-प्रतिक्षेप क्रिया (Simple Reflex Action)

एक प्रतिक्षेप क्रिया जो कि शेष प्रतिक्षेप क्रियाओं से अलग कर ली जाती है, साधारण प्रतिक्षेप क्रिया (Simple Reflex Action) कहलाती है। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि एक उत्तेजना यदि तीनों ढाँचों से होकर रुक जाय तो इसे साधारण प्रतिक्षेप क्रिया कहेंगे।

---

[1] "Reflexes are reactions, in which there follows on an initiating reaction an end-effect reached through the mediation of a conductor, a nerve itself in capablee ither of the end-effect or, under natural conditions, of the inception of the reaction" Sherrington, C S, 'The Integrative Action of the Nervous System,' London, 1906

शेरिंगटन (Sherrington) का कथन है कि साधारण प्रतिक्षेप (Simple Reflex) एक काल्पनिक एवं अमूर्त प्रक्रिया है, क्योंकि कोई भी क्रिया एक प्रतिक्षेप वृत्तखण्ड (Reflex Arc) होकर समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि कई प्रतिक्षेप वृत्तखण्ड लगातार होते रहते हैं।

प्रतिक्षेप-क्रिया-शृङ्खला (Chain Reflex)

प्रतिक्षेप क्रिया शृङ्खला वे लगातार होने वाली प्रतिक्षेप क्रियायें (Reflexes) हैं, जो पहली प्रतिक्षेप क्रियापूर्ण होकर दूसरी के लिये उत्तेजना बन जाती है और इसी प्रकार अनेक प्रतिक्षेप क्रियायें एक के बाद दूसरी होती रहती हैं।

उदाहरण के लिये हम एक मेंढ़क (Toad) (एक प्रकार का मेंढ़क, जो कि साँप की तरह का होता है और मक्खी खाता है) को लें। एक मक्खी बैठी है। मेंढ़क की आँख पर मक्खी का प्रतिबिम्ब पड़ा। मक्खी उत्तेजित (Stimuli) है। इस उत्तेजना को मेंढ़क की आँख ने प्राप्त किया। इस प्राप्त *की हुई उत्तेजना को एक नस (Nerve) जिह्वा तक ले जाती है। जिह्वा* बाहर निकल पड़ती है। यह एक साधारण प्रतिक्षेप क्रिया (Simple Reflex Action) हुई। इसके उपरान्त यही क्रिया दूसरी प्रतिक्षेप क्रिया के लिये उत्तेजना बन जाती है और जिह्वा और आगे बढ़ती है, मक्खी को छूती है, *पकड़ती है, मुँह के अन्दर ले जाती है और अन्त में निगल जाती है।* इस प्रक्रिया में कई प्रतिक्षेप क्रियायें हुई। इन प्रतिक्षेप क्रियाओं को हम प्रतिक्षेप-क्रिया शृङ्खला (Chain Reflex) कहते हैं।[1]

प्रतिक्षेप-क्रिया की आलोचना
(Criticism of the Reflex Action)

प्रतिक्षेप क्रिया (Reflex Action) कई बार चेतन अवस्था में होती है और उसका सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि प्रवाहक (Conductor) उत्तेजना को पहले मस्तिष्क के पास पहुँचाता है और तत्पश्चात् मस्तिष्क उसे कार्यसाधक (Effector) के पास, परन्तु शरीर की रचना की जितनी सरल व्याख्या की गई है, उतनी सरल वास्तव में नहीं है। प्रतिक्षेप क्रिया का सिद्धान्त शरीर की मशीन को अति सरल मान कर चला है। परन्तु नवीन शरीरशास्त्रियों ने शरीर की मशीन के ऊपर जो प्रकाश डाला है, वह इस सरल सिद्धान्त का अनुमोदन नहीं करता।

---

[1] Loeb J, 'Comparative Physiology of the Brain,' London, 1901.

प्रतिक्षेप क्रिया तथा ट्रॉपिज्म में अन्तर
(Distinction between Reflex Action and Tropism)

हमने प्रतिक्षेप क्रिया (Reflex Action) और ट्रॉपिज्म का अध्ययन पिछले पृष्ठों में किया। ये दोनों ही प्रतिमान प्रतिक्रियायें हैं और दोनों को ही किसी न किसी प्रकार की उत्तेजना भौतिक या रसायनिक की आवश्यकता होती है।

इन दोनों में निम्नलिखित अन्तर है :—

ट्रॉपिज्म (Tropism)	प्रतिक्षेप क्रिया (Reflex Action)
१. ट्रॉपिज्म बुद्धि रहित (Mechanical) क्रिया है।	१. एक प्रतिक्षेप क्रिया बुद्धि रहित भी हो सकती है और बुद्धि सहित भी। जब अचेतन अवस्था में होती है तब बुद्धि रहित होती है और चेतन अवस्था में होती है तो बुद्धि सहित।
२. यह घातक और लाभकारी दोनों ही हो सकती है।	२. यह सदैव लाभकारी होती है।
३. इस प्रक्रिया में एक ही ढाँचा ग्रासकर्त्ता (Receptor), प्रवाहक (Conductor) और कार्यसाधक (Effector) होता है।	३ इस प्रक्रिया में तीन विभिन्न ढाँचे होते हैं।
४. इस प्रक्रिया में सम्पूर्ण प्राणी (Whole organism) प्रतिकार करता है।	४. इस प्रक्रिया में केवल प्राणी का एक अवयय (Organ) प्रतिक्रिया करता है जिसे हम कार्यसाधक (Effector) कहते हैं।
५. इस प्रकिया में क्रिया चेतन अवस्था में नहीं होती।	५. इस प्रक्रिया में क्रिया कुछ चेतन अवस्था में होती है और बुद्धि द्वारा निश्चित होती है।

समानता

१. ट्रॉपिज्म के लिए किसी न किसी प्रकार के भौतिक या रसायनिक उत्तेजक (Stimuli) की आवश्यकता रहती है।	१ प्रतिक्षेप क्रिया मे भी किसी न किसी प्रकार के भौतिक या रसायनिक उत्तेजक (Stimuli) का होना आवश्यक है।

प्रश्न

१ निम्नलिखित का पूर्ण विवरण दीजिये —

(अ) ट्रॉपिज्म (ब) प्रतिक्षेप क्रिया (स) प्रतिमान क्रियाएँ (द) प्रतिक्षेप क्रिया शृङ्खला (य) प्रतिक्षेप वृत्तखण्ड।

(Write detailed account of the following:—
(a) Tropism (b) Reflex Action (c) Pattern Reactions (d) Chain Reflex (e) Reflex Arc.

२. ट्रॉपिज्म तथा प्रतिक्षेप क्रिया की तुलना कीजिये।

(Compare and contrast Reflex action and Tropism)

SELECTED READINGS

1. Thouless, 'General and Social Psychology', chapter II

अध्याय २६

मूल प्रवृत्तियों का सामान्य स्वरूप
(General Nature of Instincts)

प्राणियों में कुछ प्रवृत्तियाँ जन्म से ही पाई जाती हैं। इस कारण से इनको सीखने की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। मानव व्यवहार तथा पशु व्यवहार में इस प्रकार के बहुत से व्यवहार पाये जाते हैं, जो जन्म से ही होते हैं। इनमें से कुछ पर हम विचार करेंगे।

(१) फेबरे का उदाहरण

फेबरे (Fabre) ने दीर्घशृङ्क प्रजाति की तितली (Cerambyx) के व्यवहार का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। यह कीड़ा, कीट डिंब सम्बन्धी (Larval) और कोशितीय (Pupal) का समय, बलूत के पेड़ (Oak-tree) के अन्दर बिताता है और बलूत के पेड़ की लकड़ी खाता है। प्रारम्भ में यह एक अँतड़ी के टुकड़े के समान होता है। यह न देख सकता है, न सुन सकता है और न इसमें कोई बुद्धि ही होती है। फेबरे ने इसको मुँहदार अँतड़ी का एक टुकड़ा (A fragment of intestine with a mouth) कहा है। यह कीड़ा बलूत के पेड़ पर रेंगता हुआ पाया जाता है। फिर बलूत के पेड़ में एक छिद्र (Hole) बना लेता है और फिर इसी छिद्र में चला जाता है। इस छिद्र के दरवाजे पर तीन तहों का झिल्लीदार दरवाजा बनाता है। ये तहें खड़िया की तरह होती हैं, जिससे बाहर के शत्रु आक्रमण न कर सकें। कमरे में वह एक कोशित (Pupa) बन जाता है। उस कोशित (Pupa) में कीड़े का मुख द्वार की ओर होता है। यदि उसका सिर द्वार की ओर न हो तो वह तितली बनने पर मुड़ नहीं पायेगा और उसी में बंदी होने की सम्भावना रहेगी। कुछ दिनों में कोशित (Pupa) टूट जाता है और तितली झिल्लीदार द्वारों को तोड़ती हुई पुष्पों का मधुर रस पान करने लगती है।[1]

यह है एक छोटे से कीड़े की कहानी, जो नित्यप्रति घटित होती रहती है। इसको देखकर मस्तिष्क चक्कर खाने लगता है और बुद्धि चकित रह जाती है। पूर्ण क्रिया का अवलोकन करने से पता लगता है कि यह कार्य उस कीड़े ने बड़ी सतर्कता एवं बुद्धिमत्ता से अपने उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये किया है और

[1] Fabre, S H, 'The Wonders of Instinct,' (English Translation) London, 1918.

उसने इस कार्य को इतनी पूर्णता से समाप्त किया है कि मालूम पड़ता है कि उसने कितना अनुभव प्राप्त करके इस कार्य को सीखा होगा परन्तु हम पहले ही बता चुके हैं कि इस कीड़े का कोई भी मानसिक स्तर नहीं है और न इसका शारीरिक विकास ही उच्च श्रेणी का है। न तो यह देख ही सकता है और न सुन ही सकता है और न ही इसकी बुद्धि का विकास हुआ है। इसे इस कार्य का कोई पूर्व अनुभव नहीं है न ही किसी ने इसे शिक्षा दी है। इस पर भी कितनी कुशलता से उसने इस कार्य को पूरा किया है। इसी प्रकार कार्य उसकी जाति के अनेक कीड़े करते हैं। इसी प्रवृत्ति को जो कि आन्तरिक रूप से कार्य करता है और पशु व्यवहार को निर्देशित करता है हम मूल प्रवृत्ति कहते हैं।

(२) कीड़े मकोड़ों के उदाहरण

ऐसे कीड़ों के बहुत से उदाहरण पाये जाते हैं जो अपने अण्डे ऐसे स्थान पर देते हैं जहाँ कुछ न कुछ उनके पैदा होने वाले कीड़ों को खाने के लिये मिल जायगा। उदाहरणस्वरूप कुछ कीड़े अपने अण्डे सड़े हुए मांस पर देते हैं। कीड़े पैदा होने पर उसी माँस को खाते हैं। कुछ कीड़े अपने अण्डे किसी विशिष्ट फूल के बीजों (Ovules) में देते हैं जिससे कि कीड़े पैदा होने पर अपना भोजन प्राप्त कर सकें। अतः हम देखते हैं कि सड़े माँस की दुर्गन्ध या विशिष्ट फूल की सुगन्ध इन कीड़ों की ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजना देती है और मूल प्रवृत्तियों के कारण ये कीड़े अपने अण्डे उन्हीं विशिष्ट स्थानों पर देते हैं।

कुछ कीड़े इससे भी कठिन प्रक्रिया द्वारा अपने पैदा होने वाले बच्चों के भोजन की व्यवस्था कर देते हैं। बर (Mason Wasp) अपने अण्डे देने के पहले कुछ कीड़ों (Caterpillars) को डङ्क मार कर अधमरा कर देता है और फिर उन्हें एक छोटे से गड्ढे में थोड़ी सी कीचड़ या मिट्टी डालकर दबा देता है। उसके ऊपर अण्डे देकर उड़ जाता है। इसके आगे क्या हुआ? यह बर ने कभी नहीं देखा। अण्डों से बर के बच्चे पैदा होते हैं और ये दबे हुए अधमरे कीड़ों का ताजा मांस खाते हैं और बड़े हो जाते हैं।

(३) निम्न श्रेणी के रीढ़ की हड्डी वाले प्राणियों के उदाहरण
(Example of lower Vertebrate animals)

(अ) गिलहरी (Squirrel)

एक गिलहरी को पैदा होते ही उसकी जाति (Specie) की दूसरी गिलहरियों से पृथक् कर दीजिये और सम्पूर्ण पृथक एवं भिन्न पर्यावरण में पालिये। इस पर भी जब उसे कड़े छिलके के फल (Nuts) दिये जायेंगे तो वह उनमें से कुछ खायेगी और कुछ काष्ठफल (Nut) भूमि में गाड़ देगी।

यह सब वह उसी प्रकार से करती है जिस प्रकार उसकी जाति की अन्य गिलहरियां करती हैं।

(व) पालतू कुत्ता

कहते हैं कि कुत्ता एक बुद्धिमान पशु है। जब कुत्ता एक शशक (Rabbit) के पिछले भाग को देखता है तो उसके शिकार की मूल प्रवृत्ति जाग उठती है और वह होश हवास खोकर उसके पीछे दौड़ने लगता है और जैसे ही वह अपने शिकार को पास से देखता है, भौंकना शुरू कर देता है। इसका फल स्पष्ट है कि शिकार भाग जाता है, परन्तु कुत्ता ऐसा क्यों करता है? उत्तर स्पष्ट है कि यह मूल प्रवृत्ति के कारण करता है। उसके पूर्वज झुण्ड में शिकार करते थे, और भौंक कर अपने साथियों को सचेत करते थे, परन्तु अब पालतू कुत्ता यद्यपि अकेले शिकार करता है। तथापि अपनी जाति की भौंकने की वह मूल प्रवृत्ति उसमें अब भी शेष है।

इस प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। अब हम मूल प्रवृत्ति शब्द का क्या अर्थ होता है इस पर विचार करेंगे।

मूल प्रवृत्ति का अर्थ (Concept of Instinct)

मूल प्रवृत्ति (Instinct) और स्वाभाविक (Instinctive) शब्दों का अत्यधिक प्रयोग किया गया है, परंतु दुःख का विषय है कि इस शब्द का अनुपयुक्त प्रयोग विभिन्न अंगों में न केवल साधारण लोगों ने किया है, बल्कि बड़े २ विद्वानों द्वारा भी किया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि इन शब्दों का वैज्ञानिक अर्थ नष्ट हो गया है। इस पर भी इस शब्द का प्रयोग सामाजिक मनोविज्ञान में करना ही पड़ता है, यद्यपि कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि इस शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए। न्यूकोम्ब ने लिखा है, "मूल प्रवृत्तियों का अस्तित्व हो या न हो, हम इस शब्द के प्रयोग का परित्याग केवल इसलिये करेंगे, क्योंकि यह एक भ्रान्तिमूलक शब्द है।"[1]

कुछ भी हो इस शब्द का प्रयोग हो या न हो इसके स्वरूप एवं क्षेत्र को समझे बिना मानव के व्यक्तिगत या सामूहिक व्यवहार को नहीं समझा जा सकता। मूल प्रवृत्तियों का विवरण वैसे तो बहुत समय से हो रहा था, परन्तु डा० मैकडूगल (McDougall) ने इसका अति सुन्दर विश्लेषण अपनी पुस्तक 'सोशल साइकॉलोजी' (An Introduction to Social Psycho-

[1] "Whether instincts do or do not 'exist,' we shall avoid the term simply because it is a confusing one" Newcomb, T M, Social Psychology, p 84 Second impression, 1955, Tavistock Publication Ltd.

logy में किया है। यद्यपि उनके विचारों से सब मनोवैज्ञानिक पूर्णतया सहमत नहीं हैं, तथापि उनकी परिभाषा को अधिकांश मनोवैज्ञानिकों द्वारा मान्यता दी गई है और सबसे बड़ा कार्य उन्होंने यह किया है कि इस शब्द के अर्थ को वैज्ञानिक आवरण पहिनाया है।

मैकडूगल ने मूल प्रवृत्ति की परिभाषा निम्न शब्दों में की है, मूल प्रवृत्ति एक आन्तरिक मन शारीरिक प्रकृति है, जो इसके स्वामी के लिये एक निश्चित् वर्ग की वस्तुओं को इन्द्रीयगोचर होने तथा ध्यान देने और इस प्रकार की वस्तु के इन्द्रियगोचर होने पर एक विशेष प्रकार की उद्वेगात्मक उत्तेजना का अनुभव हो तथा इसके सम्बन्ध में एक विशेष प्रकार का व्यवहार हो या कम से कम इस प्रकार के व्यवहार की आन्तरिक प्रेरणा का होना निश्चित् करता है।"[1]

मैकडूगल ने मूल प्रवृत्तियों की यन्त्र रचना का भी विवरण दिया है। उसके अनुसार प्रत्येक मूल प्रवृत्ति की तीन मानसिक क्रियायें होती हैं। ज्ञानात्मक (Cognitive), उत्तेजनात्मक (Affective) क्रियात्मक (Conative) क्रियायें।

इन तीनों प्रकार की मन क्रियाओं को, जो कि मन. शारीरिक क्रिया (Psycho-physical process) मूल प्रवृत्तियों के व्यवहार में होती है, यद्यपि हम देख नहीं सकते, तथापि इन क्रियाओं के विषय में ऐसा विश्वास एवं दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है कि ये क्रियाय होती हैं। मैकडूगल ने इसकी पुष्टि निम्न प्रकार से समझा कर की है। प्रत्येक मानसिक क्रिया के तीन भाग होते हैं। वे इस प्रकार हैं:—

१. ज्ञानात्मक (Cognitive)
२ उत्तेजनात्मक (Affective)
३. क्रियात्मक (Conative)

इसको यों भी कह सकते हैं कि प्रत्येक मूलप्रवृत्ति सर्वप्रथम किसी वस्तु के विषय में ज्ञान कराती है, फिर इस ज्ञान के कारण उस वस्तु के प्रति एक प्रकार की उत्तेजना मिलती है और इस उत्तेजना के कारण उस वस्तु को पाने या करने की या इसके विपरीत दूर होने की इच्छा होती है।

[1] "An Instinct is an inherited or innate psychophysical disposition which determines its possessor to perceive, and to pay attention to, objects of a certain class, to experience an emotional excitement of a particular quality upon perceiving such an object, and to act in regard to it in a particular manner, or, at least, to experience an impulse to such action." McDougall W., 'An Introduction to Social Psychology,' p 25

हमारा शारीरिक ढाँचा भी इसकी पुष्टि करता है। किसी वस्तु के कारण ज्ञानेन्द्रिय उत्तेजित होती हैं और यह उत्तेजना मस्तिष्क तक मस्तिष्क सम्बन्धी ज्ञान तन्तुओं (Sensory nerves) द्वारा पहुँचती है और फिर एक व्यवस्थित एवं सुसम्बन्धित प्रेरणाओं की धारा को बाहर ले जाने वाली नाड़ियाँ (Efferent nerves) कार्यशील अवयवों या मांसपेशियों तक पहुचाती हैं।

मन. प्रक्रिया (Psychical process) की ज्ञानात्मक क्रिया (Cognitive process) को मान लेना इसलिये उचित है कि ओजस्वी उत्तेजना (Nervous excitation) मस्तिष्क के उस भाग में होती है, जिसकी उत्तेजना के कारण ज्ञान तन्तुओं का कार्य प्रारम्भ होता है और उत्तेजनात्मक क्रिया (Affective process) का मान लेना इसलिये उचित है कि प्राणी किसी कार्य के करने के पूर्व उद्वेगात्मक उत्तेजना का अनुभव करता है। कई बार इन उद्वेगों के लक्षण स्पष्टतया दिखलाई भी पड़ते हैं और क्रियात्मक क्रिया (Conative process) का मान लेना इसलिये भी उचित है कि प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के जागृत होते ही और उद्वेग उठते ही प्राणी उस कार्य को करने के लिये प्रयत्नशील हो जाता है। या हम यों कह सकते हैं कि यह क्रिया तब तक रोकी नहीं जा सकती, जब तक कि पूरी न हो जाय या अन्य शक्तिशाली प्रवृत्ति को उत्तेजित न कर दे या प्राणी अपने सतत एवं अटूट प्रयत्नों के फलस्वरूप शक्तिहीन न हो जाय। किसी कार्य को करने के पूर्व हमें किसी वस्तु को देखकर ज्ञानात्मक भाव उत्पन्न होता है और यह ज्ञानात्मक भाव किसी न किसी उद्वेग द्वारा अनुगामित होता है और हर उद्वेग एक मूलप्रवृति व्यवहार को जन्म देता है।

कुछ अन्य विद्वानों द्वारा मूल प्रवृतियों की परिभाषायें

जिन्सबर्ग (Ginsberg) लिखता है, 'मूल प्रवृत्तीय व्यवहार उस न्यून या अधिक जटिल कार्यश्रृङ्खला या व्यवहार का द्योतक है, जो कि प्रजाति के लिये उन हितकर निश्चित् उद्देश्यों का अनुकूलन करते हैं जो कि वंशगत निश्चित् होते हैं और व्यक्तिगत प्राणी के पूर्व अनुभव से स्वतन्त्र होते हैं।"[1]

डा० पेखाम और मिसेज पेखाम मूल प्रवृत्ति की परिभाषा निम्न शब्दों में करते हैं, "मूलप्रवृत्ति शब्द के अन्तर्गत हम उन सब जटिल कार्यों को लेते हैं

[1] 'The term instinctive activity indicates certain more or less complicated trains of movement, which are adapted to certain ends useful to the race, which are congenitally determined and are independent of previous experience by the individual organism " Ginsberg, M, 'The Psychology of Society' p 1 Methuen and Co Ltd, London, Eight Edition, 1951

जो कि बिना किसी पूर्व अनुभव के उसी प्रकार से किये जाते हैं जिस प्रकार से उस लिंग और प्रजाति के सब सदस्यों द्वारा किये जाते हैं।"[1]

किरबी और स्पेन्स (Kirby and Spence) लिखते हैं, "पशुओं की मूल प्रवृत्तियाँ को हम वे विशेष गुण कहते हैं जो सृजनकर्त्ता द्वारा उनको प्रदान किये जाते हैं, जो शिक्षा अवलोकन या अनुभव से पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं और जिनके द्वारा वे कुछ ऐसे निश्चित कार्य जो कि प्राणी की भलाई एवं उसकी जाति की रक्षा के लिये होते हैं समान रूप से करने के लिये प्रेरित करते हैं।"[2]

कुछ यन्त्रवादी मनोवैज्ञानिकों का मत है कि मूल प्रवृत्ति एक प्रकार से प्रतिक्षेप शृङ्खलायें (Chain Reflexes) होती हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) इसी मत का प्रतिपादक है यह कल्पना मात्र है। हर्बर्ट स्पेन्सर के विचार की मनोवैज्ञानिकों ने तीव्र आलोचना की है। इसके विषय में विस्तारपूर्वक हम आगे विचार करेंगे।

मूल प्रवृत्तियों की विशेषताएँ (Characteristics of Instincts)

हमने संक्षेप में मूल प्रवृत्तियों के स्वरूप पर विचार किया। अब हम मूल प्रवृत्तियों की विशेषताओं पर प्रकाश डालेंगे। वे निम्न हैं —

(१) अनुकूलता की प्रवृत्ति (Adaptive Character)

प्रत्येक मूल प्रवृत्ति में पूर्व निश्चित परिस्थिति से अनुकूलता की प्रवृत्ति रहती है, जैसे तिरछी का कीड़ा (Cerambyx grub) कितनी सुन्दरता से अपनी परिस्थिति के अनुसार अनुकूलता करता चला जाता है, परन्तु इस अनुकूलता को हमें जान बूझ कर बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य न समझना चाहिए क्योंकि उस कीड़े में कोई बुद्धि नहीं होती और वह जो कुछ भी करता है उसी प्रकार से उसकी जाति के अन्य कीड़े भी करते हैं। तात्पर्य यह है कि मूल प्रवृत्ति में अनुकूलता की वह प्रवृत्ति पाई जाती है जो इस जाति के सारे सदस्यों के लिये पूर्व निश्चित होती है।

---

[1] "Under the term 'instinct' we place all complex acts which are performed previous to experience and in a similar manner by all members of the same sex and race." Dr. Peckham and Mrs. Peckham.

[2] "We may call instincts of animals those faculties implanted in them by the Creator, by which, independent of instruction, observation or experience, they are all alike impelled to the performance of certain actions tendings to the well being of the individual and the preservation of the species."

—Kirby and Spence

(२) मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं (Instincts are Innate)

मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं। इनको सीखने की हमें कोई आवश्यकता नहीं होती। दो प्रमुख कारणों से, एक तो यह कि मूल प्रवृत्तियाँ एक जाति (Species) में सामान्य रूप से पाई जाती हैं और दूसरी यह कि प्रथम बार में कार्य बड़ी ही कुशलता से होता है।

हम जन्मजात इन प्रवृत्तियों को तब ही मानेंगे, जब कि एक जाति के सदस्यों का व्यवहार एकसा हो, परन्तु उन पर किसी और बात के कारण व्यवहार की समानता न आई हो। कई बार अनुकरण या शिक्षा से पशुओं या मनुष्यों का व्यवहार समान हो सकता है। बहुत समय तक इन समानताओं को सामाजिक तत्वों के कारण बताया जाता था, परन्तु परीक्षण (Experiment) तथा अवलोकन (Observation) दोनों ने ही सिद्ध कर दिया है कि एक जाति के सदस्यों में समान व्यवहार सामाजिक प्रभाव के कारण ही नहीं होता, जैसे तितली के कीड़े का उदाहरण हम देख चुके हैं। इसी प्रकार से हमने गिलहरी के उदाहरण पर भी विचार किया। यद्यपि गिलहरी को उसकी जाति की अन्य गिलहरियों से जन्म के बाद ही पृथक् कर दीजिये, परन्तु उसमें वे गुण बिना सिखाये या देखे ही आ जायेंगे, जो कि उसकी जाति में जन्म से ही पाये जाते हैं।

भूख लगने पर छोटा बच्चा पैदा होने के उपरान्त ही चिल्लाने लगता है। एक कुत्ते का बच्चा पानी में प्रथम अवसर पर ही तैरने लगता है। चिड़िया के बच्चे बिना शिक्षा के उड़ने लगते हैं। सारे गुण उनमें जन्मजात होते हैं। अतः अनेक उदाहरण इस प्रकार के दिये जा सकते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं।

(३) नवीन परिस्थितियों में अति न्यून परिवर्तन
(The Smallest of the extent to which they can be modified to meet with novel factors in the situation)

मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाओं में बहुत ही कम परिवर्तन नई परिस्थिति में हो सकते हैं। एक जाति के सदस्यों के लिये निश्चित परिस्थितियाँ होती हैं और यदि इन पूर्व निश्चित् परिस्थितियों में कोई अन्तर हो जाय तो मूल प्रवृत्तियाँ कोई विशेष परिवर्तन करके अनुकूल नहीं कर सकतीं। वही प्राणी जो कि इतनी अद्भुत क्रियाओं द्वारा अपनी पूर्व निश्चित परिस्थिति को कुशलतापूर्वक निभाता है तनिक भी परिवर्तन होने पर सारी कला भूल जाता है और कई बार यहाँ तक होता है कि वह अपने प्राण भी दे देता है।

यदि मधुमक्खियों का छत्ता जहाँ पर लगा हो उस जगह से हटाकर थोड़ी दूर पर लगा दिया जाय या छत्ते के द्वार को दूसरी ओर कर दिया जाय तो बाहर गई हुई मधुमक्खियाँ पुराने स्थान पर ही लौटेंगी और वे घूम घूम कर मर जायेंगी बजाय इसके कि उस छत्ते में, जो कि नई स्थिति में है, घुस जायें।

फेबरे[1] ने लिखा है कि सरल चीड़ सयात्री पदातिक (Pine processionary caterpillar) की कतार को तोड़कर उसके दोनो सिरों को उसने जोड़ दिया। इस परिवर्तन के कारण वे सात दिन तक बिना भोजन पाये गुलदस्ते के चारो ओर गोले में चक्कर लगाते रहे। जब वह गोला (Ring) टूट गया और कतार बन गई तब वे अपने घोसले (Nest) तक पहुँच सके। इसी प्रकार से पैखाम्स[2] ने ततैये (Wasp) पर परीक्षण किये और अवलोकन किया कि वह पहले अपने घोंसले (Nest) का निर्माण करता है और इसके उपरान्त कीड़े (Caterpillar) को ढूंढता है और डङ्क मारता है एवं घसीट कर अपने घोंसले तक ले जाता है। कई बार ऐसा देखा गया कि शिकार नीड़ से बहुत दूर होता है और उसे नीड़ तक ले जाने मे बहुत समय लगता है। इस कारण से वह शिकार को विवश होकर छोड़ देता है, यद्यपि उसके पास अति सरल मार्ग है कि वह अपना नीड़ शिकार के निकट बना ले। इस प्रकार यह विदित हुआ कि पूर्व निश्चित परिस्थिति के अतिरिक्त नवीन स्थिति से अनुकूलन करने में प्राणी असमर्थ रहता है।

(४) सम्पूर्ण जाति में सामान्य रूप से समान गुण पाये जाते हैं (Universality among members of the same species)

मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार एक जाति (Species) के सब सदस्यों मे सामान्य रूप से पाये जाते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि यह व्यवहार सीखने से नहीं परन्तु जन्मजात होते हैं। यदि हम प्राणी विशेष को उसके अन्य सदस्यों से पृथक् करदे और फिर उसके व्यवहार को देखें तो वह व्यवहार वैसा ही होगा जैसा कि उस जाति के अन्य सदस्यो का होता है। इस पर स्थान इत्यादि का प्रभाव नहीं होता।

---

[1] Fabre, 'The Wonders of Instinct'

[2] Peckhams, G W and E G, 'On the instincts and habits of olitary wasps', Madison Wis, 1898

(५) प्रथम क्रिया में ही अद्‌भुत पूर्णता पाई जाती है
(The remarkable degree of prefection of their first performance)

मूल प्रवृत्ति व्यवहार जब प्रथम बार ही होता है, तब ऐसा झलकता है कि करने वाला बड़ा ही बुद्धिमान एवं कुशल है, क्योंकि कार्य का प्रत्येक अंग बड़ी निपुणता से किया जाता है। एक बतख (Duck) का बच्चा जब पानी में प्रथम बार ही उतारा जाता है तो शान से तैरता दिखलाई पड़ता है। चिड़िया का बच्चा अपने आप फड़फड़ा कर उड़ने लगता है। अतः इन क्रियाओं में अद्‌भुत पूर्णता पाई जाती है।

इस पर भी हमें अतिशयोक्ति (Exaggeration) से बचना चाहिए। प्रथम बार ही में सदैव अद्‌भुत पूर्णता नहीं होती है। इसके कई उदाहरण हैं। एक चिड़िया का बच्चा प्रथम बार नीड़ छोड़ता है तो उतना अच्छा नहीं उड़ता, जितना कि वह कुछ दिनों बाद उड़ता है प्रथम बार में इतना अवश्य उड़ लेता है कि पृथ्वी पर गिरने से बच जाये। यह उसकी प्राणीशास्त्रीय आवश्यकता है और यदि ऐसा न होता तो चिड़ियों के बच्चे जो कि पृथ्वी से काफी ऊपर उत्पन्न होते हैं, अपनी पहली ही उड़ान में मर गये होते।

अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है कि उन्नति अभ्यास के द्वारा होती है या परिपक्वता (Maturity) के कारण।

(६) मूल प्रवृत्तियों का एक लक्ष्य होता है
(The instircts have always an end in view)

प्रत्येक मूल प्रवृत्ति का कोई न कोई लक्ष्य अवश्य होता है। जैसा कि हमने देखा किसी वस्तु का बोध होने के कारण एक विशिष्ट प्रकार का उद्वेग उत्पन्न होता है और यह उद्वेग एक विशिष्ट क्रिया करने के लिये उत्तेजित करता है। यह लक्ष्य करीब पूर्व निश्चित् होता है।

मूल प्रवृत्ति और प्रतिक्षेप क्रिया
(Instinct and Reflex Action)

(अ) क्या मूल प्रवृत्ति प्रतिक्षेप श्रृङ्खला है ?
(Is intinct a chain reflex)

हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) तथा दूसरे यन्त्रवादी मनोवैज्ञानिकों (Mechanistic) का मत है कि मूल प्रवृत्ति केवल प्रतिक्षेप श्रृङ्खला मात्र है। यह मत अधिकांश मनोवैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है। अनेक तर्क यह सिद्ध करने के लिये दिये गये हैं कि मूल प्रवृत्ति प्रतिक्षेप श्रृङ्खला (Chain Reflexes) नहीं है। उनमें से कुछ पर हम प्रकाश डालेंगे।

फ्रायड (Frend) कहता है कि मूल प्रवृत्तियों का उद्गम स्थान आभ्यान्तरिक (Internal) है, न कि प्रतिक्षेप (Retlex) के समान किसी बाह्य उद्दीपक (External Stimulus) से प्रारम्भ होता है। फिर प्रतिक्षेप से भिन्न मूल प्रवृत्तियों को उत्तेजन दीर्घकालीन तथा बहुत कुछ नित्य होता है। मूल प्रवृत्तियों के इन दो लक्षणों को भूख प्यास की मूल प्रवृत्तियों में स्पष्ट किया जा सकता है। भूख प्यास का आदि कारण आभ्यान्तरिक (Internal), होता है और यह प्रतिक्षेप से भिन्न होकर कुछ समय तक जारी रहता है।

फिर प्रत्येक मूल प्रवृत्ति में कारक बल (Impetus), विषय वस्तु (Object) तथा उद्देश्य (End) पाया जाता है। कारक बल से अर्थ होता है कि मूल प्रवृत्ति के क्रियाशील होने पर विशेष स्नायु में गति होती है, जैसे शरीर में भूख लगने पर शरीर के अनेक स्नायुओं का सञ्चालन होता है, ताकि भोजन प्राप्त हो सके अर्थात् पैर से चलना हाथ से पकड़ना लार का टपकना इत्यादि। इसी प्रकार मूल प्रवृत्ति का यह फ्रायड का विश्लेषण मैकडूगल के सिद्धान्त से बहुत मिलता है, क्योंकि इनके अनुसार भी प्रत्येक मूल प्रवृत्ति में उद्वेग (Emotion) तथा कारक बल पाया जाता है।

थाइलस भी कहता है कि प्रतिक्षेप क्रिया और मूल प्रवृत्ति में दो प्रमुख अन्तर हैं। प्रथम मूल प्रवृत्ति की पूर्ति अपने उद्देश्य की पूर्ति की प्रेरणा से निश्चित होती है और प्रतिक्षेप क्रिया प्रतिगामी उत्तेजक द्वारा। हम चिड़ियों के घोंसला बनाने के प्रवृत्ति व्यवहार को ले सकते हैं। जब चिड़िया एक तिनका अपनी चोंच में दबाती है, तो वही प्रतिक्षेप क्रिया प्रदर्शित नहीं करती। वह कभी अपने शरीर के किसी अवयव को चलाती है तो कभी किसी को। उसकी गति किसी उत्तेजक द्वारा निश्चित नहीं होती, बल्कि घोंसला बनाने के उद्देश्य की प्रेरणा से होती है, जो कि इसकी जाति की प्रत्येक चिड़िया के लिये अनोखी होती है। जो व्यवहार उद्देश्य द्वारा निश्चित होता है, उसे उद्देश्यपूर्ण व्यवहार (Purposive behavior) कहा जाता है। हो सकता है कि जिस प्राणी ने प्रथम बार मूल प्रवृत्ति व्यवहार को किया होगा, उसे अन्तिम उद्देश्य के विषय में कोई ज्ञान न हो। प्रतिक्षेप शृङ्खला सिद्धान्त (Chain Reflex Theory) एक मूल प्रवृत्ति व्यवहार को भूतकालीन उत्तेजक (Past Stimli) के द्वारा मानता है न कि उद्देश्य की प्रेरणा से।

दूसरा अन्तर थाइलस का यह है कि एक प्रकार की उत्तेजना से एक ही प्रकार के व्यवहार की आशा की जाती है, परन्तु प्रायः मानव व्यवहार में ऐसा

---

[1] ibid.

मैकडूगल के मूल प्रवृत्ति सिद्धान्त की कुछ प्रमुख विशेषतायें
(Some important characteristics of McDougall's theory- of Instinct)

मेकडूगल के मूल प्रवृत्ति के सिद्धान्त को इतना विस्तार दिया गया कि सन् १६०८ और उसके कुछ समय बाद तक अनेक मनोवैज्ञानिक इस सिद्धान्त को मानने लगे और ऐसा समझा जाने लगा कि मानव व्यवहार को इस सिद्धान्त के आधार पर सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। अब हम उस सिद्धान्त की कुछ प्रमुख विशेषताओं पर, जिन पर मैकडूगल ने जोर दिया है विचार करेंगे —

१ प्रत्येक मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया के तीन मानसिक पहलू होते हैं —
(अ) ज्ञानात्मक (Cognitive), (ब) उत्तेजनात्मक (Affective)
(स) क्रियात्मक (Conative)।

२. मस्तिष्क के तीन भाग होते हैं —(अ) केन्द्र पर पहुचाने वाला भाग (Afferent), (ब) केन्द्रीय भाग (Central), (स) बाहर की ओर जाने वाला भाग (Efferent)।

प्रथम भाग, बोध हुई वस्तु को, प्राप्त करता है और उसे केन्द्र तक पहुँचाता है। केन्द्र या द्वितीय भाग उसे निर्देशित करता है और तृतीय भाग उसे बाहर की ओर ले जाकर कार्य करने के लिये प्रवृत्त करता है।

३ केन्द्रीय भाग सदैव अपरिवर्तित रहता है।

४. प्रत्येक मूल प्रवृत्ति एक उद्वेग द्वारा अनुगामित होती है।
(Instinct is accompanied by an Emotion)

(क) मैकडूगल का कहना है कि प्रत्येक मूल प्रवृत्ति एक विशिष्ट प्रकार के सहवर्ती उद्वेग (Accompanying Emotion) के द्वारा अनुगामित होती है। (ख) जब कि एक प्रमुख मूल प्रवृत्ति उत्तेजित होती है तो वह एक विशिष्ट प्रकार की उत्तेजना द्वारा अनुगामित होती है। इस विशिष्ट प्रकार की उत्तेजना को मौलिक उद्वेग कहते हैं। (ग) उसने कुछ मूल प्रवृत्तियों और उनके सहवर्ती उद्वेगों की सूची भी दी है —

मूल प्रवृत्ति (Instinct)		सहवर्ती उद्वेग (Accompanying Emotion)	
(Instincts of well defined Emotional Tendency)			
पलायन	(Flight)	भय	(Fear)
निवृत्ति	(Repulsion)	घृणा	(Disgust)

जिज्ञासा	(Curiosity)	आश्चर्य	(Wonder)
युयुत्सा	(Pugnacity)	क्रोध	(Anger)
पुत्र कामना	(Parental)	कोमल	(Tender)
(Instincts of less well defined Emotional Tendency)			
भोग	(Sex)	काम	(Lust)
सामूहिक जीवन	(Gregarious)	एकाकीपन	(Loneliness)
सचय	(Acquisition)	स्वत्व	(Ownership)
विधायकता	(Constructive)	कृति भाव	(Creativeness)

५. मूल प्रवृत्तियों का मानव व्यवहार में एक महत्वपूर्ण स्थान है

मैकडूगल ने मानव व्यवहार में मूल प्रवृत्तियों को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उसका कहना है कि प्राणी व्यवहार के पीछे चालक शक्ति मूल प्रवृत्तियों की होती है। उसने इन बलशाली शब्दों में लिखा है "हम कह सकते हैं कि मूल प्रवृत्तियाँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण मानव व्यवहार की प्रमुख चालक होती हैं।"[1]

उसने अपने विचार की पुष्टि करते हुए आगे लिखा है, "ये प्रेरणाएँ मानसिक शक्तियाँ हैं जो कि व्यक्तियों और समाजों के सम्पूर्ण जीवन का निर्माण करती हैं और उसे बनाये रखती हैं। उनमें ही हम जीवन, मस्तिष्क और इच्छा की प्रमुख रहस्य की समस्या को पाते हैं।"[2]

मैकडूगल इतने से सन्तुष्ट नहीं हुआ है। मूल प्रवृत्तियों को उसने प्राणी व्यवहार का आधार ही मान लिया। उसका कहना है कि यदि मूल प्रवृत्तियाँ न हों तो प्राणी मृतक के समान हो जायेगा। उसके शब्दों को ही लिखना उचित होगा। वह लिखता है, "इन मूल प्रवृत्यात्मक स्वभाव को उनकी शक्तिशाली प्रेरणाओं एव परिवर्तकों के साथ हटा लीजिये तो प्राणी किसी भी प्रकार के कार्य के योग्य न रह जायगा। वह इस प्रकार से शक्तिहीन निश्चल एव गतिहीन हो जायगा, जैसे एक अद्भुत घड़ी जिसकी प्रमुख कमानी (Spring) निकाल

[1] "*We may say, then, that directly or indirectly the instincts* are the prime movers of all human activity McDougall W '*An Introduction to Social Psychology*,' p 38

[2] "These impulses are the mental forces that maintain and shape all the life of individuals and societies, and in them we are confronted with the central mystery of life and mind and will" *McDougall*, p 38 ibid

ली गई हो या भाप का इंजिन जिसकी अग्नि हटा दी गई हो।"[1]

मैकडूगल के मूल प्रवृत्ति के सिद्धान्त की आलोचना
(Criticism of McDougall's theory of Instinct)

यद्यपि मैकडूगल ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन इतने सुन्दर ढंग से किया है कि कोई भी तर्कवादी व्यक्ति उन्हें स्वीकार कर लेगा। उसके सिद्धान्त द्वारा प्राणी व्यवहार को समझने में अमूल्य सहायता प्राप्त हुई है। इस पर भी उसका सिद्धान्त आलोचना के प्रहारों से नहीं बच सका है। उसके सिद्धान्त के विरुद्ध महत्वपूर्ण आलोचनाएँ निम्न हैं.—

(१) मस्तिष्क के त्रिविभाजन की आलोचना
(Criticism against the tripartite division of mind)

(अ) जिन्सबर्ग ने मस्तिष्क के विभाजन की युक्ति की आलोचना की है। उसका कहना है कि मस्तिष्क का तीन भागों में विभाजन सत्यता की दृष्टि से बहुत दूर है। तीनों ही एक दूसरे से अत्यधिक सम्बन्धित हैं और विशेषतया उत्तेजना और क्रिया तो एक दूसरे से पृथक् किये ही नहीं जा सकते।

(आ) मैकडूगल ने एक मूल प्रवृत्ति को जोड़ने को समुच्चय बोधक (Conjunction) माना है। डा० स्टाउट (Dr Stout) ने इसका विरोध किया है। उनका मत है कि पशुओं में एक विशिष्ट ज्ञानात्मक प्रवृत्ति होती है। मैकडूगल ने यह सिद्ध नहीं किया है कि ज्ञानात्मक स्वभाव एक पृथक ढांचा है। मैकडूगल का दैहिक सिद्धान्त (Physiological theory), जिसके आधार पर उसने मस्तिष्क के तीन भाग माने हैं, कल्पना पर आधारित है।

(२) "प्रत्येक मूल प्रवृत्ति एक उद्वेग द्वारा अनुगामित होती है," के सिद्धान्त की आलोचना

(i) शेन्ड द्वारा आलोचना[2]

(अ) एक मूल प्रवृत्ति बिना किसी उद्वेग के उत्तेजित हुए हो सकती है। जैसे एक चिड़िया नीड़ का निर्माण करती है या शिकार करती है। ऐसे समय

---

[1] "Take away these instinctive dispositions with their powerful impulses, and the organism would become incapable of activity of any kind it would be inert and motionless like a wonderful clock work whose mainsprings had been removed or a steam engine whose fires had been drawn" Mc Dougall, p 38

[2] Shad, Foundations of Character.

में यह आवश्यक नहीं है कि एक विशिष्ट प्रकार का ही निश्चित उद्वेग उत्पन्न हो जैसा कि मैकडूगल का मत है।

(ब) एक मौलिक उद्वेग (Primary Emotion) कई मूल प्रवृत्तियों से या क्रियात्मक स्वभावों से सम्बन्धित हो सकता है परन्तु मैकडूगल का मत है कि प्रत्येक मूल प्रवृत्ति का एक विशिष्ट एवं पूर्व निश्चित मौलिक उद्वेग ही उठता है। उदाहरणस्वरूप जब भय (Fear) का उद्वेग उत्पन्न होता है, (पलायन (Flight) मूल प्रवृति का सहवर्ती उद्वेग (Accompanying Emotion) भय (Fear) है।) तो इसके कारण विभिन्न प्रकार का व्यवहार हो सकता है न कि केवल पलायन। हम भाग सकते हैं, छिप सकते हैं, चुप रह सकते हैं, मूर्तिवत खड़े रह सकते हैं, तीव्र स्वर में चिल्ला सकते हैं और पलायन भी कर सकते हैं।

(स) एक मूल प्रवृत्ति कई उद्वेगों को उत्तेजित कर सकती है, जब कि मैकडूगल का कहना है कि एक मूल प्रवृत्ति एक विशिष्ट एवं पूर्व निश्चित उद्वेग को ही उकसा सकती है। उदाहरणतया चिड़ियों के उड़ने की मूल प्रवृत्ति न केवल भय के उद्वेग से सम्बन्धित है बल्कि क्रोध, प्रसन्नता या शारीरिक सुख के लिये भी चिड़ियाँ उड़ती हैं।

(ii) जिन्सबर्ग द्वारा आलोचना[1]

जिन्सबर्ग का मत है कि उद्वेग उस समय उत्तेजित होता है जब कि किसी प्रेरणा का अवरोध किया जाता है या देर की जाती है या अत्यधिक उत्तेजना हो जाती है जिसे कार्य सन्तुष्ट नहीं कर पाता। जब किसी मूल प्रवृत्ति का क्रियात्मक पहलू सन्तुष्ट हो जाता है तो उद्वेग अति न्यून स्तर पर होता है। मान लीजिये हम भाग रहे हैं और कोई भयानक पशु हमारा पीछा कर रहा है। जब तक हम भाग रहे हैं हमारे अन्दर कोई भय उत्पन्न नहीं होता। बीच में एक दीवार आ जाती है और हम भागना बन्द कर देते हैं, उस समय हमारे अन्दर अत्यधिक भय उत्पन्न होता है। अतः उद्वेग मूल प्रवृत्ति व्यवहार के सन्तुष्ट होने पर नहीं, वरन् जब उसमें बाधा उपस्थित होती है, तब उत्पन्न होता है।

ड्रेवर (Drever) और रीवर्स (Rivers) का भी यही मत है।

(iii) डा॰ विलियम ब्राउन द्वारा आलोचना

डा॰ विलियम ब्राउन (Dr William Brown) ने भी जिन्सबर्ग का समर्थन करते हुए यह कहा है कि मैकडूगल ने स्वयं ही लिखा है कि एकाकी

[1] Ginsberg M The Psychology of Society,' p 9 Methuen & Co Ltd, Eighth Edition, 1951

पन के उद्वेग (Emotion of Loneliness) की सहवर्ती मूल प्रवृत्ति सामाजिक (Social Instinct) है। उसने यह स्वीकार भी किया है कि जब तक मनुष्य की दूसरों के साथ रहने की मूल प्रवृत्ति की सन्तुष्टि होती रहती है अर्थात् जब तक वह दूसरे मनुष्यों के साथ रहता है, तब तक उसे कोई उद्वेग अनुभव नहीं होता परन्तु जब इसमें बाधा उपस्थित होती है अर्थात् उसे दूसरे मनुष्यों से पृथक् करके अकेले में रहने को परिस्थितियाँ बाध्य करती हैं, तब अकेलेपन का उद्वेग उत्तेजित होता है।

इसका अनुभव हम अपने दैनिक जीवन में करते हैं। यदि मनुष्य को अकेले रखा जाय तो वह अकेलेपन का उद्वेग अनुभव करेगा और चूंकि समाज में रहना उसकी मूल प्रवृत्ति है, अत वह उसकी पूर्ति न होने पर उस उत्तेजना के कारण दुःखी होगा। इसी प्रकार जब हमें काम का उद्वेग (Sexual Emotion) उत्तेजित करता है और यदि हम मैथुन कर लेते हैं तो यह उद्वेग समाप्त हो जाता है और यदि उसमें बाधा उपस्थित होती है तो यह उद्वेग उत्तेजित होता जाता है, यहाँ तक कि मनुष्य की बुद्धि भी भ्रष्ट कर देता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि उद्वेग उस समय उत्पन्न होता है, जब कि मूल प्रवृत्ति के व्यवहार में बाधा उपस्थित होती है।

(ε) जयदेव सिंह द्वारा आलोचना[1]

जयदेव सिंह (Jaidev Singh) का मत है कि कुछ मूल प्रवृत्तियों के उद्वेगों को सरलता से पहिचाना नहीं जा सकता।

(९) थाउलस द्वारा आलोचना

थाउलस का मत है कि उद्वेग प्राणी को अपना उद्देश्य पूरा करने के लिये विभिन्न प्रकार का व्यवहार करने का अवसर प्रदान करता है। उसने लिखा है, "उद्वेग वह प्रेरणा शक्ति है जो कि ज्ञानयुक्त अस्थिर व्यवहार की उसी प्रकार सेवा करती है, जिस प्रकार स्वाभाविक मूल प्रवृत्तीय व्यवहार अपरिवर्तनशील प्रतिक्रियाओं की आवश्यकताओं की सेवा करता है।"[2]

(२) मूल प्रवृत्ति को मानव व्यवहार का आधार मानने वाले सिद्धान्त की आलोचना

(i) लॉयड मॉर्गन (Llyod Morgan) ने मैकडूगल के इस सिद्धान्त

---

[1] Jaidev Singh, 'A manual of Social Psychology', p 21, The City Book House, Kanpur, Second Edition, 1961

[2] Emotions are driving forces serving intelligent variable behaviour just as the automatic instinctive responses serve the needs of stereotyped behaviour" Thouless R H p 94, 'General and Social Psychology,' Second Edition, Reprinted, 1944

की आलोचना की है कि मूल प्रवृत्तियाँ मौलिक तत्व हैं और सारा मानव व्यवहार इसी पर आधारित है। उसका कहना है कि यह विभिन्न व्यवहारों के स्वरूपों के वर्गों का नाम है, न कि मौलिक तत्व है।

(ii) वुडवर्थ (Dr. Woodworth) का कहना है कि हम जीवन की प्रत्येक रुचि के लिये विभिन्न मूल प्रवृत्तियों तक ही सीमित नहीं हैं। वास्तव में प्रत्येक मानव के गुण एवं शक्ति का आन्तरिक पहलू होता है। उसने लिखा है "संगीत की योग्यता के साथ साथ संगीत में रुचि, संख्या के सम्बन्धों (गणित) को रखने के साथ साथ संख्या में रुचि, यन्त्र कलाओं की योग्यता के साथ साथ यन्त्रों से रुचि होती है और इसी प्रकार से यह रुचि सारी योग्यताओं में, जो कि सब लोगों में सामान्य रूप से या कुछ विशेष लोगों में प्रबल रूप से पाई जाती है, होती है।"[1]

वुडवर्थ ने मेक्डूगल के सिद्धान्त की और भी आलोचना की है। हो सकता है कि मैकडूगल पशु जगत के व्यवहार का आधार मूल प्रवृत्तियों को समझे, परन्तु मानव व्यवहार में अनेकानेक नवीन लक्ष्य उत्पन्न होते रहते हैं और उन सबको मूल प्रवृत्तियों के आधार पर नहीं समझाया जा सकता। अतः मैकडूगल का यह कहना, कि मानव व्यवहार की प्रमुख चालक मूल प्रवृत्तियाँ हैं, स्वीकार नहीं किया जा सकता। मानव जीवन कहीं अधिक विस्तृत है। हमारे लिये संसार केवल इसीलिये रुचिकर नहीं कि वह हमें भोजन, घर और प्रमुख मूल प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि प्रदान करता है। बल्कि इसलिये भी कि हम में वह शक्ति पाई जाती है कि हम प्रकृति को अपनी रुचि के अनुसार, अपनी इच्छाओं के अनुरूप बना लेते हैं।

(iii) जिन्सबर्ग द्वारा आलोचना

जिन्सबर्ग का मत है कि मैकडूगल का यह विचार अनुचित है कि प्राणी केवल मूल प्रवृत्तियों का जोड़ मात्र है। वह कहता है कि यह निर्विवाद सत्य है कि मानव चरित्र वंशानुसंक्रमण (Heredity) पर आधारित है और इसका आधार मूल प्रवृत्तियों और उद्वेगों में पाया जाता है, तथापि वंशानुसंक्रमण की प्रवृत्तियाँ एकाकीपन में ही नहीं पनप सकतीं। अतः उसको ही आधार मानना सरासर भूल है।

---

[1] "Along with the capacity for music goes the musical interest, along with the capacity for handling numerical relations goes an interest in numbers, along with the capacity for mechanical devices goes the interest in mechanics and so through the list of capacities with those that are generally present in all men and those that are strong only in exceptional individual' Dr Woodworth, 'Dynamic Psychology,' p 78

मूल प्रवृत्तियाँ सदैव परिवर्तित होती रहती हैं। इसको हम युद्ध के उदाहरण से समझ सकते हैं। युद्ध केवल मूल प्रवृत्ति के कारण नहीं होता, बल्कि युद्ध शक्ति को अपने हाथ में रखने के लिये होता है। इसके द्वारा हम केवल मारने या नाश करने की मूल प्रवृत्ति को ही पूरा नहीं करते बल्कि बड़ी ही जटिल समस्याएं एक युद्ध में सम्मिलित रहती हैं और इसके कारणों का विश्लेषण केवल मूल प्रवृत्तियाँ नहीं कर सकतीं बल्कि अनेक कारण, जिनका नाश करने की मूल प्रवृत्ति से कोई भी सम्बन्ध नहीं होता, युद्ध को जन्म देते हैं।

(IV) हॉब हाउस द्वारा आलोचना

मानव व्यवहार को निश्चित् एवं निर्देशित करने वाली केवल मूल प्रवृत्तियाँ ही नहीं होतीं, बल्कि सामाजिक परम्परा भी एक प्रमुख प्रभाव डालती है। हमारा कोई भी व्यवहार केवल शुद्ध मूल प्रवृत्तियों के कारण नहीं होता, क्योंकि मानव व्यवहार निश्चित् एवं विशिष्ट प्रकार का नहीं होता। उसमें अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। उसने इसका उदाहरण भूख और प्यास से दिया है। वह लिखता है, "भूख और प्यास नि सन्देह मूल प्रवृत्तियों की प्रकृति की हैं परन्तु भूख और प्यास को सन्तुष्ट करने की पद्धतियाँ अनुभव एवं शिक्षा द्वारा अपनायी जाती हैं।'[1]

मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं और वशानुसंक्रमण में पाई जाती हैं। हॉब हाउस का कहना है कि बिना सामाजिक पर्यावरण के ये तत्व विकसित नहीं हो पाते, अत इनको ही *मानव व्यवहार का आधार मानना किसी प्रकार* भी उचित नहीं है। वह लिखता है, "वंशानुसंक्रमण मनुष्य में क्षमता, सुप्रवृत्ति, प्रकृति है परन्तु पारस्परिक संघर्ष एवं पर्यावरण के कारण क्षमतायें पूर्ण होती हैं। सुप्रवृत्ति उत्साहित या हतोत्साहित होती है, प्रकृति का विकास या विनाश होता है।"[2]

---

[1] 'Hunger and Thirst no doubt, are of the nature of instincts but the methods of satisfying hunger and thirst are acquired by experience or by teaching'" Hobhouse, L T 'Morals in Evolution,' p 11

[2] "What is hereditary in man is capacity, propensity, disposition, but the capacities are filled in, the propencities encouraged or checked, the dispositions inhibited or developed by mutual interaction and the pervading influence of the circumambient atmosphere." Hobhouse, L T 'Mind in Evolution', p 105.

इस प्रकार हम देखते हैं कि मैकडूगल के मूल प्रवृत्तिय सिद्धान्त में अनेक दोष पाये गये हैं, परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं होता कि इस सिद्धान्त में कोई तथ्य नहीं है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि मूल प्रवृत्ति शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उन्होंने इसके लिये प्रेरणायें (Drives) या प्रेरक शक्तियां (Motives) आदि शब्दों के प्रयोग का सुझाव दिया है।

मूल प्रवृत्ति और बुद्धि का सम्बन्ध
(Relation between Instinct and Intelligence)

कुछ विद्वानों का मत है कि मूल प्रवृत्ति और बुद्धि दो विपरीत शब्द हैं, परन्तु यह सत्य नहीं है। डा० मैकडूगल का कहना है, "यह मानकर कि सम्पूर्ण पशु व्यवहार मूल प्रवृत्ति और बुद्धि दोनों ही के कारण होता है, हमें उस प्राचीन भूल का परित्याग अवश्य कर देना चाहिए।"[1]

प्रो० स्टाउट (Prof. Stout) का भी कहना है कि मूल प्रवृत्ति और बुद्धि प्रारम्भ से ही सहयोग करती है। वह लिखता है, मूल प्रवृत्तीय व्यवहार, प्रारम्भ से ही जो कुछ भी मानसिक क्रिया के योग्य पशु होता है, कार्य में लाता है।"[2]

कुछ लोगों का आरोप है कि पहले मूल प्रवृत्तीय व्यवहार में बुद्धि किस प्रकार से काम में आ सकती है, जब कि पशु आश्चर्यजनक व्यवहार प्रथम बार ही करता है और उसे सीखने, अवलोकन करने या अनुभव करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं होता। जिम्सबर्ग का कहना है कि मूल प्रवृत्ति अनुभव से स्वतन्त्र एवं जन्म से ही पूर्ण होती है।

---

[1] We must avoid this ancient error from the outset by recognizing that all animal behaviour is both instinctive and *intelligent, ...,"* *McDougall, W* *'The Energies of men,'* p 32

[2] "Instinctive movements from the outset bring into play whatever mental activity the animal may be capable of." Stout, G, F, 'A Manual of Psychology,' p 336.

कुछ विद्वानो का यह मत है कि बुद्धि मूल प्रवृतियों के क्षेत्र में विकास पाती है और जैसे जैसे विकास होता है वैसे २ बुद्धि प्रबल शक्ति बन जाती है और अपरिवर्तनशील मूल प्रवृत्तीय व्यवहारो को लोचदार बनाती है।

मानव व्यवहार में मूल प्रवृत्ति और बुद्धि दोनो का सन्तुलन सदैव चलता रहता है। यदि हम अपने दैनिक जीवन के व्यवहारो का अवलोकन करें तो ज्ञात होगा कि कई बार हमारे अन्दर विचित्र प्रकार की उत्तेजनाएँ (जो कि मूल प्रवृत्तियो के कारण होती हैं) उत्पन्न होती हैं, परन्तु हम अपनी बुद्धि द्वारा उन्हे सन्तुलित करते हुए, उन व्यवहारो में परिवर्तित कर देते हैं, जो कि समाज द्वारा मान्य होते है। कुछ मनोवैज्ञानिक इस मध्यवर्गीय मार्ग का अनुसरण करते हैं। उनका कहना है कि मूल प्रवृत्ति और बुद्धि दोनो एक दूसरे से अत्यधिक सम्बन्धित हैं।

मेरे विचार से यह विवाद बुद्धि (Intelligence) शब्द के विभिन्न अर्थों के कारण है न कि तथ्यो के आधार पर। दोनो ही पूर्णतया स्पष्ट हैं। यदि हमारा बुद्धि से तात्पर्य मानसिक क्षमता या अवस्था से है तो वह प्रत्येक पशु एवं उसके मूल प्रवृत्तीय व्यवहार में पाई जाती है। यदि हमारा बुद्धि से तात्पर्य उन अपनाई हुई प्रवृत्तियो से है जो कि प्रत्यक्ष या परोक्ष शिक्षा द्वारा प्राप्त की जाती है तो बुद्धि प्रथम मूल प्रवृत्तीय व्यवहार मे नहीं पाई जाती है। यद्यपि यह सिद्ध करना उच्च श्रेणी के पशुओ के व्यवहार के उदाहरण से कठिन है और विशेषतया मनुष्य के जटिल व्यवहारो के कारण तो कोई सम्भव नहीं है, तथापि हम वह प्रश्न दोहरा सकते हैं कि तितली के कीड़े (Cerambyx) का मूल प्रवृत्तीय व्यवहार किस प्रकार से समझाया जा सकता है। यदि बुद्धि शब्द का अर्थ एक ही लिया जाय तो विवाद समाप्त हो सकता है।

बुद्धि की अनेक परिभाषायें करने का प्रयत्न किया गया है। थाउलस लिखता है 'मूल प्रवृत्तीय प्रतिक्रिया का अनुकूलन ही बुद्धि है।"[1]

निस्सन्देह मूल प्रवृत्ति और बुद्धि एक दूसरे से अत्यधिक सम्बन्धित हैं। इस पर भी दोनों में कुछ स्पष्ट अन्तर पाये जाते हैं, जिनके आधार पर हम एक दूसरे को यद्यपि एकदम पृथक् नहीं कर सकते, तथापि पहिचान सकते हैं। वे अन्तर निम्न प्रकार से व्यक्त किये जा सकते हैं।

[1] "Adaptability of instinctive response is intelligence" Thouless, R H, 'General and Social Psychology,' p 49, Second Edition, Reprinted 1944

मूल प्रवृत्ति (Instinct)	बुद्धि (Intelligence)
(१) मूल प्रवृत्ति जन्म से ही पूर्ण होती है।	(१) बुद्धि जन्म से पूर्ण नहीं होती। यह अवस्था के साथ २ बढ़ती जाती है और पूर्णता तक कभी नहीं पहुचती।
(२) यह अनुभव रहित होती है।	(२) यह अनुभव एव अवलोकन द्वारा सीखी जाती है।
(३) इसमें भावी ज्ञान नहीं होता, यद्यपि उपदेश पाया जाता है।	(३) इसमें भावी ज्ञान उद्देश्य के लिये होता है।
(४) मूल प्रवृत्ति व्यवहार में क्रमश विभिन्न अवस्थाओ में निश्चित् रीति के अनुसार व्यवहार होता है और परिवर्तन अति न्यून सीमा मे होता है।	(४) इसमें विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न प्रकार का व्यवहार हो सकता है। वह कभी पूर्व निश्चित नहीं रहता, बल्कि परिस्थिति के अनुसार लक्ष्य को दृष्टि में रखकर परिवर्तित होता रहता है।
(५) मूल प्रवृत्ति व्यवहार की सामान्य प्रथानुसार साधारण घटना क्रम में यदि कोई बाधा उपस्थित हो जाय तो सम्पूर्ण क्रिया समाप्त हो जाती है।	(५) इसमें ऐसा नहीं होता। यदि उद्देश्य की प्राप्ति म एक उपाय असफल होता है तो दूसर उपाय अपना लिये जाते ह।
(६) मूल प्रवृत्ति व्यवहार की पद्धतियाँ अपरिवर्तनशील एव यन्त्रवत् होती है।	(६) इसकी पद्धतियाँ अधिक अनुकूलन करने योग्य एव परिवर्तन शील होती हैं।

प्रश्न

१. मूल प्रवृत्ति की परिभाषा कीजिये और इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

(Define Instinct and describe its characteristics)

२. मूल प्रवृत्ति और प्रतिक्षेप क्रिया मे अन्तर बतलाइये। क्या यह कहना उचित है कि मूल प्रवृत्ति प्रतिक्षेप क्रिया शृङ्खला है ?

(Distinguish Instinct from Reflex Action ? Is it correct to say that instinct is Chain Reflex Action ?

३. मूल प्रवृत्ति और बुद्धि में क्या सम्बन्ध है ?

(What is the relation between instinct and intelligence ?)

४ मैकडूगल का मूल प्रवृत्ति का सिद्धान्त लिखिये। आप कहाँ तक उसके विचार से सहमत हैं ?

(Write McDougall s theory of instincts How far you agree with him ?)

५ चार मूल प्रवृत्तियों के नाम बताइये और उनके सहवर्ती उद्वेग भी बताईये। कारण देते हुए लिखिये कि आप उनमें से किसको सबसे अधिक शक्तिशाली समझते हैं।

(Name four instincts and their corresponding emotions Mention which you consider the most powerful, giving reasons) Agra, 1952

६ क्या मैकडूगल का मूल प्रवृत्ति सिद्धान्त मानने योग्य है ? यह किस प्रकार से उद्वेग और बुद्धि से सम्बन्धित है ?

(Is McDougall's concept of 'Instincts' tenable ? How is it related with emotions and intelligence ?) Agra, 1956.

SELECTED READINGS

1 McDougall, 'Social Psychology' chapters II, III, IV.
2. Thouless, 'General and Social Psychology' chapters III and IV.
3 Ginsberg 'The Psychology of Society' chapters 1 and II,

अध्याय २६

सुझाव अनुकरण तथा सहानुभूति
(Suggestion Imitation and Sympathy)

सुझाव अनुकरण तथा सहानुभूति को मेकडूगल ने अवशिष्ट (Non-specific) मूल प्रवृत्तियाँ कहा है और इनको मनुष्य के व्यवहार में अत्यधिक महत्वपूर्ण माना है। अब हम इन तीनों पर क्रमश: विचार करेंगे। उनका अर्थ समझने के उपरान्त अग्रिम अध्यायों में उनका सामाजिक जीवन मे क्या कार्य एव महत्व है, इस पर विचार करेंगे।

सुझाव (Suggestion)

सुझाव का अर्थ

सुझाव शब्द से हम साधारण भाषा मे किसी ऐसे विचार या भाव को समझते हैं, जो किसी दूसरे के द्वारा दिया जाता है, परन्तु सामाजिक मनोविज्ञान मे इस शब्द का अर्थ इससे कहीं अधिक विस्तृत एवं जटिल है। इसका अर्थ समझने के लिये कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिकों की परिभाषाओं पर विचार करेंगे।

मेकडूगल लिखता है "सुझाव एक सन्देशवाहन की प्रक्रिया है, जो कि अतार्किक आधार पर होते हुए भी विश्वास के साथ स्वीकार कर ली जाती है।"[1]

किम्बाल यग (Kimbal Young) लिखता है, "सुझाव एक प्रकार का सन्देशवाहन का लक्षण है जो कि शब्दों, चित्रों या किसी दूसरे माध्यम द्वारा अस्पष्ट एव अतार्किक आधार पर होते हुए भी उस बात को स्वीकार करने के लिये उद्यत करता है।"[2]

---

[1] "Suggestion is a process of communication resulting in the acceptance with conviction of the communicated proposition in the absence of logically adequate grounds for its acceptance" McDougall, W 'An Introduction to Social Psychology'

[2] "Suggestion is a form of symbol communication by words, pictures or some similar medium inducing acceptance of the symbol without any self evident or logical ground for its acceptance" Yong, K *Handbook of Social Psychology,' p 110,* Routledge and Kegan Paul, London, Fifth impression 1953.

थाउलस लिखता है, 'सुझाव शब्द के द्वारा साधारणतया वह प्रक्रिया समझी जाती है, जिसके द्वारा एक प्रकार के विचार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को प्रकट एवं प्रदान किये जाते हैं और इस प्रक्रिया का विवेकशील अनुनय (Persuasion) से कोई सम्बन्ध नहीं होता।"[1]

सुझाव एक प्रकार की प्रक्रिया है जिसके कारण बिना सोचे समझे अतार्किक विचारों को भी स्वीकार कर लिया जाता है।

सुझाव की प्रक्रिया (Process of Suggestion)

इन परिभाषाओं से ज्ञात हुआ कि सुझाव एक प्रकार की मानसिक प्रक्रिया है जो कि विचार के ग्रासकर्त्ताओं को अतार्किक, अवैज्ञानिक या सर्वसाधारण रीति से अस्वीकृत होते हुए भी स्वीकार करने को उद्यत करती है। अब हमें यह देखना है कि ऐसा क्यों होता है।

सुझाव की प्रक्रिया मस्तिष्क में आये हुए विचारों के लिये एक ऐसी भूमिका की रचना करती है, जो कि तार्किक विश्लेषण की शक्ति को कम एव समालोचक संयम को समाप्त कर देती है और सुझावकर्त्ता के लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् सुझाव स्वीकार कर लिया जाता है। इससे स्पष्ट है कि सुझाव की प्रक्रिया मस्तिष्क की स्थिति पर निर्भर होती है। यदि यह स्थिति सुझाव के अनुकूल होती है तो सुझाव तुरन्त स्वीकार कर लिया जाता है। अत हमें उन परिस्थितियों एव दशाओं पर विचार करना चाहिये, जिनमें सुझाव तुरन्त स्वीकार कर लिया जाता है।

प्रभावपूर्ण सुझाव के लिये आवश्यक परिस्थितियाँ

(1) बारबार दोहराना (Repetition)

बार बार जब किसी विचार की पुनरावृत्ति होती है वह शीघ्र स्वीकार कर लिया जाता है। हिटलर ने कहा है, "एक झूठ को बार बार दोहराया जाय तो वह सत्य प्रतीत होता है।"[2]

---

[1] "The word 'suggestion is now commenly used for the process by which an attitude towards a system of ideas is communicated from one person to another, by a process other than, that of rational persuasion" Thouless, R H 'General and Social Psychology,' p 247, University Tutorial Press London, Third Edition 1951

[2] 'If a lie is repeated very often, it appears to be true" Hitler, quoted by young K Handbook of Social Psychology'

इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। चुनावों के समय में बड़े बड़े सकतपट (S g boards) विज्ञापन पत्र (Pos ers) लगाये जाते हैं और उनके द्वारा सुझाव दिया जाता है कि अ को वोट दो। इससे कारण हमारा मस्तिष्क उस स्थिति में हो जाता है और जब हम चुनाव स्थान पर कोई व्यक्ति यह सुझाव देता है कि अ को वोट दो तब हम बिना सोचे समझे इसे स्वीकार कर लेते हैं।

इसी प्रकार के सुझाव पुनरावृत्ति करते हुए विज्ञापनों में दिये जाते हैं। जैसे हिन्दुस्तान के चाय बोर्ड ने अनेक स्थानों पर लिखा रखा है यह शरद और इसका भाई पीता है हमेशा चाय चाय पीओ बहुत दिन जीओ इत्यादि।

(ii) विश्वासपूर्ण स्वर का प्रयोग (Confident tone)

सुझाव देते समय एक विश्वासपूर्ण स्वर का प्रयोग करना चाहिए जिससे यह दिखलाई पड़े कि कहने वाला सम्पूर्ण विश्वास उस विचार में रखता है।

(iii) सुझाव देने वाले की प्रतिष्ठा (Prestige of the Suggestor)

सुझाव इस बात पर भी आधारित होता है कि वह किसके द्वारा दिया जा रहा है। सुझाव देने वाले की प्रतिष्ठा जितनी ही उच्च होगी उतनी ही शीघ्रता से सुझाव स्वीकार किया जायगा। मान लीजिए पंडित नेहरू आज कोई सुझाव दें सब उसको तुरन्त स्वीकार कर लेंगे। इसी प्रकार से हम अपने दैनिक जीवन में देखते हैं कि जब कोई सुझाव दिया जाता है तो उसके पीछे किसी न किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की शक्ति लगा दी जाती है। वाद विवाद में भी लोग इसका सहारा लेते हैं। तुरन्त अरस्तू प्लेटो मनु इत्यादि के नाम इनकी जिह्वा तक आ जाते हैं। आजकल हम प्रत्येक नेता के भाषण में सुनते हैं कि गाँधीजी पूज्य बापू ऐसा चाहते थे। इसका एक बड़ा ही मनोरञ्जक उदाहरण है। वह इस प्रकार है। एक रसायनशास्त्र के प्रधानाध्यापक ने अपने श्रोताओं से कहा कि जो बोतल वे उसके हाथों में देख रहे हैं उसके अन्दर एक अत्यधिक तीव्र एवं तीक्ष्ण गन्ध वाला रसायन है। वह देखना चाहता है कि वह गन्ध कितनी देर में फैलती है अतः उसने प्रार्थना की कि जैसे ही गन्ध आप तक पहुँचे आप हाथ खड़ा कर दें। उसने अपना चेहरा एक तरफ करते हुए उस तरल पदार्थ को रूई पर डाला और विराम घड़ी (Stop Watch) को देखने लगा। १५ सकिण्ड में पहली पंक्ति के लोगों ने हाथ खड़े कर दिये और ४५ सकिण्ड में सारे श्रोताओं ने अपने हाथ खड़े कर दिये। जिसका अभिप्राय यह था कि गन्ध को उन्होंने सूंघ लिया है परन्तु बोतल में कोई विशिष्ट तरल पदार्थ न होकर शुद्ध जल था।

इस प्रक्रिया को सबसे अधिक आश्चर्यचकित अवस्था म हम वशीकरण विद्या (Hypnotism) में पाते हैं। जादूगर अपने तमाशा देखने वालों को वशीभूत कर लेते हैं और फिर वह जो कुछ भी सुझाव देता है, उनको लोग स्वीकार करते चले आते हैं।

(iv) मस्तिष्क की व्यवस्था की प्रतिकूल अवस्थाएं
(Abnormal states of the Brain)

सुझाव मस्तिष्क की व्यवस्था की प्रतिकूल अवस्थाओं में अत्यधिक प्रबल रूप से कार्य करता है। इसके अन्तर्गत हम निम्न बातों को ले सकते हैं —

(अ) मानसिक बीमारियाँ जैसे वात रोग या वातोन्माद (Hysteria) चित्त विकृतियाँ (Neurosis), मनो विकृतियाँ (psychosis) इत्यादि।

(ब) थकान (Fatigue)—जब लोग थके हुए हों तो उनसे किसी प्रकार की बातें स्वीकार करवायी जा सकती हैं।

(स) मदिरा एवं अन्य मादक वस्तुओं के प्रभाव में।

(द) लघु अवस्था म।

(य) भावावेश में।

(v) ज्ञान की कमी (Lack of knowledge)

जिन लोगों में ज्ञान की कमी पाई जाती है, वे सुझाव शीघ्रता से स्वीकार कर लेते हैं।

(vi) बाह्य परिस्थितियाँ (External Condition)

सुझाव को स्वीकार करवाने में बाह्य परिस्थितियाँ भी सहायता करती हैं जैसे अत्याधिक रोशनी, सजावट, धूमधाम, गाने बजाने और विशिष्ट प्रकार की व्यवस्थाएँ इत्यादि।

(vii) परिस्थितियों के अनुकूल सुझाव का होना
(Suggestion favourable to situations)

जब सुझाव परिस्थितियों के अनुकूल होता है, तो शीघ्र स्वीकार कर लिया जाता है जैसे साम्यवाद को समझाने के लिये साम्यवादी कहते हैं हमारा वाद पूंजीपतियों को समाप्त करेगा और अन्न एवं वस्त्र सबको दिलायेगा। यह बात परिस्थिति के अनुकूल है। यही कारण है कि साम्यवाद दरिद्र देशों में सरलता से फैल जाता है।

(viii) जटिल समस्याओं के सम्बन्ध में
(Regarding Complex Problems)

यदि समस्याए जटिल होती हैं और उनके सम्बन्ध मे कोई सुझाव दिया जाता है तो वह शीघ्र स्वीकार कर लिया जाता है । इसका कारण स्पष्ट है कि वे उन बातों को समझ ही नहीं पाते हैं, जैसा कि हम दैनिक जीवन में लोगों को यह कहते हुए पाते हैं कि ईश्वर ऐसा करता है उसकी इच्छा इत्यादि ।

(ix) अन्य विश्वासों के अनुरूप होना (To be like other beliefs)

वह सुझाव शीघ्र स्वीकार किया जाता है, जो कि व्यक्तियों के अन्य विश्वासों के अनुरूप होता है । शेष विश्वास इसको मनवाने के लिये आधार बन जाते हैं ।

(x) प्रकृति एव चरित्र की असमानताए
(Dissimilarities of Nature & Character)

सुझावो को स्वीकार करने में व्यक्ति प्रकृति भी एक महत्वपूर्ण भाग लेती है । यदि प्रकृति दूसरों की बात मानने वाली है या उसका दब्बू स्वभाव है तो सुझाव शीघ्र ही स्वीकार कर लिया जायगा ।

यह व्यक्तियों के चरित्र पर भी आधारित है । कुछ लोग प्रत्येक कार्य समझ कर करते हैं । अत उनस यह आशा नहीं की जा सकती कि बिना सोचे समझे वे किसी बात को स्वीकार कर लेंगे ।

सुझाव के स्वरूप (Forms of Suggestion)

सुझाव निम्न प्रकार के हो सकते हैं —

१. भाग चालक सुझाव (Ideo Motor Suggestion)
२ प्रतिष्ठा सुझाव (Prestige Suggestion)
३ स्वत सुझाव (Auto Suggestion)
४. सामूहिक सुझाव (Mass Suggestion)
५. प्रतिषेध सुझाव (Contra Suggestion)

(१) भाव चालक सुझाव (Ideo Motor Suggestion)

यह सुझाव मस्तिष्क सम्बन्धी ज्ञान तन्तुओं (Sensory nerves) में प्रारम्भ होता है । इस क्षेत्र मे बिनेट (Binet) ने अनेक अवलोकन एव परीक्षण किये हैं । यह सुझाव अचेतन अवस्था मे होता है । हमारे अचेतन मस्तिष्क मे यह जन्म लेकर हमारे ऊपर प्रभाव डालता है । उदाहरणस्वरूप हम नृत्य देख रहे हैं । थोड़ी देर मे नर्तकी के साथ साथ हमारे पैर भी बैठे बैठे गति करने लगते हैं ।

(५) प्रतिष्ठा सुझाव (Prestige Suggestion)

इसके विषय में हम काफी लिख चुके हैं। यहाँ पर यह समझ लेना पर्याप्त होगा कि इसका अत्यधिक प्रभाव होता है। पण्डित नेहरू कहीं भाषण देने जाएँ तो लाखों लोग एकत्रित हो जाते हैं। जिस चलचित्र म नरगिस मधुबाला वैजयन्तीमाला सुरैया राजकपूर दिलीप कुमार, अशोक कुमार इत्यादि प्रसिद्ध सिने कलाकार (Cine Artists) होते हैं वह बड़ी धूमधाम स चलता है।

इस्टाग्रुक ने लिखा है यह सुझाव "सब कुछ या कुछ नहीं' (All or nothing type) प्रकार का होता है।

(३) स्वत सुझाव (Auto Suggestion)

इस प्रकार के सुझाव में व्यक्ति स्वय अपने लिये सुझाव निर्दिष्ट करता है। इसमें उस व्यक्ति का मन उस सुझाव देता है। इस प्रक्रिया को पार्ट करना कह सकते हैं।

(४) सामूहिक सुझाव (Mass Sugges ion)

यह सुझाव समूह द्वारा दिया जाता है। इसम व्यक्ति अनुभव करता है कि विशिष्ट कार्य जब समूह कर रहा है तो उस करने म क्या हानि है। वह अपनी शक्ति को बढ़ी हुई समझता है।

प्रतिषेध सुझाव (Contra Suggestion)

जैसा कि इसके नाम स ही स्पष्ट है कि इसका प्रभाव उल्टा होता है। जो सुझाव दिया जाता है सुझाव पाने वाला उसके विपरीत कार्य करता है। जब एक सुझाव अत्यधिक जोर देकर दिया जाता है तो इसका प्रभाव विपरीत होता है। एक बार एक न्यायधीश ने ज्यूरी (Jury) के सदस्यों को जोर देकर कहा कि उन्हें अमुक प्रकार का निर्णय देना है। इनका फल यह हुआ कि उन्होंन उसके सुझाव के विपरीत निर्णय दिया। ऐसा कई बार होता है कि जब सुझाव देने वाला प्रासकर्ता की प्रतिष्ठा की चिन्ता नहीं करते हुए आक्रमण कारी रूप में सुझाव दता है तो उसका विपरीत प्रभाव होता है।

सुझाव ग्रहण-क्षमता और सुझाव में अन्तर
(Difference between Suggestibility and Suggestion)

साधारणतया मनोवैज्ञानिक सुझाव और सुझाव ग्रहण क्षमता म कोई अन्तर नहीं मानते हैं परन्तु कुछ दोनों म अन्तर मानते हैं। किम्बाल यग

लिखता है सुझाव को उत्तेजक माना जा सकता है और सुझाव ग्रहण क्षमता वह आन्तरिक पहलू है जो कि उससे सम्बन्धित है।"[1]

कई विद्वानों ने सुझाव ग्रहण क्षमता को आन्तरिक मानसिक क्रिया बताया है, जो कि मस्तिष्क को ऐसा बना देती है कि वह शीघ्र सुझाव स्वीकार कर ले।

कुछ विद्वानों ने दो सिद्धान्त सुझाव के विषय में बताये हैं—(१) एक विशिष्ट प्रकार की उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया जो कि दूसरी प्रतिक्रियाओं से स्वभाव में भिन्न होती है पाई जाती है और इन विशेष प्रकार की प्रतिक्रियाओं को सुझाव का नाम दिया जाता है। (२) व्यक्ति इन विशिष्ट प्रकार की प्रतिक्रियाओं के करने में भिन्न भिन्न शक्ति रखते हैं और इन व्यक्तिगत भिन्नताओं के कारण आधारभूत व्यक्तित्व के लक्षण हैं, इन लक्षणों को सुझाव ग्रहण क्षमता का नाम दिया है।

ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। को व्यक्ति एक सुझाव को क्यों स्वीकार करता है? इसका उत्तर यह है कि इसमें सुझाव ग्रहण क्षमता पाइ जाती है और यदि यह प्रश्न किया जाता कि किसी व्यक्ति में सुझाव ग्रहण क्षमता क्यों पाई जाती है? इसका उत्तर यह दिया जाता है कि वह प्रारम्भ से ही सुझावों को स्वीकार करता आया है अतः उसके अन्दर सुझाव ग्रहण क्षमता (Suggestibility) का विकास हो गया है। अतः स्पष्ट है कि पहली धारणा दूसरी पर और दूसरी पहली पर अवलम्बित है।

इस कारण से कुछ मनोवैज्ञानिक इस स्पष्ट मनोवैज्ञानिक शक्तियाँ मानने को तैयार नहीं हैं।

सुझावों का वर्गीकरण (Classification of Suggestions)

सुझाव को निम्न वर्गों में बाँटा जा सकता है—

१ प्रत्यक्ष सुझाव (Direct Suggestion)

---

[1] Suggestion may be considered the stimulus and suggestibility the internal phase related thereto Young, Kimbal, 'A Handbook of Social Psychology', p 110, Routledge and Kegan Paul Ltd, London Fifth impression, 1953

[2] Kretch D and Crutchfield R S, 'Theory and Problems of Social Psychology' McGraw Hill Book Co Inc (1948) p 33

२. परोक्ष सुझाव (Indirect Suggestion)
३. सकारात्मक सुझाव (Positive Suggestion)
४. नकारात्मक सुझाव (Negative Suggestion)

(१) प्रत्यक्ष सुझाव (Direct Suggestion)

प्रत्यक्ष सुझाव उस सुझाव को कहते हैं, जिसमें स्पष्ट रूप से लक्ष्य को व्यक्त कर दिया जाता है। इस प्रकार के सुझाव व्यापारिक विज्ञापनों में अत्यधिक पाये जाते हैं।

(२) परोक्ष सुझाव (Indirect Suggestion)

परोक्ष सुझाव वह है, जिसमें लक्ष्य स्पष्ट नहीं किया जाता, बल्कि लक्ष्य की भूमिका का निर्माण हो जाता है। उदाहरणस्वरूप चुनाव के दिनों में लोगों को यह *सुझाव दिया जाता है कि उम्मीदवार में ये विशेष गुण होने चाहिए।* इससे लक्ष्य स्पष्ट नहीं होता। बाद में उम्मीदवार का नाम बताया जाता है और यह भी कहा जाता है कि वह आवश्यक गुण वाला व्यक्ति है।

(३) सकारात्मक सुझाव (Positive Suggestion)

सकारात्मक सुझाव वे सुझाव हैं जो किसी कार्य को करने के लिये प्रेरण देते हैं।

(४) नकारात्मक सुझाव (Negative Suggestion)

नकारात्मक सुझाव वे सुझाव हैं जो किसी कार्य को न करने के उद्देश्य से दिये जाते हैं जैसे नगरपालिका या विकास बोर्ड के 'पानी बचाओ आन्दोलन' में वे सुझाव देते हैं "जल व्यर्थ नष्ट न कीजिए।"

अनुकरण (Imitation)

अनुकरण शब्द का प्रयोग बिना किसी रोकथाम के हुआ है। इसको इन *कार्यों के अनुकरण में प्रयोग किया गया—जैसे जब दूसरे जम्हाई लेते हैं तो* जम्हाई लेना, जब दूसरे दौड़ते हैं तब दौड़ना, मातृभाषा को सीख जाना या समाज के अनुरूप व्यवहार करना। कहने का तात्पर्य यह है कि सारे ही कार्य, जो चेतनावस्था या अचेतनावस्था में किये जाते हैं, इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। बेगहॉट (Bagehot) और टार्डे (Tarde) ने तो वह सब कुछ अनुकरण के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया है, जिसे साँस्कृतिक मानवशास्त्र में प्रसरण (Diffusion) कहते हैं। बाल्डविन (Baedwin) ने तो यहाँ तक किया है कि सारी ही साधारण एवं जटिल सीखने की प्रक्रियाओं को अनुकरण

के अन्तर्गत माना है। टार्डे अनुकरण के अन्तर्गत सुझाव और सहानुभूति को भी मानता है।

इसकी परिभाषा करना इन परिस्थितियों में कठिन है। इस पर भी विद्वानो ने निम्न परिभाषाएं की हैं।

थाउलस लिखता है, 'अनुकरण एक प्रतिक्रिया है जिसके लिये उत्तेजक दूसरे की उसी प्रकार की प्रतिक्रिया का ज्ञान है।''[1]

मैकडूगल इन शब्दों मे इसकी परिभाषा करता है, 'अनुकरण केवल एक मनुष्य द्वारा उन क्रियाओं, जो कि दूसरे के शरीर सम्बन्धी व्यवहार स सम्बन्धित हैं, की नकल करने पर लागू होता है।''[2]

मीड ने लिखा है "अनुकरण दूसरो के व्यवहारों या कार्यों को जान बूझ कर अपनाने को कहते हैं।"[3]

अनुकरण का वर्गीकरण (Classification of Imitation)

मैकडूगल ने अनुकरण को पाँच भागों में विभाजित किया है, उनमे से पहली तीन स्पष्ट हैं और शेष दो अस्पष्ट।

(१) द्योतक क्रियायें या अनुकरण
(Expressive Actions of Imitations)

द्योतक अनुकरण वह है जो एक दूसरे के भाव के कारण उत्पन्न होता है। वह अनुकरण सहानुभूति की तरह का होता है।

एक बच्चा जब दूसरे को मुस्कराते देखता है तो मुस्करा देता है या दूसरे बच्चे को रोते सुनकर चिल्लाने लगता है या दूसरे बच्चो को भय से पलायन करते देखकर स्वय भी उनका अनुकरण करता है और भागने लगता है। इस प्रकार का अनुकरण प्रत्येक पशुजातियाँ करती हैं। भीड़ व्यवहार बहुत कुछ इसी प्रक्रिया के कारण होता है।

(२) भावचालक का अनुकरण (Ideo Moter Imitation)

भावचालक अनुकरण वह अनुकरण है, जो भावो द्वारा चालित होता है।

---

[1] "Imitation is a reaction for which the stimulus is the perception of another's similar action" Thouless, R H, 'General and Social Psychology,' p [illegible], Third Ed 1951

[2] 'Imitation is applicable only to copying by one individual of the actions, the bodily movements of another" McDougall W 'An Introduction to Social Psychology'

[3] "Imitation is self conscious assumption of another's acts or roles" Mead, George H Quoted by K Young, 'A Handbook of Social Psychology,' p 110

हमने सुझाव, अनुकरण तथा सहानुभूति के अर्थ, स्वरूप एवं प्रकार पर विचार किया। अब अध्याय २८ में इनके सामाजिक जीवन में कार्य एवं महत्व पर विचार करेंगे।

प्रश्न

१. आप सुझाव, सहानुभूति और अनुकरण शब्दों से क्या समझते?
(What do you understand by term suggestion, sympathy and imitation?)

२. सुझाव पर सविस्त टिप्पणी लिखिये।
(Write short note on suggestion) Rajputana, 1953

SELECTED READINGS

1 K. Young, 'A Handbook of Social Psychology' chapter V
2 McDougall, 'Social Psycholoigy' chapter IV

अध्याय २६

सामाजिक जीवन में मूल प्रवृत्तियाँ

(Instincts in Social Life)

सामाजिक प्रक्रियायें एव व्यवहार को मनोवैज्ञानिको ने दो विभिन्न विचार-धाराओ द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। पहली विचारधारा के लोग बुद्धिवादी (Intellectualists) और दूसरी विचारधारा के लोग अबुद्धिवादी (Anti Intellectualists) कहलाते हैं। बुद्धिवादियों का विचार है कि प्रत्येक मानव क्रिया एक मानसिक प्रक्रिया या तर्क का फल है जो कि मनुष्य अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये निश्चित् करता है। वह प्रेरणा और मूल प्रवृत्तियों को अपनी बुद्धि के अनुसार ढाल लेता है। समाज में हम वयस्को से सम्बन्ध रखते हैं, जिनका व्यवहार केवल प्रेरणाओ और मूल प्रवृत्तियो पर ही आधारित नहीं होता, बल्कि विचार और अनुभव पर भी आधारित है। अत हम सामाजिक प्रक्रिया को चेतन विचार शक्ति के आधार पर खोजना चाहिये। सामाजिक व्यवहार का रहस्य बुद्धि में ही निहित है।

अबुद्धिवादियो का विचार यह है कि समूहों या समुदायो के व्यवहारो को विवेकशील एव चेतन विचारशक्ति का फल मानना बड़ी भ्रान्ति है। अनुभव, अवलोकन एव शिक्षा स फल व्यक्तियों तक ही सीमित है और समुदायो एव बड़े बड़े सामाजिक समूहो का व्यवहार प्राकृतिक स्वभाव या मूल प्रवृत्तियों मे निहित है वह पशु प्रकृति मे गहरी जड़े जमाये हुए है और जिनका तनिक भी या अत्यल्प भी सम्बन्ध चेतन विचार शक्ति स नहीं है।

सामाजिक व्यवहार का विश्लेषण तीन प्रकार से किया जा सकता है।

(१) सामाजिक समूहो के बनने की प्रकृति जन्मजात ह। इस कारण से मनुष्यो मे सामाजिक सहयोग की प्रवृत्ति पाई जाती है। इस विचारधारा का अबुद्धिवादियों ने समर्थन किया है।

(२) वे भावनायें एव प्रवृत्तियाँ जो कि स्वभाव में सामाजिक हैं, व्यक्ति सामाजिक पर्यावरण से ग्रहण करता है।

(३) यह मत गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों (Gestalt Psychologists) द्वारा प्रतिपादित किया गया है। उनका कहना है कि मनुष्य विद्युत परमाणुओं के समान है, जो कि एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और सहयोग करने लगते हैं।

इस अध्याय में हम प्रथम विचारधारा पर प्रकाश डालेंगे। इस विचारधारा को भी प्रमुख चार भागों में विभाजित किया जाता है।

(१) डा० मैकडूगल का सिद्धान्त
(२) डा० ट्रोटर का सिद्धान्त
(३) अन्य मूल प्रवृत्तियों का सिद्धान्त
(४) टार्डे और बेगहॉट का सिद्धान्त

(१) डा० मैकडूगल का सामाजिक व्यवहार के मौलिक तत्वों के विषय में विचार (Dr. McDougalls' view of the basic factors of social behaviour)

डा० मैकडूगल का मत है कि सामाजिक भावना का आधार वात्सल्य उद्वेग (Tender Emotion) है। यह मौलिक उद्वेग मूल प्रवृत्ति सन्तान कामना (Parental instinct) का सहवर्ती उद्वेग है। यही उद्वेग हमारे में विकसित होता है और विकसित होकर उपकारी भावनाओं को उत्तेजित करता है। यह सम्पूर्ण उपकारी उद्वेगों का श्रोत है।

आलोचना

(१) सामाजिक भावनायें जटिल नवीन प्रतिक्रियायें होती हैं न कि केवल पुरानी भावनाओं की विस्तारमात्र। आज के जीवन में व्यवहार इतना जटिल हो गया है कि इसे केवल वात्सल्य उद्वेग के विस्तारमात्र से नहीं समझाया जा सकता। वास्तव में सामाजिक पर्यावरण एक महत्वपूर्ण भाग सामाजिक जीवन के बनाने में लेता है।

(२) वात्सल्य उद्वेग सन्तान कामना की मूल प्रवृत्ति का सहवर्ती उद्वेग है। यह उद्वेग साधारणतया एक परिवार के सदस्यों के बीच उत्पन्न होता है। सामाजिक जीवन में परिवार से बहुत दूर के व्यक्तियों से सम्बन्ध होता है। आज के युग में, जबकि विश्व बन्धुत्व की ओर बढ़ रहे हैं और प्रत्येक मनुष्य विश्व समुदाय के कार्यों में सहयोग दे रहा है, यह सोचना कि सारा व्यवहार इस मूल प्रवृत्ति के कारण है, मिथ्या है।

(३) प्रत्येक उपकारी व्यवहार को कोमल उद्वेग के विस्तारमात्र से नहीं समझाया जा सकता। उदाहरण स्वरूप ज्ञान एवं सौन्दर्य के प्रति प्रेम किसी भी प्रकार वात्सल्य उद्वेग पर आधारित नहीं है।

(४) जब कोई उद्वेग मनुष्य में उत्तेजित होता है तो वह उसे एक प्रकार के व्यवहार करने के लिये ही बाध्य नहीं करता, बल्कि एक उद्वेग के कारण अनेक दिशाओं में मनुष्य व्यवहार करता है। इस दिशा का निश्चय कौन करता है? यह बात महत्वपूर्ण है।

(५) कोई व्यक्ति किसी की आज्ञा को स्वीकार करता है। मैकडूगल के अनुसार वह आज्ञाकारी इसलिये है, क्योंकि आज्ञापालन की मूल प्रवृत्ति उसमे है। यह सामाजिक व्यवहार का कोई विश्लेषण नहीं हुआ कि एक व्यक्ति दुष्ट इसलिये है, क्योंकि दुष्टता की मूल प्रवृत्ति उसमें पाई जाती है। दुष्टता की मूल प्रवृत्ति का पाया जाना इसलिये सिद्ध होता है, क्योकि वह दुष्ट है। वास्तव म मूल प्रवृत्तियाँ व्यवहारो के एक वर्ग का नाम है जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

(६) सामाजिक समूहो का निर्माण कैसे हुआ और व्यक्ति सामाजिक नियमों के अनुसार क्यो व्यवहार करता है इस मूल प्रवृत्तियों के आधार पर नहीं समझाया जा सकता। इसके लिये शिक्षा अवलोकन, अनुभव इत्यादि की आवश्यकता होती है।

(२) डा० ट्रोटर का सामाजिक व्यवहार के मौलिक तत्वों के विषय में विचार (Dr Trotter's views of the basic factors in social behaviour)

डा० ट्रोटर ने सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहार को सघात मूल प्रवृत्ति (Gregarious Instinct) के कारण बताया है। उसका कथन है कि इस मूल प्रवृत्ति के प्रभाव से न केवल सदस्य झुण्ड म रहते हैं, अपितु उनके मस्तिष्क की बनावट म आश्चर्यजनक ऐसा परिवर्तन होता है कि वे एक दूसरे के साथ सहयोग करने लगते हैं। उनके अन्दर सुझाव ग्रहण क्षमता (Suggestibility) इतनी बढ़ जाती है कि जो कुछ भी समाज के प्रतिष्ठा प्राप्त विचार होते हैं, शीघ्र स्वीकार कर लिये जाते हैं। कोई भी विचार चाहे जितना अतार्किक क्यो न हो बिना किसी विचार के स्वीकार कर लिया जाता है। समूह को एक महत्वपूर्ण एव सर्वश्रेष्ठ स्थान मनुष्य इसी मूल प्रवृत्ति के कारण देता है। इसी कारण समाज द्वारा निर्धारित सार नियमों एव व्यवहारों को मनुष्य स्वीकार करता चला जाता है। सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहार का रहस्य इस सघात मूल प्रवृत्ति (Gregarious Instinct) म निहित है।

आलोचना (Criticism)

(१) सघात मूल प्रवृत्ति (Gregarious Instinct) एक मौलिक मूल प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि एक ऐसा शब्द है जिसके अन्दर कई तथ्य सम्मिलित हैं।

(२) सुझाव ग्रहण क्षमता (Suggestibility) सघात मूल प्रवृत्ति (Gregarious Instinct) के कारण सदैव उत्तेजित नहीं होती है, बल्कि इसके लिये विभिन्न परिस्थितियों का होना आवश्यक होता है। पिछले अध्याय मे हमने सुझाव को प्रभावपूर्ण बनाने की परिस्थिति पर विचार किया था।

(३) सघात मूल प्रवृत्ति (Gregarious instinct) के कारण मनुष्य एक समूह में एकत्रित हो सके होंगे या हो सकते हैं, परन्तु यह एक असङ्गठित समूह, जिसे भीड़ कह सकते हैं, ही बनेगा। इसके विपरीत समाज एक सुसगठित सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। अत. केवल समूह मे एकत्रित होने की मूल प्रवृत्ति हमारे व्यवहार को नहीं समझा सकती।

(४) मानव व्यवहार इतना जटिल है और सामूहिक व्यवहार उससे भी जटिल। इस कारण से मानव सामाजिक सङ्गठन को मूल प्रवृत्ति का परिणाम नहीं स्वीकार किया जा सकता। सामाजिक व्यवहार कई तथ्यों पर आधारित है। यह जन्मजात भी है और शिक्षा, अवलोकन तथा अनुभव के फलस्वरूप भी।

(५) डा० ट्रोटर का यह कहना, कि समूह में एकत्रित होते ही मानसिक बनावट बदल जाती है, अतार्किक है।

(६) डा० ट्रोटर ने मानव व्यवहार की प्रक्रिया को बड़ी सरल रीति से समझाने का प्रयत्न किया है। यह उत्तर अवैज्ञानिक सा दिखता है। उदाहरणस्वरूप जैसे लोग कुछ भी बुद्धि की पहुँच के बाहर की घटना होने पर सरल सा उत्तर देते हैं, "ईश्वर ने किया होगा, ईश्वर इच्छा"। इसी प्रकार ट्रोटर ने भी सामाजिक व्यवहार को समझाया है कि यह सारा व्यवहार सघात मूल प्रवृत्ति (Greagrious instinct) के कारण होता है।

(७) डा० ट्रोटर ने ऐसा लगता है, सामाजिक व्यवहार का विश्लेषण अनेक परिस्थितियों में करने का प्रयत्न नहीं किया, इसी कारण उसने एक मूल प्रवृत्ति को इतना महत्व दिया है।

(२) अन्य मूल प्रवृत्तियों के सिद्धान्त (Other Theories of Instincts)

डा० मैक्डूगल और डा० ट्रोटर ने सामाजिक व्यवहार को एक विशिष्ट मूल प्रवृत्ति के कारण बताया है। कुछ ऐसे भी विद्वान हैं जो सामाजिक व्यवहार को कोई मूल प्रवृत्तियों के कारण मानते हैं। वे इसे मौलिक मूल प्रवृत्तियों पर आधारित बताते हैं। बच्चे स्तनों का पान इसलिये करते हैं, क्योंकि उनम स्तनपान करने की मूल प्रवृत्ति पाई जाती है। मनुष्य युद्ध इसलिये करते हैं, क्योंकि उनके अन्दर की कलह की मूल प्रवृत्ति (Pugonacious instinct) पाई जाती है। वे राज्यों का निर्माण इसलिये करते हैं, क्योंकि उनमें राजनैतिक मूल प्रवृत्ति पाई जाती है।

आलोचना (Criticism)

(१) इन विद्वानों ने सामाजिक व्यवहार को एक या एक से अधिक मौलिक मूल प्रवृत्तियों का फल बताया है परन्तु सामाजिक जीवन में मूल प्रवृत्तियाँ, यद्यपि अपना कार्य करती हैं, तथापि उनका स्वरूप एकदम परिवर्तित हो जाता है। ये प्रवृत्तियाँ एव जन्मजात प्रेरणायें, बुद्धि, अनुभव और सामाजिक परम्पराओं द्वारा एकदम परिवर्तित कर दी जाती हैं, जिससे एक नई वस्तु का निर्माण होता है जो कि मौलिक मूल प्रवृत्तियों से एकदम भिन्न होती है।

(२) वास्तव मे मूल प्रवृत्तियों को इन्होंने विशिष्ट व्यवहारों की आन्तरिक शक्ति के रूप में माना है। मनुष्य कोई भी व्यवहार करे उसे वे उसी आन्तरिक शक्ति के फलस्वरूप मानते हैं। इन्हीं कल्पित शक्तियो को इन्होंने मूल प्रवृत्ति समझ लिया है।

(३) यद्यपि सामाजिक सगठन और सामाजिक व्यवहार का आधार पितृगत एव जन्मजात प्रेरणाओं में अधिकाश रूप से पाया जाता है, तथापि यह सामाजिक व्यवहार का सम्पूर्ण उत्तर नहीं दे सकता। इसके लिए हमे बुद्धि, अनुभव, शिक्षा, सामाजिक परम्परा एव सामाजिक पर्यावरण की सहायता लेनी पड़ेगी। इस विषय मे अधिक जानकारी के लिये वशानुसंक्रमण और पर्यावरण के अध्याय का अध्ययन वाँछनीय है।

प्रश्न

१. समाज में मूल प्रवृत्तियों का क्या कार्य है ?

(What is the role of instincts in Society ?)

SELECTED READINGS

1 McDougall 'Social Psychology' chapters II, III, IV
2. Thouless, 'General and Social Psychology, chapter III and IV,
3 Ginsberg, 'The Psychology of Society,' chapters I and II.

अध्याय २६

समाज में सुझाव, अनुकरण तथा सहानुभूति के कार्य एवं महत्व

(Role and importance of Suggestion, Imitation) and Sympathy in Society.)

अभी पिछले अध्याय में हमने मूल प्रवृत्तियों के महत्व को समझा। इस अध्याय में सुझाव, अनुकरण तथा सहानुभूति का समाज में क्या कार्य और महत्व है, इस पर प्रकाश डालेंगे। टार्डे और बेगहॉट के सिद्धान्त पर भी विचार करेंगे।

बेगहाट[1] और टार्डे[2] का सिद्धान्त
(Theory of Bagehot and Tarde)

बेगहॉट और टार्डे ने सामाजिक संगठन एवं व्यवहार को सुझाव अनुकरण के सिद्धान्त द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। सर्वप्रथम १८७३ ई० में बेगहॉट ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसी सिद्धान्त को २३ वर्ष उपरान्त टार्डे ने अत्यधिक विस्तृत रूप से पुन. प्रस्तुत किया।

बेगहॉट का सिद्धान्त

बेगहॉट ने सामाजिक संगठन एवं व्यवहार का मौलिक आधार अनुकरण के सिद्धान्त में पाया। वस्त्रों में फैशन, लिखने की शैली, राजनैतिक और धार्मिक व्यवहार, सब में ही अनुकरण पाया जाता है। उसका कहना है कि अनुकरण स्वत एवं अचेतन होता है और यह मानव समूहों पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालता है। अनुकरण के अन्तर्गत वह सुझाव की प्रक्रिया को भी सम्मिलित कर लेता है। उसने अनुकरण को ही रीति रिवाज एव सामाजिक रूढ़ियों का जन्मदाता बताया है। ये रूढ़ियाँ ही मनुष्यों को सामाजिक व्यवहार से अनुरूप होने के लिये बाध्य करती हैं और सामाजिक नियन्त्रण रखती हैं।

---

[1] Bagehot, 'Physics and Politics,' 1873

[2] Tarde, 'Lois de, I, imitation 1896 (The Laws of Imitation by Parsons)

टार्डे का सिद्धान्त

ऐसा लगता है कि टार्डे ने बेगहॉट के सिद्धान्त से अलग रह कर अपने अनुकरण के सिद्धान्त का निर्माण किया है। उसके सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं —

(१) उसका कहना है कि सामाजिक प्रगति एक समूह के सदस्यों के मानसिक परस्पर सम्बन्धों का फल होती है। यह परस्पर सम्बन्ध तीन रूपों में प्रकट होता है-(i) पुनरावृत्ति (Repetit n), (ii) विरोध (Opposition) (iii) अनुकूलन (Adaptation)।

वह इस सिद्धान्त को न केवल सामाजिक प्रक्रिया में मानता है, बल्कि भौतिक प्रक्रिया में भी मानता है। इसके विभिन्न स्वरूपों को हम एक चार्ट द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। (पृष्ठ ४७२ पर चार्ट देखिये)

यहाँ हम सामाजिक दृष्टिकोण से विचार करेंगे। पुनरावृत्ति का सामाजिक स्वरूप अनुकरण है और यह सामाजिक प्रगति में एक महत्वपूर्ण भाग लेता है। विरोध का सामाजिक स्वरूप युद्ध प्रतिद्वन्दिता प्रतियोगिता विचार विमर्श एवं वाद विवाद होते हैं अनुकूलन का सामाजिक स्वरूप सामाजिक अनुकूलन है। सामाजिक अनुकूलन से तात्पर्य होता है सामाजिक पर्यावरण से अनुकूलन करना। इसके विषय में हम पर्यावरण के अर्थ वाले अध्याय में विस्तृत विवेचना कर चुके हैं।

(२) सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया को अनुकरण और आविष्कार पर आधारित किया जा सकता है।

(३) किसी भी समाज की प्रगति अन्वेषण पर आधारित है।

(४) अन्वेषण की शक्ति नवीन विचारों के सम्बन्धों पर आधारित होती है। जिस देश में जनसंख्या अधिक होती है तो वहाँ पर अधिक आविष्कारों की सम्भावना रहती है।

(५) किसी आविष्कार का स्वीकार किया जाना अनुकरण पर आधारित होता है।

(६) सामाजिक अनुरूपता एवं सदृश्यता अनुकरण पर आधारित है। कोई भी विचार या कार्यप्रणाली का जब दूसरों के द्वारा पुनरावर्तन किया जाता है तभी वह समाज में फैलती है और सामाजिक अनुरूपता उत्पन्न होती है।

(७) किसी आविष्कार का अनुकरण दो सामाजिक कारणों पर आधारित रहता है-(i) तार्किक (Logical) और (ii) असाधारण तार्किक (Extra logical)।

पारस्परिक सम्बन्ध
(Inter action expresses)
पुनरावृत्ति
(Repetition)
विरोध
(Opposition)
अनुकूलन
(Adaptation)
भौतिक स्वरूप
(Physical form)
लहर
(Undulation)
प्राणीशास्त्रीय स्वरूप
(Biological form)
वंशानुसंक्रमण
(Heredity)
सामाजिक स्वरूप
(Social form)
अनुकरण
(imitation)
भौतिक स्वरूप
(Physical form)
प्राणीशास्त्रीय स्वरूप
(Biological form)
सामाजिक स्वरूप
(Social form)
भौतिक स्वरूप
Physical form)
प्राणीशास्त्रीय स्वरूप
(Biological form
सामाजिक स्वरूप
(Social form
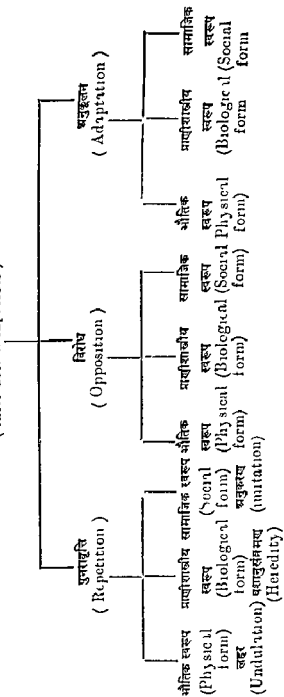
जब कोई नया विचार आता है और यदि वह उस समय के समाज द्वारा मान्य विचारों के अनुसार होता है, तो वह शीघ्र स्वीकार कर लिया जाता है। इसे तार्किक सामाजिक प्रक्रिया कहते हैं।

असाधारण तार्किक वे कारण होते हैं, जो समाज के सर्वमान्य विचारों के विपरीत होते हुए भी कुछ परिस्थितियों के कारण स्वीकार कर लिये जाते हैं। वे कारण निम्न हैं —

(i) अनुकरण अन्दर से बाहर की ओर बढ़ता है। इसका अभिप्राय यह है कि किसी विचार को स्वीकार करने एवं किसी कार्य को करने के पूर्व हमारी मानसिक स्थिति उसके पक्ष में होनी चाहिए। उदाहरणस्वरूप यूरोप में पहले फ्रेंच साहित्य के प्रति लोगों की रुचि बढ़ती गई। इस बढ़ती हुई रुचि ने फ्रेंच वेशभूषा के लिये आधार निर्माण किया। कुछ समय उपरान्त फ्रेंच वेशभूषा सम्पूर्ण यूरोप पर छा गई।

(ii) कई बार आविष्कार करने वाले की प्रतिष्ठा भी एक महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है यद्यपि उस आविष्कार को लोग स्वीकार करने की साधारण स्थिति में तैयार न होते, परन्तु वह आविष्कार एक विशिष्ट प्रतिष्ठित व्यक्ति द्वारा हुआ है, इसलिये उसे स्वीकार कर लिया जाता है। महात्मा गाँधी ने खद्दर के कपड़े पहनने का रिवाज इतना बढ़ा दिया कि आज बड़े बड़े लोग पहिनते हैं।

(iii) कई बार नई वस्तु में एक प्रकार का आकर्षण होता है। इस कारण लोग स्वीकार कर लेते हैं।

टार्डे ने कहा है कि "समाज अनुकरण है"। उसने अनुकरण के अन्तर्गत सुझाव और सहानुभूति सभी मानसिक पारस्परिक सम्बन्धों को सम्मिलित कर लिया है।

आलोचना (Criticism)

(१) इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनुकरण समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि सब कुछ अनुकरण के कारण है।

(२) टार्डे ने अनुकरण के अन्तर्गत सारी ही परस्पर सम्बन्धी मानसिक क्रियाओं को ले लिया है। ऐसा करके उसने अनुकरण शब्द को अर्थहीन बना दिया है।

(३) यह आवश्यक नहीं कि जिस देश में जनसंख्या अधिक होगी उस देश में आविष्कार भी अधिक होंगे। आधुनिक युग में इङ्गलैंड ने भारत और

चीन की तुलना में बहुत अधिक आविष्कार किये हैं, जब कि इङ्गलैंड की आबादी चीन और भारत से कहीं कम है।

(४) अनुकरण को ही सामाजिक व्यवहार का आधारभूत सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। सामाजिक व्यवहार के आधारभूत तत्व कोई एक न होकर अनेक होते हैं। वे मूल प्रवृत्तियाँ, सुझाव, सहानुभूति, अनुकरण, शिक्षा अवलोकन, अनुभव सामाजिक परम्परा एवं अन्य तत्वों पर आधारित होते हैं। अत हमें सामाजिक व्यवहार का आधार किसी एक तत्व में नहीं ढूँढना चाहिए।

(५) चार्ल्स बर्ड ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए लिखा है, "हम अनुकरण करना सीखते हैं, बजाय इसके कि अनुकरण से सीखे।"[1]

सुझाव, सहानुभूति तथा अनुकरण का सामाजिक जीवन में महत्व एवं कार्यों पर थोड़ा सा विचार हमने बेगहॉट और टार्डे के सिद्धान्त के अन्तर्गत किया है परन्तु यह उचित नहीं है कि उन पर विचार न किया जाय। अत. अब हम उनके महत्व एव कार्य पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

सामाजिक जीवन में सुझाव का महत्व
(Importance of Sugegstion in Social Life)

सुझाव हमारे सामाजिक जीवन पर अत्यधिक प्रभाव डालता है। सुझाव की प्रक्रियाओं से हमारा दैनिक जीवन भरा पड़ा है। पग पग पर सुझाव की प्रक्रिया चलती रहती है। सुझाव के कारण निम्न प्रक्रियायें समाज में होती है।

(१) सुझाव सामाजिक एकता को उत्पन्न करता है जो कि समाज के लिये अति आवश्यक है।

(२) सुझाव नवीन विचारों को फैलाने में महत्वपूर्ण कार्य करता है।

(३) नेता और अनुगामियों का सम्बन्ध सुझाव के कारण ही चल पाता है। नेता अपने अनुगामियों के सम्मुख विचारों को रखता है और अनुगामी उसे प्रतिष्ठित सुझाव होने के कारण तुरन्त स्वीकार कर लेते हैं।

(४) समाज के सर्वमान्य नियम एव व्यवस्थायें व्यक्ति द्वारा बिना किसी आलोचना के स्वीकार कर ली जाती हैं। यह प्रतिष्ठित सुझाव के कारण है। व्यक्ति सोचता है कि समाज के सारे व्यक्ति इन्हें स्वीकार करते हैं, अतः कुछ लाभकारी ही होंगे। अत बिना सोचे समझे उन सुझावों को स्वीकार कर लेना है।

---

[1] "We learn to imitate rather than learn by imitation" Charles Bird, 'Social Psychology,' p 250 (1940)

सामाजिक जीवन में सहानुभूति का महत्व
(Importance of Sympathy in Social Life)

सहानुभूति सामाजिक जीवन म एक महत्वपूर्ण काय करती है। यह मनुष्य एव पशु दोनों ही के जीवन मे समरसता और एकता का निर्माण करती ह। पशु जगत की एकता तो क्वल सहानुभूति के ही कारण ह। डा० मेकडूगल ने इस पर अत्यधिक जोर देते हुए लिखा है, "इस प्रकार की प्राकृतिक सहानुभूति ही वह सीमेन्ट (C ment) ह, जो कि पशु समाजा को आपस मे बाँधती ह।"[1]

न केवल पशु जगत म ही इसका महत्व ह, अपितु सम्पूर्ण मानव सहानुभूति का आधार इन्ही उद्गमों मे पाया जाता ह। हम अपने दैनिक जीवन में देखते हैं कि हम बचपन म जिस साधारण सहानुभूति का अनुभव करते हैं वही हमार सम्पूर्ण जीवन म कार्य करती ह। मनुष्य चाहे जितना भी शिक्षा, ज्ञान एव अवलोकन स अपने व्यक्तित्व को बढ़ा ले, तथापि जब कभी भी हम किसी दु खी को देखते है तो हमार म सहानुभूति जागृत हो उठती है और हम भी दु खी हो जाते हैं।

एक प्रसन्नचित्त व्यक्ति दूसरा को भी प्रसन्न कर देना ह और एक रोनी सूरत दूसरो का भी रोने के लिये बाध्य कर देती है। मनहूस चेहरों से हम कितना डर लगता ह। जब हम दूसरो के दु खी उद्वेगो को देखते है तो हमार म भी सहानुभूति के कारण पीड़ा होने लगती ह। जब हम दूसरो को भयभीत देखते हैं तो स्वय भी भयभीत हो उठते हैं। क्रोध, क्रोध को जन्म देता है। वास्तव मे वात्सल्य उद्वेग हमारे अन्दर कम्पन उत्पन्न कर देता है, जो कि सहानुभूति के ही कारण होता है।

अधिकतर सामाजिक व्यवहार सहानुभूति के कारण होता है। सहानुभूति मित्रता एव एकता की जननी है। थाउलस ने उचित ही लिखा ह, "नि सन्देह ही अधिकतर सामाजिक व्यवहार का श्रोत सहानुभूति है।"[2]

सहानुभूति समाज म उपकारी कार्यों की आधार शिला है। उपकारी सवाय सहानुभूति के कारण ही होती हैं। लगड़े, लूले दु खो, दरिद्र एव

[1] 'Sympathy of this crude kind is the cement that binds animal societies together' McDougall, W 'An Introduction to Social Psychology'

[2] "Sympathy sunq uestionably the source of much socialized behaviour" Thouless, R H 'General and Social Psychology,' p 201, Third Ed 1953

पीड़ित व्यक्तियों की सहायतार्थ, जो भी कार्य किये जाते हैं, वे सहानुभूति के कारण ही होते हैं।

सामजिक जीवन में अनुकरण का महत्व
(Importance of imitation in Social Life)

अनुकरण सामाजिक जीवन में एक महत्वपूर्ण कार्य करता है। टार्डे ने तो यहाँ तक कहा है कि 'समाज अनुकरण है," परन्तु ऐसा कहना अतिशयोक्ति होगी। इसमें सन्देह नहीं कि सामाजिक जीवन में एकरूपता एवं समानता लाने के लिये अनुकरण महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि सारा सामाजिक व्यवहार अनुकरण पर ही आधारित है। निम्न सामाजिक प्रक्रियायें अनुकरण के कारण होती हैं.—

(१) सामान्य भाषा

किसी भी समाज में एक मातृभाषा या अन्य भाषाओं का विकास होता है। बचपन से ही समाज के सदस्य उसमें बोली जाने वाली भाषा का अनुकरण करते हैं और इसके कारण से एक सामान्य भाषा लोगों द्वारा बोली जाती है।

(२) सामान्य प्रतीक चिह्न एवं विचारधारायें

किसी भी सामाजिक समूह के निश्चित चिह्न, प्रतीक एव विचारधारायें होती हैं, जो अनुकरण द्वारा सर्वमान्य एव सामान्य होती हैं। उदाहरण स्वरूप राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय ध्वज चिह्न एवं प्रतीक।

(३) सामान्य वेशभूषा एवं फैशन

प्रत्येक समाज की एक विशिष्ट सामान्य वेशभूषा बन जाती है जैसे हमारे देश मे स्त्रियाँ धोतियाँ और साड़ियाँ पहनती हैं। राष्ट्रीय वेषभूषा के रूप में चूड़ीदार पजामा और अचकन का रिवाज बढ़ता जा रहा है। अनुकरण फैशन की बड़ी सहायता करता है।

(४) सामाजिक व्यवहार एवं रीति रिवाज

अनुकरण के कारण सामाजिक व्यवहार एव रीति रिवाज भी एक विशिष्ट प्रकार के हो जाते हैं जैसे विवाह करने की पद्धतियाँ, सम्बोधन करने की रीतियाँ इत्यादि।

(५) आविष्कारों का फैलना

अनुकरण के कारण आविष्कार संसार के एक कोने से समस्त ससार मे फैल जाते हैं।

(६) सामान्य सस्कृति एव सभ्यता

अनुकरण के कारण एक समूह की सस्कृति एवं सभ्यता समान हो जाती है। समाज की अधिकाश समानतायें अनुकरण क कारण होती है, जयदेवसिंह न उचित ही लिखा है "सामाजिक एकरूपता एव सदृश्यता का श्रोत अनुकरण है।'

प्रश्न

१ टार्डे के अनुकरण के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये और सक्षेप म समालोचना भी कीजिये।

Explain and briefly comment on Tarde's Theory of imitation (Rajputana), 1953.

SELECTED READINGS

Same as for chapter XXVI

---

[1] 'The source of social similarity and conformity is imitation Jaidev Singh, 'A Manual Psychology, p 42, ibid

अध्याय ३०

सामूहिक व्यवहार
(Collective Behaviour)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहना चाहता है और दूसरे व्यक्तियों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है। कई बार वह समूह में अपनी इच्छा से और कभी अनिच्छा से भाग लेता है। समूह में व्यवहार करते समय उसका भी व्यवहार परिवर्तित हो जाता है। सम्पूर्ण समूह का व्यवहार बड़ा ही विचित्र मनोरञ्जक एवं रोमान्चकारी होता है। व्यवहार जो व्यक्ति समूह के सदस्य हैं उनका जैसा न होकर बिल्कुल ही नवीन एवं आश्चर्यजनक होता है।

समूह या मनुष्यों के गुट सङ्गठन की दृष्टि से दो प्रकार के होते हैं। एक सङ्गठित और दूसरे असङ्गठित। सङ्गठित समूह को समाजशास्त्र में समितियों के नाम स पुकारते हैं। इनके विषय में विस्तार में प्रकाश डाला जा चुका है।[1] दूसर प्रकार के समूह का व्यवहार बड़ा ही विचित्र होता है। यह भी शारीरिक सम्बन्ध के आधार पर दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक वे समूह जो शारीरिक सम्बन्ध पर आधारित होते हैं, इनके लिये आवश्यक है कि समूह के सदस्य एक दूसरे के इतने निकट हों कि परस्पर देख, सुन एवं वार्तालाप कर सकें। दूसरे वे जिनमें किसी शारीरिक सम्बन्ध की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु मानसिक सम्बन्धों का आधार रहता है। किसी न किसी विचार पर जिन व्यक्तियों के मस्तिष्क लगे होते हैं वे एक समूह बनाते हैं। एस समूह को जनता (Public) कहते हैं। जिन असगठित समूहों का आधार शारीरिक उपस्थिति पर निर्भर रहता है, उन्हें भीड़ (Crowd) कहते हैं।

इस अध्याय में भीड़ व्यवहार पर विशेषतया विचार करना है। भीड़ दो प्रकार की होती है-प्रथम अनौपचारिक (Informal) और द्वितीय औपचारिक (Formal or Institutionalized)। अनौपचारिक भीड़ में किसी भी प्रकार की व्यवस्था अथवा रीतियों का पालन नहीं होता परन्तु औपचारिक भीड़ मे कुछ रीतियों का पालन होता है और एक निश्चित व्यवस्था पाई जाती है। औपचारिक भीड़ (Formal Crowd) को श्रोतागण (Audience) कहते हैं।

---

[1] विस्तृत अध्ययन के लिये लेखक की पुस्तक 'समाजशास्त्र की रूपरेखा' भाग १ में प्राथमिक परिभाषाओं का अध्याय पढ़िये।

अनौपचारिक भीड़ और भी दो भागों में विभक्त की जा सकती है—प्रथम आक्रमणकारी भीड़ या उपद्रवी भीड़ और दूसरी भयभीत भीड़ (Panic Crowd)।

इसको निम्न चार्ट द्वारा व्यक्त कर सकते हैं —
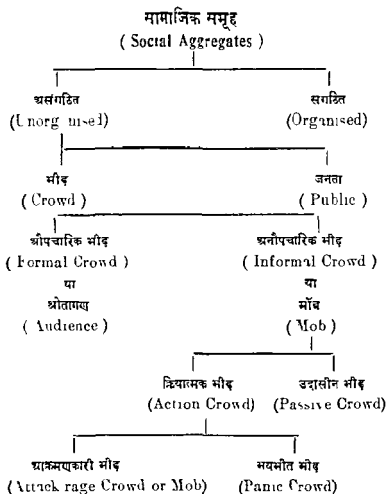
अध्याय ३१

भीड़-व्यवहार

(Crowd-Behaviour)

भीड़ शब्द का प्रयोग हम दैनिक जीवन में कई बार करते हैं। सन्ध्या हुई, पाँच बजे कि हजारों बाबू एवं अफसर, कुछ साइकिलों पर, लोकसभा एवं केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से निकल कर लोकसभा मार्ग पर चलते हुए दिखाई पड़ते हैं। हमारे मुख से निकल पड़ता है "कितनी भीड़ है", परन्तु मनोवैज्ञानिक अर्थ में इसे भीड़ नहीं कह सकते। किंबाल यंग ने लिखा है, "भीड़ मनुष्यों के उस समूह को, जो कि केन्द्र या सामान्य विचारों के चारों ओर एकत्रित होता है, कहते हैं।[1] इसके अनुसार भीड़ वह समूह है जो किसी एक विचार या कार्य की ओर केन्द्रित होता है। मान लीजिये दो साइकिलें में भिड़न्त हो जाती है और तमाम लोग उनके झगड़े को देखने के लिये खड़े हो जाते हैं, यह देखने वालों का समूह भीड़ कहलाएगा। इसकी तुलना चुम्बक के चारों ओर छितरे हुए लोहकणों से की जा सकती है। केवल मनुष्यों का समूह एक भीड़ का निर्माण नहीं कर सकता। इसके लिये किसी न किसी सामान्य विचार की ओर आकर्षित होना एक अत्यन्त आवश्यक तत्व है।

भीड़ शब्द का प्रयोग विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से किया है। लेबॉन (LeBon) ने भीड़ शब्द का प्रयोग बड़े ही विस्तृत अर्थों में किया है। उसके अनुसार शारीरिक उपस्थिति आवश्यक नहीं है। उसका विचार है कि भीड़ के लिये केवल एक आवश्यक तत्व यह है कि कुछ लोगों की भावनाएँ और विचार एक दिशा की ओर होने चाहिये और अन्त में एक सामूहिक मस्तिष्क का निर्माण होना चाहिये। इसके अन्तर्गत भीड़, जनता, श्रोतागण, इत्यादि सभी आ जाते हैं। सर मार्टीन कोनवे (Sir Martin Conway) ने तो भीड़ शब्द से किसी भी उस समूह को, जो कि पृथक् एवं स्पष्ट अस्तित्व रखता हो,

---

[1] "A crowd is a gathering of a considerable number of persons around a center of point of common attention" Kimball Young, 'Handbook of Social Psychology' p 387 Routledge & Kegan Paul Ltd , English Eds Fifth Impression 1953

समझा। इसके अन्तर्गत आक्रमणकारी भीड़, श्रोतागण, प्रजाति साम्राज्य' राष्ट्र इत्यादि आते हैं।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार मनोविज्ञान में इस इस शब्द का प्रयोग इन अर्थों में नहीं करते हैं। भीड़ के लिये आवश्यक है कि व्यक्तियों का एक समूह हो और उनकी शारीरिक उपस्थिति हो एवं किसी एक विचारधारा या कार्य पर ध्यान केन्द्रित हो। थाउलस ने भीड़ की परिभाषा निम्न शब्दों में की है, "भीड़ एक अस्थिर एक दूसरे को स्पर्श करता हुआ समूह है, जो कि किसी सामान्य रुचि के फलस्वरूप स्वत: बन जाता है और यहाँ तक असंगठित होता है कि उसकी सीमाएं अत्यधिक पारगम्य होती हैं।

भीड़ के आवश्यक तत्व

(Essential Conditions of Crowd)

भीड़ को समझने के लिये उसके आवश्यक तत्वों को समझना उचित होगा वे निम्न लिखित हैं —

(१) अभिनिस्पन्दन Polarisation)

सर्वप्रथम समूह के सदस्यों का ध्यान एक केन्द्र पर केन्द्रित होना चाहिए। एक सामान्य रुचि ध्यान कार्य का केन्द्र अवश्य होना चाहिए। जिस प्रकार एक चुम्बक के चारों ओर फैले हुए लोहकणों का आकर्षण केन्द्र चुम्बक होता है, उसी प्रकार से समूह के सदस्यों का आकर्षण केन्द्र होना अत्यावश्यक है। उदाहरणस्वरूप एक लड़का सुन्दर गीत गा रहा है और उसके चारों ओर भीड़ जमा हो जाती है। मार्शल बुलगानिन और ख्रुश्चेव को देखने के लिये एकत्रित समूह का ध्यान उन पर केन्द्रित था, इसलिये वह समूह भीड़ कहलायेगा। एक सामान्य रुचि ध्यान या कार्य के किसी वस्तु पर केन्द्रित होने की प्रक्रिया को अभिस्पन्दन (Polarisation) कहते हैं।

(२) अस्थिर प्रकृति (Transitory Nature)

भीड़ की प्रकृति अति अस्थिर होती है स्वत एकदम से बन जाती है और थोड़े ही मिनटों या घण्टों के बाद छिन्नभिन्न हो जाती है। यह इतनी अस्थिर होती है कि समूह शब्द का प्रयोग भी इसके लिये करना अनुचित है। लम्बे ने लिखा है 'इसकी रचना इतनी अव्यवस्थित है कि हम इसे एक समूह

---

[1] "A crowd is a transitory contiguous group, unorganised with completely permeable boundries spontaneously formed as a result of some common interest" Thouless, R. H., 'General & Social Psychology', p. 208

भी तभी कह पाते हैं जब कि इस शब्द के अर्थ को कुछ विस्तृत करते हैं।[1] सड़क पर दो लोगों में झगड़ा हो गया और इस केन्द्र के चारों ओर भीड़ एकत्रित हो गई। जरा देर में दोनों लड़ने वाले चल दिये और भीड़ भी तितर बितर हो गई। पता नहीं इस भीड़ में कौन था और कौन नहीं।

(३) असंगठित (Unorganised)

भीड़ असंगठित होती है। इसके कोई पूर्व निश्चित् उद्देश्य एवं नियम नहीं होते। इसके नेता भी निश्चित् नहीं होते। इसकी कोई निश्चित् सदस्यता भी नहीं होती। भीड़ के सदस्यों को पूर्व निश्चित् उद्देश्य एवं कार्य से एकत्रित नहीं किया जाता, न ही इनमें किसी प्रकार का, व्यवहारों के स्वरूप में, संगठन ही होता है। जिसके जो मन में आता है, वह वैसा ही करता है।

(४) एक सामान्य उद्वेग (A Common Emotion)

भीड़ के लिये यह आवश्यक है कि उनमें एक सामान्य उद्वेग पाया जाय। यदि उनके मस्तिष्क में समभाव और उनके मस्तिष्क की बनावट समान नहीं है तो वे एक भीड़ का निर्माण नहीं कर सकते। एक वक्ता भाषण दे रहा है और यदि उसको सुननेवाले उसकी भाषा को नहीं समझते और उनमें सम उद्वेग उत्पन्न नहीं होता तो ऐसा समूह भीड़ नहीं कहलायेगा। अतः भीड़ के लिए सामान्य उद्वेग और विचारों का उत्पन्न होना और समस्या में रुचि रखना आवश्यक तत्व है।

(५) पारस्परिक प्रभाव (Mutual Influence)

भीड़ के लिये मनुष्यों की संख्या उतनी आवश्यक नहीं, जितनी कि पारस्परिक प्रभाव की स्थिति। भीड़ में सदस्यों की मानसिक स्थिति एक विशेष प्रकार की हो जाती है। इस मानसिक स्थिति के फलस्वरूप सदस्य एक दूसरे को अपने अव्यवहारों तथा विचारों से उत्तेजित करते हैं और वे एक दूसरे के व्यवहारों से प्रभावित एवं उत्तेजित भी होते हैं। सुझाव ग्रहण क्षमता अत्यधिक भयंकर रूप में कार्य करने लगती है।

(६) स्थानीय वितरण (Spatial Distribution)

भीड़ के सदस्य एक स्थान पर पाये जाते हैं। उनकी शारीरिक उपस्थिति अनिवार्य है। यद्यपि आमने सामने (Face to face) का सम्बन्ध सरलता

---

[1] "Its texture is so loose that we may speak of it as a 'group' only by stretching this term somewhat." Lumley F. E., 'Principles of Sociology,' p. 191. McGraw Hill Book Company, New York & London, Second Edition, Ninth Impression, 1935

से सम्भव नहीं है, तथापि कन्धे से कन्धे का सम्बन्ध भीड़ में अवश्य होना चाहिए।

(७) सामूहिक शक्ति की अनुभूति (Sense of Mass strength)

भीड़ में सदस्यों को सामूहिक शक्ति का अनुभव होने लगता है। प्रत्येक सदस्य अपनी शक्ति का ही केवल अनुभव नहीं करता, बल्कि वह सम्पूर्ण भीड़ के सदस्यों की शक्ति को अपनी शक्ति मान बैठता है। इसके कारण उसका आत्मविश्वास कई गुना बढ़ जाता है।

अनौपचारिक भीड़ (Informal Crowd

अनौपचारिक भीड़ दो प्रकार की होती है—प्रथम क्रियात्मक भीड़ (Action Crowd) और दूसरी उदासीन भीड़ (Passive Crowd)। उदासीन भीड़ वह भीड़ होती है, जो केवल देखती या सुनती है, परन्तु स्वयं कोई कार्य नहीं करती, जैसे बड़े २ नेताओं एवं महापुरुषों को देखने एवं सुनने के लिये एकत्रित भीड़, किसी दुर्घटना के चारों ओर एकत्रित व्यक्ति, सिने भवन के सम्मुख लगे पोस्टरों को पढ़ने एवं देखने के लिये एकत्रित भीड़ इत्यादि। क्रियात्मक भीड़ वह भीड़ है जो उद्वेगों से भरी हुई होती है और कुछ न कुछ कार्य करती है। इसको दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है—एक आक्रमणकारी भीड़ (Attack rage) और दूसरी भयभीत भीड़ (Panic (Crowd)। प्रथम के उदाहरण लूटमार, दंगे, समूहिक आक्रमण एवं सामूहिक हत्याएँ हैं। दूसरी के उदाहरण सेना के भागते हुए सिपाही, किसी हॉल में आग लग जाय और उससे बचकर भागने वाले व्यक्ति इत्यादि हैं।

अनौपचारिक भीड़ की मानसिक विशेषताएँ
(Mental Characteristics of an Informal Crowd)

(१) बुद्धि का निम्न स्तर (Low degree of Intelligence)

भीड़ की प्रमुख एवं आश्चर्यजनक विशेषता यह है कि बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति भी भीड़ में ऐसे कार्य करते हैं, जो उनकी बुद्धि से कहीं निम्न स्तर के होते हैं। भीड़ सदैव निम्नस्तर की बुद्धि रखती है। जब समितियाँ लोक सभाए और राज्य सभाए जिन में किसी राष्ट्र के बुद्धिमान राष्ट्रनायक होते हैं त्रुटिपूर्ण निर्णय कर सकती है, तो साधारण भीड़ का क्या कहना। भीड़ के सदस्य उद्वेगों में बह जाते हैं और उन्हें निम्न स्तर के तर्क शीघ्र समझ में आ जाते हैं। यह उनकी बुद्धि के निम्न स्तर के होने का प्रमाण है।

भीड़ के निम्न स्तर के होने का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण
(Psychological Explanation of the low degree of Intelligence of the Crowd)

(अ) निम्न स्तर की बुद्धि वालों का बहुमत

भीड़ में सब प्रकार के व्यक्ति होते हैं। अधिकतर व्यक्ति निम्न स्तर की बुद्धि वाले होंगे। भीड़ से यदि कुछ करवाना है तो ऐसी बात करनी चाहिये, जो सबके समक्ष में आ जाय और वे उसकी प्रशंसा करें। निम्न स्तर की बुद्धि वालों का बहुमत होता है, अत. निम्न स्तर के तर्क दिये जाते हैं। इस कारण से बुद्धिमान व्यक्तियों की बुद्धि का स्तर भी गिर जाता है।

(आ) सामूहिक विचार विमर्श असम्भव है

दूसरा कारण भीड़ में बुद्धि के निम्न स्तर के होने का यह है कि भीड़ में सामूहिक विचार विमर्श नहीं किया जा सकता। विचार विमर्श, स्वतन्त्र वाद-विवाद एवं विचारों का आदान प्रदान आवश्यक तत्व है, परन्तु भीड़ में यह असम्भव है। नक्कार खाने में तूती की आवाज कौन सुनता है।

(इ) सुझाव-ग्रहण क्षमता बढ़ जाती है

भीड़ में सुझाव ग्रहण क्षमता बढ़ जाती है। जो कुछ भी मत या विचार भीड़ की ओर से आता है, वह सर्वमान्य होता है।

(ई) उत्तेजना बढ़ जाती है

भीड़ में उत्तेजना अत्यधिक बढ़ जाती है और यह विचार करने की शक्ति को समाप्त कर देती है। इस कारण किसी बात पर विचार नहीं किया जा सकता।

(उ) अनुकरण

भीड़ में प्रत्येक व्यवहार का अनुकरण बड़ी तीव्र गति से होता है। इसके कारण जो भी कार्य प्रारम्भ हुआ, उस पर बिना किसी विचार के लोग अनुकरण करते जाते हैं। इस प्रकार से भीड़ में लोग बुद्धि से काम नहीं लेते हैं।

भीड़ में इन कारणों से बुद्धि का स्तर गिर जाता है।

(२) सामाजिक सौकार्य (Social Facilitation)

भीड़ में सामाजिक सौकार्य अत्यधिक रूप में पाया जाता है। सामाजिक सौकार्य (Social Facilitation उस) प्रक्रिया को कहते हैं, जिसमें कि एक व्यक्ति की प्रतिक्रियायें दूसरे व्यक्तियों के उपस्थित रहने के कारण अधिक तीव्र गति से होती हैं। कन्धे से कन्धे को रगड़ लगने से आँख और कान की

देखने तथा सुनने की क्रिया म तीव्रता आ जाती है। ये सब प्रतिक्रियाओं की गति को बढ़ा देते हैं। मिलर (Neal L Miller) और डोलर्ड (John Dollard) इसे भीड़ की प्रेरणा (Crowd Stimuli) कहते हैं। भीड़ में व्यक्ति एकत्रित होते हैं और एक दूसरे को देखते हैं। इसके कारण उनके अन्दर कार्य करने की शक्ति बढ़ जाती है।

(३) उत्तेजना (Emotionalism)

भीड़ उत्तेजना स पूर्ण होती है। उत्तेजना के कारण सुभाव ग्रहण क्षमता (Suggestibility) बढ़ जाती है। भीड़ की एकता का प्रमुख कारण उत्तेजना ह। बर्नार्ड ने लिखा है, यह प्राय कोई शक्तिशाली उत्तेजना या उद्वेग या विलक्षण प्रेरणा होती है जो भीड़ की एकता का निर्माण करती ह।[1]

उद्वेग द्वारा उत्तेजना इतनी बढ़ जाती ह कि वह प्रत्येक काय को अति शीघ्र स्वीकार कर लता है और यह अनुभव करता है कि उसकी शक्ति बढ गई है। यदि वह हसता है तो बहुत जोर स, यदि कुछ कहना चाहता है तो चिल्लाता है, यदि क्रोध आता है तो मदान्ध हो जाता है। इन सबक कारण उसकी मानसिक स्थिति ऐसी हो जाती ह कि वह किसी भी बात को तुरन्त स्वीकार करके कर डालता है।

(४) अचेतन प्रेरणाएँ The Unconscious Impulses)

आक्रमणकारी भीड़ केवल उद्वेग। एव उत्तेजनाओं द्वारा ही प्रेरित नहीं होती ह बल्कि अचेतन प्रेरणाए भी इस प्रेरणा देनी हैं। साधारण अवस्था में इन अचेतन प्रेरणाओं का व्यक्ति दबा देता है। इनका ध्यान अचेतन होता है। सिगमंड फ्रायड (Sigmund Freud) ने इन प्रेरणाओं को ईड प्रेरणाएँ (Id Impulses) कहा है। मनुष्य भीड़ में एक विचित्र अवस्था म होता है। वह उस स्वप्नावस्था म होता है, जिसमें विचार और कार्य दोनों में मनुष्य डूब जाता है। इसके कारण सत्यता स दूर वह स्वच्छन्द एव अनुत्तरदायित्व की भावना का अनुभव करता ह। जैसे स्वप्न में कोई व्यक्ति कुछ कार्य करता है, और आँख खुलते ही वह उस पर विचार करके आश्चर्य करता है। उसी प्रकार भीड़ म किये गये कार्यों पर आश्चर्य करना पड़ता है। इसका तात्पर्य

[1] 'It is usually some strong emotion or curiosity impulse which integrates the crowd" Bernard L L, 'An Introduction to Social Psychology,' p 458, Henry Holt & Co, New York 1926

यह नहीं कि भीड़ में मनुष्यों को यह पता नहीं चलता कि वे क्या कर रहे हैं, बल्कि सारी बौद्धिक एवं सही व गलत सामाजिक धारणाएँ, प्रेम, दयालुता इत्यादि हानि करने की प्रेरणा द्वारा दबा दिये जाते हैं और उद्वेगवश होकर भीड़ में सारे कार्य मनुष्य कर जाते हैं।

(५) उत्तरदायित्व की भावना का अभाव
(Lack of the sense of responsibility)

भीड़ के व्यक्तियों में उत्तरदायित्व की भावना का अभाव रहता है। इस अभाव के कई कारण हैं। प्रथमतः प्रत्येक व्यक्ति उत्तरदायित्व को सम्पूर्ण भीड़ पर डाल देता है। उत्तरदायित्व का विभाजन हो जाता है। भीड़ में कौन किसको पहिचानता है। इसके कारण प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि जो कुछ भी मैं कर रहा हूँ, उसे कौन देखता है और यदि कोई देखेगा भी तो उसका उत्तरदायित्व मेरे पर सिद्ध करना बड़ा कठिन कार्य होगा। मैक्डूगल ने लिखा है कि अनुत्तरदायित्व की भावना केवल इस कारण से ही नहीं है, बल्कि आत्मसम्मान की भावना के लोप हो जाने के कारण है। जब आत्मसम्मान की भावना नहीं रहती तो मनुष्य कुछ भी कर सकता है, क्योंकि उसे अपमान का कोई डर नहीं रहता। भीड़ के व्यक्तियों के पास अन्त करण (Conscience) नहीं होता, इस कारण वे बुरे कार्यों को करने में तनिक भी नहीं हिचकते हैं। अनुत्तरदायित्व की भावना इस कारण भी आ जाती है कि भीड़ अपने को सर्वशक्तिमान समझने लगती है। भीड़ के व्यक्ति अपने को अज्ञात समझते हैं। इस अज्ञात होने की अवस्था के कारण वे कुछ भी कर सकते हैं। रॉस ने उचित ही लिखा है, "अज्ञात होने की अवस्था के मुखावरण के कारण लोग अपनी भावनाओं का स्वतन्त्र प्रदर्शन करने के लिये अपने को स्वतन्त्र अनुभव करते हैं।"[1]

(६) शक्ति का अनुभव (Sense of Power)

भीड़ एक विचित्र शक्ति का अनुभव करती है। उसके अन्दर यह भावना विकसित हो जाती है कि वह सर्वशक्तिमान है और जो कुछ चाहे कर सकती है। भीड़ का नेता शक्ति के इस अनुभव के कारण ऐसे सुझाव देता है और भीड़ उसे स्वीकार कर लेती है, जिसे साधारण परिस्थिति में करने का स्वप्न

[1] "Masked by their anonymity, people feel free to give reign to the expression of their feelings" Ross E A, 'Social Psychology,' p 46

भी नहीं देखा जा सकता। बरहम ने उचित कहा है, "When the little heart is big, a little sets it off."[1]

(७) सुझाव ग्रहण-क्षमता बढ़ जाती है
(Heightened Suggestibility)

भीड़ में सुझाव ग्रहण-क्षमता अत्यधिक बढ़ जाती है। सुझाव ग्रहण क्षमता के विषय मे पहले लिख चुके हैं। भीड़ में सुझाव ग्रहण-क्षमता बढ़ने के तीन कारण हैं —

(१) भीड़ की समूह के नाते प्रतिष्ठा बढ़ जाती है।
(२) नेता की प्रतिष्ठा पराकाष्ठा पर होती है।
(३) उद्वेगों से पूर्ण होने के कारण कोई भी विचार बिना सोच विचार के स्वीकार कर लिये जाते हैं।

(८) पारस्परिक उत्तेजना (Inter Stimulation)

भीड़ में पारस्परिक उत्तेजना भी एक महत्वपूर्ण कार्य करती है। दूसरों के व्यवहार को देखकर वैसा ही व्यवहार करने के लिये उत्तेजना किसी एक व्यक्ति को मिलती है। उस व्यक्ति के व्यवहार से उत्तेजना अन्य किसी को मिलती है। यह चक्र एक दूसरे के पास पहुँचता रहता है और सब एक दूसरे से उत्तेजना ग्रहण करते रहते हैं। सिनेमा में एक व्यक्ति सीटी बजाता है तो अन्य व्यक्ति भी बजाने लगते हैं। इन लोगों से उत्तेजना प्राप्त करके पहला व्यक्ति और जोर से सीटी बजाता है और इस व्यक्ति से उत्तेजना प्राप्त करके अन्य व्यक्ति भी सीटियाँ बजाते हैं। यह क्रम चलता रहता है। इसके कारण उत्तेजना में वृद्धि हो जाती है। मैकडूगल ने लिखा है, "प्रत्येक व्यक्ति, (भीड़ में) सब ओर भय के लक्षण, भय के कारण श्वेत एवं विकृत चेहरे, फैली हुई पुतलियाँ, ऊँचे स्वर की काँपती हुई वाणियाँ और अपने साथियों की भयपूर्ण चिल्लाहटों को देखता है और ऐसे प्रत्येक ज्ञान के अनुभव के साथ साथ उसकी स्वयं की प्रेरणाएं और उद्वेग उग्ररूप धारण कर लेते हैं।"[2]

---

[1] Quoted by Sproptt, W. J. H. 'Social Psychology,' Methuen & Co. Ltd., London 1952 P. 59

[2] "Each man (in a crowd) perceives on every hand the symptoms of fear, the blanched distorted faces, the dilated pupils, the high piched trembling voices, and the screams of terror of his follows, and with each such perception his own impulses and his own emotion rise to a higher pitch of intensity." McDougall, W. 'The Group Mind' Cambridge 1920, p. 25

(९) सहज विश्वास (Credulity)

भीड़ अत्यधिक सहज विश्वासी होती है। भीड़ के व्यक्ति सुझाव ग्रहण क्षमता के बढ़ जाने के कारण विचारशक्ति को खो बैठते हैं। रॉस ने लिखा है, "विवेकशील विश्लेषण और परीक्षा का कोई प्रश्न नहीं उठता। जिन शक्तियों के कारण हम शका करते हैं वे सो जाती हैं।"[1]

इसके कारण भीड़ सहज विश्वासी होती है। सहज विश्वासी होने के कारण अफवाहें भीड़ द्वारा शीघ्र मानली जाती हैं और उसके अनुसार लोग कार्य करने लगते हैं। अफवाहें फैलाने के तीन प्रमुख साधन हैं.—

(१) मौखिक रूप से—यह सबसे उत्तम साधन है।

(२) पत्र, टेलीफोन और तार द्वारा और

(३) समाचार पत्र, रेडियो, चलचित्र, पत्रिकाओं और पुस्तकों के द्वारा।

(१०) विचार शक्ति का अभाव (Lack of Volition)

भीड़ के कार्य अविवेकशील होते हैं। वे बिना सोचे समझे प्रत्येक कार्य करते हैं। उचित कार्य वह कार्य होता है, जो सोच समझकर किया जाता है। भीड़ में सोचने की शक्ति नहीं होती, इसपर हम पहले ही प्रकाश डाल चुके हैं।

(११) अस्थायी उद्वेग और विचार (Instable Emotions and Ideas)

भीड़ के विचार और उद्वेग अस्थायी होते हैं। किसी विशेष कार्य के लिये भीड़ अपना विचार बनाये ता यह नहीं कहा जा सकता कि वह उसे पूर्ण करेगी ही। यदि मार्ग में विचार परिवर्तित हो गया तो उस परिवर्तित विचार के अनुसार कार्य करने लगेगी। विचारों का परिवर्तन अति शीघ्र होता है। यहाँ तक कि उसके नेताओं तक की स्थिति डांवाडोल रहती है। न जाने कब तक भीड़ उसका कहना माने। कभी कभी तो क्षणों में परिवर्तन होते हैं। रास ने लिखा है, "एक क्षण, जो उसका (भीड़ का) नायक है, दूसरे क्षण वही उसका शिकार (बलि) हो सकता है।"[2]

(१२) नेता का अनुसरण (Following of the Leader)

भीड़ में नेता का प्रमुख स्थान रहता है और वह भीड़ को अत्यधिक उत्तेजना प्रदान करता है। प्रतिष्ठित सुझाव (Prestige-Suggestion) के

---

[1] "Rational analysis and test are out of question The faculties, we doubt with, are asleep "Rose, E A 'Social Psychology,' p 55

[2] "Its hero one moment may be its victim the next" Ross, E A 'Social Psychology' p 54

कार्य का उसमें अनुपम दृश्य मिलता है। नेता निम्न प्रकार की उत्तेजनाएँ प्रदान करता है.— (१) वह भीड़ का केन्द्र बन जाता है। इस केन्द्र के कारण भीड़ तितर बितर नहीं होने पाती। (२) वह लोगों के अस्पष्ट विचारों एवं भावनाओं को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करता है और वह ही बाद को कार्य करने के लिये उत्तेजना देता है। (३) वह लोक कथाओं, कहानियों एवं दूसरी ऐसी परिस्थितियों का विवरण देता है, जो कि उद्वेगों को उत्तेजित करती हैं। (४) वह सामूहिक क्रिया के लिये दिशा निर्देशित करता है। (५) कभी कभी वह स्वयं कार्य का नेतृत्व करता है।

भीड़ में नेता का कार्य अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। लेपियर और फ्रान्सवर्थ लिखते हैं:—"इस प्रकार नेतृत्व न लाभदायक ही है और न इसके विपरीत।"[1]

(१३) आत्म-उत्तेजना (Self-Stimulation)

हमें आत्म-उत्तेजना भी भीड में प्राप्त होती है और यह एक प्रमुख कार्य करती है। नेता और दूसरे व्यक्तियों की बात का अनुमोदन जब अपने अन्तःकरण द्वारा होता है तो उत्तेजना की आन्तरिक लहर दौड़ने लगती है।

(१४) भीड़ की अनैतिकता (Immorality of the Crowd)

भीड़ अनैतिक होती है। बहुत से विद्वानों का मत है कि भीड़ में व्यक्ति आचार रहित हो जाते हैं और वे उत्तरदायित्वहीन व्यवहार करते हैं। किम्बॉल यग ने लिखा है, "वह संयुक्त व्यवहार में केवल अनुरूपता की भावना ही नहीं पाता बल्कि एक प्रकार की अभिमति (Sanction) भी पाता है।"[2]

इस शक्ति की अनुभूति से मदान्ध होकर एवं विचार शक्ति के लोप होने के कारण वह आचार रहित एवं अनैतिक व्यवहार करता है। व्यवहार समाप्त होने के उपरान्त जब भीड़ से पृथक् वही लोग एकान्त में होते हैं तो अपने किये कार्यों पर स्वयं पश्चाताप करते हैं, परन्तु भीड़ में वे अपने व्यवहार को हर प्रकार से उचित सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। सामाजिक निषेध समाप्त हो जाते हैं और भीड़ स्वच्छन्दता के सागर में लीन हो जाती है।

[1] "As such leadership is neither advantageous nor the reverse." Lapiere and Fransworth, 'Social Psychology,' McGraw Hill Publications, 3rd Edition 1949, p 468.

[2] "He finds in joint action not only a sense of conformity but a certain sanction" Young, K 'Handbook of Social Psychology', Routledge & Kegan Paul Ltd, London, Fifth Impression 1953, p. 398

कुछ विद्वानों का मत है कि भीड़ का व्यवहार नैतिक या अनैतिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। यह दिशा निर्धारण का कार्य नेता का है। अत. भीड़ को अनैतिक न कहना चाहिये। जिन्सबर्ग ने लिखा है, "भीड़ स्वत: न तो अच्छी है और न बुरी ही, परन्तु भीड़ एक प्रकार की या दूसरे प्रकार की, समयानुसार जिस प्रकार की भी उत्तेजना होती है, बन जाती है। भीड़ निर्दयी भी हो सकती है, परन्तु वह कृपालु और सहानुभूति से परिपूर्ण भी हो सकती है।"[1]

जिन्सबर्ग का मत निःसन्देह सत्य है, फिर भी यह कहना पड़ता है कि क्रियाशील भीड़ और विशेषतया आक्रमणकारी भीड़ अनैतिक होती है, क्योंकि उनका व्यवहार साधारणतया विनाशकारी होता है। नेता निश्चित ही एक प्रमुख भाग लेता है तो भी उसे भीड़ के उद्वेगों का ध्यान रखना पड़ता है और यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसका नेतृत्व ही समाप्त हो जाता है।

(१४) भीड़ अति निम्न प्रकार की मानव समिति है
(Crowd is the lowest form of human Association)

कुछ विद्वानों का मत है कि भीड़ मानव समितियों का अति निम्न प्रकार है। रॉस ने लिखा है, "निश्चित रूप से अपने पूर्वजों के समान और भावहीन (होने के कारण) भीड़ की गणना अति निम्न प्रकार की मानव समितियों में की जाती है।"[2] इसी मत का समर्थन बर्नार्ड ने भी निम्न शब्दों में किया है, 'वे (भीड़) लगभग निम्न पशुओं के झुण्ड से मिलती जुलती हैं।"[3]

इन विद्वानों ने भीड़ के एकाकी व्यवहार को देखकर यह काला चित्र चित्रित किया है। वास्तव में इससे पूर्णतया सहमत नहीं हुआ जा सकता। भीड़ मानव के लिये आवश्यक एवं सुखदायक भी है। भीड़ द्वारा ऐसे कार्य किये जा सकते हैं, जो और किसी प्रकार भी पूर्ण नहीं हो सकते। अन्याय और अत्याचार से मुक्ति प्राप्त करने के लिये भीड़ का ही सहारा लेना पड़ता है।

---

[1] "Crowds are in themselves neither good nor evil, but they may be either the one or the other on occasions according to the stimulus Crowds may be brutal, but they may also be generous, sympathetic" Ginsberg M. 'The Psychology of Society,'p 133

[2] "Essentially atavistic and sterile, the crowd ranks as the lowest form of human association" Ross E A 'Social Psychology', p 56

[3] "They approximate most closely to the packs and herdl of the lower animals" Bernard, L L 'Introduction to Socias Psychology,' p 458 Henry Holt & Co , New York, 1926

भीड़ अत्याचारी एव अनैतिक होने की अपेक्षा सहानुभूति से परिपूर्ण, प्रसन्नता से भरी हुई एव रगीली, रूपहली और प्रफुल्लचित्त भी होती है, जैसे विवाहोत्सव राजनैतिक सभा मनोरजन पार्टियाँ (Picnics) इत्यादि।

मेले हमारे जीवन मे एक विशेष महत्व रखते हैं और जीवन को आल्हाद पूर्ण बना देते है। रेनहार्ट ने उचित ही लिखा ह, ' जीवन बिना भीड़ के नीरस हो जायगा।''[1]

भीड और हिसक भीड में अन्तर
(Distirction between Crowd and Mob)

भीड़ मे और हिंसक भीड़ म केवल अशों का अन्तर है। दोनों में अन्तर का विवरण देते हुये रेनहार्ट ने लिखा है 'हिसक भीड (Mob) साधारण भीड़ मे भिन्न, अविवेकशील एव हिंसक क्रियाओं की विशेषता द्वारा पहिचानी जाती है।''[2]

क्रियाशील भीड़ को दो भागों मे विभक्त किया गया है—एक आक्रमणकारी भीड़ और दूसरी भयभीत भीड़। आक्रमणकारी भीड़ को हिंसक भीड़ (Mob) कह सकते हैं।

श्रोतागण (Audience)

भीड़ का विभाजन दो भागों में किया जा चुका है—एक तो औपचारिक भीड़ (Formal Crowd) और दूसरी अनौपचारिक भीड़ (Informal Crowd) t *औपचारिक भीड़ (Formal Crowd) को ही श्रोतागण* (Audience) शब्द से सम्बोधित करते हैं।

किंबॉल यग ने श्रोतागण की परिभाषा इन शब्दों में की है, ' श्रोतागण एक प्रकार की सस्था के सिद्धान्तों पर आधारित भीड़ है।''[3]

श्रोतागण वह भीड़ है जो निश्चित नियमो पर आधारित है। इसका उद्देश्य अधिकाश मात्रा मे निश्चित होता है। इसका समय और स्थान भी पूर्व निश्चित होता है।

---

[1] Life would be dreary indeed without crowds" Reinhardt, J M 'Social Psychology,' p 208

[2] "The Mob then, as distinguished from the ordinary crowd is characterised by irrational and violent action" Rein hardt, J M 'Social Psychology,' p 207

[3] 'The Audience is a form of institutionalized crowd" Young, K ibid p. 399.

श्रोतागण का वर्गीकरण (Classification of Audience)

श्रोतागण का वर्गीकरण बड़ा कठिन है, फिर भी विभिन्न लेखकों ने विभिन्न वर्गीकरण किये हैं। किंबॉल यंग ने इसको दो भागों में बाँटा है-पहला सूचना प्राप्त करने वाला (Information Seeking) और द्वितीय मनोरंजन पाने वाला (Recreation Seeking)। लेपियर ने एक भाग और जोड़ दिया और वह विचार परिवर्तन हेतु श्रोतागण (Conversional Audience) है। इसके अतिरिक्त लेपियर ने दो प्रकार के भेद और बताये हैं—प्रथम नाटकीय श्रोतागण (Dramatic Audience) और द्वितीय भाषण श्रोतागण (Lecture Audience)। समाजशास्त्र इनको कार्य एवं उद्देश्य के अनुसार आर्थिक राजनैतिक, धार्मिक एवं मनोरंजक विभागों में बाँटता है। इसको निम्न चार्ट द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

श्रोतागण की विशेषतायें
(Characteristics of the Audience)

इसकी निम्न विशेषतायें होती हैं —

(१) इसका एक निश्चित उद्देश्य होता है (It has a definite aim)

श्रोतागण एक निश्चित उद्देश्य से बुलाये जाते हैं। उदाहरणस्वरूप पण्डित नेहरू चुनाव के दौरे पर अजमेर आये। उनके आने पर चारों तरफ सभा की सूचना दी जाती है। इस सभा का उद्देश्य निश्चित होता है। इसी प्रकार से प्रत्येक श्रोतागण का एक निश्चित उद्देश्य होता है।

(२) श्रोतागण पूर्व निश्चित समय और स्थान पर एकत्रित होता है (The audience assembles at previously fixed time & place)

श्रोतागण पूर्व निश्चित स्थान एवं समय पर एकत्रित होते हैं, क्योंकि इसकी सूचना पहले से दे दी जाती है और लोग उसी सूचना के आधार पर एकत्रित होते हैं।

(३) अभिस्पन्दन का एक निश्चित आदर्श स्वरूप होता है (It has a standard form of polarisation)

अभिस्पन्दन का एक आदर्श स्वरूप श्रोतागण में पाया जाता है। इसके लिये एक विशिष्ट प्रकार की व्यवस्था करनी पड़ती है। अभिस्पन्दन से तात्पर्य यह है कि श्रोतागणों का ध्यान वक्ता पर केन्द्रित होना चाहिये। इस ध्यान को वक्ता पर केन्द्रित करने के लिये निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिये —

श्रोतागण
(Audience)
Kimbal Young's
(किंवाल यंग के अनुसार)
Lapiere's
(लेपियर के अनुसार)
Sociologist's
(अन्य समाजशास्त्रियों के अनुसार)
(Information Seeking)
सूचना प्राप्त करने वाला
(Recreation Seeking)
मनोरञ्जन प्राप्त करने वाला
(Conversional)
विचार परिवर्तन हेतु
(Cultural)
सांस्कृतिक
(Economic)
आर्थिक
(Political)
राजनैतिक
(Relegious)
धार्मिक
(Recreational)
मनोरंजक
(Dramatic)
नाटकीय
(Lecture)
भाषण
(Conversional)
विचार परिवर्तन हेतु
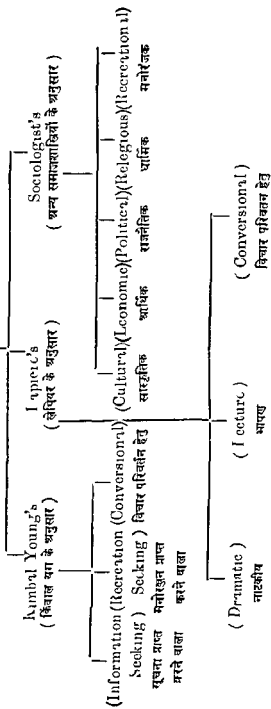
(अ) सभा के स्थान के भौतिक लक्षण

(i) बैठने की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि वक्ता सबके निकट हो। (ii) वक्ता का स्थान ऊँचा होना चाहिये, जिससे सब लोग उसे आसानी से देख सकें। (iii) रोशनी का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिये कि एकत्रित व्यक्ति उद्वेगों में बहने लग जायें। (iv) सभा का भवन ऐसा होना चाहिये कि खचाखच भरा हो। यदि कम लोगों के आने की सम्भावना है तो छोटे भवन का प्रबन्ध करना चाहिये। साधारणतया भीड़ भाड़ दिखाई देनी चाहिये। (v) भवन की सजावट तापमान, हवा का प्रबन्ध इत्यादि भी श्रोतागण पर प्रभाव डालते हैं।

(ब) प्रबन्धकों द्वारा प्रारम्भिक कार्यक्रम

श्रोतागण का अधिक से अधिक ध्यान आकर्षित करने के लिये, प्रबन्धकों द्वारा किस प्रकार कार्यक्रम प्रारम्भ किया जाता है, एक अति महत्वपूर्ण तत्व है।

(स) वक्ता या कार्य करने वाले का प्रभाव

ध्यान आकर्षित करने में सबसे अधिक भाग वक्ता या कार्य करने वाले का होता है, यदि वह नेतृत्व को स्थापित रख सके तो सब कुछ ठीक प्रकार से होता है।

श्रोतागण का मनोवैज्ञानिक विश्लेपण
(Psychological analysis of the Audience)

श्रोतागण और नेता के पारस्परिक प्रभाव में मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं कार्य करती हैं। उनको हम निम्न प्रकार से समझा सकते हैं:—

(१) प्रारम्भिक मनोभाव का निर्माण (Preliminary tuning)

किसी भी श्रोतागण के लिये यह आवश्यक है कि कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये प्रारम्भिक मनोभावों का निर्माण करें। इसके लिये प्रचार के विभिन्न साधनों का प्रयोग करना पड़ता है। इनके द्वारा लोगों की जिज्ञासा को जागृत करना पड़ता है।

(२) श्रोतागण की प्राम्भिक प्रतिक्रियायें

सभा शुरु होने के पूर्व एक पूर्व निश्चित् विधि या रीति के अनुसार श्रोतागणों का ध्यान केन्द्र की ओर आकर्षित करना पड़ता है। उदाहरण स्वरूप किसी भाषण के पूर्व वक्ता का परिचय कराया जाना, उसे माला पहिनाना एवं वन्दना करना इत्यादि।

(३) सम्बन्ध स्थापित करना एवं बनाये रखना

इसके उपरान्त उस ध्यान को केन्द्र पर बनाये रखने का कार्य वक्ता या कार्य करने वाले का होता है। वह अपनी युक्तियों द्वारा इसको बनाये रखता है।

बीच बीच मे हँसी, गीत एवं वस्तुए जिनके द्वारा श्रोतागण केन्द्र पर ध्यान बनाये रखे, प्रयोग मे लाई जाती हैं।

(४) सुझाव देना और उसको स्वीकार करवाना

उद्वेगों पर आधारित परन्तु देखने में तर्कपूर्ण, युक्ति प्रस्तुत करनी चाहिये और उसे श्रोतागणों के साँस्कृतिक आधार पर रख कर स्वीकार करने के लिये सरलता से उन्हें बाध्य करना चाहिये ।

(५) कार्य करने के लिये उत्तेजना

कई बार श्रोतागणों को कार्य करने के लिये भी उत्तेजना दी जाती है। जब वे कार्य करने लगते हैं तो भी श्रोतागण से क्रियाशील भीड़ मे परिवर्तित हो जाती है।

भीड़ और श्रोतागणों में अन्तर
(Distinction between Audience and Crowd)

श्रोतागण (*Audience*)	अनौपचारिक भीड़ (*Informal Crowd*)
(१) इसका निश्चित् उद्देश्य होता है।	(१) इसका उद्देश्य पूर्व निश्चत् नहीं होता।
(२) ये एक निश्चित समय एव स्थान पर एकत्रित होते है।	(२) इसमे कुछ भी निश्चित् नहीं होता।
(३) उसे इच्छापूर्वक बुलाया जाता है।	(३) यह स्वयं एकत्रित हो जाती है।
(४) इसमे ध्यान एक बाहरी केन्द्र पर केन्द्रित होता है और उसके सदस्य एक दूसरे की उपस्थिति व्यवहार से प्रयोजन नहीं रखते।	(४) इसमे केन्द्र भीड़ में ही होता है और एक दूसरे से पारस्परिक उत्तेजना मिलती रहती है।
(५) इसके व्यवहार निश्चित् रीतियों के अनुसार होते हैं।	(५) इसका व्यवहार अनिश्चित रहता है।

भीड़ व्यवहार की व्याख्या
(Explanation of Crowd Behaviour)

भीड़ व्यवहार व्यक्तिगत व्यवहार से विभिन्न होता है। भीड़ व्यवहार की व्याख्या एवं विश्लेषण करने का अनेक विद्वानों ने प्रयत्न किया है और कई सिद्धान्तो का प्रतिपादन भी किया है। उनमे से कुछ प्रमुख सिद्धान्तो पर हम विचार करेंगे।

(१) समूह मस्तिष्क का सिद्धान्त (Thesis of Group Mind)

लेबॉन (Le Bon) तथा अन्य लेखकों का मत है कि भीड़ का एक नया मस्तिष्क निर्मित हो जाता है, जो भीड़ के सदस्य होते है। लेबॉन ने सामूहिक

चेतना के विकास को मानसिक एकता का सिद्धान्त (Law of the mental unity) लिखा है। लेबॉन ने इस विचार को अपनी पुस्तक "दी क्राउड" में निम्न प्रकार से व्यक्त किया है, 'कुछ निश्चित् परिस्थितियों में और केवल उन्हीं परिस्थितियों में मनुष्यों का समूह नवीन विशेषताएं प्रस्तुत करता है, जो कि समूह के सदस्यों की विशेषताओं से भिन्न होती हैं। भीड़ के समस्त व्यक्तियों, उनके उद्वेग और विचार एक ही दिशा में बहने लगते हैं और मनुष्यों का जागरूक व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है। एक सामूहिक मस्तिष्क का निर्माण हो जाता है, जो कि निस्सन्देह ही अस्थिर होता है, परन्तु निश्चित एवं स्पष्ट विशेषताओं को प्रस्तुत करता है। यह समूह एक मनोवैज्ञानिक भीड़ बन गया है। वह एक प्राणी का रूप धारण करता है और भीड़ की मानसिक एकता के सिद्धान्त के आधीन होता है।'[1] समूह मस्तिष्क की कल्पना विचित्र है। समूह के पास एक व्यक्ति के समान मस्तिष्क कैसे हो सकता है, जबकि समूह स्वयं एक प्राणी नहीं है। रेनहार्ट ने उचित ही लिखा है, "यह माना जाता है कि कोई भी स्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति यह विश्वास नहीं करता कि भीड़ मस्तिष्क, महत्वपूर्ण अहं के रूप में वातनाड़ी मण्डल से भिन्न और पृथक स्वरूप में रहता है।"[2]

यह सिद्धान्त आधुनिक युग में बिल्कुल ही स्वीकार नहीं किया जाता। समूह मस्तिष्क की धारणा अनुचित एवं मिथ्या है। इस व्याख्या द्वारा भीड़ व्यवहार का विश्लेषण अवैज्ञानिक है।

निरुद्ध चालकों की मुक्ति का सिद्धान्त
(The thesis of release of repressed drives)

फ्रॉयड तथा उसके अनुयायियों ने निरुद्ध चालकों की मुक्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। उनका मत है कि भीड़ में मनुष्य की प्रवृत्तियों और चालकों

---

[1] "Under certain given circumstances, and only under those circumstances an agglomeration of men presents new characteristics very different form those of the individuals composing it The sentiments and ideas of all the persons in the gathering take one and the same direction, and their conscious personality vanishes A collective mind is formed, doubtless transitory, but presenting very clearly difined characteristics The gathering has thus become .. a psychological crowd It forms a single being, and is subjected to the *law of the mental unity of crowds*" Le Bon, G 'The Crowd,' p 1, English translation.

[2] "It is assumed that no sane individual belived that a mob mind exists as a form of transcendent ego separate and apart form nervous tissue", James Reinhardt, 'Social Psychology' p 206

का बन्धन टूट जाता है। इसे दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि मनुष्य चेतन अवस्था में नहीं रहता। साधारण व्यवहार चेतनावस्था के कारण नियन्त्रित और आचार के अनुसार होता है, परन्तु वे विचार जो मूल प्रवृत्तियों के कारण उत्पन्न होते हैं और सामाजिक नियन्त्रण के कारण चेतनावस्था मे दबा दिये जाते हैं, समाप्त नहीं होते, बल्कि अचेतन मस्तिष्क में बन्दी हो जाते हैं। भीड़ में अचेतन मस्तिष्क चेतनता नष्ट होने के कारण सक्रिय हो जाता है और इन दबे हुए एव निरुद्ध चालकों को मुक्ति मिल जाती है और वे मनुष्य के व्यवहार को निदेशित करते हैं। इस कारण भीड़ का व्यवहार व्यक्तिगत व्यवहार से भिन्न होता है।

फ्रॉयड तथा उसके अनुयायियो ने निम्न श्रेणी के पशु व्यवहार से इसकी व्याख्या की है। यद्यपि यह सिद्धान्त भीड़ व्यवहार पर कुछ प्रकाश डालता है, तथापि यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि भीड़ में मनुष्य केवल इन निरुद्ध चालकों द्वारा निदेशित होता है।

सामाजिक दशा का सिद्धान्त
(The thesis of social situation)

भीड़ के व्यवहार और सामाजिक एव सास्कृतिक दशा में घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। सास्कृतिक छाप भीड़ पर अत्यधिक पाई जाती है। जिस प्रकार का समाज होगा, उसी प्रकार की उस समाज के अन्तर्गत होने वाली भीड़े भी होंगी।

इस सिद्धान्त के द्वारा भी भीड़ व्यवहार की व्याख्या उचित रूप से नहीं हो पाती।

बहुकारक सिद्धान्त (Theory of Multiple factors)

वास्तव म भीड़ व्यवहार को किसी भी एक सिद्धान्त से नहीं समझाया जा सकता। भीड़ का व्यवहार व्यक्तियों के व्यवहार स क्यों भिन्न होता है, इसके लिये व्यक्तियों की मानसिक अवस्था पर विचार करना होगा। प्रथम तो भीड़ म व्यक्तियो की सुझाव ग्रहण क्षमता अत्यधिक मात्रा में बढ़ जाती है और विचार करने की शक्ति कम हो जाती है। भीड़ एक विभिन्न प्रकार की परिस्थिति प्रस्तुत करती है। भीड़ में उत्तरदायित्वहीन भावना भी अनैतिक व्यवहार करने के लिये उत्साहित करती है। उद्वेग मनुष्य को पागल बना देता है और सर्वशक्तिमान होने की भावना उसे मदान्ध कर देती है। इन कारणो स भीड़ व्यवहार व्यक्तिगत व्यवहार स भिन्न होता है।

प्रश्न

(१) भीड़ की परिभाषा कीजिये। एक 'भीड़' मे विचारों की अपेक्षा भावना क्यो अधिक तेजी से फैलती है ?

(Define Crowd. Why do feelings run through a crowd more readily than ideas ?) Agra, 1954.

(२) एक भीड़ मे मनुष्यो का व्यवहार एकाकी व्यवहार से क्यो भिन्न होता है।

(Why does the behaviour of men in a crowd differ from their behaviour when alone ?) Agra, 1955

SELECTED READINGS

1 W.J H. Sprott, 'Social Psychology', chapter IV.
2 Otto Klineberg, 'Social Psychology', chapter XVII.
3. J.R. Kantor, 'An Outline of Social Psychology,' chapter II.
4 L W. Doob, 'Social Psychology,' chapter X.
5. K. Young, 'Handbook of Social Psychology', chapter XVI.

शब्दानुक्रमणिका
(WORD INDEX)

आँग्ल शब्द	हिन्दी शब्द
Accompanying Emotion	सहवर्ती उद्वेग
Acquisition	सचय
Action Crowd	क्रियात्मक भीड़
Adaptation	अनुकूलन
Affective	उत्तेजनात्मक
Afferent	केन्द्र पर पहुँचानेवाला भाग
Affluence	प्रचुरता
Aggregation	झुण्ड
Ancestor Worship	पूर्वजों की पूजा
Animism	आत्मवाद
Attack-rage Crowd	आक्रमणकारी भीड़
Audience	श्रोतागण
Auto Suggestion	स्वत सुझाव
Awareness	जागरूकता
Band	खानाबदोशी दल
Bigamy	द्विपत्नी विवाह
Biological	प्राणीशास्त्रीय
Caste Endogamy	जातीय अन्तर्विवाह
Ceramby×	तितली का कीड़ा
Chain Reflexes	प्रतिक्षेप श्रृङ्खला
Chromosomes	वर्णसूत्र
Civilization	सभ्यता
Clan	गोत्र
Code	सहिता
Cognitive	ज्ञानात्मक
Community	समुदाय
Community sentiment	सामुदायिक भावना
Conative	क्रियात्मक
Conductor	प्रवाहक
Conjunction	समुच्चय बोधक
Consanguine family	रक्त सम्बन्धी परिवार
Consensus	मतैक्य
Co operation and conflict	सहयोग और सघर्ष
Constructive	विधायकता
Contra Suggestion	प्रतिषेध सुझाव
Conversational Audience	विचार परिवर्तन हेतु श्रोतागण
Creativeness	कृतिभाव
Creches	बच्चों की देखभाल किये जाने का स्थान
Crescive	स्वत· विकसित
Criminality	अपराध करने की प्रवृत्ति
Criminology	अपराधशास्त्र

आँग्ल शब्द	हिन्दी शब्द
Cross Marriage	अन्तर्विवाह
Crowd	भीड़
Crowd Stimuli	भीड़ की प्रेरणा
Curiosity	जिज्ञासा
Cultural lag	सांस्कृतिक विलम्बना
Culture	संस्कृति
Culture Conflict	सांस्कृतिक संघर्ष
Cumulative Crisis	संचयी संकट
Customs	प्रथायें
Delinquent	बाल अपराधी
Desertion	परित्याग
Deterrent Theory	निवर्तक सिद्धान्त
Diffusion	प्रसरण
Direct Suggestion	प्रत्यक्ष सुझाव
Disgust	घृणा
Divorce	विवाह विच्छेद
Dolico cephalic	लम्बे सिर
Dramatic Audience	नाटकीय श्रोतागण
Drives	प्रेरणायें
Ductless Glands	नाड़ीशून्य ग्रन्थियाँ
Economic Superstructure	आर्थिक संरचना
Effector	साधक
Efferent	बाहर की ओर ले जाने वाला भाग
Efferent Nerves	बाहर ले जाने वाली नाड़ियाँ
Employment Exchange	काम दिलाऊ कार्यालय
Emotion	उद्वेग
Emotion of loneliness	एकाकीपन का उद्वेग
Enacted	स्थापित
Encephalitis	मस्तिष्क शोथ
Endogamy	अन्तर्विवाह
Environment	पर्यावरण
Epilepsy	अपस्मार रोग
Ethics of Severity	निष्ठुरता का आचारशास्त्र
Ethnic Group	जाति समूह
Ethnocentrism	अहंवाद
Eugenic programme	सुप्रजनन कार्यक्रम
Eugenists	उत्तम सन्तानोत्पत्तिवादी
Exogamy	बहिर्विवाह
External stimulus	बाह्य उद्दीपक
Family of Procreation	सन्तानोत्पत्ति परिवार
Family of Orientation	जन्मित परिवार
Feeble minded	हीन बुद्धि
Felony	जघन्य अपराध
Filiocentric family	बच्चों पर केन्द्रित परिवार
Flight	पलायन
Folkways	जनरीतियाँ
Formal	औपचारिक

आँग्ल शब्द	हिन्दी शब्द
Formal Crowd	औपचारिक भीड़
Fossils	अस्थिपिंजर
Functional Theory	पूर्ण रूपेण सिद्धान्त
Genes	वाहकाणु
Geneticists	उत्पादक विज्ञान के विद्वान्
Gravitational field	आकर्षक केन्द्र
Gregarious	सामूहिक जीवन
Heredity	वशानुसक्रमण
Horde	खानाबदोशी झुण्ड
Hunting Band	शिकारी खानाबदोशी दल
Hypergamy	अनुलोम
Hypersexualism	तीव्र कामना
Hypogamy	प्रतिलोमा
Hypnotism	वशीकरण विद्या
Hysterid	वातोन्माद
Indentification	अभिज्ञान
Ideo motor Suggestion	भाव चालक सुझाव
Imitation	अनुकरण
Immediate family	मूलभूल परिवार
Impersonal	अवयक्तिक
Impetus	कारक बल
Impul e	प्रेरणा
Impulsive	परिवर्तक
Indirect Suggestion	परोक्ष सुझाव
Induction	उपपादकत्व

आँग्ल शब्द	हिन्दी शब्द
Informal	अनौपचारिक
Informal Crowd	अनौपचारिक भीड़
Information Seeking	सूचना प्राप्त करने वाला
In group	अन्त समूह
Innate Dispositi n	सहज प्रकृति
Inner membrane	आन्तरिक झिल्ली
Insanity	पागलपन
Institutions	सस्थायें
Instinct	मूल प्रवृत्ति
Instictive	स्वाभाविक
Intellectualists	बुद्धिवादी
Interests	स्वार्थ
Internal epicanthic fold	आन्तरिक त्वचा तह
Iris	आँख का तारा
I. Q	बुद्धिफल
Isolation	पृथकृता
Larv l	कीट डिंब सम्बन्धी
Kinship	रक्त सम्बन्ध
Leptorrhine	लम्बी नासिका
Levirate and Sororate	भाभी विवाह तथा साली विवाह
Lineage	वश समूह
Locality	भूभाग
Lecture Audience	भाषण श्रोतागण
Localized response	स्थानिक प्रतिक्रिया

आँग्ल शब्द	हिन्दी शब्द
Locom tor Organs	गतिशील इन्द्रियाँ
Logical	तार्किक
Loneliness	एकाकीपन
Man's Somatology	मानव भौतिक विज्ञान
Mason wasp	बर
Mass Suggestion	सामूहिक सुझाव
Mating	सहवास
Matriarchal Family	मातृवंशीय परिवार
Matrilineal Clan	मातृवंशीय गोत्र
Matrilineal Family	मातृवंशीय परिवार
Matrilocal Residence	स्थानीय निवास
Matronymic	मातृसूचक परिवार
Mechanical	बुद्धि रहित
Meso cephalic	मध्य के सिर
Mesorrhine	चपटी नासिका
Migration	स्थान परिवर्तन
Misdemeanour	साधारण अपराध
Mob	मॉब
Mobility	गतिशीलता
Mood	चित्तवृत्ति
Moiety	अर्द्धांश समूह
Monogamy	एक विवाह
Mores	रूढ़ियाँ
Motives	प्रेरक शक्तियाँ

आँग्ल शब्द	हिन्दी शब्द
Mutation	उत्परिवर्तन
Nasal Index	नासिका देसना
National Likeness	राष्ट्रीय समानता
Natural Process	स्वाभाविक प्रक्रिया
Natural Selection	प्राकृतिक प्रवरण
Naturism	प्रकृतिवाद
Negatively phototropic	अप्रकाशावर्तिक
Negative Suggestion	नकारात्मक सुझाव
Nerve	नाड़ी
Neurosis	चित्त विकृतियाँ
Nervous Excitation	ओजस्वी उत्तेजना
Nervous systom	वात नाड़ी मंडल
Non material culture	अभौतिक संस्कृति
Non material elements	अभौतिक तत्व
Non intellectualists	अबुद्धिवादी
Non specific	अविशिष्ट
Offender	दोषी
Open Class	अप्रतिबन्धित वर्ग
Organ	अवयव
Organism	प्राणी
Organic Theory	सावयव सिद्धान्त

आँग्ल शब्द	हिन्दी शब्द
Other- group	दूसरों का समूह
Out group	बाह्य समूह
Panic Crowd	भयभीत भीड़
Parental	पुत्र कामना
Pastoral Band	पशुपालक खानाबदोशी दल
Parental Instinct	सन्तान कामना की मूल प्रवृत्ति
Passive Crowd	उदासीन भीड़
Pattern Reaction	प्रतिमान प्रतिक्रिया
Patriarchal	पितृसत्तात्मक
Patriarchal family	पितृ सत्तात्मक परिवार
Patrilineal clan	पितृवंशीय गोत्र
Patrilineal family	पितृवशीय परिवार
Patrilocal residence	पितृ स्थानीय निवास
Patronymic family	पितृसूचक परिवार
Pattern	आकार
Penology	दण्ड विज्ञान
Personal Disorganisation	वैयक्तिक विघटन
Personality	व्यक्तित्व
Personal Sanction	वैयक्तिक अभिमति
Physiological	दैहिक
Pine processionary Caterpillar	सरल चीड़ संयात्री पदातिक

आँग्ल शब्द	हिन्दी शब्द
Platyrrhine	चौड़ी नासिका
Polarisation	अभिस्पन्दन
Policy of Sterlisation	जीवाणु घात की नीति
Polyandry	बहुपति विवाह
Polygamy	बहु विवाह
Pologyny	बहुपत्नी विवाह
Poverty	दरिद्रता
Positive Geo ropism	भूम्यावर्तना
Positive Heliotropism	सुर्यावर्तना
Positively Phototropic	प्रकाशवर्तिक
Positive Suggestion	करात्मक सुझाव
Prestige Suggestion	प्रतिष्ठा सुझाव
Protozoon Luglend	प्रजीव सुतार
Precipitate Crisis	प्रबल सकट
Preferential Behaviour	अधिमानात्मक व्यवहार
Prehistoric	प्रागैतिहासिक
Preventive Theory	निरोधात्मक सिद्धान्त
Primary Emotion	प्राथमिक उद्वेग
Primary group	प्राथमिक समूह
Process of Evolution	उद्विकास की प्रकिया
Pseudo-Instincts	मिथ्या मूल प्रवृत्तियाँ

आँग्ल शब्द	हिन्दी शब्द
Psycho-physical process	मन शारीरिक क्रिया
Psychical process	मन प्रक्रिया
Psychical entity	मन सम्बन्धी अस्तित्व
Psychology	मनोविज्ञान
Psychoses	मनोविकृतियाँ
Public Opinion	सार्वजनिक विचार
Punaluant family	समूह परिवार
Pugnacious Instinct	कलह की मूल प्रवृत्ति
Pugnacity	युयुत्सा
Pupa	कोशित
Pupal	कोशितीय
Race	प्रजाति
Receptor	प्राप्तकर्ता
Recreation Seeking	मनोरंजन पानेवाला
Reflex Action	प्रतिक्षेप क्रिया
Reflex Arc	प्रतिक्षेप वृत खण्ड
Reformative Theory	सुधारात्मक सिद्धान्त
Repulsion	निवृत्ति
Restricted Sororate	समिति साली विवाह
Retributive Theory	प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त
Rheumatism	गठिया
Rickets	सूखारोग
Ritual	क्रिया पद्धति

आँग्ल शब्द	हिन्दी शब्द
Roles	कार्य
Sanction	अभिमति
Secondary group	द्वैतीयक समूह
Secular	असाम्प्रदायिक
Sensory Nerves	मस्तिष्क सम्बन्धी ज्ञान तन्तु
Self	अह
Separation	पृथक्करण
Sex	लिंग
Sexual Crimes	लिंगीय अपराध
Sexual Communism	लिंग सम्बन्धी साम्यवाद
Simultaneous Sororate	समकालिक साली विवाह
Social Control	सामाजिक नियन्त्रण
Social Facilitation	सामाजिक सौकार्य
Socialization	समाजीकरण
Social Pattern	सामाजिक प्रतिमान
Social Process	सामाजिक प्रक्रिया
Social Psychology	सामाजिक मनोविज्ञान
Social Security	सामाजिक सुरक्षा
Social Selection	सामाजिक प्रवरण
Social Status	सामाजिक स्थिति
Social Stratification	सामाजिक स्तरण